व्यावसायिक संदेशवाहन
एवं
विक्रयकला

लेखक

डॉ० बी० एस० माथुर

व्यावसायिक प्रशासन विभाग,

यूनिवर्सिटी कॉलेज ऑफ कॉमर्स, जयपुर

तथा

डॉ० आर० एल० नौलखा

व्यावसायिक प्रशासन विभाग

एस एस जैन सुबोध कॉलेज, जयपुर

षष्ठम् पूर्णतया संशोधित संस्करण

1977–78

आदर्श प्रकाशन

चौड़ा रास्ता, जयपुर–3

SYLLABUS OF SECOND YEAR EXAMINATION
FACULTY OF COMMERCE
UNIVERSITY OF RAJASTHAN
BUSINESS COMMUNICATION
SALESMANSHIP

Section A

Communication

Unit 1. Meaning, Principles of Business Communication, Importance, Type, Method Techniques, Barriers to Communication, Suggestions to overcome barriers

Section B

Office Management

Unit 2. Importance and Functions of Office Management, Basic Principles of Office Organisation, Selecting the Office site Office Planning and Layout, Staffing the Office

Unit 3 Office Procedure, Analysing Office job, Effective supervision and duties of the supervisor, Human Relations and Office Personnel Policies, Training and Promoting Office Personnel, Office salary administration.

Section C

Salesmanship .

Unit 4 Meaning, Scope and Development, Importance, Qualities of a Successful Salesman, Types of Salesman, Selections, Training and Remuneration of Salesman, Incentives to salesman of a sales organisation

Unit 5 Sales Promotion, Sales Organisation, Duties of Sales Manager, Buying motives and Types of customers

षष्ठम् संस्करण की भूमिका

पुस्तक का यह नवीन संस्करण प्रस्तुत करते हुए अत्यन्त हर्ष है। साथ ही लेखक अपनी ओर से खेद भी व्यक्त करते हैं कि अत्यधिक माग के उपरान्त भी हम विगत सत्र में ही पुस्तक का पुनः प्रकाशन नहीं करवा सके।

प्रस्तुत संस्करण में हमने कई अध्यायों को नये सिरे से लिखा है। कुछ अध्यायों में विषय सामग्री को बढ़ा दिया गया है। इन सब कार्यों में प्रश्न कोष (Question Bank) में दिये प्रश्नों को विशेष रूप से ध्यान में रखा गया है। आशा है छात्र इस संस्करण से और अधिक लाभान्वित होंगे।

अन्त में हम प्रबुद्ध पाठकों, सहयोगियों का आभार प्रदर्शन किये बिना नहीं रह सकते, जिनके अमूल्य सुझावों से पुस्तक के परिमार्जन में सहायता मिली है। हम आशा करते हैं, भविष्य में भी रचनात्मक सुझाव आते रहेंगे। विस्तृत छात्र समुदाय से हम प्रत्यक्ष सम्पर्क करने में असमर्थ रहते हैं। अतः छात्रों से अनुरोध है कि वे स्वयं हमें पत्र लिखकर पुस्तक की कमियों से अवगत करायें।

माथुर : नौलखा

प्रथम संस्करण की भूमिका

आधुनिक व्यावसायिक जगत में सन्देशवाहन एवं विक्रयकला का महत्वपूर्ण स्थान है। यदि इन दोनों को व्यावसायिक जगत् में जीवन रक्त की संज्ञा दी जाय तो भी कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। बिना सन्देशवाहन के कुशल प्रबन्ध करना असम्भव होता है तो विक्रयकला के अभाव में विक्रय करना। पुनः कुशल प्रबन्ध एवं विक्रय के अभाव में किसी भी व्यावसायिक संस्था के लिए अपना अस्तित्व बनाये रखना कठिन है।

यह पुस्तक भारतीय विश्वविद्यालयों के विशेषकर राजस्थान विश्वविद्यालय के वाणिज्य के पाठ्यक्रमानुसार लिखी गयी है। इसमें विषय-सामग्री को सरल एवं रुचिकर ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। भाषा अत्यन्त सरल सुबोध एवं रोचक है। विद्यार्थीगण की कठिनाई को ध्यान में रखकर पारिभाषिक एवं तकनीकी शब्द हिन्दी के साथ अंग्रेजी में भी दिये गए हैं।

हमें पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक विद्यार्थियों के लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी। पुस्तक को अधिक उपयोगी तथा लोकप्रिय बनाने के लिए प्रवक्ताओं, विद्वानों, एवं विद्यार्थियों के सुझावों का सदैव स्वागत किया जायेगा।

हम अपने प्रकाशक आदर्श प्रकाशन तथा मुद्रक देव फाइन आर्ट प्रिण्टर्स के आभारी हैं, जिन्होंने अल्प समय में ही पुस्तक को आपके समक्ष प्रस्तुत करने में सहयोग दिया है।

23 जुलाई 1972

भवदीय

लेखकद्वय

विषय-सूची

खण्ड 'अ'

इकाई-1

खण्ड 'ब'

इकाई-2

इकाई-1
(UNIT–1)

1. व्यावसायिक संदेशवाहन : एक सामान्य अध्ययन
2. संदेशवाहन के प्रकार
3. संदेशवाहन की तकनीकें या साधन
4. संदेशवाहन : बाधाएं एवं सुझाव

1

व्यावसायिक सन्देशवाहन एक सामान्य अध्ययन

(Business Communication : A General Study)

"The words themselves do not matter so much, or the gestures or actions by which we communicate; it is the meaning another person infers from them that is the final test—the pay off of every communication."
—Joseph Dhooher

वर्तमान अणु युग मे व्यावसायिक कार्यालयों, कारखानो की चिमनियो तथा कार्यालयो एवं कारखानों में कार्य करने वाले कर्मचारियों की सख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। एक व्यावसायिक सस्था अन्य सस्थाओं पर अत्यधिक रूप से निर्भर होती जा रही है। दूसरे शब्दो में, व्यावसायिक क्षेत्र मे विशिष्टीकरण का बोलबाला बढ़ता ही जा रहा है। इतना ही नही, व्यवसाय की क्रियाएँ बाह्य वातावरण से अत्यधिक रूप से प्रभावित हो रही हैं। बाह्य वातावरण में श्रम-सघो का महत्त्व बढ रहा है, वैज्ञानिक खोजे हो रही है, तकनीकी आविष्कार हो रहे हैं मनोवैज्ञानिक अनुसधानो द्वारा प्रबन्ध तकनीक में सुधार करने के प्रयास किये जा रहे हैं, हमारी राष्ट्रीय सरकार द्वारा नवीन आर्थिक कार्यक्रम निर्धारित किये जा रहे हैं, औद्योगिक नीति मे समय-समय पर परिवर्तन किये जा रहे हैं। ऐसे वातावरण मे होने वाले प्रत्येक परिवर्तन का ज्ञान प्रबन्धक का होना ही चाहिए। उसे श्रमिकों एवं श्रमिक सगठनो से सतत् सम्पर्क बनाये रखकर व्यवसाय मे अच्छे एवं मधुर मानवीय सम्बन्धो का निर्माण करना चाहिये। हजारो एवं लाखो कार्यरत कर्मचारियो को प्रबन्धकीय कार्यों से अवगत करवाकर तथा उनकी शिकायतो एवं सुझावो पर पर्याप्त ध्यान देकर, उनमे सस्था के प्रति आत्मीयता का भाव उत्पन्न करना चाहिये। प्रत्येक प्रबन्धकीय कार्य यथा नियोजन, नियन्त्रण, सगठन आदि मे कर्मचारियो को पर्याप्त अवसर भी देना चाहिये।

तकनीकी एवं वैज्ञानिक प्रगति से अवगत होकर प्रबन्धक को व्यावसायिक जगत मे अपनी प्रतिस्पर्द्धात्मक स्थिति को भी सुदृढ करने का प्रयास करना चाहिये।

अपने ग्राहकों आपूर्तिकर्ताओं (Suppliers) आदि से सदैव सम्पर्क बनाये रखकर अपनी व्यावसायिक ख्याति को दिन दुगुनी रात चौगुनी करने का यत्न करना चाहिये। इन सब व्यावसायिक कार्यों को करने के लिए प्रबन्धकों को सन्देशवाहन[1] की कला में दक्ष होना चाहिये। तभी वे कुशलतापूर्वक संस्था का प्रबन्ध कर सकेंगे। पीटर्स (Peters) ने इसीलिए उचित ही कहा है कि 'अच्छे सन्देशवाहन सुदृढ़ प्रबन्ध की नींव हैं'॥

सन्देशवाहन प्रबन्धक वर्ग का एक महत्त्वपूर्ण कार्य है जिसे सभी विद्वानों ने स्वीकार किया है। कई वर्षों पूर्व सन् 1938 में ही प्रबन्ध क्षेत्र के प्रसिद्ध विद्वान **चेस्टर आई बर्नार्ड** (Chester I Barnard) ने कहा था कि **प्रबन्धक का प्रथम कार्य सन्देशवाहन व्यवस्था को उन्नत करना तथा बनाये रखना है।** (The first executive function is to develop and maintain a system of communication) आज के व्यवसाय के विस्तृत स्वरूप की सफलता सन्देशवाहन की कुशलता पर ही निर्भर है। कुशल सन्देशवाहनों के अभाव में प्रभावशाली प्रबन्ध करना असम्भव हो जाता है। अमरिकन मैनेजमेन्ट एसोसिएशन (American Management Association) के भूतपूर्व अध्यक्ष **एल्विन डाड** (Alvin Dodd) ने तो इसके महत्त्व के सम्बन्ध में यहां तक कह डाला है कि **आज सन्देशवाहन प्रबन्धकों की प्रथम समस्या है।** **कौमस्टाक ग्लेसर** ने तो प्रशासन को ही सन्देशवाहन विधियों की श्रृंखला कह दिया है।

उपर्युक्त कथनों से स्पष्ट होता है कि सन्देशवाहन का व्यावसायिक जगत में महत्त्वपूर्ण स्थान है। कुशल सन्देशवाहन के अभाव में कोई भी व्यावसायिक संस्था अपना व्यवसाय कुशलता से नहीं चला सकती है। आज के विशिष्टीकरण के युग में व्यवसाय एवं बड़ी संस्था विभिन्न विभागों एवं उपविभागों में बांट दी गयी है तथा जब उस संस्था में सैकड़ों तथा हजारों व्यक्ति काम करते हैं तब इन समस्त विभागों एवं व्यक्तियों के कार्यों को एक सुनियोजित ढंग से संगठित एवं समन्वित करने के लिए यह आवश्यक है कि संस्था का प्रत्येक अंग अपने कार्य एवं उत्तरदायित्व से पूर्णरूपेण परिचित हो। साथ ही इसे यह भी जानकारी प्रदान करना आवश्यक है कि वह अपने कर्त्तव्यों का पालन करने पर किस प्रकार लाभान्वित होगा? इन सभी जानकारियों का माध्यम सन्देशवाहन है जिसकी विधियों द्वारा संस्था का प्रत्येक अंग एक दूसरे के सम्पर्क में रहता है और उस उनके माध्यम से अपने कर्त्तव्यों एवं अधिकारों से सम्बन्धित सूचनाओं के आदान प्रदान में सरलता होती है।

यदि किसी व्यावसायिक कार्यालय के कार्यों को ध्यानपूर्वक देखा जाय तो यह स्पष्ट हो जायगा कि उसके प्रत्येक कर्मचारी के दैनिक कार्यकाल में से लगभग 50

---

[1] सन्देशवाहन शब्द के अन्य पर्यायवाची भी हैं यथा सम्प्रेषण, संचार आदि इनमें से किसी भी शब्द का प्रयोग किया जा सकता है।

प्रतिशत से भी अधिक समय सन्देशों के आदान-प्रदान में व्यय हो जाता है। प्रबन्धक-वर्ग के बारे में विद्वानों का मत है कि वे अपने कुल समय का 90 प्रतिशत से भी अधिक समय सन्देशों के आदान-प्रदान में ही लगाते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि प्रबन्ध का प्रथम कार्य सन्देशवाहन की व्यवस्था करना, उसे उन्नत करना तथा उसे बनाये रखना है, क्योंकि उसके माध्यम से ही अन्य समस्त कार्यों की पूर्ति सम्भव हो पाती है। उदाहरणार्थ, योजना बनाने तथा नीति निर्धारण के पूर्व जब तक सर्वोच्च प्रबन्धकों को सभी स्रोतों से आवश्यक सूचनाएँ नहीं प्राप्त हो जायेंगी, तब तक न तो एक सुनिश्चित योजना बनायी जा सकती है और न ही कोई सर्वमान्य नीति ही निर्धारित की जा सकेगी। आवश्यक सूचनाओं के मिल जाने पर ही योजनाएँ बनाना सम्भव होगा।

इन योजनाओं को क्रियान्वित करने तथा सर्वोच्च प्रबन्ध की नीति की जानकारी समस्त अंगों को प्रदान करने में तो सन्देशवाहन का महत्त्व और भी अधिक है, क्योंकि इनसे सम्बन्धित कितने ही आदेश एवम् निर्देश उन्हें देने पड़ते हैं। किसी अधीनस्थ विभाग अथवा व्यक्ति से किसी भी आदेश अथवा निर्देश के पालन की आशा करना उस समय तक व्यर्थ है, जब तक कि उसे उस आदेश या निर्देश से भली प्रकार अवगत न कर दिया जाय। इसके बाद कर्मचारी अथवा विभाग को आदेशानुसार तथा निर्देशानुसार अपने कार्यों की रिपोर्ट प्रस्तुत करनी पड़ती है। इस रिपोर्ट के द्वारा ही वे अपने सन्देश उच्चाधिकारियों तक पहुँचाते हैं। अतः यह भी सन्देशवाहन का एक प्रमुख अंग ही माना जाता है। इसके साथ ही साथ, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, विभिन्न कर्मचारियों के कार्यों में समन्वय स्थापित करने तथा बाह्य पक्षकारों से सम्पर्क बनाये रखने के लिए भी सन्देशों का आदान-प्रदान आवश्यक होता है। अतः अब यह स्पष्ट है कि सन्देशवाहन के अभाव में व्यावसायिक कार्यों को पूरा करना असम्भव है। कीथ डेविस (Keith Davis) के शब्दों में "**एक व्यवसाय के लिए सन्देशवाहन का उतना ही महत्त्व है जितना कि एक व्यक्ति के लिए रक्त-संचार का।**" जिस प्रकार रक्त-संचार के रुक जाने से कोई व्यक्ति जीवित नहीं रह सकेगा, उसी प्रकार सन्देशवाहन की उपयुक्त व्यवस्था न होने पर व्यावसायिक व्यवस्था निष्क्रिय एवं प्राणहीन हो जायेगी।

सन्देशवाहन का अर्थ एवं परिभाषा
(Meaning and Definition of Communication)

'सन्देशवाहन' शब्द की रचना दो शब्दों—सन्देश तथा वाहन—को मिलाकर की गयी है। इन दोनों शब्दों के अर्थ को संयुक्त करने पर यह कहा जा सकता है कि सन्देशवाहन का अभिप्राय समाचार अथवा सूचना (सन्देश) भेजने की प्रक्रिया (वाहन) से है। इस आधार पर संकुचित अर्थ में व्यावसायिक सन्देशवाहन का आशय व्यवसाय सम्बन्धी सूचनाओं एवं सन्देशों को एक व्यक्ति अथवा संस्था से दूसरे

व्यक्ति अथवा संस्था को भेजना ही है। परन्तु सन्देशवाहन का यह संकुचित अर्थ उचित विस्तृत एवं तर्क संगत नहीं है। इस अर्थ में सन्देशवाहन के वास्तविक उद्देश्य तथा उसकी उपयोगिता का बोध नहीं होता है। वास्तव में, सन्देशवाहन तभी पूर्ण होता है जबकि सन्देश प्राप्तकर्ता सन्देश को ठीक उसी रूप एवं अर्थों में समझे, जिस रूप एवं अर्थों में उस सन्देश को भेजने वाला समझता है। यदि सन्देश प्राप्तकर्ता सन्देश भेजनेवाले की भावना एवं विचारों को ठीक-ठीक नहीं समझ पाता है, तो ऐसा सन्देशवाहन सही अर्थों में सन्देशवाहन नहीं कहा जा सकता। जब भी सन्देश की प्रेषण प्रक्रिया के मध्य कहीं पर किसी कारण किसी प्रकार का विकार (Distortion) उत्पन्न हो जाता है तो ऐसा सन्देशवाहन अपने वास्तविक उद्देश्यों की पूर्ति करने में असमर्थ होगा। ऐसी स्थिति में उसे वास्तविक सन्देशवाहन कहना गलत होगा।

अतः यह स्पष्ट है कि सन्देशवाहन में सन्देश देने वाले तथा सन्देश पाने वाले के मध्य जिस किसी भी सन्देश का आदान प्रदान हो उसका आशय एक ही भाव में ग्रहण किया जाय। यदि प्रेषक (Remitter or Sendor) तथा प्रेषित Receiver) के विचारों के मध्य इस प्रक्रिया द्वारा एकयता एवं समभाव उत्पन्न हो जाता है तो उसे प्रभावी सन्देशवाहन कहा जायगा। विपरीत स्थिति में उसे सन्देशवाहन कहना ही अनुपयुक्त होगा। सन्देशवाहन की परिभाषा देते समय इस दृष्टिकोण का ध्यान में रखना आवश्यक है। सन्देशवाहन की नीचे दी गयी कुछ विद्वानों की परिभाषाओं में इसी दृष्टिकोण का ध्यान में रखा गया है—

हेपनर तथा पेटिंगिल (Hepner and Pattingill) के अनुसार सन्देशवाहन लोगों को लिखने अथवा बातचीत करने से अधिक है—यह अर्थों का विनिमय है।[1]

न्यूमन तथा समर—(Newman & Summer) ने भी उक्त परिभाषा के समान ही परिभाषा दी है परन्तु उसमें कुछ शब्दों का मिश्रण करके उसे विस्तृत कर दिया है। उनके अनुसार सन्देशवाहन दो या दो से अधिक व्यक्तियों के मध्य तथ्यों विचारों सम्मतियों अथवा भावनाओं का विनिमय है।[2]

लुई ए एलन (Louis A Allen) के अनुसार सन्देशवाहन में वे सभी चीजें सम्मिलित की जाती हैं जिनके द्वारा एक व्यक्ति अपनी बात दूसरे व्यक्ति के मस्तिष्क में डालता है। यह वह पुल है जो व्यक्तियों के मस्तिष्क की खाई को पाटता

---

1. Communication is more than talking with or writing to people—it is exchange of meanings Harry W Hepner and Fredrick B Pettingill

2. Communication is an exchange of facts ideas opinions or emotions by two or more persons Newman and Sumer

है। इसके मन्तर्गत कहने, सुनने और समझने की व्यवस्थित प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है ॥'[1]

रेडफील्ड (Redfield) के अनुसार, "सन्देशवाहन में आशय मानवीय तथ्यो एव विचारो का पारस्परिक विनिमय है न कि टेलीफोन, तार, रेडियो आदि तकनीकी साधन।[2]

अमेरिकन प्रशिक्षण समिति (American Society of Training) के अनुसार, "सन्देशवाहन विचारो एव सूचनाओ का पारस्परिक समझ, विश्वास अथवा अच्छे मानवीय सम्बन्धो के लिए आदान प्रदान है।"[3]

कीथ डेविस (Keith Devis) के अनुसार, "सन्देशवाहन वह प्रक्रिया है जिसमे सन्देश एव समझ को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक पहुँचाया जाता है।'[4]

मेयर(Meyer) के अनुसार सन्देशवाहन, 'एक व्यक्ति की धारणाओ एव विचारो को दूसरे व्यक्ति को बताना है।[5]

मेक्फारलेण्ड (McFarland) के अनुसार, "विस्तृत रूप में, सन्देशवाहन वह प्रविधि है जिसमें मनुष्यो के बीच अर्थपूर्ण बातो का आदान प्रदान होता है। विशिष्ट रूप मे, यह वह प्रविधि है, जिसमें मनुष्यो द्वारा अर्थों को समझा जाता है और समझ पहुँचाई जाती है।[6]

लल, फन्क तथा पीयरसोल (Lul, Func and Piersol) के अनुसार, "यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से सूचनाएँ, मनोवृत्तिया, विचारो एव मतो

---

1 "Communication is the sum of all things which a person does when he wants to creat understanding in the mind of another It is a bridge of meanings It involves a systematic and continuous process of telling, l stening and understanding, Louis A Allen

2 "Communication is the broad field of human interchange of facts and opinions and no' the technologies of telephone, telegraph, radio and like. Charles E Redfield

3 Communication is the interchange of thought or information to bring about mutual understanding and confidence or good human relations American Socie y of Training Direct rs, quoted by Harold Koontz and Cyril O' Donnell

4 "Communication is the process of passing information and understanding from one person to another " Keith Devis

5 "The act of making one's ideas and opinions known to others

—F G. Meyer

6 Communication may be broadly defined as the process of meaningful interaction among human beings More specifically, it is the process by which meanings are perceived and understandings are reached among human being ' D E Mc Farland

को दूसरों तक पहुँचाया एवं प्राप्त किया जाता है और जिससे फलस्वरूप पारस्परिक समझ तथा सहमति के लिए आधार सुलभ होता है ।[1]

उपर्युक्त परिभाषाओं को ध्यान में रखते हुए हम कह सकते हैं कि "सन्देशवाहन वह प्रक्रिया है जिसमें दो या दो से अधिक व्यक्ति अपने सन्देशों तथा इन सन्देशों से सम्बन्धित भावनाओं, विचारों, सम्मतियों, तर्कों, तथ्यों, सन्देहों एवं विश्वास आदि का आदान प्रदान करते हैं। इस सम्बन्ध में यह बात अत्यन्त महत्त्व की है कि सफल सन्देशवाहन वह है जिसमें सन्देश भेजने वाला तथा प्राप्त करने वाला दोनों सन्देश को एक ही अर्थ में समझें। किसी व्यक्ति को कोई बात कह देना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि महत्त्व इस बात का है कि उस कही गई बात को प्राप्तकर्ता ने उसी अर्थ में समझ लिया है जिस अर्थ में सन्देश देने या भेजने वाले ने समझा है। हाँ किन्तु यह बात भी ध्यान रहे कि सन्देश प्राप्त करने वाले के विचार सन्देश के अनुकूल हों यह आवश्यक नहीं है।

सन्देशवाहन के लक्षण
(Characteristics)

उपर्युक्त परिभाषाओं का विशद विवेचन करने से सन्देशवाहन के निम्न लक्षण प्रकट होते हैं—

1 यह एक प्रक्रिया (Process) है—सन्देशवाहन एक निश्चित एवं निरन्तर प्रक्रिया है जिसमें प्रेषक एवं प्रेषिति दो महत्त्वपूर्ण पक्ष होते हैं। प्रेषक अपना सन्देश प्रेषिति को भेजते समय एक निश्चित विधि का प्रयोग करता है और प्रेषिति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए मूल प्रेषक को अपना सन्देश भेजता है। तत्पश्चात् वह मूल प्रेषक भी अपना पुनः कोई सन्देश भेजता है। इस प्रकार व्यावसायिक संस्थाओं में यह प्रक्रिया निरन्तर रूप से चलती ही रहती है।

2 सन्देशवाहन में सूचनाएँ एवं समझ सम्मिलित होती है (Information and understanding)—सन्देशवाहन का द्वितीय महत्त्वपूर्ण लक्षण यह है कि सन्देशवाहन में सूचनाएँ एवं समझ भी सम्मिलित होती है। वास्तव में सन्देश को शब्दों के अनुसार न समझकर उसकी भावना के अनुसार ही समझा जाना चाहिये। यदि शब्दों के अनुसार सन्देश का अर्थ लगाया जाता है तो ऐसा सन्देश वांछित परिणाम उत्पन्न नहीं कर सकेगा।

3 सन्देशवाहन की सफलता बोलने एवं सुनने वाले की कुशलता पर निर्भर करती है—सन्देशवाहन के सम्बन्ध में यह भी एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि इसकी

---

7 Communication is 'all of the processesses through which information, attitudes ideas or opinions are transmitted and received providing a basis for common understanding and agreement Lull P F, Fane F E and Piensol D T

सफलता बोलने एवं सुनने वाले की कुशलता पर निर्भर करती है। यदि बोलने वाला आपके सन्देश का यथोचित प्रकार से उच्चारण नहीं कर पाता है तो वह सन्देश कोई वाञ्छित प्रतिक्रिया उत्पन्न करने में असमर्थ ही रहेगा। ठीक इसी प्रकार यदि सन्देश के प्राप्तकर्ता ने सन्देश को ठीक प्रकार से सुना नहीं है अथवा सुनने में लापरवाही की है तो भी सदेशवाहन पूरा हुआ नहीं माना जावेगा।

4. सन्देशवाहन कार्यों का आधार है—किस व्यक्ति को क्या कार्य करना है, यह बात उसका अधिकारी सन्देशवाहन के द्वारा ही अवगत करवाता है। इसीलिये यह कहा जाता है कि यह कार्यों का आधार है।

5. यह प्रेषिति को कार्य के लिए प्रेरणा देता है—सन्देशवाहन के द्वारा व्यक्तियों को कार्य सौंपा जाता है तो कार्य सौंपते समय ही उन्हें कार्य के प्रति प्रेरणा भी प्रदान की जाती है। आवश्यकता पड़ने पर बाद में भी प्रेषिति को प्रेरित करने के लिये सन्देश दिया जाता है।

6. सन्देशवाहन उर्ध्वगामी, अधोगामी एवं समतल हो सकता है—एक संस्था मे सभी प्रकार से सन्देशवाहन सम्भव है। सन्देशवाहन उर्ध्वगामी भी हो सकता है अर्थात् निम्न स्तर पर कार्य करने वाले व्यक्ति अपने सुझाव, शिकायतें, कार्य प्रतिवेदन आदि उच्च अधिकारियों को प्रेषित कर सकते है। उच्च अधिकारी अधोगामी सन्देशवाहन दिये बिना अपनी सस्था के कार्यों को पूरा करवा ही नही सकते हैं। उन्हे समय-समय पर कर्मचारियों को कार्य सौपने पडते हैं, आवश्यक निर्देश देने पडते हैं, अभिप्रेरणा देनी पडती है। ऐसी स्थिति मे अधोगामी सन्देशवाहन एक सस्था में होना अत्यावश्यक है। समान स्तर पर कार्य कर रहे कर्मचारी भी कभी-कभी आपस में विचारो एव सूचनाओं का आदान-प्रदान कर कार्य प्रक्रिया को सरल बना लेते हैं। इस प्रकार एक ही सगठन में सभी दिशाओं मे सन्देशवाहन सम्भव है।

7. सन्देशवाहन प्रक्रिया में सन्देशवाहन के सभी साधन सम्मिलित हैं—सदेशवाहन प्रक्रिया मे वे सभी साधन भी सम्मिलित है जिनके द्वारा सन्देश एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को पहुँचाये जाते हैं। अर्थात् प्रेषक को सन्देश पहुँचाने के लिये उचित माध्यम का चुनाव करना चाहिये, जिससे सन्देश उचित समय एव रूप में प्रेषिति के पास पहुँच सके तथा सन्देशवाहन का मूल उद्देश्य पूरा हो सके।

8. सन्देशवाहन प्रशासकीय (Administrative) होता है—सामान्य अर्थों में हम सन्देशवाहन का तात्पर्य विचारो के आदान-प्रदान से लगा लेते हैं। किन्तु व्यावसायिक दृष्टिकोण से जो सन्देश भेजे अथवा प्राप्त किये जाते हैं वे मूलतः प्रशासकीय प्रकृति के होते हैं। इसका मूल उद्देश्य सस्था के प्रशासन को यथानुकूल बनाना होता है रेडफील्ड (Redfield) के अनुसार, **"प्रशासकीय सन्देशवाहन केवल सन्देशों के आदान-प्रदान से ही सम्बन्धित नहीं होता है बल्कि प्रशासन से भी सम्बन्धित**

होता है। एक संगठन की सन्देशवाहन की समस्याओं एवं श्रमिकों की कार्यदशाओं, पारिश्रमिक, निरीक्षण, संगठन के ढांचे तथा कार्यपद्धतियों की सन्देशवाहन की समस्याओं में कोई भिन्नता नहीं होती है।" अतएव यह कहा जा सकता है कि व्यावसायिक सन्देश मूलतः प्रशासनिक प्रकृति के होते हैं।

9 **सन्देशवाहन संगठन का आन्तरिक भाग** (Internal to the organisation) है—जैसा कि उपर्युक्त अनुच्छेद में लिखा जा चुका है कि सन्देशवाहन प्रशासकीय होता है। इससे यह बात भी स्पष्ट होती है कि सन्देशवाहन मूलतः उन लोगों से सम्बन्धित होता है जो संगठन में कार्य करते हैं। अर्थात् आन्तरिक सन्देशवाहन सम्पूर्ण सन्देशवाहन का महत्त्वपूर्ण भाग होता है। किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि सन्देशों का आदान-प्रदान संगठन से बाहर नहीं होता है। आजकल संगठोत्तर (Extra-organisational) सन्देशवाहन भी बहुत आवश्यक हो गया है। कर्मचारियों के संगठनों, केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकारों, व्यावसायिक संघों, उपभोक्ताओं आदि से सतत् सम्पर्क बनाये रखने पड़ता है।

10 **वर्तमान में द्विमार्गीय सन्देशवाहन** (Two-way communication) **का प्रचलन है**—भूतकाल में व्यावसायिक संगठनों में एकल मार्गीय (one-way सन्देशवाहन प्रचलित थी। जिस किसी कार्य को करने के लिये आदेश दे दिया जाता था कर्मचारियों को वह कार्य उसी रूप में करना पड़ता था। अर्थात् व्यावसायिक संगठनों में वही सैन्य नियम प्रचलित था कि "करो या मरो" ("Not to reason why but to do so and die") किन्तु वर्तमान में प्राय सभी संस्थाओं में द्विमार्गीय सन्देशवाहन प्रचलित है। एक अच्छे सन्देशवाहन में प्रेषिति को अपने को विचारों के आदान-प्रदान की पूर्ण छूट होनी ही चाहिये। इससे सन्देशवाहन का उद्देश्य शीघ्र एवं आसानी से प्राप्त हो सकेगा।

सन्देशवाहन का विकास
(Development of Communication)

व्यावसायिक विकास के प्रारम्भिक चरणों में चाहे सन्देशवाहन का महत्त्व नहीं रहा हो परन्तु वर्तमान में सन्देशवाहनों का अत्यधिक महत्त्व है। वर्तमान युग की व्यावसायिक क्रियाओं में सन्देशवाहनों का महत्त्वपूर्ण स्थान बन चुका है और सन्देशवाहन के क्षेत्र का पर्याप्त विकास हो गया है। सन्देशवाहन के विकास को निम्न तीन चरणों में समझा जा सकता है—

1 **एकल मार्गीय सन्देशवाहन** (One-way Communication)—एकल मार्गीय सन्देशवाहन से आशय ऐसे सन्देशवाहन से है जिसमें सन्देश केवल उच्चाधिकारियों से अधिनस्थों को ही जाते हैं और अधीनस्थों का अपने सुझाव, शिकायतें आदि उच्चाधिकारियों तक पहुँचाने का अधिकार नहीं होता है। निम्नाधिकारियों को 'Not to question why but to do so and die" उक्ति का पूर्ण रूप से

पालन करना पड़ता है। इस प्रकार एकल मार्गीय सन्देश की निम्न प्रमुख विशेषताएँ होती है—

[i] इसमे सन्देश केवल उच्चाधिकारियो से निम्नाधिकारियो को जाते है।
[ii] अधिनस्थो को किसी प्रकार के सुझाव व शिकायतें भेजने का अधिकार नही होता है।
[iii] इसमे आदेश महत्त्वपूर्ण होता है।
[iv] इसमे कर्मचारियो को मशीन की भाति कार्य करना पड़ता है।
[v] ऐसी सन्देशवाहन प्रक्रिया मे कार्य मे नीरसता उत्पन्न हो जाती है।

चित्र–1 एकल मार्गीय सन्देशवाहन

व्यवसाय के विकास के प्रारम्भिक वर्षो में इस एकल मार्गीय सन्देशवाहन का ही प्रचलन था अर्थात् सन्देश केवल उच्चाधिकारियो से अधीनस्थो को आदेश, निर्देश आदि के रूप मे भेजे जाते थे। अधीनस्थो से उच्चाधिकारियों को कोई सुझाव व शिकायत नही भेजी जा सकती थी। जो कुछ आदेश दे दिया जाता था, उसे अधीनस्थो को पालन करना पड़ता था। यह चित्र–1 मे समझाया गया है।

किन्तु सन्देशवाहन की इस प्रक्रिया का आधुनिक युग मे कोई स्थान नही है। शायद ही कोई ऐसी व्यावसायिक संस्था हो, जहाँ एकल मार्गीय सन्देशवाहन प्रक्रिया का प्रचलन हो।

2 **द्वि-मार्गीय सन्देशवाहन (Two-way Communication)**—लेकिन व्यावसायिक क्षेत्र की व्यापकता के साथ-साथ सन्देशवाहन के क्षेत्र का भी विकास हुआ। परिणामस्वरूप, यह अनुभव किया जाने लगा कि व्यवसाय के कुशल संचालन के लिए उच्चाधिकारियो द्वारा आदेश एवं निर्देश दिया जाना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि अधीनस्थो से सुझाव, शिकायतें एवं प्रतिक्रिया का ज्ञान होना आवश्यक है। इसी विचार धारा के फलस्वरूप द्वि-मार्गीय सन्देशवाहन प्रक्रिया का विकास हुआ। इस प्रकार की सन्देशवाहन प्रक्रिया में निम्नलिखित विशेषताएँ पाई जाती है —

[i] इसमे उच्चाधिकारियो से आदेश एवं निर्देश अधीनस्थो को जाते है।
[ii] अधीनस्थ अपने सुझाव एवं शिकायतें उच्चाधिकारियो को भेजते है।
[iii] इसमे आदेश महत्वपूर्ण होते हुए भी, आदेश में परिवर्तन करवाया जा सकता है।
[iv] अधीनस्थों के विचारों एवं सुझावों पर ध्यान देकर कार्य के प्रति रुचि उत्पन्न की जा सकती है।

इस प्रकार द्वि-मार्गी सन्देशवाहनो के विकास से अधिकारियों एवं अधीनस्थो के मध्य सन्देशों का सतत् रूप मे आदान-प्रदान होने लगा। इससे संस्था की कार्य-कुशलता मे वृद्धि होने लगी। सन्देशवाहन की ऐसी प्रक्रिया कर्मचारियो के मनोबल मे भी वृद्धि करने मे सहायक सिद्ध होती है। आपसी सहयोग भी बढाती है। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर ही तो आजकल सभी संस्थाएँ द्वि-मार्गीय सन्देशवाहन प्रक्रिया का प्रयोग करती है। आज का प्रत्येक प्रबन्धक अपने कर्मचारियो को प्रोत्साहित करके कार्य करवाता है, हाँक कर नही। उसे कर्मचारी से कन्धा से कन्धा मिलाकर चलना होता है, क्योकि वर्तमान युग मे हिस्सेदारी प्रबन्ध (Participative Management) का बोलबाला है। ऐसी परिस्थिति मे अधीनस्थों के विचारो एवं सुझावों का महत्व और भी अधिक बढ जाता है। द्वि-मार्गीय सन्देशवाहन प्रक्रिया को चित्र–2 में समझाया गया है।

प्रो दास गुप्ता (Dass Gupta) के अनुसार द्वि-मार्गीय सन्देशवाहन का महत्व निम्नलिखित कारणों से है

(i) यह संस्था की नीतियों एवं उद्देश्यों की जानकारी प्रदान करता है।
(ii) यह नीतियों के परिणामों एवं प्राप्तियों की जानकारी प्रदान करता है।
(iii) यह भविष्य की योजनाओं एवं सम्भावनाओं की जानकारी प्रदान करता है।
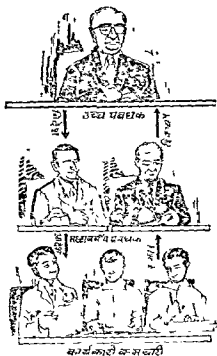
चित्र–2 द्विमार्गीय सन्देशवाहन

(iv) यह सेवा की शर्तों की जानकारी प्रदान करता है।
(v) यह उत्पादकता एवं कार्यक्षमता बढ़ाने की विधियों एवं साधनों की जानकारी प्रदान करता है।
(vi) यह औद्योगिक सुरक्षा स्वास्थ्य तथा कल्याण के सभी पहलुओं की जानकारी प्रदान करता है।

3. त्रि-दिशा सन्देशवाहन (Three-dimentional Communication)—आधुनिक युग मे द्वि-मार्गीय सन्देशवाहन तो अनिवार्य सा हो गया है और प्रत्येक संस्था मे द्वि-मार्गीय सदेशवाहनो का ही प्रचलन है। किन्तु अब पाश्चात्य देशो मे और कुछ अंशो मे हमारे देश मे भी त्रि दिशा सन्देशवाहन का विकास होने लगा है। प्रबन्धक वर्ग अब यह अनुभव करने लगा है कि केवल उच्चाधिकारियों एव अधी नस्था के मध्य विचारों का आदान-प्रदान हो जाना ही पर्याप्त नहीं है। वे यह महसूस करते हैं कि विभिन्न विभागो पर बैठे व्यक्तियो के बीच भी प्रत्यक्ष रूप से सदेशों का आदान-प्रदान हो तो प्रबन्धकीय क्षमता मे और भी वृद्धि की जा सकती है। इतना ही नही, वे यह भी अनुभव करते है कि सगठन के बाहर भी समाज के विभिन्न वर्गों एव सरकार आदि से भी निरन्तर सम्पर्क बनाये रखना आवश्यक है। इस

दृष्टिकोण से आधुनिक प्रबन्धक यह आवश्यक समझते हैं कि सन्देशवाहन प्रक्रिया की निम्न त्रि दिशा वाली हो—

(i) भिन्न स्तरीय सन्देशवाहन (Inter-scaler Communication)
(ii) समान स्तरीय सन्देशवाहन (Intra scaler Communication)
(iii) संगठनेत्तर सन्देशवाहन
(Extra organisational Communication)

(i) भिन्न स्तरीय सन्देशवाहन—भिन्न भिन्न स्तर के अधिकारियों के मध्य होने वाले सन्देशों के आदान प्रदान को भिन्न स्तरीय अथवा इन्टर स्केलर सन्देशवाहन कहते हैं। उदाहरणार्थ जनरल मैनेजर, विभागीय मैनेजर, सुपरवाइजर तथा फोरमैन के मध्य सन्देशों का आदान प्रदान भिन्न स्तरीय या इन्टर स्केलर सन्देशवाहन कहलाता है। जनरल मैनेजर से क्रमशः फोरमैन तक आदेश निर्देश सूचनाएँ दी जाती हैं और फोरमैन क्रमशः जनरल मैनेजर तक कार्य प्रतिवेदन, सुझाव, शिकायतें विचार आदि भेजे जाते हैं।

(ii) समान स्तरीय सन्देशवाहन—जब सन्देशों का आदान प्रदान समान स्तर के कर्मचारियों अथवा अधिकारियों के मध्य होता है तो समान स्तरीय अथवा इन्ट्रा
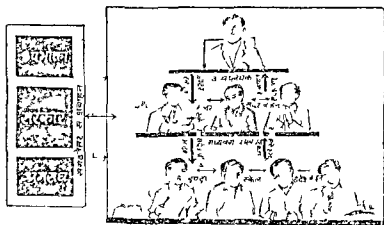
चित्र 3 त्रि दिशा सन्देशवाहन

स्केलर सन्देशवाहन कहलाता है। उदाहरणार्थ जब क्रय विभागाध्यक्ष एवं विक्रय अध्यक्ष के मध्य विभागों एवं सूचनाओं का आदान प्रदान होता है तो यह समान स्तरीय सन्देशवाहन कहा जाता है। यह प्रायः अनौपचारिक स्तर पर ही होता है। इसमें सन्देशवाहन में कुशलता बढ़ जाती है। शोभना खाण्डवाला (Shobhna Khandwala) के अनुसार समान स्तरीय सन्देशवाहन समझ (Understanding) में वृद्धि

करता है, मनोबल बढ़ाता है और पूरक सूचनाएँ प्रदान करता है। परन्तु यदि इसे अत्यधिक महत्त्व दिया गया और सामान्य हित की अपेक्षा किसी प्रबन्धक वर्ग विशेष के हित के लिए प्रयुक्त किया गया, तो यह संगठन को कमजोर बना देता है।"[1]

(ii) संगठनेत्तर सन्देशवाहन—जब संस्था के अधिकारियों एवं कर्मचारियों तथा संस्था के बाह्य पक्षों द्वारा सन्देशों का आपस में आदान प्रदान किया जाता है, तब उसे 'संगठनेत्तर सन्देशवाहन' कहते हैं। बाह्य पक्षों में हम ग्राहकों, सरकार, समाज, श्रम-संघ आदि को सम्मिलित करते हैं। इनमें भी अविच्छिन्न रूप में सन्देशों का आदान प्रदान होता रहना आवश्यक है।

व्यावसायिक सन्देशवाहन के विकास को प्रभावित करने वाले तत्त्व
(Factors influencing Development of Business Communication)

आज व्यावसायिक सन्देशवाहन का पर्याप्त विकास हो चुका है। इसके प्रमुख निम्न कारण हैं—

1. व्यावसायिक क्षेत्र का विकास (Growth of the Size of Business)—व्यावसायिक क्षेत्र के विकास ने सन्देशवाहनों को प्रभावित किया है। ज्यों-ज्यों व्यावसायिक क्षेत्र का विकास हुआ है, त्यों-त्यों व्यवसाय में कार्य करने वालों की संख्या में भी वृद्धि हुई है और सन्देशवाहनों का महत्त्व बढ़ता गया तथा आज भी बढ़ता जा रहा है।

2. तकनीकी ज्ञान का विकास (Development of Technology)—तकनीकी ज्ञान के विकास ने सन्देशवाहनों का महत्त्व बढ़ा दिया है। आज की प्रबन्धकीय पद्धतियाँ तकनीकी ज्ञान से ओत-प्रोत हैं। इन तकनीकी पद्धतियों ने सन्देशों के आदान प्रदान को आवश्यक बना दिया है।

3. प्रतिस्पर्द्धा (Competition)—यह सर्व विदित है कि आधुनिक व्यवसाय में पर्याप्त प्रतिस्पर्द्धा है। इस प्रतिस्पर्धा में ग्राहकों को सदैव के लिए स्थाई बनाना, अपने उपलब्ध साधनों का अधिकाधिक प्रयोग कर लाभ कमाना आवश्यक हो गया है। इन सबके लिए सन्देशवाहन अपरिहार्य हो गया है।

4. श्रम संघों का विकास (Development of Trade Unions)—श्रम संघों के विकास हो जाने से श्रमिकों को पर्याप्त मान्यता (Recognition) तथा हिस्सेदारी (Participation) देना आवश्यक हो गया है।

---

1 "Intra-scaler communication increases understanding, accentuates group unity, speeds actions, aids morale and provides supplementary information However, if it is overemphasized and perverted to serve interests of a particular management level rather than the general interest it tends to weaken the organisation" Communication in Industry by Shobhna Khandwala, Industrial Times, Aug 1, 1964

5 सामाजिक विज्ञानो मे अनुसन्धान (Reserrch in the Socnl Scien ces)—सामाजिक विज्ञानो के अनुसधानो से अब यह पूर्ण रूप से स्पष्ट हो गया है कि श्रमिक उत्पादन का एक साधन मात्र नही हैं वल्कि वह एक महत्त्वपूर्ण हिस्सेदार हैं। उसके साथ मानवीय सम्बन्ध स्थापित करने चाहिये तभी कार्य आसानी से करवाया जा सकता है।

सन्देशवाहन के उद्देश्य
(Objectives of Communication)

डल तथा माइकेलान (Dale and Michelon) के अनुसार, "सन्देशवाहन ***का मुख्य उद्देश्य किसी व्यक्ति, किसी समूह या किसी बात मे परिवर्तन करना है या प्रतिकूल प्रवृत्ति को समाप्त करता है।"*** विस्तृत रूप में सन्देशवाहन के निम्न उद्देश्य हो सकते है—

1 कर्मचारियो को कम्पनी की उन्नति मे अवगत रखना।
2 कमचारियों को उनके कार्यो के सम्बन्ध म आदेश एव निर्देश देना।
3 कर्मचारियो से वे सूचनाएँ प्राप्त करना जो प्रबन्ध म सहायक होती हैं।
4 कमचारियो म उनके काय तथा सम्पूर्ण कम्पनी के कार्यों के प्रति रुचि उत्पन्न करना।
5 प्रबन्ध का कमचारियो के हित म रुचि जाग्रत करना।
6 श्रमिको के आवागमन (Turn ver) को कम करना अथवा बन्द करना।
7 अच्छे मानवीय सम्बन्धो का निर्माण करना।
8 कमचारियो म काय करने की लगन म वृद्धि करना तथा उनके सहयोग मे लाभ म वृद्धि करने का प्रयास करना।
9 प्रत्येक कमचारी म कम्पनी का सदस्य होन के नाते आत्म गौरव की भावना भरना।
10 किसी परिवर्तन के लिए तैयार करना।

होज तथा जॉनसन (Hodge and Johnson) के अनुसार सन्देशवाहन के निम्न प्रमुख काय हैं—

1 सूचना देना (To inform)
2 उकसाना या प्ररित करना (To persuad)
2 कार्य करवाना (To initiate action)
4 सामाजिक सम्बन्धो को सुगम बनाना (To f c litate social contacts)

सन्देशवाहन का महत्व
(Importance of Communication)

अमेरिका के नेशनल मैनेजमेण्ट एसोसिएशन National Management Association) के अनुसार "**सन्देशवाहन आधुनिक व्यावसायिक कार्यालय की जीवन धारा है।** (Communications are the life-stream of the modern business office) व्यवसाय के व्यापक क्षेत्र में सन्देशवाहन का महत्त्वपूर्ण स्थान हैं। प्रबन्धक अपने विभिन्न कार्यों, यथा-योजना बनाना, नीति निर्धारित करना, विभिन्न कर्मचारियों से कार्य करवाना, उसके कार्यों का समन्वय करना इत्यादि को बिना सन्देशवाहन के नहीं कर सकता। इस सम्बन्ध में विद्वान प्रो थियो हैमेन (Theo Haimann) के विचार तर्क सगत प्रतीत होते हैं। उनके अनुसार "**सभी प्रबन्धकीय कार्यों की सफलता सन्देशवाहन पर निर्भर है।**"[1] विद्वान लेखक खम्बाता (Khambatta) के अनुसार, "**अच्छे सन्देशवाहन कार्यों अच्छी तरह निष्पादन में सहायता पहुँचाते हैं, दूसरों से सहयोग प्राप्त करते हैं, विचारों एव निर्देशों को स्पष्ट रूप से समझते हैं तथा कार्यकुशलता में तुरन्त व इच्छित परिवर्तन करते हैं।**"[2] इसी प्रकार विद्वान लेखक पीटर्स (*Peters*) के विचार में भी तनिक अतिश्योक्ति नहीं है, "**अच्छे सन्देशवाहन ठोस प्रबन्ध की नींव है।**"[3] विस्तृत रूप से सन्देशवाहन के महत्व का अध्ययन निम्न शीर्षकों में किया गया है —

1. व्यवसाय का कुशल सचालन (Efficient operation of a *Business*)— *प्रत्येक व्यवसाय के कुशल सचालन के लिए सन्देशवाहन अनिवार्य है।* एक विद्वान के अनुसार "**बिना सन्देशवाहन के प्रबन्ध असम्भव है।**" (Without communication, management is imposib e) व्यावसायिक क्षेत्र के विकास के साथ ही साथ इसका महत्त्व बढ गया है और सन्देशवाहन इसका एक आवश्यक अग बन गया है। "**यह उस चिकने पदार्थ का कार्य करता है जिससे प्रबन्ध प्रविधि आसान हो जाती है।**"[4] प्रबन्ध दूसरे व्यक्तियों से कार्य करवाने की कला का नाम है। इस हेतु प्रबन्धक वर्ग को उद्देश्यों का निर्धारण करना होता है और उन उद्देश्यों के अनुरूप ही कर्मचारियों से कार्य करवाना पडता है। इस बीच प्रबन्धक वर्ग को कई आदेश निर्देश एव सूचनाएँ भेजनी पडती हैं। कार्य का विभाजन करना, उनके

---

1 "The success of all management functions depends on successful Communication ' Theo Haimann

2 ' Better Communication help to get better job performance, wins the co-operation of others, gets ideas and in the work performance ' F K. Khambatta

3 ' *Good communication is the foundation for sound management* ' Rayment W Peters

4 "*It serves as the lubricant fostering smooth operation of the management process* , George R Terry

कार्य को प्राप्त एवं उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु अन्य विविध कार्यों के लिए सन्देशवाहन का प्रयोग करना पड़ता है। प्रबन्धक क्षेत्र के प्रसिद्ध विद्वान पीटर ऐफ ड्रकर (Peter F. Drucker) का मत है कि "**प्रबन्धक के पास एक विशेष औजार है सूचनाएँ। वह व्यक्तियों को हाँकता नहीं है। वह प्रोत्साहित करता है, दिशा देता है, व्यक्तियों को उनके कार्यों पर संगठित करता है। यह सब करने के लिए भाषा, लिखित शब्द अथवा अंकों की भाषा उसका औजार–एक मात्र औजार है।**"[1] स्पष्ट है कि प्रत्येक प्रबन्धक सन्देशवाहन की कला रखता है, क्योंकि इसके बिना वह व्यवसाय का कुशल संचालन नहीं कर सकता है। उसे एक व्यवसाय के सभी कार्यों में सन्देशवाहन का प्रयोग करना होता है। संस्था के कार्यकर्ताओं एवं अधिकारियों के मध्य सतत् सम्पर्क बनाये रखना पड़ता है तथा उनके विभिन्न कार्यों का समन्वय करना होता है।

एक विद्वान के अनुसार "**अच्छे संदेशवाहन ही अच्छा व्यवसाय है।**" (Good communication is good business) उसी प्रकार एक अन्य विद्वान कहते हैं कि "**अच्छे प्रबन्धक अच्छे सन्देशदाता होते हैं और निम्न स्तर के प्रबन्धक प्रायः इसके विपरीत।**" (Good managers are good communicators, poors are usually the opposite) सन्देशवाहन जगत के विश्व प्रसिद्ध लेखक रैडफील्ड (Redfield) ने तो यहाँ तक कहा है कि "**संदेशवाहन एक संगठन को दृढ़ बना सकता है अथवा उसका विनाश कर सकता है।**" Communication may cement an organisation or disrupt it

2 **उचित एवं शीघ्र निर्णय** (Proper and Quick Decisions)—सन्देशवाहन शीघ्र निर्णय लेने में महत्त्वपूर्ण योगदान देता है। आज नीति निर्धारण में केवल प्रबन्धक ही नहीं होता है, बल्कि विभिन्न साझेदार, अंशधारी, कर्मचारी सभी सम्मिलित होते हैं। अतः वे परस्पर विचार विनिमय द्वारा निर्णय ले सकते हैं। अच्छे निर्णय, अच्छे सन्देशवाहन पर ही निर्भर करते हैं। यदि निर्णय करने वालों के पास सतत् सन्देशवाहन उपलब्ध है तो वे विभिन्न सूचनाएँ प्राप्त कर अच्छे एवं ठोस निर्णय ले सकेंगे। यह औपचारिक एवम् अनौपचारिक सन्देशवाहनों पर निर्भर करता है।

3. **विकेन्द्रीकरण एवम् अधिकार प्रत्यायोजन** (Decentralization and Delegation)—विकेन्द्रीकरण सन्देशवाहनों के सहारे ही सम्भव है। विकेन्द्रीकृत संस्था में सन्देशवाहनों का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। प्रत्येक कर्मचारी और अधिकारी को अपने कार्यों एवं उद्देश्यों से अवगत करवाना आवश्यक है। साथ ही साथ

---

1 'The manager has a specific tool information He does not 'handle' people he motivates, guides organises people to do their own work His tool—his only tool—to do all this is the spoken or written words or the language of numbers' Peter F Drucker

उनके क्या-क्या दायित्व होंगे ? इस बात की जानकारी भी आवश्यक है। इसी प्रकार अधिकार प्रत्यायोजन में भी इसका महत्त्व है। जार्ज. आर. टेरी (George R Terry) का मत है कि "सन्देशवाहन वह साधन है जिसके द्वारा अधिकार प्रत्यायोजन का कार्य किया जाता है।"[1] ठीक इसी प्रकार रैंडीफील्ड के अनुसार "एक विकेन्द्रित कार्य सफल होता है अथवा असफल, प्रशासनिक सन्देशवाहन के गुणों पर निर्भर करता है।" Whether a decentralized operation succeeds or fails often depends on the quality on administrative communication)

4 योजनाओं का निर्माण (Planning)—योजनाबद्ध कार्य अधिक निश्चित होते हैं। अत प्रत्येक व्यावसायिक औद्योगिक सस्था प्रत्येक कार्य के लिए एक योजना का निर्माण कर लेती है। इन योजना को सफल बनाने में सस्था के सभी विभागों का सक्रिय सहयोग होना तथा उन्हे सस्था की योजनाओं के बारे में पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है। कून्टज तथा ओडोनेल (Koontz and O'Donnell) ने इस बात को स्वीकार करते हुए लिखा है, प्रभावशाली नियोजन वहाँ होता है, जहाँ इसके प्रत्येक जिम्मेदार व्यक्ति को अपने समस्त नियोजन क्षेत्र की आवश्यक सूचनाएँ प्राप्त हों। जहाँ तक सम्भव हो सूचनाएँ विशिष्ट एव विस्तृत रूप मे होनी चाहिए।"[2] वे व्यक्ति ही योजना का सफल क्रियान्वयन कर सकते हैं, जिन्हे न केवल योजना के सम्बन्ध में ठीक ठीक ज्ञान हो, बल्कि उसके उद्देश्यो एवम् उद्देश्य प्राप्ति के साधनो का भी आवश्यक ज्ञान हो। यह सभी सन्देशवाहन मे ही सम्भव है।

5 समन्वय (Co-ordination)—व्यवसाय के विस्तृत स्वरुप के फलस्वरूप विशिष्टीकरण का विशेष महत्व हो गया है। आज एक व्यवसाय को विभिन्न कार्यों के अनुसार विभागों में बाट दिया जाता है ताकि प्रत्येक विभाग अपना कार्य विशिष्ट योग्यता से पूरा कर सके। इन विभिन्न विभागों का उद्देश्य एक ही होना है, परन्तु कार्य अलग अलग होते हैं। इन अलग-अलग विभागों के कार्यों को एक उद्देश्य की पूर्ति हेतु समन्वित करना पडता है। इस हेतु कर्मचारियों को समय-समय पर सूचित करते रहना पडता है। उसी प्रकार प्रबन्धक वर्ग को भी कर्मचारियो के कार्यों की सूचनाएँ प्राप्त करनी पडती हैं। यह सब सन्देशवाहन के उचित प्रबन्ध पर निर्भर हैं। मेरी कुशिंग नाइल्स (Mary Cushing Niles) लिखती हैं "समन्वय के लिए अच्छा सन्देशवाहन आवश्यक है। वह ऊपर की ओर, नीचे की ओर तथा अगल-बगल दोनो ओर समस्त स्तरो पर नीतियों को प्रेषित करने, व्याख्या करने और अपनाने

---

1 Communication is the means by which the act of delegation is accomplished George R Terry

2 'Effective planning occurs when everyone responsible for it has access to complete information affecting area planning Information must be as specific and thorough as possible Harold Koontz and Cyril O Donnell

के लिये, सूचनाओं एवं ज्ञान को प्राप्त करने तथा ऊँचे मनोबल एवम् परस्पर सद्भाव के लिए आवश्यक है।"[1] विलियम एच न्यूमेन (William H Newman) ने भी समन्वय में सन्देशवाहन का महत्त्व को स्वीकार किया है और लिखा है कि "अच्छा सन्देशवाहन समन्वय मे सहायता पहुँचाता है।"[2]

6 **प्रजातान्त्रिक प्रबन्ध** (Democratic Management)—आधुनिक युग मे व्यावसायिक संस्थाओं का प्रबन्ध प्रजातान्त्रिक पद्धति के आधार पर किया जाता है। कम्पनी मे अंशभागी होते है। उनकी समय समय पर सभाएँ होती रहती है। उसी प्रकार संयुक्त समितियाँ (Joint Councils) बनाकर कर्मचारी-हिस्सेदारी (Workers Participation) से प्रबन्ध किया जाने लगा है। यदि इन सभी पक्षों से उचित सम्पर्क नही रहता है तो प्रजातान्त्रिक प्रबन्ध व्यवस्था सफल नही होती है। इस हेतु सन्देशवाहन की उत्तम प्रक्रिया होना अनिवार्य है।

7 **मानवीय सम्बन्धों के निर्माण मे** (Building Good Human Relations)—आजकल श्रम के क्षेत्र मे मानवीय सम्बन्धो की विशेष चर्चा है। यह स्वीकार किया जाने लगा है कि प्रत्येक श्रमिक के साथ मानवीय व्यवहार किया जाना आवश्यक है क्योंकि श्रमिक अब एक उत्पादन का साधन मात्र नही रह गया है अपितु आज वह उद्योग का महत्त्वपूर्ण हिस्सेदार है। इस विचारधारा ने श्रम सम्बन्धो को सुधारने के लिए बाध्य किया है। मालिक व मजदूर की खाई को पाटना आवश्यक हो गया है। अत मालिक एवम् मजदूर के बीच मधुर एवम् सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध होने आवश्यक हैं। सन्देशवाहन इस दिशा मे महत्त्वपूर्ण योगदान देता है। मालिक एवं मजदूरो के बीच सतत् सन्देशवाहन प्रक्रिया रहने से उनके विचारो का आदान प्रदान होता रहता है। मालिक अपनी नीति एवं विचार श्रमिको तक पहुँचा कर उन्हे वास्तविक स्थिति से अवगत करवाते हैं और श्रमिक अपने विचार शिकायत सुझाव आदि मालिक तक पहुँचाते रहते है। यह प्रक्रिया उनके बीच शुद्ध एवं मधुर सम्बन्धो के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकती है। मानवीय सम्बन्धो के विशेषज्ञ **रोबर्ट डी बर्थ** (Robert D Berth) के विचारो को स्वीकार करने में तनिक भी संकोच नही होता है। उनके अनुसार **"बिना सन्देशवाहन के मानवीय सम्बन्ध असम्भव हैं।"**[3] मानवीय सम्बन्धो के निर्माण के लिए सन्देशवाहन प्रक्रिया आवश्यक है।

---

1 ' Good Communications are essential to co ordination They are necessary upward, downward and sideways through all the levels of authority and advice for transmission, interpretation and adoption of policies for sharing of knowledge and information and for the more subtle needs of good moral and mutual understanding ' Mary Cushing Niles

2 Good communication aids in co ordinating activities William H Newman

3 "It is impossible to have human relations without communication '
—Robert D Berth

8. मनोबल बढाता है (Increases Morale)—मनोबल व्यक्तियों की उस भावना का नाम है जिससे वे अपने कार्यों को अच्छी तरह एवम् ध्यानपूर्वक करते हैं। अत. इस प्रकार की भावना को उदय करने में सन्देशवाहन का महत्वपूर्ण स्थान है। सन्देशवाहन के द्वारा कर्मचारियो एवम् अधिकारियो के मध्य विचारो का सतत् आदान-प्रदान होता रहता है, जिससे कर्मचारियों में सस्था के प्रति अपनत्व की भावना का विकास होता है। साथ ही साथ अपने आपको सस्था का अभिन्न अग समझने लगते हैं। अच्छा मनोबल तभी उत्पन्न किया जा सकता है, जबकि प्रबन्ध वर्ग कर्मचारी वर्ग को ध्यान पूर्वक सुने, उनसे मित्रवत् बातचीत करें, आवश्यक सूचनाएँ दे और कर्मचारियो को यह महसूस करने का अवसर दे, कि वे सस्था के ही अभिन्न अग हैं। यह सब सन्देशवाहन के माध्यम मे ही सम्भव हो सकता है।

9. कर्मचारियो मे पारस्परिक सहयोग (Mutual Co-operation)—आज जबकि वृहद् -स्तरीय उत्पादन के युग म एक ही व्यावसायिक छत के नीचे अनेक कर्मचारी कार्य करते हैं, उनमे पारस्परिक सहयोग होना आवश्यक है। पारस्परिक सहयोग के अभाव मे सस्था के कार्यों को कुशलपूर्वक नही चलाया जा सकता। सन्देशवाहन से प्रत्येक कर्मचारी किसी विशिष्ट कर्मचारी के बारे मे पूर्ण एवम् सही जानकारी प्राप्त कर सकता है। इससे कर्मचारियों में निकट सम्बन्ध स्थापित हो जाता है और वे एक दूसरे के साथ मिलकर काम करने लगते हैं। वास्तव मे, **औद्योगिक प्रबन्ध के आधुनिक उद्देश्य सामूहिक कार्य, सहकारिता तथा हिस्सेदारी से कर्मचारियो मे समूह के प्रति अपनत्व की भावना का विकास करना है। सन्देशवाहन इन उद्देश्यो को बहुत बडी सीमा तक प्राप्त करने मे सफल हुआ है।**[1]

10. अधिक उत्पादकता (Higher Productivity)—अनेक विद्वानो का मत है कि अच्छे मानवीय सम्बन्धो एवम् उच्च मनोबल प्राप्त कर लेने से कर्मचारी की उत्पादकता निश्चित रूप से बढ जाती है। सन्देशवाहन के माध्यम से कर्मचारी का सीधा सम्पर्क प्रबन्ध से स्थापित होने पर उसमे कम्पनी के प्रति आत्मीयता की भावना का विकास होता है। इससे उनकी कार्य के प्रति रुचि बढती है और वह सस्था मे अपनी स्थिति को समझता है जिसके फलस्वरूप उत्पादन मे वृद्धि होती है।

11. गलत फहमियो एवम् अज्ञानताओं को दूर करना (To Avoid *Misunderstanding and Ignorance*) डब्लू एच. व्हिटे (*W. H Whyte*) के अनुसार, **"सचार का सबसे बडा शत्रु भ्रम अथवा गलतफहमी है।"** (The great enemy of communication is the illusion of it) अच्छे सन्देशवाहन से

1. "The present goals of industrial management are team work, co-operation and creat enough participation to make all employees feel a part of the social work group Communication has reached a major position in the achievement of these goals" H P Zelko and H J O'Brien,

भ्रम तथा महत्त्वपूर्ण बातो से अनभिज्ञताओं को दूर किया जा सकता है । संस्था मे कुछ अफवाहे फैल जाती हैं। यदि उन्हे उचित रूप मे न समझा जाय तो उनका संस्था तथा कर्मचारियों पर बुरा प्रभाव पडता है । अत गलत फहमियो को उचित सूचनाओ द्वारा मिटाया जा सकता है । ठीक उसी प्रकार कई ऐसे कर्मचारी भी होते है जो कई बातो से अनभिज्ञ होते हैं । उनको आवश्यक जानकारी देने हेतु सन्देशवाहन का महत्त्वपूर्ण स्थान है ।

12 बाह्य पक्षों से अच्छे सम्बन्ध (Good External Relations)—एक व्यावसायिक संस्था के लिए बाह्य पक्षों से सम्पर्क बनाये रखना अत्यावश्यक है । बाह्य पक्षा म हम निम्न को सम्मिलित कर सकते हैं—(i) अशधारी (Shareholders), (ii) ग्राहक (Customers), (iii) व्यापारी (Suppliers), (iv) सरकारी संस्थाएँ), (Government bodies), (v) वैज्ञानिक संस्थाएँ (Scientific institutions), (vi) समाज (Society) (vii) श्रम सघ (Trade Unions) आदि

इन विविध बाह्य पक्षा का अपना अपना महत्त्व है । अशधारियों से सम्पर्क स्थापित कर उन्हे समय समय पर कम्पनी की आर्थिक सूचना देनी पडती है । ग्राहक व्यापारी का महत्त्वपूर्ण व्यक्ति है । इसको विभिन्न अवसरों पर सन्देश देने ही पडते है । चाहे माल के आगमन की सूचना के सम्बन्ध मे हो चाहे माल के भुगतान के सम्बन्ध मे हो चाहे ग्राहक की आवश्यकताओ का ज्ञान कराने हेतु हो किसी न किसी कारण सन्देश भेजने एवम् प्राप्त करने ही पडते है । उसी प्रकार व्यापारी सरकार तथा समाज आदि से भी यथा समय सम्पर्क बनाने के लिए सन्देशवाहन की आवश्यकता होती है ।

भारत मे व्यावसायिक सन्देशवाहन
(Business Communication in India)

भारत म कुशल व्यावसायिक सन्देशवाहन को अब तक कोई महत्त्व प्रदान नही किया गया है । अधिकतर संस्थाओ तक मे सन्देशवाहन पर कोई ध्यान ही नही दिया गया है । बडी बडी संस्थाओं तक ने भी अपनी नीतियों एव उद्देश्यों को कर्मचारियों तक पहुँचाने का कोई विशेष प्रयास नही किये है । कर्मचारियों को संस्था की नीतियों एव उद्देश्यो का ज्ञान केवल उडती खबरो अफवाहो आदि के द्वारा ही होता है । परिणामस्वरूप अधिकाशत कर्मचारी संस्था की नीतियो के प्रति भ्रमित देख जाते है । कर्मचारी संस्था के उद्देश्यों को उचित प्रकार से समझ ही नही पाते हैं । ऐसा होने से संस्था की प्रगति पर विपरीत प्रभाव ही पडता है ।

इसी प्रकार किसी कर्मचारी का संस्था म क्या स्थान है कौनसी नई वस्तु निर्मित की जाने वाली है कौनसी वस्तु बनानी बन्द की जा रही है आदि आदि महत्त्वपूर्ण बातो का तो कर्मचारी को बिल्कुल निश्चित ज्ञान हो ही नही पाता है ।

समय-समय पर उत्पादन, विक्रय आदि मे होने वाले उच्चावचनों, कार्य पद्धतियों मे परिवर्तन आदि के बारे में भी कर्मचारी प्राय अनभिज्ञ ही रहता है।

सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगो को छोडकर अधिकाश सस्थाओ मे आज भी कर्मचारियो को प्रबन्ध मे सहभागिता प्रदान नही की जा रही है। सस्था के नियोजन एव नीति निर्धारण मे भी कर्मचारियो को वचित ही रखा जा रहा है। पूर्णत द्वि-मार्गीय सन्देशवाहन का भारतीय सस्थाओ मे विकास नही हो पाया है।

भारतीय व्यावसायिक सस्थाओ मे उच्च पदो पर चुनाव करते समय भी प्रार्थी की सन्देशवाहन क्षमता पर कोई ध्यान नही दिया जाता है। अब तक अच्छा प्रबन्धक वही समझा जाता है जो उत्पादन एव लाभाश को अधिकाधिक सीमा तक पहुँचा सके। अन्य कर्मचारियो के चुनाव एव प्रशिक्षण मे भी सन्देशवाहन को कोई विशेष महत्त्व प्रदान नहीं किया गया है। कर्मचारियो के चुनाव के समय भी प्रार्थियो से सन्देशवाहन क्षमता से सम्बन्धित कोई बात नही पूछी जाती है। रिश्तेदारी एव भाई-भतीजेवाद के आधार पर होने वाले चुनाव मे सन्देशवाहन प्राय नगण्य ही होता है। कर्मचारी के चुनाव एव नियुक्ति के बाद प्रशिक्षण मे भी सन्देशवाहन का कोई विशेष स्थान नही है। प्रशिक्षण देने के लिए सामान्यत कार्य भार सम्भालने के दिन कर्मचारी को सस्था एव उसके कार्य आदि के बारे मे बता दिया जाता है। कभी कभी सस्था की छपी एक पुस्तिका दी जाती है जिसमे सस्था के बारे मे लिखा होता है। इसके अतिरिक्त नये कर्मचारी को यदि कुछ अतिरिक्त तकनीकी जानकारी देना आवश्यक हो, तो वह जानकारी दी जाती है। इस प्रकार कर्मचारी के चुनाव, प्रशिक्षण आदि मे भी भारतीय सस्थाओ द्वारा सन्देशवाहन को विशेष महत्त्व नहीं दिया गया है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत की अधिकाश व्यावसायिक सस्थाएँ सन्देशवाहन की कुशलता एव महत्त्व पर ध्यान नहीं दे रही हैं। हिन्दुस्तान लीवर, लि, टाटा, बाटा आदि कुछ सस्थाएँ अब कुछ ध्यान देने अवश्य लगी हैं। ये सस्थाएँ अपनी नीतियो एव उद्देश्यो को छपवाने लगी हैं। कर्मचारियो को प्रबन्ध मे हिस्सा दिया जाने लगा है। प्रशिक्षण मे भी सन्देशवाहन के विभिन्न माध्यमो का प्रयोग किया जाने लगा है। बैंकिंग व्यवसाय ने भी सन्देशवाहन पर पर्याप्त ध्यान देना प्रारम्भ कर दिया है। आशा है भविष्य मे सन्देशवाहन की कुशलता पर अत्यधिक ध्यान दिया जाने लगेगा। ज्यो-ज्यो भारत मे पेशेवर प्रबन्धको का महत्त्व बढ रहा है, त्यो-त्यो भारत मे सन्देशवाहन का महत्त्व भी बढेगा, ऐसी आशा है।

सन्देशवाहन के सिद्धान्त
(Principles of Communication)

कोरनेल (Cornel) के अनुसार, "सिद्धान्त एक आधारभूत विवरण या सर्वमान्य सत्य है जो किसी कार्य या विचार को मार्गदर्शन देता है।" प्रत्येक प्रकार

के सामाजिक विज्ञान या कार्य के कुछ सिद्धान्त निर्धारित किये जाते रहे हैं। सन्देश-वाहन का क्षेत्र भी इससे अछूता नही रहा है। अनेको विद्वानो ने सन्देशवाहन के अनेका सिद्धान्तो का वर्णन किया है।

इन सिद्धान्तो के अतिरिक्त भी कई सिद्धान्त हैं। सामान्यत निम्नलिखित सिद्धान्त मुख्य रूप से माने जाते है—

कून्टस तथा ओ 'डोनेल के अनुसार सन्देशवाहन के चार प्रमुख सिद्धान्त हैं—

1 स्पष्टता का सिद्धान्त।
2 ध्यानाकर्षण का सिद्धान्त।
3 एकात्मकता का सिद्धान्त।
4 अनौपचारिक सगठनो के सामरिक (Strate_ic) उपयोग सिद्धान्त।

1. स्पष्टता का सिद्धान्त (Principle of clearity)—व्यावसायिक सन्देश-*वाहन का पहला सिद्धान्त स्पष्टता का सिद्धान्त है। अस्पष्ट सन्देशा का कोई महत्त्व* नही होता है। **जोसेफ धूहर (Joseph Dhooher) के शब्दो म "विचारो को समझने के लिए स्पष्टता आवश्यक है"** (Clearity in a getting across an idea is essential) सन्देश की स्पष्टता सन्देश भेजने वाले तथा पाने वाले दोनो को होनी चाहिये। सन्देश भजने वाले को सन्दश के बारे मे पूरी जानकारी होनी चाहिये तथा पूर्ण रूप से सोच विचार कर सन्देश देना चाहिये। **टेरी (Terry)** के विचार इस सन्दर्भ म ठीक ही है कि **सन्देश भेजने के पहले उसे (प्रेषक को) जो कुछ भेजना है, स्पष्ट रूप से विचार करना एवम् पूर्ण रूप से जानना चाहिये।"[1]** मन्देश प्राप्त करने वाले को भी मन्देश को स्पष्टता से समझ लेना चाहिये। उसे जहा कही भी सन्देह हो वही स्पष्टीकरण कर लेना चाहिये। विद्वान **न्यायाधीश लार्ड चेस्टर फील्ड** (Lord Chester field) ने एक निर्णय देत हुए लिखा हैं कि **प्रत्येक अनुच्छेद इतना स्पष्ट एव निश्चित होना चाहिये कि दुनिया का सबसे मद *बुद्धि वाला व्यक्ति भी उसका गलत अर्थ न लगा सके* और *इसे समझने के लिऐ भी* दुबारा पढ़ना न पडे।"**

मौखिक सन्देशो म स्पष्टता का विशेष ध्यान रखना चाहिये। **मौखिक** सन्देशो मे *यदि एक बार अस्पष्टता उत्पन्न हो जाती है तो उसके अत्यन्त ही दूरगामी प्रभाव* होते हैं। कभी-कभी सस्था म व्यक्तियो के पद एव उनकी स्थिति के कारण भी अस्पष्टता उत्पन्न हो जाती है। इसे अनौपचारिक सन्देशवाहन के माध्यम से समाप्त करने का प्रयास करना चाहिय।

---

1. *Before one can communicate effectively, he must clearly envirion and know* completely that which he is trying to pan on others ' George R Terry

2. ध्यानाकर्षण का सिद्धान्त (Principle of Attention)—सन्देशवाहन ऐसा होना चाहिये जो लोगों का ध्यान आकर्षित कर सके । इस हेतु सन्देश देते समय लोगों की रुचियों एवं आवश्यकताओं को ध्यान में रखना चाहिये । इतना ही नहीं, लोगों को सन्देश के महत्त्व को समझना चाहिये । सन्देश के उचित प्रचार से प्राप्त करने से उनके हितों पर पड़ने वाले प्रभावों को भी स्पष्ट कर देना चाहिये । इसके अतिरिक्त सन्देश की भाषा ऐसी होनी चाहिये, जिससे कि सन्देश प्राप्त करने वाले का सन्देश भली प्रकार समझ में आ सके ।

3. एकात्मकता का सिद्धान्त (Principle of Integration)—एकात्मकता का सिद्धान्त यह बताता है कि सन्देशवाहन संस्था तथा कर्मचारियों के व्यक्तिगत हितों में समन्वय स्थापित करने वाले होने चाहिये । यदि सन्देश ऐसे दिये जाते हैं जिनसे व्यक्तिगत हितों पर कुठाराघात होता है तो कर्मचारी ऐसे सन्देशों को कभी भी स्वीकार नहीं करेंगे । ऐसा होने पर संगठन की स्थिरता को खतरा उत्पन्न हो जायेगा । प्रबन्धकों को इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिये कि सन्देशवाहन प्रबन्ध का एक साधन है, साध्य नहीं । अतः इसका मुख्य उद्देश्य संगठनों में कार्यरत कर्मचारियों को संगठन के उद्देश्यों को पूरा करने की दिशा में सहयोग देने हेतु प्रेरित करना चाहिये । जोसेफ धूहर (Joseph Dhoohar) के मतानुसार, सन्देश भेजते समय उसे संस्था की नीतियों एवं आवश्यकताओं को ध्यान में रखना चाहिये तथा साथ ही साथ उसे कर्मचारियों के हितों को भी ध्यान में रखना चाहिये ।"

4. अनौपचारिकता का सिद्धान्त (Principle of Informality)—यह सिद्धान्त यह बताता है कि सन्देशवाहन अनौपचारिक रूप से भी दिये जाने चाहिये । यद्यपि औपचारिक (Formal) सन्देशवाहनों का अपना महत्त्व होता है और कई परिस्थितियों में सन्देश औपचारिक रूप से ही देने पड़ते हैं । किन्तु, फिर भी जहाँ कहीं भी सम्भव हो, अनौपचारिक सन्देश दिये जाने चाहिये । इससे आपसी सहयोग बढ़ता है तथा संस्था की कार्य-कुशलता में वृद्धि होती है । कभी-कभी तो जो कार्य औपचारिक सन्देशों से कभी नहीं करवाये जा सकते हैं, उन्हें अनौपचारिक सन्देशों से बहुत आसानी से करवाया जा सकता है । अतएव, संस्था में अनौपचारिक सन्देशवाहन प्रक्रिया विकसित की जानी चाहिये ।

5. प्रत्यक्ष सन्देशवाहन का सिद्धान्त (Principle of Direct Communication)—जहाँ तक सम्भव हो, सन्देश प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित व्यक्ति को दिये जाने चाहिये । सन्देशवाहन प्रक्रिया में जितने अधिक मध्यस्थ होंगे, सन्देश की प्रभावशालीनता में उतनी ही कमी होगी । इसका प्रमुख कारण यह है कि सभी सन्देश सभी व्यक्तियों को समान महत्त्व के नहीं लगते हैं । अलग-अलग व्यक्ति एक ही सन्देश को भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से महत्त्व देते हैं । इसके अतिरिक्त, सन्देश के अन्तिम

प्राप्तकर्ता तक पहुँचने में भी बहुत अधिक समय लग जाता है। इस प्रकार समय के बीतने में भी सन्देश का महत्त्व कम हो सकता है। कभी कभी तो समय बीत जाने के बाद सन्देश पहुँचता है। इसमें सन्देश का महत्त्व बिल्कुल ही समाप्त हो जाता है।

6 **परामर्श का सिद्धान्त** *(Principle of Consulting)—यह सिद्धान्त* यह कहता है कि सन्देश को अन्तिम रूप देकर भेजने से पूर्व सम्बन्धित व्यक्तियों से परामर्श करना चाहिये। लोगों से परामर्श करने से नये नये विचार सामने आते हैं। लोगों की सन्देश के प्रति क्रियाएँ पहले से ही जानने का अवसर मिल जाता है। परामर्श कर लेने से कम से कम वे व्यक्ति तो उस सन्देश के समर्थक बन ही जाते है जिन्होंने परामर्श दिया है। इस प्रकार सन्देशों को कार्यान्वित करना सरल हो जाता है। इसी के परिणामस्वरूप संस्था में अच्छे वातावरण का निर्माण होता है तथा सहयोग बढ़ता है। यह सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है **व्यक्तियों से वे कार्य करवाने चाहिये जिन्हे वे स्वीकार करते हैं न कि जो उन्हे कहे जायें"** (Not what pople are told but what they accept)।

7 **भावनात्मक अपील का सिद्धान्त (Principle of Emotional Appeal)**— सन्देशवाहन का यह सिद्धान्त यह कहता है कि सन्देशवाहन की सफलता उसकी भावनात्मक अपील पर भी निर्भर करती है। कई परिस्थितियाँ ऐसी आती है जबकि व्यक्ति भावना से प्रेरित होकर कार्य करने को तत्पर हो जाते हैं, चाहे उस कार्य का विवेक के आधार पर कोई औचित्य ही न हो। अतएव सामान्यतः प्रत्येक सन्देश में तर्क एवं बुद्धि का प्रयोग तो होना ही चाहिये किन्तु उसमें भावनात्मक पहलू को भी सम्मिलित करने का अवश्य प्रयास करना चाहिये।

8 **विषय-वस्तु के ज्ञान का सिद्धान्त** (Principle of Knowledge of Subject-matter) सन्देश की सफलता बहुत बड़ी सीमा तक सन्देश भेजने वाले के सन्देश की विषय वस्तु की जानकारी पर निर्भर करती है। अतएव प्रत्येक सन्देश प्रेषक को सन्देश के प्रत्येक पहलू के बारे में जानकारी होनी चाहिये। यदि प्रेषक को *सन्देश की विषय-वस्तु के बारे में पर्याप्त जानकारी नहीं कर सकेगा और सन्देश प्राप्त-*कर्त्ता द्वारा पूछे जाने वाले प्रश्नों का स्पष्टीकरण नहीं कर सकेगा और सन्देश प्राप्त कर्त्ता पर इसका अच्छा प्रभाव नहीं पडेगा।

9 ***अनुकूलता का सिद्धान्त*** *(Principle of Consistency)—संस्था द्वारा* दिया जाने वाला प्रत्येक सन्देश संस्था की नीतियों एवं उद्देश्यों के अनुरूप ही होना चाहिये। कोई भी सन्देश संस्था की नीतियों एवं सन्देशों के विपरीत प्रवृत्ति का नहीं होना चाहिये। यदि किन्हीं विशेष परिस्थितियों के कारण संस्था की नीतियों एवं उद्देश्यों के प्रतिकूल सन्देश दिया जाता है तो उसका स्पष्टीकरण पहले से ही कर *दिया जाना चाहिये।*

10. पर्याप्तता का सिद्धान्त (Principle of Adequacy)—पर्याप्तता का सिद्धान्त यह बताता है कि जो सन्देश भेजे जायें वे अपने आप में पर्याप्त होने चाहिये। अपर्याप्त सूचनाओं या सन्देशों से इच्छित कार्य को पूरा करवाने में बहुत ही समय एवं श्रम की हानि होती है। पर्याप्तता का तात्पर्य यह है कि जो सन्देश दिये जायें, उनमें किसी प्रकार की कमी न हो, उनमें किसी प्रकार की अन्य स्पष्टीकरण की आवश्यकता न पड़े तथा बिना किसी कठिनाई के एक निश्चित कार्य को पूरा किया जा सके।

इस सम्बन्ध में यह बात महत्त्वपूर्ण है कि सन्देश की पर्याप्तता का स्तर व्यक्ति-व्यक्ति में भिन्न हो सकता है। सन्देश की पर्याप्तता सन्देश प्राप्त करने वाले की योग्यता पर निर्भर करती है। सन्देशों की बारम्बारता (frequency) का भी सन्देश की मात्रा पर प्रभाव पड़ सकता है। इन सब बातों का ध्यान में रखकर सभी आवश्यक सन्देश पर्याप्त मात्रा में दिये जाने चाहिए ताकि कार्य सरलता, सुन्दरता एवं शीघ्रता से पूरा किया जा सके।

11. समयानुकूलता का सिद्धान्त (Principle of Timeliness)—प्रत्येक सन्देश समय के अनुकूल ही दिया जाना चाहिए। अलग अलग सन्देशों का अलग अलग समय पर महत्त्व होता है। अतः सन्देश-समय का ध्यान में रखकर ही प्रेषित करना चाहिए। इसी प्रकार यथा-समय भेजे गये सन्देशों का विशेष महत्त्व होता है। समय बीतने के साथ-साथ सन्देश का महत्त्व कम होता चला जाता है तथा कभी-कभी तो उनका महत्त्व बिल्कुल ही समाप्त हो जाता है।

12. अच्छे नेतृत्व का सिद्धान्त (Principle of Sound Leadership)—सन्देश भेजने वाला कुशल नेतृत्व प्रदान करने वाला होना चाहिये। सन्देश का प्रभाव इस बात से अत्यधिक रूप से प्रभावित होता है कि सन्देश किस व्यक्ति द्वारा दिया गया है। कुशल नेता द्वारा दिये गये सन्देश का अक्षरशः पालन होता है। उसके सन्देशों की अवहेलना करने का साहस किसी में नहीं होता है। यदि नेता अच्छा नहीं है तथा उसमें लोगों की कोई आस्था नहीं है तो उसके सन्देशों का कोई विशेष प्रभाव नहीं होता है।

13. अच्छे श्रवण का सिद्धान्त (Principle of Good listening)—सन्देशवाहन की प्रभावशालीनता श्रवण क्षमता (listening capacity) पर निर्भर करती है। इसीलिए इस सिद्धान्त का महत्त्व है। यह सिद्धान्त यह कहता है कि सन्देश प्राप्तकर्ता एवं भेजने वाले दोनों को अच्छा श्रोता होना चाहिए। दोनों को एक दूसरे की बात को पूर्ण रूप से सुनना चाहिये। अपूर्ण रूप से सन्देश सुनने या प्राप्त करने का कोई प्रभाव नहीं होता है। यदि सन्देश प्राप्तकर्ता सन्देश को ठीक प्रकार से सुनता नहीं है तो सन्देश भेजने का उद्देश्य कभी भी पूरा नहीं हो सकता है। इसी प्रकार यदि सन्देश भेजने वाला अपने प्रेषिति की किसी बात का पत ठीक से नहीं सुनता है

ना उसकी समस्या का निवारण नही हो पाता है और तब भी सन्देश भेजने का उद्देश्य पूर्ण नहीं हो पाता है। अत सन्देश के प्रवक्ता एवं प्रयिति को अच्छा श्रोता होना चाहिये। अधूरी बात सुनने से ठीक उसी प्रकार की स्थिति होती है जैसी कि किसी गाडी को चालु करके गियर न बदलने के परिणामस्वरूप होती है। इससे गाडी का तेल तो जलेगा किन्तु आप जहाँ के तहाँ ही बने रहेंगे।

14 लोच का सिद्धात (Principle of Flexibility)—सन्देशवाहन म पर्याप्त लोच होनी चाहिये, जिससे उसे भविष्य की आवश्यकतानुसार मोड दिया जा सके। किन्तु इस सम्बन्ध म यह बात अवश्य ध्यान मे रखनी चाहिये कि सन्देश अनिश्चित नहीं होने चाहिये। अनिश्चित सन्देशो का कुछ भी अर्थ लगाया जा सकता है जो किसी भी सस्था के लिए लाभप्रद सिद्ध नही हो सकता है।

15 प्रतिपुष्टि का सिद्धात (Principle of Feedback)—यह सिद्धान्त यह बताता है कि सन्देश की प्रतिक्रिया का ज्ञान सन्देश भेजने वाले को अवश्य होना चाहिये। सन्देश के भेजने मे क्या कमियाँ रह गई थी उनमे किस प्रकार सुधार किया जा सकता है क्या सन्देश से प्राप्तकर्ता म तुष्ट है आदि बातो (प्रश्नो) की जानकारी करके उनका समाधान किया जाना चाहिये। बिना इन प्रश्नो का समाधान किये सन्देशवाहन की सम्पूर्ण प्रक्रिया अर्थहीन हो जावेगी।

प्रभावशाली सन्देशवाहन के आवश्यक तत्त्व

सन्देशवाहन की सफलता सन्देश प्राप्तकर्त्ता पर इच्छित प्रभाव डालने पर निर्भर करती है। यदि प्राप्तकर्त्ता पर इच्छित प्रभाव नही होता है तो सन्देशवाहन व्यर्थ होगा। अत सन्देश भेजने एवम् तैयार करते समय पर्याप्त सतर्कता बरतनी चाहिए अन्यथा समय श्रम एव धन के अपव्यय का भय है। **अमेरिकन मैनेजमेंट एसोसियशन** (American Management Association) ने सन्देशवाहन के दस आवश्यक तत्व सूत्र रूप मे बताये है वे इस प्रकार है —

1 सन्देशवाहन भेजने से पूर्व विचारो को स्पष्ट करना चाहिए।
2 प्रत्येक सन्देशवाहन के मूल उद्देश्य को समझना चाहिए।
3 सन्देशवाहन भेजते समय मानवीय एव प्राकृतिक वातावरण को ध्यान म रखना चाहिये।
4 सन्देशवाहन म आवश्यकतानुसार अन्य व्यक्तियों से भी सम्मति लेनी चाहिये।
5 सन्देश भेजते समय सन्देश की मूल बातो तथा ध्वनि का ध्यान रखना चाहिये।
6 आवश्यकता पडने पर सन्देशवाहन सन्देश प्राप्तकर्ता के हित एवम् सहायता के लिए भी होना चाहिए।

7 सन्देश का अनुवर्तन होना चाहिए।

8. सन्देशवाहन आज के साथ-साथ भविष्य के लिए भी होना चाहिए।

9 सन्देशवाहन के अनुरूप ही कार्य होना चाहिए।

10. प्रेषक को अच्छा श्रोता होना चाहिए।

फ्रैंक फिसर तथा चार्ल्स रैडफील्ड (Frank Fischer and Charles Redfield) आदि कई विद्वानों ने भी सन्देशवाहन के कुछ आवश्यक तत्वों का उल्लेख किया है। इन सब विद्वानों के वर्णनों के निष्कर्ष रूप में सन्देशवाहन के निम्न आवश्यक तत्व कहे जा सकते हैं—

1. सन्देशवाहन से पूर्व विचार करना (Think Before Communicating)—सन्देशवाहन से पूर्व विचार करना अति आवश्यक है। सन्देशवाहन की दिशा में सबसे महत्त्वपूर्ण कदम है। इसके लिए एक योजना तैयार करनी चाहिए। इस समय एक उक्ति याद आती है **"बिना विचारे जो करे सो पीछे पछताय।"** इस लिए किसी भी सन्देश के प्रेषण से पूर्व विचार करना आवश्यक है। प्राय देखते हैं कि विद्वान व्यक्ति कोई भी बात कहने से पहले एक क्षण सोचते हैं। अत प्रत्येक प्रबन्धक अथवा व्यक्ति कोई भी बात कहने से पहले एक क्षण सोचते हैं। अत प्रत्येक प्रबन्धक कर्मचारी को सन्देश भेजने से पहले उस पर विचार कर लेना आवश्यक है। बिना योजना के सन्देशवाहन का महत्त्व कम हो जाता है। टैरी (Terry) के विचार इस सम्बन्ध में ठीक ही हैं कि "सन्देश भेजने से पहले उसे (प्रेषक को) जो कुछ भेजना है स्पष्ट रूप से विचार करना एवम् पूर्णरूप से जानना चाहिए।"[1]

2. सन्देश के उद्देश्यों का निर्धारण करना चाहिए (Determine Objectives of Communication)—सन्देश के प्रेषक से पूर्व एक प्रेषक को सन्देश के उद्देश्य को स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए। क्या सन्देशवाहन के माध्यम से व्यवसाय की नीतियाँ पहुँचाती हैं, सूचनाएँ प्राप्त करनी है अथवा किसी दूसरे व्यक्ति के विचारों को प्रभावित करना है? उद्देश्यों को निश्चित करने के बाद ही सन्देश के स्वरूप एवम् भाषा को निर्धारित किया जा सकता है।

3. अपने प्रेषिति को ध्यान से रखना चाहिए (Know Your Audience)—सन्देशों के प्रेषण से पूर्व एक प्रेषक को अपने प्रेषिति की योग्यता, स्तर, पद आदि को ध्यान में रखना चाहिए। भाषा का प्रयोग प्रेषिति की योग्यता के अनुसार ही करना चाहिए। प्रेषिति की आवश्यकताओं सामाजिक रीति रिवाज एवम् परम्पराओं आदि का भी ध्यान रखना चाहिए।

4. अन्य व्यक्तियों से सम्मति लेना चाहिए (Consult with Others)—किसी सन्देश के प्रेषण से पूर्व अन्य व्यक्तियों से सम्मति लेना भी उचित है। प्रबन्धक

---

1. Before one can communicate effectively, he must clearly envision and know completely that which he is trying to pass on to others George R. Terry.

कितना ही चतुर क्यों न हो वह सभी बातें सही सही नहीं सोच सकता है। इसलिए अपने संदेशों के सम्बन्ध में दूसरों से सम्मति लेना भी ठीक है। आज हिस्सेदारी प्रबंध का युग है। अतः सम्मति लेना आवश्यक सा हो गया है इससे दूसरे महत्त्वपूर्ण विचारों से सन्देश को अधिक प्रभावशाली बनाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त इस बात से सन्देश के क्रियान्वयन में भी सहायता प्राप्त होती है।

5 माध्यम का चुनाव (Select Your Media)—सन्देश की विषय वस्तु तैयार हो जाने पर इसके प्रेषण के लिए माध्यम की आवश्यकता होती है। माध्यम कौनसा प्रयोग में लाया जाय ? इसके सम्बन्ध में सोचना चाहिए। सन्देश के प्रत्येक माध्यम के अपने अपने दोष एवं लाभ है। स्थिति एवं सन्देश को देखकर माध्यम का चुनाव करना चाहिए।

6 भाषा एवं तर्ज (Tone and Language)—सन्देश की भाषा प्रेषिति की योग्यता के अनुसार ही होनी चाहिए। प्रेषिति जिस भाषा का ज्ञान रखता है उस उसी भाषा का प्रयोग करना चाहिए। इसके साथ ही प्रेषक के बोलने की तर्ज भी उसके सन्देश के प्रभाव में वृद्धि करती है। अतः बोलने की तर्ज सन्देश के अनुसार ही धीमी, तेज तथा सामान्य होनी चाहिए। ऐसे शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए जिनसे श्रोता अनभिज्ञ हो। कई बार ऐसा होता है कि प्रेषक अपने सन्देश में ऐसे शब्दों का प्रयोग करते है जिनका वे स्वयं अर्थ नहीं समझते है। इस सम्बन्ध विशेष में सतर्कता बरतनी चाहिए। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि संदेश भाषा से अधिक महत्त्वपूर्ण है। मूल उद्देश्य संदेश पहुँचाना है न कि भाषा।

7. संदेश यथा समय दिये जाने चाहिये (Timely)—सन्देश यथोचित समय पर प्रेषित करना आवश्यक है सन्देश प्रेषण का निश्चित कार्य-क्रम बनाकर रखना भी उचित है। इससे व्यवसाय की व्यवस्था में भी सुधार होता है। साथ ही साथ कर्मचारियों की भावनाओं को आदर का अवसर प्राप्त होता है।

8 अनुवर्तन (Follow-up) संस्था में काम करने वाले कर्मचारियों को अपने सन्देशवाहन का अनुवर्तन होना भी अनिवार्य है। किस सीमा तक संदेशवाहन का पालन हो रहा है। इसका मूल्यांकन होना आवश्यक है। यदि संदेशवाहन का प्रभाव नहीं हो पाया है अथवा इच्छित प्रभाव नहीं हो रहा है, तो उन कारणों का ज्ञान करना अनिवार्य हो जाता है जिनके परिणामस्वरूप ऐसा हुआ है। यदि इन कारणों को दूर किया सकता है तो ऐसा करने का प्रयास करना चाहिए।

9. भविष्य को भी ध्यान मे रखना चाहिए (Look for Tomorrow)—प्रबंधक जिस प्रकार अन्य कार्यों में दूरदर्शी होकर सोचता है, ठीक उसी प्रकार संदेशवाहन में भी भविष्य की परिस्थितियों का वर्तमान परिस्थितियों से सामंजस्य बिठाना चाहिए। किलियन (Killian) के अनुसार "सदेशवाहन का उद्देश्य आज और कल (वर्तमान और भविष्य) दोनों में निहित हो। संदेशवाहन आज के साथ ही साथ

कल के लिए भी हो, यद्यपि यह मुख्यत आज की समस्याओं से ही सम्बन्धित हो लेकिन भविष्य में इसके विकास, सुधार एवं समस्याओं को कम करने लिये बीज आज से ही तो बो देने चाहिए।''[1]

10. 'कहने से करना भला' उक्ति का पालन करना चाहिए (Obey the saying 'Example is better than p ecept)—प्रबंधक वर्ग को अपने संदेशों के अनुरूप कार्य कर आदर्श भी प्रस्तुत करना चाहिए, अर्थात् उसे "कहने से करना भला" उक्ति का पालन कर दिखाना चाहिए। एक अधिकारी द्वारा अपने अधीनस्थों को किन्हीं कार्यों के सम्बन्ध में निर्देशों के पालन का संदेश देने से पहले उसे स्वयं को उन निर्देशों के अनुरूप ही कार्य करना चाहिए। इससे सन्देश अधिक प्रभावशाली हो जाता है। अधिकारी कर्मचारियों के लिए एक आदर्श (Modle) बन जाता है जिससे कर्मचारियों में बहानेबाजी की भावना का विकास नहीं हो पाता है।

11. संदेश प्रेषक को अच्छा श्रोता होना चाहिए (Communicant must be a good Listener)—सन्देशवाहन को प्रभावशाली बनाने के लिए प्रेषक को एक अच्छा श्रोता होना चाहिये। वर्तमान समय में प्रत्येक सन्देशवाहन द्वि-मार्गीय सन्देशवाहन (Two-way Communication) है। इसलिए सन्देश भेजने के साथ-साथ सन्देश प्राप्त भी करना चाहिए। यदि प्रेषक ठीक प्रकार से दूसरे के संदेशों को नहीं सुनता है अर्थात् उन पर ध्यान नहीं देता है, तो संदेश का प्रभाव कम हो जाता है। अमेरिका मैनेजमेंट एसोसियेशन (American Management Association) का मत है कि "संदेशवाहन में सुनना परमावश्यक, अत्यंत कठिन एवं तिरस्कृत कला है।" (Listening is one of the most important, most difficult and most neglected skill in communication.)। अत संदेश को प्रभावशाली बनाने के लिए संदेश की प्रतिक्रिया को ध्यान से सुनना भी सीखना चाहिए।

12. प्रबंधकों एवम् कार्यकर्त्ताओं के मध्य मधुर संबंध (Good relations between Management and Employe's)—एफ ई फिशर (F E Fischer) के अनुसार, "अच्छे संदेशवाहन विश्वास एवम् आशा के जलवायु में ही पनपते हैं।"[1] संदेशवाहन को प्रभावी बनाने हेतु प्रबंधक वर्ग एवं कर्मचारी दोनों में विश्वास एवं आशा होनी चाहिये, तभी उनमें मधुर सम्बन्ध हो सकते हैं, जिसमें सन्देशों को कार्य रूप में भली भाँति तथा रुचिपूर्ण तरीके से परिणित किये जा सकते हैं।

13 संदेशवाहन की सतत् प्रक्रिया हो (Continuous Process)—सन्देशवाहन की प्रक्रिया निरन्तर एवं निर्बाध होनी चाहिए। प्रबन्धकों एवं कर्मचारियों

---

1 "Aim Communication at tomorrow as well as today Although it may focus primarily on today's problem, it should plant the seeds of constant growth and improvement and minimize future problems Ray A. Killian.

1 "Comunication grows best in a climate of trust and confidence"—F. E. Fischer

के मध्य सन्देशों का आदान प्रदान सतत् रूप से होते रहना चाहिए। एक विद्वान ने लिखा है— *प्रभावशाली सन्देशवाहन प्रावतक होने चाहिए और छितराये हुए अथवा किसी काय विशेष के लिए नहीं।* (Communication to be effective must be respective and not sporadic or adhoc)

14 सहयोग (Co-operation)—सन्देशवाहन में प्रेषक एवम् प्रापिति के मध्य सहयोग एवं सदभावना होना आवश्यक है। जेक्युस (Jaques) ने इस विचार का समर्थन करते हुए लिखा है — **सन्देशवाहन की प्रभावशीलता सन्देशवाहन के व्यक्तियों के मध्य सम्बन्धों पर निर्भर करती है** [1] अतः कर्मचारी एवं प्रबन्धकों के मध्य सम्बन्ध सहयोग एवं सहकारिता पर आधारित होने चाहिए। यदि सन्देश का प्रेषक सन्देश भेज दे परन्तु प्रापिति सन्देश प्राप्त करने पर कुछ भी काय न करने की ठान ले तो सन्देश व्यर्थ होगा। अतः दोनों पक्षकारों प्रेषक एवं प्रापिति के सहकारिता की भावना से काय करने पर ही सन्देश प्रभावशाली हो सकता।

सन्देशवाहन प्रक्रिया

(The Process of Technique Communication)

सन्देशवाहन की परिभाषाओं के अध्ययन से स्पष्ट है कि सन्देशवाहन एक प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया सतत रूप से चलती रहती है। सन्देशवाहन प्रक्रिया केवल सन्देश तैयार करने और भेज देने से पूरी नहीं हो जाती है बल्कि इसके लिए एक सम्पूर्ण प्रक्रिया पूरी करनी होती है। यह प्रक्रिया निम्न अवस्थाओं से निर्मित होती है—

1 सन्देश भेजने वाला
2 सन्देश
3 माध्यम
4 सन्देश पाने वाला
5 प्रतिक्रिया
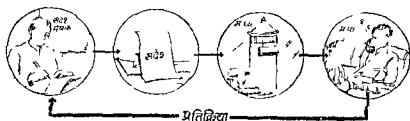
चित्र 4—सन्देशवाहन प्रक्रिया

1 सन्देशवाहन भेजने वाला (The Communicant)—सन्देश प्रक्रिया के प्रारम्भ करने के लिए सर्वप्रथम सन्देश देने वाले की आवश्यकता होती है। सन्देश

---

[1] The effectiveness of a communication system depends on the quality of the relationships between the people involved. Elliot—Jaques

भेजने वाले के अभाव मे सन्देशवाहन प्रक्रिया की अगली अवस्थाएँ भी पूरी नहीं होती हैं। यही सम्पूर्ण सन्देशवाहन प्रक्रिया का सूत्रपात करता है।

2. सदेश (Message)—सन्देशवाहन प्रक्रिया का दूसरा महत्वपूर्ण अग है सन्देश। जब सदेश भेजने वाला व्यक्ति होता है, तो वह सदेश भेजने के लिए सन्देश तैयार करता है। यह सदेश आदेश, निवेदन, रिपोर्ट, सुझाव, शिकायत आदि किसी रूप मे हो सकता है।

3. माध्यम (Media)—जब सन्देश भेजने वाला सदेश तैयार कर लेता है, तो उसके सामने सदेश भेजने के माध्यम के चुनाव की समस्या आती है कि वह किस माध्यम से सदेश भेजे? लिखित, मौखिक अथवा साकेतिक किसी भी प्रकार के माध्यम के किसी भी साधन का प्रयोग किया जा सकता है। यह सन्देश की प्रकृति पर निर्भर करेगा, कि कौनसा माध्यम या कौन सा साधन अधिक उपयुक्त है?

4. सदेश प्राप्तकर्ता (The Audience)—सन्देश भेजने वाला जब सन्देश भेजने के माध्यम का चुनाव कर लेता है, तो अपने सदेशों को उस माध्यम से सन्देश प्राप्तकर्ता तक पहुँचाने के लिए छोड देता है, तब सन्देश इसके प्राप्तकर्ता के पास पहुँचता है। सन्देश प्राप्तकर्ता वह व्यक्ति होता है जिसके पास सन्देश भेजने वाला सन्देश पहुँचाना चाहता है। सन्देश प्राप्तकर्ता एक व्यक्ति हो सकता है अथवा व्यक्तियो का एक समूह भी हो सकता है।

5. प्रतिक्रिया (Reaction)—यद्यपि सदेश प्राप्तकर्ता को सन्देश मिल जाय, तभी यह माना जा सकता है, कि सदेशवाहन प्रक्रिया पूर्ण हो गई है, किन्तु प्रभावशाली सदेशवाहन प्रक्रिया तभी पूर्ण होती है। जब कि सदेश को सदेश का प्राप्तकर्ता ठीक उसी रूप मे समझे, जिस रूप मे सदेश भेजने वाला समझता है। इस दृष्टि से सदेशवाहन प्रक्रिया तब पूर्ण हुई मानी जावेगी, जबकि सदेश की प्रतिक्रिया का ज्ञान भी सदेश भेजने वाले को हो जाय।

इस प्रकार सन्देशवाहन की प्रतिक्रिया पुन सदेश भेजने वाले को पहुँच जाती है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि सन्देशवाहन एक सम्पूर्ण प्रक्रिया है जो निरन्तर रूप से चलती रहती है।

सन्देशवाहन प्रक्रिया के तत्व
(Elements of Communication Process)

प्रारम्भ मे सन्देशवाहन प्रक्रिया से आशय सदेश को एक दूसरे व्यक्ति तक पहुँचाने से लगाया जाता था और सदेश-प्रेषक किंचित मात्र भी चिंतित न थे कि सदेश को ठीक रूप से समझा गया है अथवा नही। समय के साथ-साथ परिवर्तन आया और द्विमार्गीय सदेशवाहन प्रक्रिया का विकास हुआ। यह भी स्वीकार किया जाने लगा कि सदेशवाहन मे सूचना एव समझ (Information and Understanding)

ोनो ही तत्त्वों का होना आवश्यक है। लुई ए ऐलन (Louis A Allen) ने इस द्वि मार्गीय सन्देशवाहन प्रक्रिया को भी सम्पूर्ण विधि बताया और कहा कि इसमे चार तत्त्व (Four elements) जिनमे (i) पूछना (Asking), (ii) कहना (Telling), (iii) सुनना (Listening), तथा (iv) समझ (Understanding) सम्मिलित है।

प्रबन्ध क्षेत्र के प्रसिद्ध विद्वान लारेन्स एप्ले (Lawrence Appley) ने सन्देशवाहन प्रक्रिया के पाच तत्त्व बताये है —

1 विचार एव समस्या का स्पष्टीकरण
2 समस्या के निवारण म हिस्सा लेना
3 विचारो अथवा निर्णयो का सम्प्रेषण
4 निर्णयो के अनुसार काय करने हेतु उत्प्रेरणा देना तथा
5 सन्देश की प्रभावशीलता का मूल्याकन।

नीचे सन्देशवाहन विधि के तत्त्वो की विस्तार से विवेचना की गई है—

1 विचारो का स्पष्टीकरण (Clarifying Ideas)— रैनडाल (Randall) के अनुसार **"प्रत्येक सदेशवाहन का आरम्भ विचारो से होता है।"** (The beginning of all communication is an idea) सदेशवाहन तब तक ठीक ढग से प्रेषित नही किया जा सकता जब तक कि प्रेषक स्वय अपने विचारो म स्पष्ट न हो। विचार स्पष्ट हो जाने से प्रेषक उचित रूप मे उचित माध्यम द्वारा विचारो का सम्प्रेषण कर सकता है। इसके साथ ही साथ यह भी आवश्यक है कि प्रेषक को उस विचार के सम्बन्ध म प्रेषित किये जाने वाले अधिक जानकारी हो अन्यथा सन्देशवाहन के प्रेषण म बाधा आ जाती है। जान डिवे (John Dewey) के शब्दो मे **समस्या को ठीक ढग से प्रस्तुत करना ही समस्या का आधा निवारण है।"** (*A problem well stated is half solved*) अत प्रेषक का विचारो म स्पष्ट होना आवश्यक है।

2 हिस्सेदारी (Participation)—तत्पश्चात् सदेशप्रेषक को अपने सहयोगी कर्मचारियो से समस्या के सम्बन्ध म बात चीत करना चाहिए। फिशर (Fischer) ने ऐसा करने के तीन उद्देश्य बताये है —

(i) अपने विचारो का दूसरो के विचारो से स्पष्टीकरण तथा जाच करना।

(ii) उन व्यक्तियो के विचारो तथा सुझावो को एकत्रित करना जो कि समस्या के निवारण म कुछ योगदान दे सकते हैं।

(iii) हिस्सेदारी से उनको प्रोत्साहन देना जो कि निर्णयो को काय रूप देने के लिए उत्तरदायी हैं।

स्पष्ट है, कि हिस्सेदारी से लिए गए निर्णय में अधिक ठोस एव अच्छे होते है। इससे कर्मचारियों को मनोबल एव अभिप्रेरणा (Motivation) मिलती है।

3. प्रेषण (Transmission)—सन्देशवाहन विधि का अगला चरण सन्देश का प्रेषण है, अर्थात् सन्देश उन व्यक्तियों को भेजे जाते हैं, जो इन्हे कार्यरूप मे परिणित करेंगे। इनके लिए प्रेषक को निम्न बातों का निर्धारण कर लेना चाहिए—

(i) क्या प्रेषित करना है ?

(ii) किसे प्रेषित करना है ?

(iii) प्रेषण की सर्वोत्तम विधि क्या है ?

सन्देश लिखित, मौखिक एव साकेतिक रूप म प्रेषित किया जा सकता है। लिखित एव मौखिक सन्देशो मे चार 'सीज' (Four C s) अर्थात् सन्देश स्पष्ट (Clear), पूर्ण (Complete), सक्षिप्त (Concise), तथा सही (Correct) होना चाहिए। जिन्हे सन्देश भजने हैं उनकी प्रकृति को भी ध्यान मे रखना अपरिहार्य है। इनके अभाव मे सन्देश का प्रेषण ही व्यर्थ होगा।

4. उत्प्रेरणा (Motivation) सन्देशवाहन म केवल समझ (Under standing) होना ही पर्याप्त नही है। समझ के साथ साथ सदेश मे वह क्षमता भी हो, जो प्रेषिति मे उनके अनुसार कार्य करने की इच्छा जाग्रत कर दे। यदि प्रेषिति म उत्साह उत्पन्न नही होता है, तो सदेश का प्रेषण व्यर्थ समझा जावेगा। उत्प्रेरणा के लिए इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि व्यक्ति के अनुरूप ही सन्देश हो। इस मे सस्था की उत्पादन-क्षमता मे वृद्धि होती है।

5. मूल्यांकन (Evaluation)—यह सन्देशवाहन विधि का अन्तिम तत्त्व है। जिस प्रकार योजना बना कर सन्देश उचित रूप मे पहुँचाय जा सकते है, ठीक उसी प्रकार मूल्यांकन से भी सन्देश प्रभावशाली बनाये जा सकते हैं। सन्देशों के प्रपण के पश्चात् सतत् रूप से यह जानने का प्रयास करना चाहिये कि सन्देशों का प्रेषण प्रभावशाली रहा है अथवा नहीं। यदि प्रभावशाली नही रहा है, तो उन कमियों को ज्ञात करने का प्रयास करना चाहिए, जिनके कारण ऐसा हुआ है। सन्देशवाहन के प्रभाव का मूल्यांकन उत्पादन सनको, अनुपस्थिति, विक्रय-समको तथा प्रवृत्ति पर्यवेक्षण द्वारा किया जा सकता है।

समन्वय एव सदेशवाहन
(Cordination & Communication)

व्यावसायिक क्षेत्र के विकास से समन्वय की समस्या का प्रादुर्भाव हुआ और समन्वय को भी एक आवश्यक प्रबधकीय कार्य समझा जाने लगा है। समन्वय उस विधि को कहते है, जिससे किसी सस्था के सामूहिक, कार्यों को किसी एक उद्देश्य की पूर्ति हेतु एक सूत्र मे पिरोया जाता है। प्रसिद्ध विद्वान डी ई मेक्फारलेंड "समन्वय

वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक प्रबन्धक अपने अधीनस्थो के सामूहिक कार्यो को नियमित करता है एव सामान्य उद्देश्य की पूर्ति हेतु कार्यो म एकरूपता लाता है '[1] आधुनिक युग म प्रत्य ही संस्था को विभिन्न विभागो एव 24 विभागो मे विभक्त कर दिया जाता है तथा प्रत्यक काय को कई उपविभागो मे बाँटा जाता है। ऐसा करक विशिष्टीकरण के लाभो को प्राप्त किया जाता है। किन्तु यदि विभिन्न कर्मचारियों एव विभागो के कार्यो का परस्पर समन्वय न हो तो इनके परिश्रम का पूरा-पूरा लाभ नही मिल पाता है और सस्था के उद्देश्यो को भी प्राप्त नही किया जा सकता ह। अत प्रत्यक सस्था का लम्बवत (Vertical तथा समतल (Horizontal) समन्वय आवश्यक ह। डोनाल्ड जे क्लघ (Donald J clough) ने उचित ही कहा ह कि समन्वय अर्थात सगठन के विभिन्न विभागो के कार्यो को किसी एक सामान्य उद्देश्य की पूर्ति के लिये एक सूत्र मे बाँधना द्विमार्गीय सदेशवाहन पर निर्भर है, जो प्रबधक तथा अधीनस्थ विभागो, प्रबधक एव उसके उच्च प्रबधक तथा अपने समान अन्य प्रबधको के मध्य होते है।'

आधुनिक वृहदस्तरीय उत्पादन एव व्यापार क युग मे एक व्यावसायिक सस्था को विभिन्न विभागो एव उपविभागो मे विभक्त कर दिया गया है अथवा या कह दें कि वतमान युग विशिष्टीकरण का युग है जिसम प्रत्यक काय को छोटे छोटे भागो म विभक्त कर दिया जाता है जिसे पृथक पृथक कमचारी करते हैं। इन पृथक् पृथक कमचारियों के कार्यों को सस्था के उद्देश्यो की प्राप्ति हेतु सगठित एव समन्वित करना होता है। इस प्रक्रिया म सन्देशवाहन अपना महत्वपूर्ण भाग अदा करते है अथवा यो कह द कि बिना सन्देशवाहनो के यह काय ही असम्भव है तो कोई अतिशयोक्ति नही होगी। समन्वय करने हेतु निश्चय ही प्रबन्धक वग स कमचारियो को मन्त्रणाय एव निदश जाते रहने चाहियें तथा समय-समय पर उनके कार्यो का मूल्याकन एव निरीक्षण करते रहना चाहिय। इसक लिए प्रभावशाली सन्देशवाहनो की आवश्यकता है। इतना ही नही एक व्यवसायी को सन्देशवाहनो के माध्यम स सरकार अथवा सरकारी श्रम सघो ग्राहको तथी समाज सभी स लगातार समन्वय स्थापित करने का प्रयास करना चाहिए।

समन्वय क लिए सतत सन्देशवाहनो की आवश्यकता होती ह। कुछ सन्देशवाहन नीचे की ओर (Downward) होत है जिनम सस्था के कमचारियो को आदेश निदेश आदि दिय जात है साथ ही साथ बाह्य पक्षो यथा श्रम सघ ग्राहक विक्रेता आदि स भी सम्पर्क बनाये रखकर समन्वय किया जाता ह। इसी प्रकार कुछ सन्देशवाहन ऊपर की ओर (upward) भी होते है जिनम कमचारियो की प्रतिक्रियाएँ ज्ञात की जाती है। इसके अतिरिक्त कमचारियो की समस्याओ एव

---

1 Co ord nation is the process whereby an l executi e develops an orderly patterns of group efforts among h s sul ord nates and secures unity of action in the persuit o a comm n purpo e D E Mc Farland

सुझावो का भी उचित मूल्यांकन करके सस्था को समन्वित किया जाता है। स्पष्ट है सन्देशवाहन ही कर्मचारियो, बाह्य पक्षो एव सस्थान के मध्य समन्वय करने का एकमात्र साधन है। इस सन्दर्भ मे विलियम एच न्यूमैन (Will am H Newman) के विचार उपयुक्त जान पडते है, "जैसा कि समन्वय विभिन्न क्रियाओ का परस्पर सम्बन्ध है यह उन क्रियाओ की सूचनाओ के किसी सामान्य सामञ्जस्य बिन्दु अथवा बिन्दुओ पर आदान प्रदान की अपेक्षा अच्छा नही हो सकता।"[1]

समन्वय के प्रकार एव सदेशवाहन

समन्वय के निम्न रूप हो सकते है

I आन्तरिक एव बाह्य समन्वय
(Internal and External Coordinatoin)

II लम्बवत एव समतल समन्वय
(Vertical & Horizonal Coor Cination)

अत हम इन विभिन्न प्रकार के समन्वयो मे सदेशवाहन के महत्व को स्पष्ट कर रहे हैं —

आन्तरिक समन्वय एव सदेशवाहन :

जब एक ही सस्था के विभिन्न विभागो, उपविभागो, शाखाओ एव उप शाखाओ मे परस्पर समन्वय किया जाता है तो आन्तरिक समन्वय कहलाता है। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है कि वृहद् स्तरीय उत्पादन के युग मे एक सस्था मे अनेक विभाग एव उपविभाग होते है और प्रत्येक कार्य के लिए पृथक्-पृथक् कर्मचारी लगाये जाते हैं। इन सभी विभागो एव उपविभागो के कर्मचारियो के कार्यो को समन्वित करना होता है। इसके लिये सतत रूप से आदेश, निर्देश एव सूचनाएँ देनी पडती है। ये सभी मौखिक, लिखित एव साकेतिक रूप मे हो सकती हैं। ये औपचारिक रूप से भी हो सकती है और अनौपचारिक रूप मे भी। कहने का तात्पर्य यह है कि इनमे समन्वय स्थापित करने के लिए सन्देशवाहन आवश्यक हैं, चाहे वे किसी भी रूप मे हो, तभी सस्था के उद्देश्यो को अधिकतम लाभ के साथ पूरा किया जा सकता है। बैथल, अटवाटर इत्यादि लिखते हैं कि "अधिकतम उत्पादन तभी प्राप्त किया जा सकता है, जबकि व्यवसाय को ठीक प्रकार सगठित किया जाये और जबकि इसके सभी अग मशीन रूप मे साथ मिलकर कार्य करे। आन्तरिक समन्वय इन उद्देश्य की पूर्ति करता है।'

डोनाल्ड जे क्लफ लिखते हैं "अच्छे समन्वय के लिए अनौपचारिक सन्देशवाहनो की आवश्यकता है, जिन्हे सगठन के चार्ट पर नही दिखाया जाता है। समन्वय

---

1 'Since co-ordination is concerned with realationships of seperate activities it can be no better than tran fer of information about these activities to some common point or points, where the dovetailing tapes place' William H Newman Administrative Action' p 397 98

व्यवसायी इस हेतु सर्वेक्षण करता है, विज्ञापन देता है अथवा व्यक्तिगत रूप से गश्ती पत्र भेजता है।

2. अन्य व्यावसायिक इकाईयाँ—एक व्यवसायी को अन्य व्यावसायिक इकाइयों के मध्य भी समन्वय स्थापित करना होता है। ये व्यावसायिक इकाइयाँ प्रतिद्वन्द्वी भी हो सकती है। इनमे समन्वय रखना उचित है। आजकल संयोग (Combinations) के आधार पर भी समन्वय किया जाता है। इसके लिए समय समय पर इन इकाइयो के मध्य संदेशवाहनो का आदान प्रदान आवश्यक है।

3. सरकार अथवा सरकारो से समन्वय—आजकल व्यवसाय में सरकारी हस्तक्षेप बढता जा रहा है। इस हेतु केन्द्रीय, राज्य एवं स्थानीय सरकारो से समन्वय करना जरूरी है। सरकार की श्रम नीति, कर नीति आयात एवं निर्यात नीति आदि सभी नीतियाँ व्यवसाय को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप मे प्रभावित करती है। अत व्यवसायी को इन नीतियों से अवगत होना चाहिये और व्यवसाय एवं सरकार की रीति में पूर्ण समन्वय होना आवश्यक है। इस कार्य मे समय समय पर सरकार एवं व्यवसायी के मध्य संदेशो का आदान प्रदान होता है।

5. समाज—यद्यपि सभी उपभोक्ता मिलकर ही समाज का निर्माण करते हैं फिर भी समाज से एक विशिष्ट इकाई के रूप में समन्वय आवश्यक है। व्यवसाय समाज की आवश्यकता आदि का ज्ञान करता है एवं उसके रीति रिवाज एवं आवश्यकता के अनुसार उत्पादन करके वितरण करता है। समाज के विभिन्न वर्गों की माग के अनुरूप माल का उत्पादन कर व्यवसाय एवं समाज मे समन्वय करता है।

5. तकनीकी प्रगति—वर्तमान युग वैज्ञानिक युग है। जिसमे दिन प्रतिदिन अनेक नये-नये आविष्कार होते है। उत्पादन प्रक्रिया में भी इन साधनो से परिवर्तन होता है और एक व्यवसायी के आधुनिक प्रतिस्पर्धात्मक बाजार में टिकने के लिए इन परिवर्तनो से अवगत रहना चाहिये। वैज्ञानिक अनुसधान संस्थाओ के मध्य सतत संदेशवाहनो का आदान-प्रदान होते रहना, इस दिशा मे महत्वपूर्ण कदम हैं।

लम्बवत समन्वय एवं संदेशवाहन—

लम्बवत समन्वय से आशय किसी संस्था के ऊपर से नीचे (Downward) और नीचे से ऊपर (Upward) के कार्यों मे समन्वय से है। उदाहरणार्थ, अध्यक्ष प्रबन्धक, उपप्रबन्धक, सहायक प्रबन्धक, के कार्यों के समन्वय को लम्बवत समन्वय कहते हैं। लम्बवत समन्वय हेतु संदेशवाहनो का औपचारिक रूप अधिक प्रचलित है। प्रत्येक संस्था मे ऊपर से नीचे की ओर लम्बवत् समन्वय हेतु आदेश, निदेश, हैण्ड बुक्स, मैन्युअल्स, कार्य विधियाँ (Procedures) सभाएँ आदि माध्यम प्रयोग मे लाये जाते हैं। नीचे से ऊपर की ओर समन्वय के लिए कार्य प्रतिवेदन, सभाएँ, कान्फ्रेंस, सुझाव, शिकायतें आदि भेजे जाते हैं। इस प्रकार के समन्वय के लिए

द्वि मार्गीय सदशवाहन (Two way Communication) काम म लाये जाते हैं।

समतल समन्वय एव सदशवाहन

विशिष्टीकरण के युग मे एक संस्था के कितने ही विभाग एव उप विभाग होते है। इन विभिन्न विभागो के विभागाध्यक्ष समान स्तर के होते हैं। इन विभागाध्यक्षो के मध्य समन्वय को समतल समन्वय कहते हैं। उदाहरणार्थ, क्रय, विक्रय वित्त खाता आदि विभागो के मध्य समन्वय को समतल समन्वय कहेगे।

इन विभिन्न विभागो के विभागाध्यक्षो के मध्य सवादवाहनो का आदान-प्रदान होता ही रहता है। यदि ऐसा न हो तो सस्था के उद्देश्यो को प्राप्त नहीं किया जा सकता है। इनके मध्य औपचारिक एव अनौपचारिक रूप से सदेशो का आदान प्रदान होता ही रहता है परन्तु इस प्रकार के समन्वय म प्राय अनौपचारिक सदेशवाहन ही अधिक प्रयोग म आते है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि समन्वय एव सदेशवाहन म गहरा सम्बन्ध है। बिना व्यवस्थित सदेशवाहन के समन्वय सम्भव नहीं है।

अभ्यास के लिए प्रश्न

1. व्यावसायिक सचार से आप क्या समझते है? सचार शब्द का किन किन विभिन्न अर्थों म प्रयोग होता है?
   What do understand by business communication? In what variety of senses the word communication is usually used?
2. प्रशासन सचार की प्रावधियाँ मात्र है। इस कथन का विवेचन कीजिये और प्रशासन तथा सचार मे परस्पर सम्बन्ध बतलाइये।
   'Administration is simply a series of communicated processes Discuss this statement and describe the relation ship that subsists between Administration and Communication
3. आधुनिक युग म सचार अत्यधिक आवश्यक क्या होता जा रहा है? सविस्तार समझाइये।
   Why is communication becoming very much essential in modern age? Explain in detail
4. सचार की विशेषताएँ बतलाइये।
   Describe the characteristics of communication
5. सचार के महत्व पर प्रकाश डालिये।
   Explain the Importance of Communication
6. सचार और समन्वय म परस्पर क्या सम्बन्ध है? सोदाहरण स्पष्ट कीजिये।
   Explain the relation between communication and co ordination with suitable illustrations

7 अच्छे सचार के सिद्धान्त बतलाइए ।
Describe the principles of a sound system of communication.

8 व्यावसायिक सम्प्रेषण की परिभाषा दीजिए तथा आधुनिक व्यवसाय के सम्प्रेषण के महत्त्व की विवेचना कीजिए ।
Define Business Communication and discuss its importance in modern business
(Raj 2nd Yr T D C Com, 1971 and 1975)

9 आधुनिक व्यवसाय मे सम्प्रेषण के महत्त्व को बताइये ।
Assess the importance of Communication in modern business.
(Raj 2nd Yr T D C Com 1970)

10 आधुनिक विश्व मे 'व्यावसायिक सम्प्रेषण' की प्रमुख विशेषताओ का वर्णन कीजिए ।
Narrate the main characteristics of 'Business Communication' in modern world
(Raj 2nd Yr T D C Com 1969 Supp)

11 एक अच्छी सदेशवाहन प्रक्रिया का वर्णन कीजिए ।
Describe a Suitable Commun cation Process

2

संदेशवाहन के प्रकार

(Types of Communication)

"The effectiveness of the manager's job will significantly depend on his ability to communicate, on his ability to transfer knowledge and understanding —*Theo Haimann*

व्यावसायिक सन्देशवाहन को निम्न वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

1. मौखिक, लिखित, सांकेतिक तथा दृश्य सन्देशवाहन।
   (Verbal, Written and Gestural Communication)
2. औपचारिक एवं अनौपचारिक सन्देशवाहन।
   (Formal and Informal Communication)
3. अधोगामी, ऊर्ध्वगामी एवं समतल सन्देशवाहन।
   (Downward, Upward and Horizontal Communication)
4. आन्तरिक एवं बाह्य सन्देशवाहन।
   (Internal and External Communication)

1. मौखिक, लिखित एवम् सांकेतिक सन्देशवाहन (Verbal, Written and Gestural Communication)

(I) मौखिक सन्देशवाहन (Verbal Communication)

जब सन्देश भेजने वाला सन्देश के शब्दों का मुख से उच्चारण करके सन्देश प्रेषित करता है तो इसे सन्देशवाहन को मौखिक सन्देशवाहन कहते हैं। मौखिक सन्देशवाहन अत्यन्त प्रभावशाली सन्देशवाहन माना जाता है। प्रबन्ध क्षेत्र के प्रसिद्ध विद्वान **लारेन्स एप्पले** (Lawrence Appley) का मत है कि **"मौखिक शब्दों द्वारा पारस्परिक सन्देशवाहन, सन्देशवाहन की सर्वोच्च कला है।"** (Interpersonal communication through the spoken words is the highest art of communication) **वाइले तथा हार्टी** (Wylie and Harty) ने कारण सहित मौखिक सन्देशवाहन की महत्ता इस प्रकार स्पष्ट की है—**"उच्चारित शब्द सन्देशवाहन की सर्वोत्तम विधि है, क्योंकि इसमें संकेत** (Gestures) **तथा वाणी का रूप**

भी साथ होता है, साथ ही साथ प्राप्तकर्ता प्रश्न भी कर सेता है।"[1] इससे अतिरिक्त मौखिक सन्देशवाहन अन्य माध्यमों की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। इसमें कर्मचारियों को हिस्सेदारी (Participation) की भावना का आभास मिलता है तथा उनको संस्था से मान्यता प्राप्त होती है। मौखिक सन्देशवाहन में कर्मचारियों में संस्था के प्रति अपनत्व की भावना का भी विकास होता है।

आज व्यवसाय में अनेक कर्मचारी ऐसे है, जो मौखिक सन्देशवाहन का ही प्रयोग करते है। विक्रयकर्त्ता, टेलीफोन आपरेटर, स्वागतकर्त्ता आदि का कार्य मौखिक संदेशवाहन पर ही चलता है। मौखिक सन्देशवाहन में अनेक साधनों का प्रयोग किया जाता है, जैसे साक्षात्कार, मीटिंग, कान्फ्रेंस, रेडियो, टेलीविजन-वार्ता, इत्यादि।

मौखिक सन्देशवाहन की आवश्यकता एवं महत्त्व
(The Need and Importance of Oral Communication)

यद्यपि सन्देशवाहन के लिखित एवं सांकेतिक माध्यम भी उपलब्ध हैं, किन्तु मौखिक सन्देशवाहन का आधुनिक युग में सर्वाधिक महत्त्व है। विभिन्न अनुसन्धानों से अब यह पूर्ण स्पष्ट हो गया है कि प्रबन्धक वर्ग सन्देशवाहनों में जितना समय लगाते है, उसका कम से कम 75% समय मौखिक सन्देशवाहन में ही लगता है। इससे स्पष्ट है कि मौखिक सन्देशवाहनों का व्यावसायिक संस्था में अत्यधिक महत्त्व है। इसके प्रमुख कारण निम्न है—

1. नेतृत्व (Leadership)—आज के प्रबन्धक को अपने कार्य को करवाने के लिए कार्यकारी व्यक्तियों के समूह को नेतृत्व प्रदान करना पड़ता है। नेतृत्व के द्वारा ही वह कर्मचारियों में कार्य की प्रेरणा व उत्साह प्रदान करता है। वह उस समूह के व्यक्तियों से सलाह मशवरा करता है। इन सब कार्यों में मौखिक सन्देशवाहन की आवश्यकता पड़ती है।

2. मान्यता (Recognition)—प्रत्येक व्यक्ति में अपने आपकी मान्यता की आकांक्षा पाई जाती है। प्रबन्धकों को भी अपने कर्मचारियों की इस भावना को पूरा करना पड़ता है, जो मौखिक सन्देशवाहनों से अधिक सम्भव है।

3. हिस्सेदारी (Participation)—आज का युग हिस्सेदारी प्रबन्ध (Participative Management) का युग है। जब कभी महत्त्वपूर्ण निर्णय लिया जाता है, उसके लिए सभी सदस्यों की मीटिंग बुलानी पड़ती है। इसमें मौखिक रूप में ही संदेशों का आदान-प्रदान होता है।

---

1. The spoken word is a highly efficient method of communication, because it can be accompanied by gestures and voice infections as well as questioning by the receiptient of the information " Harry Wylie and James Harty Office Management Handbook p 181.

4. सलाह करना (Consultation)—आज एक व्यावसायिक संस्था मे प्रत्येक महत्त्वपूर्ण निर्णय लेने से पूर्व सम्बन्धित व्यक्तियो से सलाह करना आवश्यक हो गया है क्योंकि ये सम्बन्धित व्यक्ति अपने क्षेत्र मे विशेषज्ञ होते है और वे विशेष ज्ञान से अच्छी सलाह प्रदान करते है। ये विशेषज्ञ अपनी सलाह यद्यपि लिखित रूप मे भी दे सकते है, किन्तु उसमे लचीलेपन के अभाव के कारण मौखिक, सन्देशवाहन का ही अधिक प्रयोग करते है।

5. अधिकार प्रत्यायोजन (Delegation of Authority)—आधुनिक वृहद्स्तरीय उत्पादन ने कार्य करने वालो की सख्या मे भी आश्चर्यजनक वृद्धि की है। प्रबन्धक को इन्हे कार्य सौपना पडता है, जो केवल लिखित आदेश के रूप मे ही नही सौंपा जाता है। कार्य का उचित रूप से निष्पादन के लिए कार्य करने वालो को मौखिक रूप से सभी आदेशो को समझना भी आवश्यक होता है तथा समय-समय पर आवश्यक निर्देश भी देने पडते है। स्पष्ट है कि मौखिक सन्देशवाहन के अभाव मे, यह सभी भली प्रकार सम्भव नही होता है।

6 सहयोग (Cooperation)—व्यवसाय की सफलता कर्मचारियो के आपसी सहयोग पर निर्भर करती है तथा कर्मचारियो मे आपसी सहयोग मौखिक सदेशवाहन की कुशलता पर निर्भर करता है।

7 विचार-विमर्श करना (Counseling)—अब प्रबन्ध में कुशलता प्राप्त करने के लिए उच्चाधिकारियो को अपने अधीनस्थो के साथ बैठकर भी विचार-विमर्श करना होता है, जो मौखिक सदेशवाहनो पर निर्भर है।

8 निर्णय लेना (Decision-making)—अच्छे निर्णय के लिए सभा बुलाना या समूह से सामूहिक बात करना, अच्छा होता है। अत मौखिक सदेशवाहनो का अधिक प्रयोग होता है।

9 अच्छे वातावरण के निर्माण के लिये (To Develop Good Climate)—आज प्रबन्धक की कुशलता व्यवसाय मे अच्छे वातावरण पर निर्भर करती है। अत प्रबन्धक को अपने कर्मचारियो मे व्यक्तिगत व सामूहिक भेट करनी ही पडती है। जहाँ मौखिक रूप मे ही सन्देशो का आदान-प्रदान होता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि मौखिक सन्देशवाहन, एक आवश्यक माध्यम है। इसके लिए हम यही कहे कि मौखिक सन्देशवाहन प्रबन्ध का हृदय है तो कोई अतिशयोक्ति न होगी।

मौखिक सन्देशवाहन के सम्बन्ध म आवश्यक बातें
(Requisites for Effective Verbal Cmmunication)

1 स्पष्ट उच्चारण (Clear Pronounciation)—मौखिक सदेशवाहन प्राय इस कारण प्रभावहीन हो जाते है कि प्रेषक स्पष्ट रूप से शब्दो का उच्चारण नही कर पाता है। जब प्रेषक जबडे, जबान अथवा होंठो को ठीक प्रकार से हिला-डुला नही पाता है, तो शब्दो का उच्चारण अस्पष्ट हो जाता है। अधिक तीव्रगति

से बोलने से भी शब्दों का उच्चारण अस्पष्ट हो जाता है। अत शब्दों के बीच आवश्यक समयान्तर देकर शब्दों का उच्चारण करना चाहिए। मौखिक सन्देशवाहन की सफलता के लिए, शब्दों का स्पष्ट उच्चारण प्राथमिक आवश्यकता है।

2 उचित शब्दों का चयन (Selecting Proper Words)—कभी-कभी प्रेषक को भाषा का पूरा ज्ञान न होने के कारण शब्दों के चयन में गलती हो जाती है तथा शब्दों का प्रयोग यथोचित रूप से नहीं कर पाता है। इससे श्रोता गलत अर्थ लगा बैठते हैं। अत शब्दों का यथोचित प्रयोग करना आवश्यक है। व्यावसायिक एवं तकनीकी भाषा का प्रयोग तभी करना चाहिए, जबकि श्रोता भी पूर्णरूप से उस भाषा का ज्ञान रखते हैं।

3. मधुरता (Sweetness)—प्रेषक को मधुर भाषा का प्रयोग करना चाहिए। निर्देश देते समय मधुरता का विशेष ध्यान रखना चाहिए। परन्तु इसमें कृत्रिमता नहीं आनी चाहिए, अन्यथा सन्देश प्रभावहीन हो जायेगा।

4 न्यूनतम प्रबन्ध-स्तर (Minimum levels of Management)—मौखिक सदंशवाहन की सफलता के लिए यह भी आवश्यक है कि प्रबन्ध-स्तर भी न्यूनतम हों।

मौखिक सन्देशवाहन के लाभ
(Advantages of Oral or Verbal Communication)

1. समय, श्रम एवं धन की बचत (Saves time, labour and money)—मौखिक सन्देशवाहन में शब्दों के उच्चारण मात्र से ही काम चल जाता है। उनको लिपिबद्ध करने की आवश्यकता नहीं रहती है। परिणामस्वरूप इसमें लिखने में लगने वाला समय, श्रम, कागज, स्याही तथा स्टेशनरी की बचत हो जाती है।

2. प्रभावपूर्ण (Effective)—मौखिक सन्देश बहुत अधिक प्रभावशाली होते हैं, क्योंकि इनमें व्यक्तिगत सम्पर्क होता है। प्रेषक अपनी वाणी के प्रवाह तथा मुख-मण्डल द्वारा श्रोता को प्रभावित कर देता है। साथ ही इसमें अन्य शारीरिक हाव भाव द्वारा श्रोता को प्रभावित किया जा सकता है।

3 शीघ्रता (Promptness)—मौखिक सन्देश शीघ्र पहुँचाये जा सकते हैं। *इसके विपरीत लिखित सन्देशवाहन को लिखने में तथा लिखित सूचनाओं को पहुँचाने* में अपेक्षाकृत अधिक समय लगता है। मौखिक सन्देशवाहन में समय की बचत होती है। प्रत्येक बात को स्पष्ट रूप से समझने में भी समय अधिक नहीं लगता है, क्योंकि आमने-सामने आसानी से प्रश्नोत्तर किये जा सकते हैं।

4 सन्देश की प्रतिक्रिया का ज्ञान (Knowledge of Reaction)—मौखिक सन्देश देने का एक महत्त्वपूर्ण लाभ यह है कि प्रेषक को सन्देश की प्रतिक्रिया का शीघ्र ज्ञान हो जाता है। प्रेषक को यह तुरन्त ज्ञात हो जाता है कि सन्देश प्राप्तकर्ता सदेश को समझ पाया है अथवा नहीं ? यदि समझ पा रहा है तो क्या उनके

अनुरूप वह कार्य कर रहा है अथवा नहीं। इत्यादि बातों का ज्ञान हो जाता है। ग ा की गहनता म प्राप्तकर्ता को भली प्रकार समझाया जा सकता है।

5 तत्काल भ्रम निवारण (Avoids Misunderstanding at the Spot)—मौखिक सन्देश म भ्रम का निवारण तत्काल हो जाता है। वास्तव म स० भी सदेश तभी पूर्ण माना जाता है जबकि सदेश प्राप्तकर्ता सदेश को ठीक उसी रूप म समझे जिस रूप म वह प्रषक द्वारा दिया गया है। यदि प्रषक अपनी बात ठीक प्रकार से नहीं समझा पाता है तो वह प्रश्नोत्तर करके भ्रम का तत्काल निवारण कर सकता है।

6 परस्पर सदभावना एव सहयोग (Mutual Goodfaith and Co operation) —इसम सदेश का प्राप्तकर्ता अपने भ्रम का निवारण कर लेता है और प्रषक की प्रतिक्रिया का निरन्तर ज्ञान होता रहता है तो इससे प्रषक एव प्राप्तकर्ता म आपस म सद्भाव एव सहयोग की भावना का स्वत विकास हो जाता है।

7 लोचपूर्ण (Elastic) —मौखिक सदेशवाहन लिखित सदेशवाहन की अपेक्षा अधिक लोचपूर्ण है। इस विचारों की स्पष्टता के साथ अधिक विस्तृत रूप से समझाया जा सकता है। स देशवाहन म प्रश्नोत्तर की सुविधा प्राप्त होने से इसम लोच और बढ जाती है। इसी प्रकार मौखिक रूप से दिये गये आदेशों को आसानी से परिवर्तित किया जा सकता है। जबकि लिखित आदेशों म परिवर्तन करना उतना सरल नहीं होता है।

8 शीघ्र एव ठोस निर्णय (Quick and Solid Decisions)—मौखिक सदेशवाहन के प्रयोग म जो निर्णय लिये जाते हैं व शीघ्र एव ठोस निर्णय होते है। उदाहरणार्थ एक मीटिंग म निर्णय लेना है तो इस मीटिंग म उपस्थित सभी अथवा अधिकांश सदस्य अपने अपने तर्क द्वारा प्रत्येक बात को सही अथवा गलत ठहराने का प्रयास करगे। इन विभिन्न तर्कों का ध्यान म रखकर ही निर्णय लिया जायगा। अत इसम ठोस निर्णय होने की भी सम्भावना है। इस प्रकार विभिन्न तर्कों की उपस्थिति से तत्काल निर्णय म सहायता मिलेगी।

9 उत्पादकता मे वद्धि (Increases Productivity) मौखिक सन्देशवाहन स दशों को तत्परता म प्राप्तकर्ता के पास पहुचाता है। समझने म समय भी नहीं लगता है। परिणामस्वरूप क्रियान्वयन भी शीघ्र हो जाता है जिसके कारण उत्पादकता म वृद्धि होती है।

10 प्रबधकीय योग्यता का विकास (Development of Managerial Skill)—मौखिक रूप म सन्देशों के आदान प्रदान से निम्न वर्ग के कर्मचारियों म भी प्रबन्धकीय योग्यता का विकास होने लगता है। भविष्य म आवश्यकता पडने पर भी उनकी सूझ बूझ म सरलता से लाभ मिलता है।

मौखिक सन्देशवाहन के दोष
(Disadvantages of Oral or Verbal Communication)

यद्यपि मौखिक सन्देशवाहन से व्यवसाय का कार्य सुगम हो जाता है और सभी कार्य सरल रूप से पूरे हो जाते है, परन्तु अनेक ऐसे अवसर आते है, जब मौखिक सन्देशवाहन अनुपयुक्त हो जाते है, क्योंकि इसके कुछ दोष है, जिनका विवेचन निम्न प्रकार है —

1 **सदेश-प्राप्तकर्त्ता की उपस्थिति आवश्यक** (Requires Presence of Receipient)—मौखिक सन्देशवाहन में सन्देश तभी प्रेषित किये जा सकते है जबकि सन्देश प्राप्तकर्त्ता, सन्देश प्राप्त करने के लिए उपलब्ध हो। यदि वह उस समय उपलब्ध न हो, तो मौखिक सदेशवाहन सम्भव नहीं होता।

2 **खर्चीला** (Expensive)—मौखिक सन्देशवाहन अन्य सन्देशवाहन की विधियो की तुलना मे अधिक खर्चीला होता है। टलीफोन पर बात करने मे अथवा अन्य साधनो के माध्यम से बात करने पर काफी खर्चीला पड़ता है। प्रेषक एव प्राप्तकर्त्ता के मध्य अधिक दूरी होने पर आपस में मिलना भी अधिक व्ययशील हो जाता है। इसके विपरीत लिखित सन्देशवाहन मे अधिक खर्चा नहीं पडता है।

3. **अस्पष्टता का भय** (Fear of Ambiguity)—मौखिक सन्देशवाहन म अस्पष्टता का भय बढ जाता है। कभी-कभी यह भी सम्भव है कि प्रेषक शब्दो के उच्चारण मे गलती करदे अथवा यथोचित शब्दो का प्रयोग न कर सके। ऐसी स्थिति म सन्देश अस्पष्ट हो जावेगा। कभी-कभी ऐसा भी हो सकता है कि प्रेषक एव प्राप्तकर्त्ता के बौद्धिक स्तर मे अन्तर के कारण प्राप्तकर्त्ता प्रेषक के समान अर्थ नहीं लगा पाता है। परिणामस्वरूप, प्राप्तकर्त्ता सन्देश को अस्पष्ट रूप मे समझ लेता है और सदशवाहन का उद्देश्य ही पूरा नहीं होता।

*4. **लिखित साक्ष्य का अभाव** (Lack of Written Proof)—मौखिक सन्देशवाहन का एक प्रमुख दोष यह है कि इसमे लिखित साक्ष्य का अभाव पाया जाता है। लिखित साक्ष्य के अभाव मे आवश्यकता पडने पर किसी भी बात को प्रमाणित करना कठिन हो जाता है। जबकि लिखित सन्देशवाहनो को प्रमाण के रूप मे प्रयोग किया जा सकता है।*

5 **लम्बे सवादों के लिए अनुपयुक्त** (Unfit for Lengthy Communications)—कुछ सदेश बहुत लम्बे होते है और उनको स्थायी रूप मे रखने की भी आवश्यकता होती है जैसे सस्था की नीतियाँ, अध्यक्षीय भाषण, सचालको का प्रतिवेदन, किसी कार्यवाही की रिपोर्ट इत्यादि। इनके लिए मौखिक सदेशवाहन का प्रयोग उचित नहीं होता है। ये इतने लम्बे होते हैं कि उन्हे एक साथ सुनकर ध्यान मे रखना भी कठिन होता है।

6 **टालम-टोली की भावना का विकास** (Buck-passing)—प्राय देखा जाता है कि मौखिक रूप से सदेश देने पर टालम-टोली की भावना बढ जाती है।

–दाहरणार्थ एक अधिकारी किसी कर्मचारी को मौखिक सन्देशवाहक से कार्य सौंपता है और यदि वह उस कार्य को नहीं कर पाता है तो वह यह बहाना बना सकता है कि उसे वह कार्य सौंपा ही नहीं गया था। इस प्रकार कार्यों का निष्पादन यथा समय नहीं हो पाता है।

7 भावी सन्दर्भ का अभाव (Lack Future Reference)—मौखिक सन्देश क्षणिक होते हैं। उनका रिकार्ड नहीं रहता है। अतः भविष्य में उचित रूप से सन्दर्भ नहीं दिया जा सकता है।

8 कार्य में बाधाएँ (Obstacles in the Work)—यदि एक व्यक्ति संस्था छोड़कर अन्यत्र चला जाता है तो मौखिक सन्देश भी उसी के साथ चला जाता है। इसी स्थिति में कार्य में बाधा उत्पन्न हो जाती है। भविष्य में यदि उसके स्थान पर कोई अन्य व्यक्ति आता है तो उस नये व्यक्ति को सभी सन्देश पुनः देने पड़ते हैं। अतः कार्यों के यथा समय होने तथा निष्पादन में बाधा पड़ती है।

9 सोचने का अपर्याप्त समय (Lack of Time for Thinking)—मौखिक सन्देशवाहन में सोचने का कम समय मिलता है। जबकि लिखित सन्देशवाहन में सोचने का पूर्ण समय मिल जाता है। कभी कभी जल्दी जल्दी में आवेशवश कुछ कटु शब्द निकल सकते हैं। उसका आपसी सम्बन्धों पर बुरा प्रभाव पड़ सकता है। इसी प्रकार सन्देश प्राप्तकर्ता को भी सोचने विचारने का पर्याप्त समय नहीं मिल पाता है। फलतः वह पर्याप्त पूरक प्रश्न भी नहीं कर पाता है।

10 स्वयं के हित की बात पर ध्यान (Attention is guided by Self interest)—यह एक मानवीय स्वभाव है कि मनुष्य केवल अपने हित की बात को ही ध्यान से सुनता है। अन्य की बातों या जिन बातों में उसका हित न हो नहीं सुनता है। इसी कारण से कई बार मौखिक सन्देशवाहन सफल सिद्ध नहीं होता है।

11 सन्देश का अर्थ पूर्व स्थिति से प्रभावित होता है (Meaning is affected by Previous Attitude)—सन्देश का अर्थ सन्देश भेजने से पूर्व की स्थिति से भी प्रभावित होता है। परन्तु मौखिक सन्देश भेजने एवं पाने समय पूर्व स्थिति का ध्यान न हो तो सन्देश का अर्थ भी भिन्न हो जाता है।

मौखिक सन्देश की उपयुक्तता—

मौखिक सन्देश निम्नलिखित स्थितियों में उपयुक्त रहता है—

1 जब सन्देश सरल हो।
2 जब किसी आदेश या कार्य को स्वयं के व्यवहार द्वारा प्रदर्शन करके करवाना हो।
3 जब समय पर्याप्त हो तथा प्रेषक एवं प्रेषिति आपस में मिल सकते हों।
4 जब सन्देश अपेक्षाकृत कम लोगों को दिया जाना हो।

5. जब सदेश विशेष महत्त्व का न हो।
6. जब व्यक्तिगत सदेश देना अनिवार्य हो।
7. जब सदेश का लिखित रूप देना असम्भव हो।

(II) लिखित सन्देशवाहन
(Written Communication)

लिखित सन्देशवाहन, सन्देश प्रेषित करने का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम है। पत्र-पत्रिकाएँ, पैम्फलेट, हैण्डबुक, मेन्युअल्स, सुझाव पुस्तिकाएँ, डायरियाँ, बुलेटिन समाचार-पत्र, सूचना-पट्ट आदि लिखित माध्यमो से सन्देशो का प्रेषण किया जाता है। इनमे सस्था से सम्बधित व्यक्तियो के लिए महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ दी होती हैं। कर्मचारियों की डायरियाँ, श्रमिक मेन्युअल्स तथा हैण्डबुक एक व्यावसायिक सस्था की श्रम-नीति का विश्लेषण करती हैं। इनमे श्रमिको के सम्बध मे आवश्यक शर्तें दी हुई रहती हैं। इनमे मजदूरी की दरें, कार्य के घण्टे, पदोन्नति, सेवानिवृति, छुट्टियाँ, अनुपस्थिति, बीमारी, अवकाश एव भर्ती आदि से सम्बन्धित सूचनाएँ विशेष रूप से होती हैं। इनके अतिरिक्त श्रमिक कल्याण योजनाओं से सम्बन्धित सूचनाएँ व्यक्तिगत रूप से ही देनी हो, तो पत्र, स्मरण पत्र, आदि का प्रयोग किया जा सकता है।

कर्मचारियो एवं व्यवसाय से सम्बन्ध रखने वाली अन्य सूचनाएँ देने हेतु सस्था पत्रिका भी प्रकाशित करवा सकती है। बडी-बडी कम्पनियाँ एक निश्चित समयान्तर मे अपनी पत्रिकाएँ प्रकाशित करवाती रहती है। इन पत्रिकाओं का उद्देश्य व्यवसाय की गति-विधियों से सम्बन्धित व्यक्तियों को सूचित करना होता है। इनमे इसकी गतिविधियों का पूर्ण विवरण होता है। ऐसी पत्रिका मे व्यवसाय से सम्बन्धित सूचनाओं के अतिरिक्त कर्मचारियो से सम्बन्धित सूचनाएँ भी प्रकाशित की जाती है। कर्मचारियों के स्थानान्तरण, पदोन्नति, सम्मान, पुरस्कार, निलंबन सेवानिवृत्ति आदि के सम्बन्ध मे सूचनाएँ भी होती हैं। टाटा, डी सी एम जैसी बडी-बडी कम्पनियाँ इस प्रकार की पत्रिकाओं का प्रकाशन कराने लगी है।

लिखित सन्देशवाहन के सम्बन्ध में ध्यान रखने योग्य बातें
(Ruquisits of Written Communication)

लिखित सन्देशवाहन को तैयार करते समय पर्याप्त सतर्कता बरतनी चाहिए। लिखित सन्देशवाहन की भाषा नम्र एव प्रभावपूर्ण होनी चाहिए, क्योंकि भाषा की मधुरता ही पाठक पर स्थायी प्रभाव डाल सकता है। अस्पष्ट अर्थ वाले शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए अन्यथा लेखक जो कुछ कहना चाहता है पाठक वह नहीं समझ पावेगा और ऐसा सन्देशवाहन प्रभावी सन्देशवाहन नही होगा। लिखित सन्देशवाहन सक्षिप्त भी होना चाहिए। किन्तु सक्षिप्तता के लिए पूर्णता का त्याग नहीं करना चाहिए। यहाँ आशय यह है कि 'गागर मे सागर' भरने का प्रयास करना चाहिए। सन्देश स्वच्छ रूप से लिखे अथवा टाइप किये होने चाहिए।

कीथ डेविस (Keith Davis) के अनुसार सन्देश को लिखते समय निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिए—

(1) सरल शब्दों एवं मुहावरों का प्रयोग करना चाहिए।

(2) छोटे तथा प्रचलित शब्दों का प्रयोग करना चाहिए।

(3) व्यक्तिगत सर्वनामों (Personal Pronouns as 'you' and 'he') का प्रयोग करना चाहिए।

(4) उदाहरणों, चार्टों आदि का प्रयोग करना चाहिए।

(5) छोटे छोटे वाक्यों एवं अनुच्छेदों में लिखना चाहिए। यद्यपि पाठक बड़े बड़े वाक्यों एवं अनुच्छेदों से प्रभावित अवश्य होता है, परन्तु सन्देशवाहन का मुख्य उद्देश्य उनको वाक्यों से प्रभावित करना नहीं होता है, वरन् उन्हें सूचित करना होता है।

(6) जहाँ तक हो सके किसी वाक्य की रचना में एक्टिव वाईस (Active Voice) का प्रयोग करना चाहिए न कि पैसिव वाइस (Passive Voice) का।

(7) विशेषण एवं अलंकारों का प्रयोग कम-से कम करना चाहिए।

(8) विचारों को तर्कपूर्ण एवम् साधारण शैली में लिखना चाहिये।

(9) प्रत्येक शब्द सार्थक होना चाहिये।

प्रो० स्ट्रांग (Strong) ने लिखित संदेशवाहन के सम्बन्ध में चेतावनी देते हुए लिखा है कि यह एक भ्रान्त धारणा है कि कागज पर लिखी हुई बात पढ़ लेना संदेशवाहन की उत्तम विधि है। वस्तुतः जब तक लिखित संदेश ध्यानपूर्वक तैयार नहीं किया जाता है, संदेशवाहन का उद्देश्य भी विफल हो जाता है। अतः संदेश स्वयं ही ध्यानपूर्वक तैयार किया जाना चाहिये और उसे स्वाभाविक रूप में बातचीत के रूप में पढ़ा जाना चाहिये।

लिखित संदेशवाहन के लाभ

(Advantages of Written Communication)

1 मितव्ययिता (Economy)—लिखित सन्देशवाहन में सन्देश भेजने में बहुत ही कम व्यय आता है। डाक द्वारा ये सन्देश भेजे जा सकते हैं। इनमें नाममात्र का ही खर्चा पड़ता है। जबकि टेलीफोन आदि पर बात की जावे तो काफी खर्चा होता है।

2 स्पष्टता (Clarity)—*मौखिक सन्देशों की अपेक्षा लिखित सन्देश* अधिक स्पष्ट होते हैं। लेखक प्रत्येक बात को ध्यान से लिखकर स्पष्ट करने का प्रयत्न करता है।

3 कई व्यक्तियों को एक साथ सन्देश (Communication to many persons at a Time)—यद्यपि मौखिक सन्देशवाहन में मीटिंग्स, कान्फ्रेन्स, आदि के माध्यम से अनेक व्यक्तियों को एक ही साथ सन्देश दिया जा सकता है, लेकिन लिखित सन्देशवाहन के माध्यम से भी यह सब सम्भव है। उदाहरणार्थ हैण्ड बुक,

मैन्युअल्स, गश्ती-पत्र अथवा बहुसंख्यक पते के तार के माध्यम से एक ही साथ कई व्यक्तियों को सन्देश भेजे जाते हैं।

5. भविष्य में संदर्भ (Reference for Future)—भविष्य में आवश्यकता पड़ने पर सदर्भ के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है।

5. लिखित प्रमाण (Written Proof)—लिखित होने के कारण यह प्रमाण का भी कार्य करता है। भविष्य में यदि न्यायालय की शरण लेनी पड़े, तो न्यायालय में इच्छित तथ्य को लिखित बातों के द्वारा प्रमाणित किया जा सकता है।

6. फेर-बदल कठिन (Difficult to Change)—लिखित सन्देशवाहन द्वारा भेजे गये सन्देशों में फेर-बदल कठिन होता है, जबकि मौखिक सन्देशवाहन में प्राय फेर-बदल कर दिया जाता है। लिखित सन्देशों में सन्देश की मौलिकता बनी रहती है तथा अधिकारियों की सहमति के बिना उसमें फेर-बदल नहीं हो पाता है।

7. कुछ विशेष दशाओं में आवश्यक (Essential in certain Conditions)—जब सन्देश काफी लम्बे होते है, तो लिखित सन्देशवाहन का ही प्रयोग करना पड़ता है। उदाहरणार्थ, कम्पनी की वार्षिक सभा में अध्यक्ष का भाषण, कम्पनी की नीतियाँ, व्यक्तिगत आवश्यक सूचनाएँ, नौकरी सम्बन्धी आवश्यक शर्तों आदि का लिखित होना आवश्यक है। इसी प्रकार वैज्ञानिक कार्यवाहियों को पूरा करने के लिए भी लिखित सन्देशवाहन ही प्रयोग में आते हैं।

लिखित सन्देशवाहन से हानियाँ
(Disadvantages of Written Communication)

1 समय, श्रम व धन का अपव्यय (Wastage of time, labour and money)—प्रत्येक सन्देश को लिखित रूप प्रदान करने में मौखिक सन्देशवाहन की अपेक्षा औसतन अधिक समय, श्रम एवं धन व्यय होता है। लिखित सन्देशवाहन में यदि कोई बात लिखने से रह जाय तो, नया सन्देश लिख कर भेजना पड़ता है और तब तक सन्देश प्राप्तकर्ता कुछ भी कार्य नहीं कर पाता है। अतः कार्य के निष्पादन में विलम्ब ही होता है। इसके अतिरिक्त लिखित सन्देश को समझाने के दृष्टिकोण से पूर्ण विस्तार के साथ लिखना होता है। इन कारणों से समय, श्रम व धन का अपव्यय ही होता है।

2 गोपनीयता भंग होने का भय (Fear of Disclosure of Facts) — मुख से कही गई बात कहने एवं सुनने वाले तक सीमित रह सकती है। यदि वे ऐसा चाहते हैं। परन्तु लिखित सन्देशवाहन में प्रेषक और प्राप्तकर्ता के अतिरिक्त अन्य कई व्यक्ति भी सन्देश को जान सकते हैं। लिखित सन्देशवाहन से लेखक, टाइपकर्ता, निर्गत पत्र-लेखा-कर्मचारी, प्राप्तकर्ता, विभाग का कर्मचारी तथा अन्य और भी व्यक्तियों को सन्देश की जानकारी हो जाती है। इतना अवश्य है कि लिफाफे पर 'व्यक्तिगत एवम् गोपनीय' शब्द लिख देने से कुछ गोपनीयता रह सकती है, परन्तु

फिर भी मौखिक सवादवाहनो की तुलना मे अधिक या समकक्ष गोपनीयता नही रह पाती है ।

3. औपचारिकताओं के कारण अनावश्यक विलम्ब (Delay in Formalities)—लिखित सन्देशवाहनो मे अनेक औपचारिकताएँ पूरी करनी पडती हैं। अभिलेख तैयार करना उसे अधिकारी से स्वीकृत कराना, टाइपिस्ट के पास उसे टाइप करने के लिए भेजना, अधिकारी को हस्ताक्षर हेतु प्रस्तुत करना, निर्गत-पत्र-कर्मचारी के पास निर्गत रजिस्टर मे दर्ज कराना तत्पश्चात् डाक द्वारा अथवा सस्था के व्यक्ति के साथ भेजना आदि अनेक औपचारिकताएँ है, जिनमे पर्याप्त समय लगता है । अन्ततोगत्वा, कार्य मन्द गति मे होते है और उत्पादकता कम हो जाती है ।

4 लालफीताशाही (Red-tapism)—अनेक औपचारिकताओ के कारण लालफीताशाही सम्भव है । आलस्यवश सन्देशो को भेजा नही जाता है । टाइपिस्ट समय पर टाइप नही करता है अथवा अभिलेख-लेखक समय पर नही लिखता है अथवा निर्गत-पत्र-कर्मचारी पत्रो को समय पर नही भेजता है तो 'लालफीताशाही' सम्भव है ।

5 प्रत्येक बात को लिपिबद्ध करना कठिन है (Difficult to Write Everything)—सब सन्देशो को लिपिबद्ध करना सम्भव नही होता है । कई बार ऐसे अवसर आते है जब लिखित सवादवाहनो के अलावा मौखिक सन्देशवाहनो का भी प्रयोग किया जाता है ।

6 सब लिखित सन्देश पढ़े नही जाते (All the Written Communications are not Read)—*प्राय देखा जाता है कि प्राप्तकर्त्ता सभी लिखित सन्देशो को नही पढता है । जब प्राप्तकर्त्ता सन्देश को पढता नही है तो सन्देशवाहन पूर्ण नही होता है और सन्देशो का भेजना ही व्यर्थ हो जाता है ।*

7. प्रभाव का तत्काल ज्ञान नही होता है (No Prompt Response)—*लिखित सवादवाहन से सदेश प्रेषक को सदेश के प्राप्तकर्त्ता पर इसके प्रभाव का तत्काल ज्ञान नही हो पाता है । सदेश-प्रेषक को इसके प्रभाव का ज्ञान प्राप्त करने मे कुछ समय लगता है ।*

8 प्रेषक की भवनाओ का उचित ज्ञान नहीं होता है (It Fails to Convey Feelings of the Sender) —*लिखित सदेशवाहन मे प्रेषक की सम्पूर्ण भावनाओ का प्रेषण असम्भव है । शब्दो मे प्रत्येक बात का वर्णन कठिन है जबकि मौखिक सदेशवाहन की दशा मे सदेश प्राप्तकर्त्ता उसकी भाषा, उसके बोलने के ढग तथा चेहरे के हावभाव मे सभी बातो एवम भावनाओ का ज्ञान प्राप्त कर लेता है ।*

लिखित सदेश की उपयुक्तता

लिखित सदेश देना निम्नलिखित परिस्थितियो मे उपयुक्त प्रतीत होता है—

1 जब सदेश बहुत बडी सख्या मे लोगो को देना हो ।

2. जब सदेश प्राप्तकर्त्ता सुस्त, भूलने वाला हो।

3 जब सदेश प्राप्तकर्त्ता पर यह सदेह हो कि वह मौखिक सदेश को नकार जावेगा।

4 जब सदेश पेचीदा हो।

5 जब सदेश लम्बा हो तथा उसमे अनेक निर्देश हो तथा उनका उसी क्रम मे पालन करना अनिवार्य हो।

6 जब सदेश आँकडो से युक्त हो।

7 जब सदेश अन्य लोगो तक भी पहुँचाना हो।

8 जब प्रेषक तथा प्राप्तकर्त्ता के पास मिलने का पर्याप्त समय न हो।

9. जब किसी विशेष व्यक्ति या विभाग को उस सदेश से बद्ध करना हो या जिम्मेदार ठहराना हो।

10 जब सदेश का भविष्य के लिए अभिलेख बनाना हो।

(III) सांकेतिक संवेशवाहन
(Gestural Communication)

यह सदेशवाहन का ऐसा माध्यम है, जिसमें न लिखना पडता है और न बोलना। इस माध्यम मे मुख्यत. सकेत, हाव-भाव एवम् इशारो का प्रयोग होता है। सकेतो एवम् इशारो से सदेशवाहन भेजना एक विशिष्ट कला है, जिसकी कुछ विशेष उपयोगिता है। प्रत्येक बात को शब्दो मे बोला अथवा लिखा जाना सम्भव नही होता है। ऐसी स्थिति में साकेतिक भाषा का प्रयोग करना अनिवार्य हो जाता है। कभी-कभी साकेतिक माध्यम को मौखिक माध्यम के साथ-साथ प्रयोग करना भी आवश्यक होता है। उदाहरणार्थ, कर्मचारी के अच्छे कार्य पर हँसकर तारीफ करना, पीठ थपथपाना, किसी व्यक्ति से मिलने पर हँसकर हाथ मिलाना, किसी व्यक्ति के शोक पर मुख-मुद्रा द्वारा दु ख प्रकट करना, साकेतिक सदेशवाहन ही है।

(IV) दृश्य सदेशवाहन
(Visual Communication)

आजकल दृश्य सदेशवाहन का महत्त्व भी बढता जा रहा है। दृश्य सदेश टेलीविजन, फिल्म, चित्र आदि के माध्यम से प्रेषित किये जाते हैं। आजकल विज्ञापन मे टेलीविजन एव फिल्मो का खूब प्रयोग किया जाने लगा है। इसी प्रकार कर्मचारियो को प्रशिक्षण देने, उन्हे अभिप्रेरित करने, उन्हे नई वस्तुओ के बारे मे तकनीकी जानकारी देने के लिए, आजकल टेलीविजन (Closed circuit televison) तथा छोटी फिल्मे बताई जाने लगी है।

मौखिक बनाम लिखित संदेशवाहन
(Verbal v/s Written Communication)

मौखिक सदेशवाहन अथवा लिखित सदेशवाहन मे कौनसी विधि का प्रयोग किया जाए ? इसका उत्तर देना सरल नही है। दोनो ही विधियो के अपने-अपने

लाभदायक है। अतः इन विधियों में से कौनसी विधि उपयुक्त होगी? इसे मुख्य रूप से बताया नहीं जा सकता है। व्यवसाय में दोनों ही विधियों का सुन्दर समन्वय स्थापित करके ही प्रयोग करना चाहिए। एक विद्वान लेखक ने मौखिक एवं लिखित संदेशवाहनों की तुलना इस प्रकार की है, **"जबान तथा कलम दोनों ही मस्तिष्क की भाषा में परिवर्तित करते हैं, लेकिन मैं लेखनी को अधिक विश्वासपात्र समझता हूँ। जबान अपनी अस्थिरता की स्थिति के फलस्वरूप अचानक आवेश में आकर गलत बात कह सकती है, लेकिन लेखनी पूर्व संचित विचारों की वाहक है। अतः उसमें गलती की सम्भावना नहीं है तथा यह विश्वसनीय एवम् स्थायी रिकार्ड भी छोड़ता है।"**[1] परन्तु इसका आशय यह समझना गलत होगा, कि लिखित संदेशवाहन ही उपयुक्त है। व्यवसाय में दिन प्रतिदिन अनेक ऐसे अवसर आते हैं, जबकि मौखिक रूप से ही संदेश देना आवश्यक हो जाता है। साधारण बातों के लिए अथवा दिन-प्रतिदिन की छोटी बातों के लिए लिखित संदेशवाहन के प्रयोग से खर्चा एवं समय नष्ट हो जायगा। कर्मचारियों में कार्य करने का उत्साह एवम् प्रेरणा लुप्त प्राय हो जायगी। इस सम्बन्ध में हेमन (Humann) सही चेतावनी देते हैं—**"यदि प्रबंधक केवल एक विधि को चुनता है, तो गम्भीर असफलता मिलेगी।"** अतः आवश्यकता इस बात की है कि इन दोनों विधियों में आवश्यक समन्वय स्थापित करना चाहिए एवम् सुविधानुसार प्रत्येक विधि का प्रयोग करना चाहिए। **बैथल, अटवाटर** (Bethel Atwater etc.) इत्यादि इस सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखते हैं **"उपयुक्त माध्यम वह है जो संदेश, आदेश, चित्र, डाक तथा छोटे-छोटे अनुमानों को भी समान सावधानी से ले जा सकता है।"** सत्य यह है कि संदेशवाहन के प्रत्येक माध्यम का अपना अपना महत्त्व है। ये एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी माध्यम नहीं हैं बल्कि पूरक हैं। अतः दोनों का अपना अपना स्थान है। स्पष्ट है कि न तो किसी भी माध्यम का परित्याग ही किया जा सकता है और न किसी एक माध्यम के प्रयोग से ही कार्य चल सकता है। दोनों संदेशवाहनों का प्रयोग यथा समय करना आवश्यक है।

मौखिक तथा लिखित संदेशवाहन की तुलना

तुलना का आधार	मौखिक	लिखित
1. सरलता की अभिव्यक्ति	मौखिक संदेशवाहन में सरल तथा हाव भावों का आसानी से प्रयोग किया जा सकता है।	लिखित संदेशों में हाव-भाव तथा संकेतों की अभिव्यक्ति करना असम्भव होता है।

1. "The tongue and the pen both of them are interpreters of the mind, but I hold the pen the more faithful of the two. The tongue being seated in most slippery place, may fail and falter in her sudden extemporal expressions, but the pen having the greater advantages of premeditation is not so subject to error and leaves things behind it upon firm and authentic record." Quoted by M. Majumdar Commercial Correspondence p. 1

1	2	3
2. प्रत्युत्तर	मौखिक संदेशों का तत्काल प्रत्युत्तर प्राप्त किया जा सकता है। क्योंकि श्रोता एवं वक्ता दोनों आमने-सामने होते हैं।	लिखित संदेशों का प्रत्युत्तर प्राप्त करने में पर्याप्त समय लगता है।
3 श्रोता पर प्रभाव	मौखिक संदेशवाहन द्वारा श्रोता को भली प्रकार प्रभावित किया जा सकता है और इच्छित कार्य करने के लिए प्रेरित किया जा सकता है।	लिखित संदेशवाहन के द्वारा पाठक पर प्रभाव डालना कठिन होता है।
4 औपचारिकता	मौखिक संदेशवाहन को अनौपचारिक बनाकर आपसी सहयोग बढ़ाया जा सकता है।	लिखित संदेशवाहन प्रायः औपचारिक रूप में ही होता है। इसके परिणामस्वरूप, लोगों में आपसी सहयोग एवं आत्मीयता का अभाव होने लगता है।
5 ध्यानाकर्षण	मौखिक संदेशवाहन के माध्यम से लोगों का ध्यान आसानी से केन्द्रित किया जा सकता है।	लिखित संदेशवाहन के माध्यम से मौखिक संदेशों की तुलना में, लोगों का ध्यान आकर्षित करने में अधिक कठिनाई आती है।
6 विस्तृत संदेश	मौखिक संदेशवाहन के द्वारा संदेश विस्तृत रूप से दिये जा सकते हैं।	लिखित संदेशवाहन के द्वारा संदेशों को सीमित रूप में ही प्रस्तुत किया जा सकता है। प्रत्येक मौखिक बात को लेखनी बद्ध करना संभव नहीं होता है।
7 अतिरिक्त संदेश	मौखिक संदेश देते समय मूल संदेश के साथ अतिरिक्त संदेश भी दिये जा सकते हैं।	लिखित संदेश में मूल संदेश को भी संक्षिप्त रूप में लिखना पड़ता है। अतएव अतिरिक्त संदेश देने का प्रश्न ही नहीं उठता है।

1	2	3
8 प्रमाण	मौखिक संदेश का कोई प्रमाण नहीं होता है।	लिखित संदेश, संदेशवाहन का प्रत्यक्ष प्रमाण होता है।
9 सदर्भ	मौखिक संदेश को दोहराते समय पूर्व संदेश का सदर्भ देना सम्भव नहीं होता है।	लिखित संदेश का भविष्य में आवश्यकता पड़ने पर सदर्भ दिया जा सकता है।
10 समय	मौखिक संदेशवाहन में प्राय कम समय लगता है।	लिखित संदेशों के तैयार करने, भेजने आदि में पर्याप्त समय लग जाता है।
11 प्रतिक्रिया का ज्ञान	मौखिक संदेशवाहन के द्वारा श्रोता की प्रतिक्रियाओं का शीघ्र ही आसानी से ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।	लिखित संदेशों की प्रतिक्रिया ज्ञात करना बहुत कठिन है।
12 संदेहों का निवारण	मौखिक संदेशवाहन के द्वारा संदेश से सम्बन्धित संदेहों का तत्काल निवारण किया जा सकता है।	लिखित संदेशों से उत्पन्न होने वाले संदेहों का निवारण करने में काफी समय लगता है।
13 संदेश का परिवर्तन	मौखिक संदेशवाहन देते समय पूर्व विचार किये गये संदेशों में तत्काल परिवर्तन किया जा सकता है।	लिखित संदेशों में तत्काल परिवर्तन करना असम्भव है।
14 प्रभाव शालीनता का समय	संदेशों की प्रभाव शालीनता अस्थायी रहती है।	संदेशों की प्रभाव शालीनता स्थायी बनी रहती है।
15 व्यय	मौखिक संदेशवाहन में अधिक व्यय होता है। सभाएँ एवं सम्मेलन आयोजित करने या टेलीफोन आदि पर बात करने में भी बहुत समय एवं धन खर्च होता है।	लिखित संदेशों पर अपेक्षाकृत रूप में कम खर्च आता है।

2. औपचारिक तथा अनौपचारिक संदेशवाहन
Formal and Informal Communication)

(1) औपचारिक संदेशवाहन
(Formal Communication)

जब प्रेषक एवं प्रेषिति के मध्य औपचारिक सम्बन्ध हो तब उनके मध्य सन्देश का आदान-प्रदान औपचारिक सन्देशवाहन कहलाता है। वास्तव में सन्देशवाहन संगठन के चार्ट में दिखाया गए सम्बन्धों के आधार पर ही होता है। संगठन का चार्ट यह प्रदर्शित करता है कि किन-किन अधिकारियों के मध्य होकर सन्देश गुजरेगा। इस चार्ट द्वारा बताये गये मार्ग सभी औपचारिक मार्ग कहे जा सकते हैं और इन मार्गों पर गुजरने वाले सन्देशवाहन औपचारिक सन्देशवाहन कहलाते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि औपचारिक के मार्ग पूर्ण निश्चित होते हैं। संक्षेप में औपचारिक संगठन के ढाँचे के अनुसार ही सन्देशों का आदान-प्रदान होता है तो इसे औपचारिक सन्देशवाहन कहते हैं।

विशेषताएँ (Characteristics)—औपचारिक सन्देशवाहनों की निम्न प्रमुख विशेषताएँ होती है—

(i) औपचारिक सन्देशवाहन संगठन के अनुसार ही प्रेषित किये जाते हैं।

(ii) ये औपचारिक अधिकारों एवं दायित्वों के परिणामस्वरूप भेजे जाते हैं।

(iii) ये प्रायः उच्चाधिकारियों से अधीनस्थों तथा अधीनस्थों से उच्चाधिकारियों को भेजे जाते हैं।

प्रारम्भ में औपचारिक सन्देशवाहन एक-मार्गीय ही था, परन्तु समय के साथ परिवर्तन हुआ तथा अनेक संस्थाओं द्वारा कर्मचारियों के विचारों को महत्त्व दिये जाने के कारण यह द्वि-मार्गीय सन्देशवाहन का रूप ले चुका है। औपचारिक सन्देशवाहन प्रायः लिखित ही होते हैं। स्थायी आदेश (Standing orders), बुलेटिन, वार्षिक रिपोर्ट, मैनुअल्स हैण्डबुक आदि के माध्यम से भेजे जा सकते हैं।

(II) अनौपचारिक सन्देशवाहन
(Informal Communication)

जब सन्देश के प्रेषक एवं प्रेषिति के मध्य अनौपचारिक सम्बन्ध हैं तो उनके मध्य होने वाले सन्देश के आदान-प्रदान को अनौपचारिक सन्देशवाहन कहते हैं। इन ग्रेप वाइन (Grape vine) अथवा 'बुश टेलीग्राफ' (Bush telegraph) या अफवाहों की संज्ञा भी दी जाती है। ऐसे सन्देशवाहन का आदान प्रदान संगठन चार्ट से निर्धारित मार्गों के आधार पर नहीं होता है, वरन् कर्मचारियों तथा अधिकारियों के मध्य आपसी सम्बन्धों के आधार पर होता है। अनौपचारिक सन्देशों का आदान-प्रदान प्रायः सामाजिक अवसरों, दोपहर के भोजन, जलपान आदि अवसरों पर हुआ करता है। ऐसे अवसरों पर अधिकारी वर्ग अपने अधीनस्थों से आवश्यक बातों के

(i) इनका कोई निश्चित मार्ग नहीं होता है।

(ii) ये कर्मचारियों एवं अधिकारियों के आपसी सम्बन्धों पर निर्भर करते है।

(iii) ये सदेशवाहन कभी-कभी प्रबन्धकीय कुशलता प्राप्त करने में बहुत सहायक होते हैं।

नायल ब्रान्टन—(Noel Branton) ने इसकी सफलता के तीन सिद्धान्त बताये है—

1. लोगों को उन बातों के बारे में बताया जाना चाहिये, जो उन्हें व्यक्तिगत रूप से प्रभावित करती है।

2. लोगों को वे बातें बतायी जानी चाहिये, जो बातें वे जानना चाहते हैं, न कि प्रबन्धक जो बताना चाहता है।

3 *वास्तविक सूचनाएँ शीघ्रातिशीघ्र दे देनी चाहिए।*

अनौपचारिक सन्देशवाहन तथा लिखित एवं मौखिक दोनों ही प्रकार के हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त इनमें सांकेतिक भाषा का प्रयोग भी किया जा सकता है।

3. अधोगामी, ऊर्ध्वगामी व समतल सन्देशवाहन
(Downward, Upward and Horizontal Communication)

I अधोगामी सन्देशवाहन
(Downward, Communication)

जब कोई सन्देश उच्च प्रशासक वर्ग द्वारा प्रबन्धकों के माध्यम से कर्मचारियों तक पहुँचाया जाता है, तो यह अधोगामी सन्देशवाहन कहलाता है। दूसरे शब्दों में ऊपर के वर्ग से नीचे के वर्ग तक पहुँचाने वाले सदेशवाहन को अधोगामी सदेशवाहन कहते है। इस प्रकार के सन्देशवाहनों को **'कर्मचारी संदेशवाहन'** (Employee communication) के नाम से भी पुकारते है। उदहरणार्थ एक संस्था में सर्वोच्च अधिकारी अध्यक्ष (chairman) है, तत्पश्चात् क्रमश जनरल मैनेजर, ब्रान्च मैनेजर विभागीय मैनेजर तथा अन्त में कर्मचारी वर्ग तथा श्रमिक है। ऐसी स्थिति में अधोगामी सचार व्यवस्था, निम्न प्रकार होगी—

अध्यक्ष → जनरल मैनेजर → ब्रान्च मैनेजर → विभागीय मैनेजर → फोरमैन → श्रमिक

अधोगामी सन्देशवाहन में मुख्यत आदेश तथा निर्देश ही होते है। ये नीति विवरण, विधि-विवरण (Procedure), संस्था के सगठन चार्ट, कार्य करने के सम्बन्ध में विशेष सूचियाँ, बजट आदि विविध रूपों में हो सकते हैं। इस प्रकार अधोगामी सन्देशवाहन सामान्यत लिखित होते है जिससे कार्य सरलता से निष्पादित किया जा सके तथा कर्मचारियों के पास एक स्थाई रेकार्ड बन सके।

समझ का क्षेत्र अपने कर्मचारियों के संदेशवाहन के क्षेत्र से अधिक बड़ा होना चाहिए ।"1

(ii) अच्छी सदेशवाहन अवस्था का निर्माण करना चाहिये (Develop a Positive Communication Attitude)—सन्देशवाहन की सफलता इसी बात पर निर्भर करती है कि सन्देशवाहन के प्रेषक एव प्रेषिति किस अवस्था मे है । अत प्रबन्धक को चाहिये कि अच्छी अवस्था का निर्माण कर । इसके लिए अच्छी तरह सुनना एव सूचना भेजना आवश्यक है । यदि कर्मचारियों का प्रबन्ध-वर्ग पर पूर्ण विश्वास नही है तो प्रबन्धको की सूचनाएँ व्यर्थ जायेगी । अत सन्देश देने के पहले उनसे सलाह लेना आवश्यक है । उनमें इस भावना का विकास करना चाहिए कि वे सस्था के कार्य को अपना कार्य समझें एव तुरन्त सन्देशवाहन के अनुरूप कार्य करने को तत्पर हो जाये ।

(iii) सदेशवाहन की योजना बननी चाहिये (Plan for Communication)—सन्देशवाहन की एक निश्चित योजना होनी चाहिये । इससे कर्मचारी किसी सन्देश की निश्चित समय पर आशा कर सकते हैं । योजनाबद्ध सन्देशवाहन के कारण कर्मचारी वर्ग भली-भाँति कार्य करेंगे एव सूचनाओं के एकत्रित करने मे अनावश्यक समय व्यर्थ नही करेंगे ।

(iv) दूसरो मे विश्वास पैदा करना चाहिए (Gain the confidence of others)—एक सन्देशवाहन का प्रभाव सन्देश देने वाले प्रबन्धक कर्मचारियो के विश्वास पर निर्भर करेगा । यदि कर्मचारियों मे दृढ विश्वास पैदा कर लिया है तो सूचना विशेष प्रभावशाली होगी । इसके लिए प्रबन्धक को चाहिए कि वह सूचनाएँ पूर्ण स्पष्टीकरण के साथ दे । कर्मचारियो द्वारा इसके कारणो पर प्रकाश डालने के लिए कहने पर वह उन पर पूर्णत प्रकाश डाल कर उनके कारण एव परिणाम से उन्हे अवगत करना चाहिए । यदि इनमें से कोई व्यक्तिगत रूप से प्रभावित होने वाला है तो उसे ही सूचित करना चाहिए ।

अधोगामी सदेशवाहन की सीमाएँ (Limitations)—अधोगामी सन्देशवाहन प्रत्येक सस्था के लिए आवश्यक है । किन्तु अधोगामी सन्देशवाहन की कुछ सीमाएँ होती है—

1. गोपनीय सूचनाएँ—कुछ सूचनाएँ ऐसी गोपनीय होती हैं, जिन्हे निम्न स्तरो पर कार्य कर रहे लोगो को भेजना सम्भव नही हो पाता है । उनका स्पष्टीकरण भी देना सम्भव नही होता है ।

---

1 "A manager's span of information and understanding should be greater than his span of communication to his personnel." Keith Devis, Human Relation in Business p 254

2 प्रबन्ध मे हिस्सेदारी—ऊर्ध्वगामी सन्देशवाहन की व्यवस्था कर देने में कर्मचारियो को प्रबन्ध मे हिस्सेदारी दी जा सकती है। प्रबन्धक यथा समय कर्मचारियो के विचारो को जान सकते है। प्रबन्धक नियोजन, सगठन, निर्देशन आदि कार्यों मे कर्मचारियो का सहयोग प्राप्त कर सकते है।

3 कर्मचारियो के विचारों का ज्ञान—इस प्रकार सदेशा की प्राप्ति मे प्रबन्धको को कर्मचारियो के विचारो का भी ज्ञान हो जाता है। सस्था के किसी निर्णय या नीति के प्रति कर्मचारियो के विचारो की जानकारी होने से प्रबन्धकों को आकस्मिक निर्णय लेने मे बडी सुविधा मिलती है।

4 कर्मचारियो के मनोबल मे वृद्धि—कर्मचारियो की शिकायतो एव सुझावो पर पर्याप्त ध्यान देकर उनकी रुचि मे वृद्धि की जा सकती है। कार्य के प्रति रुचि उत्पन्न होने से ही मनोबल का निर्माण होता है। उनमे कर्मचारी अपना कार्य अच्छी तरह एव ध्यान लगाकर करते हैं।

5 प्रजातान्त्रिक प्रबन्ध—ऊर्ध्वगामी सदेशवाहन होने से सस्था मे प्रजातान्त्रिक प्रबन्ध को प्रोत्साहन मिलता है। निम्न स्तरो पर कार्य करने वालो को प्रबन्ध मे प्रतिनिधित्व प्रदान करके प्रबन्धक को प्रजातान्त्रिक बनाया जा सकता है।

6 अच्छे श्रम सम्बन्धों का निर्माण—ऊर्ध्वगामी सदेशा के द्वारा श्रमिको एव श्रम सघो के विचारो को सुना जा सकता है तथा इनकी मनोवृत्ति का प्रबन्धकों को ज्ञान हो जाता है। इसके द्वारा श्रमिक एव श्रम-सघ अपना पक्ष प्रस्तुत करते है। परिणामस्वरूप, श्रम एव प्रबन्ध के बीच अच्छे सम्बन्धो का सूत्रपात सम्भव होता है।

7 अधिक उत्पादकता—ऊर्ध्वगामी सदेशा का एक महत्त्वपूर्ण लाभ यह भी है कि इनके द्वारा श्रमिकों की उत्पादकता में वृद्धि की जा सकती है। जहाँ अच्छे श्रम सम्बन्ध हो तथा कर्मचारियो मे मनोबल उच्च हो वहाँ पर अधिक उत्पादकता अवश्यम्भावी है।

8 गलतफहमियो का निवारण—सामान्यत कई बातो पर कर्मचारी गलतफहमियो के शिकार हो जाते है। वे सस्था की नीतियो, उद्देश्यो, अधिकारियो द्वारा भेजे गये आदेशो को उचित रूप मे नही समझ पाते हैं। इससे कर्मचारियों के मन में कई सन्देह उत्पन्न हो जाते हैं। ऊर्ध्वगामी सदेशवाहन के द्वारा कर्मचारियो के मन मे उत्पन्न गलतफहमियो एव सन्देहो का निवारण किया जा सकता है।

9 विकेन्द्रीकृत (Decentralized) सस्था मे आवश्यक—ऊर्ध्वगामी सदेशा का उस सस्था मे सर्वाधिक महत्त्व है जहाँ पर पर्याप्त विकेन्द्रीकरण हो। इस सगठन के कर्मचारियो को समय समय पर अपना कार्य प्रतिवेदन प्रस्तुत करना पडता है, अपने कार्य मे उत्पन्न होने वाली बाधाओ से उच्चाधिकारियो को अवगत करवाना पडता है, जिनको ध्यान मे रखकर ही तो भावी योजनाओ का निर्माण किया जाता है।

10 समन्वय के लिए आवश्यक—समन्वय के अभाव मे व्यक्तिगत प्रयासो का कोई मूल्य नही है। प्रबन्ध अधीनस्थो के कार्यो की सूचनाओ के आधार पर ही तो सम्पूर्ण सगठन मे कार्यरत कर्मचारियो का समन्वय कर सकता है।

ऊर्ध्वगामी सदेशवाहन मे भी मौखिक एव लिखित दोनो ही माध्यमो का प्रयोग होता है। उनके विभिन्न रूप निम्न प्रकार हो सकते है—

1 मौखिक सदेशवाहन—प्रत्यक्ष विचार विमर्श, साक्षात्कार, मीटिंग्स एव सम्मेलन, टेलीफोन, सामाजिक कार्य कलाप, यूनियन प्रतिनिधि आदि।

2 लिखित सदेशवाहन—प्रतिवेदन व्यक्तिगत पत्र सुझाव सघ प्रकाशन, शिकायते सूचना सर्वे, दुःख प्रेषण विधि आदि।

ऊर्ध्वगामी सदेशवाहन की सीमाएँ—(Limitations)—ऊर्ध्वगामी सदेशवाहन की कई सीमाएँ है, वे निम्नलिखित है—

1 अशिक्षा—प्राय कारखानो म कार्य करने वाले श्रमिक अशिक्षित होते है। अत वे अपनी किसी भी बात को कहने मे हिचकिचाते है।

2 स्थिति—चू कि कर्मचारियो एव प्रबन्धको की स्थिति मे पर्याप्त अन्तर होता है। अत वे अपने प्रबन्धको के समक्ष स्पष्ट रूप से बात करते हुए हिचकिचाते है, उनके सकोच के कारण ही वे बात नही कर पाते है। अपनी बात, अपना दुख-कहने का साहस नही कर पाते है।

3 तकनीकी सहायता—कर्मचारियो को अपनी बात पहुँचाने के लिए साधन भी उपलब्ध नही होते है। यदि कोई सदेश लिखकर पहुँचाना है तो उसके उचित लेखन की व्यवस्था, टाइप की व्यवस्था नही होने के कारण वे कई बार अपनी बात को दबाकर ही रह जाते है।

4 हीन भावना—ऊर्ध्वगामी सदेशवाहन की बड़ी सीमा यह है कि प्राय लोगो के मन मे यह बात होती है कि अधिकारी उनकी बात पर ध्यान देगे ही नही। मिथ्या धारणा के शिकार होकर कई कर्मचारी कभी भी अपनी बात, सुझाव, शिकायत आदि को उच्च अधिकारियो तक नही पहुँचाते है।

अधोगामी एव ऊर्ध्वगामी सदेशवाहन मे अन्तर

अन्तर का आधार	अधोगामी सदेशवाहन	ऊर्ध्वगामी सदेशवाहन
1, दिशा	यह उच्च प्रबन्धको से मध्यवर्गीय प्रबन्धको की ओर होता हुआ कर्मचारी स्तर तक जाता है।	यह निम्नवर्गीय प्रबन्धको एव कर्मचारियो से उच्च प्रबन्धको तक जाता है।
2 प्रवृत्ति	यह आदेशात्मक प्रवृत्ति का होता है। अर्थात् इसमे आदेश एव निर्देश सम्मिलित है।	इसमे प्रगति, प्रतिवेदन, सुझाव, शिकायते आदि सम्मिलित है।

3 प्रभाव-शीलता	ये अधिक प्रभावशील सदेश होते हैं।	ये तुलनात्मक रूप से कम प्रभावशील होते हैं।
4 उत्तर-दायित्व	इन सदेशो के भेजने का दायित्व उच्च प्रबन्धको का होता है।	इनको भेजने का दायित्व कर्मचारियो एव निम्न प्रबन्धको का होता है।
5 माध्यम	ये प्राय लिखित होते हैं।	ये प्राय मौखिक होते हैं।

(III) समतल सदेशवाहन
(Horizontal Communication)

अनेक विभागाध्यक्षा अथवा एक विभाग के विभिन्न फोरमेन अथवा समान स्तर के कर्मचारियो के मध्य होने वाले सदेशवाहन के आदान-प्रदान को ही समतल सदेशवाहन कहते हैं। मेसी (Massie) के अनुसार "समतल सदेशवाहन वह है जिसके द्वारा एक सगठन के समान स्तर के प्रबन्धक या कर्मचारी अपने कार्यों मे बिना अपने उच्चाधिकारो के समन्वय स्थापित करते हैं।"[1] वर्तमान युग विशिष्टीकरण का युग है। एक व्यवसाय कितने विभागो एव उपविभागो मे विभक्त होते हैं। इन सबके बीच निरन्तर सचार-व्यवस्था अनिवार्य है। निरन्तर सचार-व्यवस्था के अभाव मे व्यवसाय समन्वय असम्भव हो जायेगा। समतल सदेशवाहन औपचारिक एव अनौपचारिक दोनो ही प्रकार का होता है। परन्तु औपचारिक सदेशवाहन प्राय लिखित होता है तथा एक पूर्व निश्चित विधि के अनुसार ही सदेशवाहन का आदान प्रदान होता है। समतल सदेशवाहन मे भी मौखिक एव लिखित दोनो माध्यमो का प्रयोग होता है। इसके विविध रूप इस प्रकार हैं—

1 मौखिक सदेशवाहन—व्याख्यान, सम्मेलन कमेटी की सभाएँ, टेलीफोन, सामाजिक कार्य-कलाप, अफवाह, ग्रप वार्ता आन्तरिक सदेशवाहन प्रणाली, चल चित्र स्लाइड्स इत्यादि।

2 लिखित सदेशवाहन—पत्र मीमो हाउस आर्गन बुलेटिन बोर्ड एव पोस्टर हैण्ड-बुक एव मैन्युअल्स, वार्षिक रिपोर्ट, सब प्रकाशन आदि।

4. आन्तरिक एव बाह्य सदेशवाहन
(Internal and External Communication)

1 आन्तरिक सदेशवाहन
(Internal Communication)

सस्था के सर्वोच्च अधिकारियो से लेकर सस्था के निम्नतम स्तर के कर्मचारियो के बीच होने वाले सदेशो के आदान प्रदान को ही आन्तरिक

---

1 "Horizontal Communication is that by which managers on the same level of an organisation coordinate their actions without refering all matters to their superiors " Josph Massie

सदेशवाहन वहुत है। ऐसे सदेशवाहनो मे से अधिकारी अपने आदेश, निर्देश आदि विभिन्न स्तर के कर्मचारियो को भेजते है तथा अधीनस्थ कर्मचारी अपने काम की रिपोर्ट, शिकायत एवं कठिनाइयां को उच्चाधिकारियों को पहुचाते हैं। इस प्रकार आन्तरिक सदेशवाहन प्रत्येक संस्था के आन्तरिक प्रबन्ध से सम्बन्धित होते है, जिनके द्वारा सस्था मे नियोजन, निर्णयन एवं समन्वय किया जाता है। ये कर्मचारियो के मनोबल के निर्माण मे महत्त्वपूर्ण रूप से योगदान दे सकते है।

लक्षण (Characteristics)—आन्तरिक सदेशवाहन के निम्नलिखित प्रमुख लक्षण होते है—

1 आन्तरिक सदेशवाहन एक दोहरी प्रक्रिया (Two-way process) है। इसमे अधिकारी तथा अधीनस्थ सभी के सदेश सम्मिलित होते है।

2 ये मुख्यत सस्था के आतरिक प्रबन्ध से सम्बन्धित होते है।

3 ऐसी सदेशवाहन प्रक्रिया प्रत्येक संस्था के लिए आवश्यक होती है।

आन्तरिक सदेशवाहन का महत्त्व या लाभ (Importance or Advantages of Internal Communication)—संस्था मे आन्तरिक सदेशवाहन का महत्वपूर्ण स्थान होता है। ये सस्था के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण माने जाते है। प्रो एल हाल (L. Hall) ने आन्तरिक सदेशवाहन के महत्त्व को निम्न बिन्दुओ के आधार पर स्पष्ट किया है—

1 कर्मचारी नियोक्ता के बीच समझ बूझ—आन्तरिक सदेशवाहन कर्मचारियो एव नियोक्ताओ मे आपसी सम्बन्धो का निर्माण करने मे अत्यधिक रूप से मदद करते है। चूकि कर्मचारी अपनी समस्याओ एव शिकायतो को आसानी से अधिकारियो के सामने रखकर समाधान कर सकते है तथा प्रबन्धक कर्मचारियो से अपना कार्य आसानी से करवाने मे सफल हो जाते है। इसमे स्वत आपसी सम्बन्ध दृढ होने लगते है।

2 निर्देशो का सम्प्रेषण—कुशल आन्तरिक सदेशवाहन प्रक्रिया के द्वारा उच्च अधिकारियो से निम्नतम कर्मचारियो तक निदेश आसानी से पहुँचाये जा सकते है।

3 कर्मचारियो की सस्था मे रुचि की उत्पत्ति—प्रत्येक सस्था को अपने कर्मचारियो की रुचि को ध्यान मे रखना पडता है। इसीलिए कर्मचारियो मे कुछ रुचियाँ भी उत्पन्न करनी पडती हैं। अत प्रत्येक सस्था को अपने व्यावसायिक परिणामो, प्रगति, नीतियो आदि मे कर्मचारियो की रुचियाँ उत्पन्न करने का प्रयास करना चाहिये। जिससे वे इन बातो की जानकारी मे रुचि रख सकें। इसके द्वारा ही कर्मचारियो को आसानी से अभिप्रेरित किया जा सकता है।

4 तकनीकी परिवर्तनों के भय को कम करना—आन्तरिक सदंशवाहन की आवश्यकता, इसलिए भी पड़ती है कि कर्मचारियों को समय-समय पर कार्य की दशाओं, वतन से विवर्गीय नीतियो आदि में होने वाले परिवर्तनों की जानकारी मिलती रहे। इसके अतिरिक्त सस्था म स्वचालित मशीनें लगाते ,समय प्राय कर्मचारी अपने तथा अपने साथियो की छटनी का भय महसूस करते हैं। अत व स्वचालित मशीनों के प्रयोग का खुला विरोध करते हैं। किन्तु प्रबन्धक सदेशवाहन क माध्यम से काफी समय पूर्व यह बता सकते है कि उन्हे किस सीमा तक परेशानी हो सकती है। इस प्रकार प्रत्यक परिवर्तन के भय से मुक्ति दिलाई जा सकती है।

5 कर्मचारियो को बोलने का अवसर—आन्तरिक सदेशवाहन द्वि-मार्गीय (Two-way) सदेशवाहन प्रक्रिया है। अत इसमें प्रबन्धका को ही अपनी बात कहने का अवसर नही मिलता है, बल्कि कर्मचारी भी अपनी बात प्रबन्धकों के समक्ष रख सकते हैं। इससे कर्मचारी अपनी शिकायतें, समस्याएं आदि प्रबन्धकों के समक्ष रख सकते है तथा प्रबन्धक भी कर्मचारियो से परामर्श करके, अपने लिए उपयोगी सूचनाएं प्राप्त कर सकते हैं।

इनके अतिरिक्त कुछ अन्य लाभ भी है, व निम्नलिखित प्रकार हैं

6 उचित एव शीघ्र निर्णय लिए जा सकते हैं।

7 कर्मचारियो मे पारस्परिक सहयोग बढ़ाया जा सकता है।

8 संस्था म मानवीय सम्बन्धों का निर्माण किया जा सकता है।

II. बाह्य सदेशवाहन
(External Communication)

बाह्य सदेशवाहन सस्था के सगठन तथा बाहर के लोगो से सम्बन्धित हैं। सदेशो का ग्राहकों, पूर्ति-कर्त्ताओं, अंशधारियो, सरकार, श्रम सघ आदि से होने वाले सदेशो के आदान प्रदान को बाह्य सदेशवाहन कहते हैं। इनके द्वारा सस्था अपनी बाह्य नीतियों के बारे म अवगत करवाती है। बाह्य सदेशवाहन के माध्यम से ही संस्था पूँजी एकत्रित करती है, ग्राहकों म माल विक्रय करती है, पूर्तिकर्त्ताओं से माल प्राप्त करती है। तथा श्रम सघो से सदा की शर्तें महत्वपूर्ण कर्मचारी मामलों पर विचार विमर्श करती है।

बाह्य सन्देशवाहन का महत्त्व एव लाभ (Importance or Advantages of External Communication)—बाह्य सन्देशवाहन का महत्त्व निम्नलिखित शीर्षकों म व्यक्त किया गया है

1. प्रतिष्ठा मे वृद्धि (Increases Goodwill)—बाह्य सन्देशवाहन सस्था की प्रतिष्ठा म वृद्धि करते है। सस्था की प्रगति को बाह्य लोगो के समक्ष रखने क कारण सस्था की प्रतिष्ठा स्वत बढ़ती है। इसके अतिरिक्त ग्राहकों से यथासमय पर व्यवहार करने, उनके आदेशों के सम्बन्ध म शीघ्रातिशीघ्र सूचना देने आदि म भी सस्था की प्रतिष्ठा बढ़ती है।

2 जन सम्बन्धों मे सुधार (Improves in Public Relations))—बाह्य सन्देशवाहन का एक महत्त्वपूर्ण लाभ यह है कि यह सस्था के जन सम्बन्धो (Public Relations) मे सुधार करता है। जनता को विज्ञापनों एव पत्रो के माध्यम से सस्था के सम्बन्ध मे महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ प्रदान करके जन सम्बन्ध का सुधार किया जा सकता है।

3 पूँजी प्राप्त करना सरल (Easier to get Capital)—निरन्तर रूप से बाह्य सन्देशवाहन प्रक्रिया बनाये रखने तथा सस्था की प्रगति से जनता को अवगत करवाते रहने के कारण सस्था की ख्याति बढती है। इसी के परिणामस्वरूप, सस्था को पूँजी आसानी से मिल जाती है। इसका कारण यह है कि सामान्यत लोग अपना धन उसी सस्था मे विनियोजित करना उचित समझते है, जिसकी प्रतिष्ठा या ख्याति सर्वाधिक होती है।

4 व्यवसाय वृद्धि (Invigorates Business)—सस्था की ख्याति बढने तथा पूँजी के आसानी से प्राप्त हो जाने के परिणामस्वरूप व्यवसाय का विस्तार स्वत होता चला जाता है। सस्था की वस्तुओं की माग निरन्तर बढने के कारण उत्पादन क्षमता मे आवश्यक रूप मे विस्तार करना पडता है।

अभ्यास के लिए प्रश्न

1 आधुनिक व्यवसाय मे व्यावसायिक सम्प्रेषण की कौन कौन सी विधियाँ प्रयुक्त होती है ? उनके गुण एव दोषो की विवेचना कीजिये।

What types of Business Communication are generally used in modern business ? Discuss their merits and demerits

(Raj 2nd Yr T D Com 1971)

2 व्यवसाय मे सूचना के आदान प्रदान के लिए प्रयुक्त औपचारिक एव अनौपचारिक सम्प्रेषण मार्गों का वर्णन कीजिये। इन मार्गों के द्वारा सूचनाएँ किन दिशाओ मे प्रवाहित होती है ? इन दिशाओ को स्पष्ट कीजिये।

Discuss Formal and Informal Communication Channels as used in transmitting information in a business In what directions the information flows through these Channels ? Explain these direction

(Raj 2nd Yr T D C Com 1972)

3 निम्नलिखित को समझाइये।

(अ) औपचारिक एव अनौपचारिक सम्प्रेषण

Formal and Informal Communication

(आ) ऊध्वमुखी (ऊपर वाला) तथा अधोमुखी (नीचे वाला) सम्प्रेषण।

Upward and Dowanward Communication

(Raj 2nd Yr T D C Com 1970)

4. सम्प्रेषण के क्या आवश्यक तत्त्व हैं ? मौखिक तथा लिखित सम्प्रेषण के लाभ और दोषो का उल्लेख कीजिए।

   What are the essential elements of Communication ? Point out the advantages and weaknesses of oral and written Communication (1972)

5. सन्देशवाहन का वर्गीकरण कीजिये तथा किसी एक प्रकार के वर्गीकरण के लाभ एव दोषो का उल्लेख कीजिये।

   Classify Communtcation and state advantages and disadvantages of any one form of Communication.

6. अधोगामी एव ऊर्ध्वगामी सन्देशवाहन से आप क्या समझते है ? ऊर्ध्वगामी सन्देशवाहन के लाभो एव माध्यमो का वर्णन कीजिये।

   What do you mean by Downward and Upward Communication ? Describe advantages and media of Upward Communication.

7. "मौखिक एव लिखित सन्देशवाहन दोनो ही व्यवसाय के कुशल सचालन मे अपरिहार्य हैं।" समझाइये।

   "Verbal and written Communication both are indispensable for the efficient running of a business." Explain

8. ऊर्ध्वगामी और समतलीय सम्प्रेषण किसे कहते हैं ? ऊर्ध्वगामी सम्प्रेषण की उपयोगिता पर प्रकाश डालिये।

   What are Vertical and Horizontal Communication ? Mention the utility of Upward Communication.

   (II Yr. Com. 1975)

3

संदेशवाहन की तकनीकें या साधन

(Techniques or media of Communication)

'Blood carries information to the brain,
a telephone wire carries information to a listener,
a printed page carries information to a reader,
a key carries information to a lock,
a nerve carries information to a muscle,
a steering wheel carries information to the wheels of
an automobile,
a river carries information to the sea,
Mars carries information to Saturn

—John A Backett

सन्देशवाहन की कई तकनीक है। प्रत्येक तकनीक का अपना महत्त्व है। प्रत्येक तकनीक का प्रयोग सदैव नहीं किया जा सकता है। अत समय एव स्थिति को ध्यान म रखकर ही सन्देशवाहन की उचित तकनीक का प्रयोग करना चाहिये। कभी कभी सन्देश भेजने की एक ही तकनीक का प्रयोग करना उचित होता है। तो कभी-कभी विभिन्न तकनीको का एक साथ प्रयोग करना आवश्यक हो जाता है।

भारतीय राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद (Indian National Productivity Council) के अनुसार सन्देशवाहन की प्रमुख तकनीकें या तरीके निम्नलिखित हैं—(i) अनौपचारिक बातचीत (ii) योजनापूर्वक बातचीत (iii) टेलीफोन पर बातचीत, (iv) पत्र अन्त कार्यालय पत्र (T M O) परिपत्र, नोटिस आदि (v) रिपोर्ट तथा कार्यवाही विवरण (vi) समूह चर्चा (vii) सम्मेलन गोष्ठी, सभाएँ (viii) विशाल सभाएँ (ix) सूचना पटट (x) पोस्टर प्रदर्शन योग्य वस्तुएं, सजावट आदि (ix) दृश्य साधन—स्लाइडे, फिल्म, आदि (xii) बुलेटिन गृह पत्रिकाएँ, पुस्तिकाएँ, पैम्फलेट, पुस्तकें आदि।

प्रो० ए० दास गुप्ता (A Dass Gupta) के अनुसार सन्देशवाहन की प्रमुख तकनीक निम्नलिखित हैं—

1 आमने-सामने वार्तालाप।
2 टेलीफोन वार्तालाप।
3 मीटिंग तथा सम्मेलन।
4 आपसी पूछताछ।
5 औपचारिक आदेश–लिखित तथा मौखिक।
6 विभिन्न अभिलेख तथा प्रतिवेदन।

7 अनौपचारिक वार्तालाप ।

इसी प्रकार अन्य कई विद्वानो ने भी विस्तार से सन्देशवाहन की तकनीकी का वर्णन किया है। हम सन्देशवाहन की तकनीकों का वर्णन निम्नलिखित तीन भागो मे वर्गीकृत करके करेंगे।

I मौखिक तकनीकें,

II लिखित तकनीकें, तथा

III दृश्य तकनीकें।

I. सन्देशवाहन की मौखिक तकनीकें
(Techniques of Oral Communication)

सन्देशवाहन की मौखिक तकनीकों मे निम्न तकनीकें प्रमुख है—

(i) संयुक्त विचार-विमर्श (Joint Consultation)—यह द्वि-मार्गीय सन्देशवाहन के साधन का एक रूप है। आपसी बातचीत के द्वारा कर्मचारी एव नियोजक संस्था की नीति मे परिवर्तनो के विषय मे, प्रस्तावित भावी विकास तथा नवीन निर्माण प्राविधियो आदि पर संयुक्त रूप से परामर्श करते है। संयुक्त विचार-विमर्श से ही पारस्परिक सद्‌भावना, श्रम-संघो मे सुदृढता तथा नियोजको म सद्‌भावना पूर्ण व्यवहार उत्पन्न किया जा सकता है। यह वह तकनीक है, जिसमे दोनो ही पक्षो मे बन्धुत्व व एकता की भावना जाग्रत होती है।

(ii) सभायें एव सम्मेलन (Meetings & Conferences)—प्रत्येक सस्था समय-समय पर सभायें और सम्मेलन आयोजित करती रहती है। जिसका प्रमुख लक्ष्य संस्था की सूचनायें देना, उन पर विचार करना वाद विवाद करना तथा उन पर निर्णय लेना है। इनके द्वारा महत्त्वपूर्ण सुझाव भी लिये जा सकते हैं। इस तकनीक द्वारा व्यक्तिगत एव सामूहिक समस्याओ पर भी विचार किया जा सकता है। इस प्रकार यह सन्देशवाहन की प्रमुख तकनीक है।

(iii) भाषण (Speeches)—भाषण भी सन्देशवाहन की प्रमुख तकनीक है। भाषण सस्था के अध्यक्ष की ओर से दिया जाता है। जिसमे सस्था की नीति, पद्धति एव व्यवहार मे सम्बन्धित अनेक मामलो की सूचना होती है। यह सूचना *सस्था के हिस्सेदारो तथा कर्मचारियो के देने के लिए होती है।*

(iv) रेडियो द्वारा (By Radio)—आज व्यापारिक जगत मे रेडियो भी सन्देशवाहन की प्रमुख तकनीक है। आज रेडियो के द्वारा अनेक आकर्षक ढग से विज्ञापन एव वस्तुओ तथा सेवाओं का प्रचार किया जाता है। जनता से सम्पर्क साधने म भी रेडियो का महत्वपूर्ण स्थान है। इस प्रकार रेडियो आज सन्देशवाहन की महत्त्वपूर्ण तकनीक है।

(v) टेलीफोन (Telephone Systems)—मौखिक सन्देशवाहन के साधनो म टेलीफोन का भी सबसे अधिक प्रचलन है। यद्यपि टेलीफोन का उपयोग बाहरी

व्यक्तियों से सम्पर्क करने तथा बाह्य सन्देशवाहन की तकनीक के रूप में अधिक प्रयोग किया जाता है, किन्तु इसका उपयोग आन्तरिक सन्देश वाहन व्यवस्था में भी बहुत किया जाता है। इस प्रकार मौखिक सन्देशवाहन के साधन के रूप में टेलीफोन भी व्यापक तकनीक है।

(vi) टेलीविजन (Television) —यह मौखिक एव दृश्य सन्देशवाहन की मुख्य तकनीक है। टेलीविजन का उपयोग भी वस्तुओं का विज्ञापन करने एव जन सम्पर्क स्थापित करने के लिए किया जाता है। आजकल इस तकनीक का उपयोग शिक्षा एव निर्देशन के क्षेत्र में भी किया जाने लगा है। इसके द्वारा जो निर्देश दिये जाते है उनका स्थायी प्रभाव होता है, क्योंकि इसमें सुनने के साथ-साथ उसे देखने का भी अवसर मिलता है।

(vii) प्रशिक्षण पाठ्यक्रम (Courses for Trainees)— किसी भी संस्था मे नव भर्ती किये गये कर्मचारियों को उसके कार्य से परिचित कराने, कार्य सम्बन्धी आवश्यक शिक्षा एव निर्देश देने, नीतियो, पद्धतियो आदि से परिचित कराने हेतु मौखिक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम चलाया जाता है। इस तकनीक से कर्मचारी को संस्था की गतिविधियाँ व कार्य करने के तरीकों आदि से जानकारी हो जाती है ताकि वह उस संस्था के अनुरूप कार्य करने में सफल हो सके।

(viii) साक्षात्कार (Interviewing) —यह भी द्वि मार्गीय सन्देशवाहन के साधन का एक रूप है। यह तकनीक किसी कर्मचारी की भर्ती करने या पदोन्नति करने के लिए अपनाई जाती है। समय समय पर इस तकनीक का प्रयोग कर्मचारियों की समस्याओ एव कठिनाइयों को जानने एव दूर करने में भी किया जाता है। साक्षात्कार द्वारा वस्तु स्थिति की जानकारी करने में भी सहयोग मिलता है।

(ix) श्रम संघ (Trade Unions) श्रम संघ भी मौखिक सन्देश-वाहन की तकनीक का द्वि-मार्गीय रूप है। यह श्रमिक एव मालिको के बीच विचार-विमर्श हेतु एक महत्त्वपूर्ण भूमिका का कार्य करता है। इस तकनीक द्वारा दिन-प्रतिदिन की व्यावसायिक नीति पर विचार किया जा सकता है तथा कर्मचारी एवं मालिक दोनो ही के हितार्थ सर्वसम्मत व्यवस्था में जानकारी रखी जा सकती है।

(x) यात्री विक्रय प्रतिनिधि आदि (Travellers Sales Representative)- यात्री प्रतिनिधि, विक्रय प्रतिनिधि तथा अन्य प्रतिनिधि भी सन्देशवाहनों की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी का काम करते है। ये प्रतिनिधि फर्मों और उसके ग्राहकों को आपस में मिलाते है। ये प्रतिनिधि उत्पादित वस्तुओं के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी देते है। इस प्रकार यह भी सन्देशवाहन की महत्त्वपूर्ण तकनीक है।

(xi) सेवीवर्गीय विभाग (Personnel Department)–यह भी सन्देशवाहन की द्वि-मार्गीय तकनीक का एक रूप है। यह कर्मचारियों की शिकायतों तथा उनकी पारिवारिक समस्याओं से सेवीवर्गीय प्रबन्धकों को अवगत कराती है, ताकि वे उन्हे

परामर्श तथा सहायता प्रदान कर सकें। इस प्रकार यह भी सन्देशवाहन की एक प्रमुख तकनीक है।

II. सन्देशवाहन की लिखित तकनीकें
(Writen Techniques of Communication)

सन्देशवाहन की लिखित तकनीकें निम्नलिखित हैं :—

(i) पत्राचार (Correspondence)—वर्तमान युग मे पत्राचार लिखित सन्देशवाहन की महत्त्वपूर्ण तकनीक है। वर्तमान युग म संस्था मे प्रतिदिन प्राप्त होने वाले पत्र एव बाहर जाने वाले पत्र व्यापार तथा संस्था के ग्राहकों के मध्य सम्पर्क बनाये रखने म सहायता प्रदान करते है। हरबर्ट एन कैसन (Herbert N. Casson) ने उचित ही लिखा है **"प्रत्येक निर्गत पत्र आपकी संस्था का यात्री है। यह विक्रयकर्त्ता है। यह सन्देश ले जाता है। यह शात होता है, परन्तु गूगा नही है। यह ग्राहकों को आकर्षित करता है अथवा भगा देता है। यह संस्था की ख्याति के निर्माण मे सहायता पहुचाता है।"**

(ii) गृह-पत्रिकायें (House Journals)—इस तकनीक का उपयोग उस समय होता है, जब संस्था का बहुत आकार होने पर प्रबन्ध एव कर्मचारियों के मध्य व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित नहीं हो सकता है। कर्मचारियों को गृह-पत्रिकाओं के द्वारा संस्था की तात्कालीक सूचनायें देने मे महत्त्वपूर्ण योग मिलता है। ये गृह पत्रिकाये समाचार पत्र से लेकर एक पुस्तिका तक अलग अलग आकार की हो सकती है।

(iii) वार्षिक प्रतिवेदन (Annual Reports) –इस तकनीक के द्वारा संस्था के हिस्सेदारों ऋण-पत्र धारियों को संस्था के विकास, नीतियों एव गतिविधियों मे अवगत कराया जाता है। संस्था की वार्षिक रिपोर्ट म सभी प्रमुख प्रमुख सूचनाये निहित होती है। इस प्रकार यह भी लिखित सन्देशवाहन की महत्त्वपूर्ण तकनीक है।

(iv) बुलेटिन (Bulletins)—कुछ संस्थाएँ अपने कर्मचारियों की जागरूकता के कारण संस्था की गतिविधियों को प्रकाशित करने हेतु बुलेटिन निर्गमित करती है। इससे कर्मचारियों को संस्था की गतिविधियों की जानकारी मिल जाती है।

(v) कार्यक्रम प्रपत्र (Agenda Forms)–यह सन्देशवाहन की एक लिखित तकनीक है। संस्था द्वारा समय-समय पर सभाएँ और सम्मेलन आयोजित किये जाते है। जिसके लिए एक 'कार्यक्रम प्रपत्र' या 'कार्यावलि प्रपत्र' का निर्माण किया जाता है। जिसमे इन कार्यक्रमो को व्यवस्थित रूप से चलाने के लिए कार्यक्रम होता है, ताकि सभा म उपस्थित सभी व्यक्तियों को सभा म सम्पादित किये जाने वाले

के साथ-साथ बाह्य पक्ष को भी नीति सम्बन्धी जानकारी देने हेतु उपयोगी होती है।

(xiii) टेली प्रिन्टर (Teleprinters)—आजकल टेलीप्रिन्टर का उपयोग सन्देशवाहन की लिखित तकनीक के रूप में बहुतायत से प्रयोग होने लगा है। इसका उपयोग आन्तरिक एवं बाह्य दोनो प्रकार के सन्देश देने में बहुत बड़े पैमाने पर प्रयोग किया जाने लगा है।

(xiv) व्यापारिक पत्रिकायें (Trade Journals)—यह भी द्वि-मार्गीय लिखित सन्देशवाहन के तकनीक का एक रूप है। व्यापारिक पत्रिकाओं में तकनीकी विषयों पर लेख देकर अथवा व्यापारिक पत्रिकाएँ मगवाकर संस्था अपने कर्मचारियों को सन्देश प्रेषित कर सकती है।

(xv) सुझाव परियोजनायें (Suggestion Schemes)—सुझाव परियोजनाओं के द्वारा संस्था अपने श्रमिकों या कर्मचारियों का उत्साह बढ़ाने, मनोबल ऊँचा करने तथा कार्य में रुचि उत्पन्न करने का कार्य कर सकती है। किन्तु इन योजनाओं का संचालन उचित तरीके से किया जाना चाहिए, तभी यह तकनीक सन्देशवाहन में प्रभावोत्पादक बन सकती है।

III सन्देशवाहन की दृश्य तकनीकें

(Visual Techiniques of Characteristics)

दृश्य सन्देशवाहन की तकनीकों में प्रमुख तकनीकें निम्नलिखित है—

(i) टेलीविजन (Closed Circuit Television)—यह तकनीक दृश्य एवं मौखिक दोनो ही वर्ग में रखी जाती है। आजकल प्रायः बड़े आकार की संस्थायें इस उपकरण के माध्यम से यान्त्रिक क्रियाओं का प्रदर्शन करती है। इसका प्रयोग संस्था के श्रमिकों को प्रशिक्षित करने के लिए भी किया जाता है। चूंकि यह एक महँगा उपकरण है। अत इस तकनीक का प्रयोग भारतीय परिस्थितियों में सम्भव नहीं है। विदेशों में इसका प्रयोग बहुतायत से होता है।

(ii) फिल्में एवं फिल्म स्ट्रिप्स (Films & Film strips)—आजकल इस तकनीक का प्रयोग कई निजी संस्थाएँ तथा राष्ट्रीयकृत या सार्वजनिक संस्थाओं के द्वारा विभिन्न उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु किया जाता है। इन उद्देश्यों में श्रमिकों की शिक्षा, प्रशिक्षण, शोध, कल्याण कार्य, अध्ययन आदि है, जिनमें कि फिल्में एवं फिल्म स्ट्रिप्स का प्रयोग होता है।

(iii) सूक्ष्म फिल्में (Micro Flims)—आजकल फिल्में पहले सूक्ष्म फोटोग्राफी द्वारा तैयार की जाती है। फिर इन फिल्मों को पर्दों पर दिखाकर सन्देशवाहन की दृश्य तकनीक के रूप में काम में लिया जाता है। इनके तैयार करने में व्यय कम होता है। अत इनका प्रयोग आज व्यावसायिक जगत में काफी होने लगा है।

(iv) सूचना पट्ट (Notice Boards)—वैसे यह तकनीक लिखित सन्देशवाहन की प्रतीत होती है, किन्तु यह दृश्य सन्देशवाहन की ही उपयुक्त तकनीक है। क्योंकि

सूचना पट्ट देखने से ही सूचनायें प्राप्त होती हैं। इन सूचना-पट्टों पर संस्था द्वारा की जाने वाली घोषणायें तथा सम्बन्धित विषयों पर दी जाने वाली सूचनायें दी जाती हैं। प्रबन्धकों व कर्मचारियों दोनों ही ऊपर से नीचे की ओर सूचना प्रसारित करने में सूचना पट्ट एक महत्त्वपूर्ण सन्देशवाहन की दृश्य तकनीक है।

(v) कैमरा (Photography)—फोटोग्राफी के रूप में आजकल कैमरा भी सन्देशवाहन की दृश्य तकनीकों में लिया जाता है। इसका उपयोग संस्था द्वारा विज्ञापन करने, नवीन वस्तु का प्रचार करने एवं यन्त्र सम्बन्धी दोषों को ढूँढने के लिए किया जाता है।

(vi) संगठन चार्ट (Organisation Chart)—संस्था के संगठन की स्थिति को एक चार्ट के रूप में प्रदर्शित करने हेतु इस तकनीक का प्रयोग किया जाता है। इस चार्ट में वर्तमान पदों पर काम करने वाले कर्मचारियों के कर्तव्यों, अधिकारों एवं पारस्परिक सम्बन्धों को दिखाया जाता है। यह सन्देशवाहन की एक प्रमुख तकनीक है। जिसको देखने मात्र से ही संस्था के संगठन का ढाँचा आपके समक्ष प्रस्तुत हो जाता है।

(vii) इश्तिहार (Posters) इस तकनीक का प्रयोग सूचना पट्ट के साथ-साथ उपयोग होता है। इश्तिहारों के द्वारा संस्था के प्रबन्धक वर्ग एवं कर्मचारियों के लिये गये निर्णयों की घोषणा का व्यापक प्रचार किया जाता है। इसके द्वारा नाजी घटनाओं की ओर ध्यान आकर्षित किया जाता है तथा अन्य महत्त्वपूर्ण मामलों के विषय में भी प्रचार हेतु इनका प्रयोग होता है। अधिक आकर्षक ढंग से ध्यान आकर्षित करने हेतु इश्तिहारों का प्रयोग उपयुक्त रहता है।

(viii) संकेत (Signal) —रंगीन प्लास्टिक के गोल जो फोल्डर अथवा प्रपत्र के साथ लगे होते हैं। बीमा प्रीमियम की किश्त के जमा कराने तथा बकाया रकम की ओर ध्यान आकर्षित करने के लिए एक उपयुक्त सन्देशवाहन की दृश्य तकनीक है। मशीनरी पर विभिन्न चिह्न भी विज्ञापन के लिए काम में लिए जाते हैं।

(ix) सांख्यिकीय चित्र (Statistical Graphs)—सांख्यिकीय चित्र, बिन्दु चित्र आदि आंकड़ों की सहायता से तैयार किये जाते हैं। इनके द्वारा संस्था की प्रगति को दिखाया जाता है। इन चित्रों में अधिकतर आकार, रंग एवं सुन्दरता की ओर ध्यान दिया जाता है। विभिन्न विषय वस्तु का इसमें कम प्रयोग होता है। यह सन्देशवाहन की प्रमुख दृश्य तकनीक है।

(x) दीवार चार्ट (Wall Charts) बिक्री से तथा उत्पादन से सम्बन्धित आँकड़ों तथा कार्य पर रहे श्रमिकों की संख्या आदि को एक ही दृष्टि में अवलोकन करने के लिए दीवार चार्टों का उपयोग होता है।

इन चार्टों का संचालन स्वयं के श्रम के द्वारा, विद्युत शक्ति या यान्त्रिक शक्ति द्वारा संचालित किया जाता है। इन चार्टों का उपयोग उस समय भी होता है

जब कोई महत्त्वपूर्ण परिणामो को बतलाना है, किसी व्यावसायिक असफलता को बतलाना है।

(xi) भ्रमण (Visits)—भ्रमण हेतु जाना भी दृश्य सन्देशवाहन की प्रभावशाली तकनीक है। इसके द्वारा सस्था के प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले कर्मचारियो एव बिक्री एजेन्टो को मेलो, प्रदर्शनियो तथा अन्य अवसरो पर भ्रमण के द्वारा सस्था की प्रगति आदि के चित्रो के बारे में समझाया जा सकता है।

अभ्यास के लिए प्रश्न

सन्देशवाहन की विभिन्न तकनीको का सक्षिप्त वर्णन कीजिये।
Briefly discuss the various techniques of communication

4

संदेशवाहन : बाधाएँ एवं सुझाव

(Communication Barriers and Suggestions)

'The meanings of the words are not in the words, they are in us'
—S I Hayackawa

संदेशवाहन में दो पक्षकार होते हैं एक सन्देश भेजने वाला तथा दूसरा सन्देश प्राप्त करने वाला। ये दोनों पक्षकार अलग अलग परिस्थितियों तथा वातावरण में रहते हैं। इन दोनों के पद मानसिक स्थिति आदि में अन्तर होना सम्भव है। इन दोनों पक्षकारों के धर्म रीति रिवाज भाषा आदि में अन्तर हो सकता है। इन सबके परिणामस्वरूप सन्देश के समझने में अन्तर आता है तथा बाधाएँ उत्पन्न होती हैं। सन्देश भेजने वाला जिस रूप एवं अर्थ में सन्देश भेजता है सन्देश प्राप्त करने वाला उसे उसी रूप में नहीं समझ पाता है। अतः हम इस अध्याय में उन सभी बाधाओं का अध्ययन करेंगे जिनके कारण सन्देश प्राप्त करने वाला सन्देश भेजने वाले के सदेश को भिन्न अर्थों में समझता है।

सन्देशवाहन में बाधाओं के प्रभाव
(Effects of Barriers to Communication)

संस्था की कार्यकुशलता सन्देशवाहन की कुशलता पर निर्भर करती है। यदि सन्देश उचित व्यक्तियों को उचित समय पर उचित रूप में नहीं पहुंचाए जाते हैं, तो इसका संस्था की कुशलता पर ही अत्यन्त विपरीत प्रभाव पड़ता है। **स्ट्रॉस तथा सेयल्स** (Strauss and Styles) के अनुसार, **"सन्देशवाहन की बाधाएं संगठन के सदस्यों में रुकावट** (breakdown) **विकार** (distortion) **तथा असत्य अफवाहें** (rumours) **पैदा करते हैं।"** (Barriers to communications among members of an organisation cause breakdowns, distortions and inaccurate rumours.)

सामान्यतः सन्देशवाहन की बाधाओं के निम्नलिखित दुष्प्रभाव होते हैं।

1 सन्देशवाहन की बाधाएँ भ्रांतियाँ पैदा कर सकती हैं।

2 ये संस्था के सदस्यों के आपसी सहयोग को समाप्त कर आपसी द्वेष उत्पन्न कर सकती हैं।

3 वे कर्मचारियो क मनोबल पर विपरीत प्रभाव डालती हैं।

4 वे मानवीय सम्बन्धो के निर्माण मे बाधक बनती हैं।

5 वे शीघ्र एवम् सुदृ' नियोजन एवम् निर्णयन की गतिशीलता मे बाधक बनती है।

6 इनके कारण कर्मचारियो पर नियन्त्रण करना कठिन हो जाता है।

7 ये संस्था के सम्पूर्ण प्रशासन एव प्रबन्ध मे बाधाएँ उत्पन्न करती हैं तथा कभी-कभी संस्था की उत्पादन क्षमता पर विपरीत प्रभाव डालती हैं।

सन्देशवाहन की बाधाग्रो के प्रकार
(Types of Communication Barriers)

सन्देश भजने वाले से सन्देश प्राप्त करने वाले तक सन्देश के पहुँचने मे कई विकार (Distortions) उत्पन्न हो जाते हैं। इन विकारो के उत्पन्न होने के कारणो या सन्देशवाहन की बाधाओ को विद्वानो ने कई प्रकार से वर्गीकृत करने का प्रयास किया है।

कीथ डेविस (Keith Davis) के मतानुसार सन्देशवाहन की तीन बडी बाधाएँ होती हैं। 1 भौतिक बाधाएँ (Physical) 2 व्यक्तिगत बाधाएँ—सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक (Personal Socio-psychological) तथा 3 भाषा की बाधाएँ (Semantic)

कान्फ्रेन्स बोर्ड ग्रमेरिका (Conference Board U S A) ने एक अनुसन्धान करके ज्ञात किया है कि सामान्यत सन्देशवाहन की तीन प्रमुख बाधाएँ होती है

1 व्यक्तिगत मतभेद (Individual differences), संस्था का वातावरण (Corporate Climate), तथा 3 तकनीकी बाधाएँ (Mechanical barriers)।

प्रो हैमेन (Haimann) के अनुसार सन्देशवाहन की प्रमुख बाधाएँ निम्न प्रकार हैं

(1) सगठनात्मक ढाचे की बाधाएँ (2) स्थिति एव पद की बाधाएँ (3) भाषा की बाधाएँ, तथा (4) परिवर्तन की बाधाएँ।

भारतीय राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद (Indian National Productivity Council) के अनुसार सदेशवाहन की प्रमुख बाधाएँ निम्नलिखित हैं--

1 ऐसे वर्ग समाज का होना, जिस पर स्तर और वर्ग आदि का प्रभाव हो।
2 भौतिक सीमाएँ—दूरी, शारीरिक अक्षमता आदि।
3 मानसिक तत्त्व—जैसे पूर्वाग्रह, जोरदार पसन्दगी या ना पसन्दगी।
4 लोगो की भिन्न भिन्न भाषाएँ।

5 एक ही व्यक्ति या समूह की विभिन्न मानसिक दशाएँ।
6 गलत बयानी की आदत एवं वैयक्तिक तत्त्व।
7 व्यक्तिगत लहजे तथा तनाव।
8 सूचना का गलत स्त्रोत तथा सम्प्रेषण का गलत तरीका।

एन आर सिरकार (N R Sirkar) ने अध्ययन करके पता लगाया कि सन्देशवाहन मे कुछ महत्त्वपूर्ण बाधाएँ होती है जिन्हे नीचे दी गई सारिणी मे दर्शाया गया है

सारिणी—सन्देशवाहन की बाधाएँ

सन्देशवाहन की बाधाएँ	सस्थाओ की सख्या	कुल सस्थाओ का प्रतिशत
(a) भाषा	5	12.50
(b) भौतिक सुविधाएँ	5	12 50
(c) मनोवैज्ञानिक कारण	8	20 00
(d) अच्छे सम्बन्धो का अभाव (Poor relationships)	7	17 50
(e) क्रम (c) तथा (d) दोनो	5	12 50
(f) क्रम (a) से (d) चारो	10	25 00
कुल	40	100

उपर्युक्त सारिणी के अध्ययन से स्पष्ट है कि सन्देशवाहन की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बाधा मनोवैज्ञानिक कारण है। लगभग 20% सस्थाओ ने इस बाधा को स्वीकार किया है। सन्देशवाहन की दूसरी बडी बाधा अच्छे सम्बन्धो का अभाव है। *अच्छे सम्बन्धो के न होने से कर्मचारियो एव अधिकारियो के बीच* सन्देशवाहन मे बडी बाधा आती है। लगभग 25 प्रतिशत सस्थाओ ने यह बताया कि सन्देशवाहन के मार्ग मे अनेक बाधाएँ है। उन्होने बताया कि भाषा, भौतिक साधनो के अभाव मनोवैज्ञानिक कारण एव अच्छे सम्बन्धो का अभाव सन्देशवाहन के मार्ग मे बाधाएँ उपस्थित करते है।

इसी प्रकार *अन्य* कई विद्वानो ने सन्देशवाहन की बाधाओ का वर्णन किया है। *अनुसधानो मे भी कुछ बाधाओ की खोज की गई है। इन सबका विस्तृत उल्लेख* करना सम्भव नही है। सक्षेप मे सन्देशवाहन की बाधाएँ निम्नलिखित है—

1 सगठन सरचना (Barriers due to Organisational Structure)—**थियो हेमेन** (Theo Haimann) के अनुसार **"सगठन सरचना सगठन के सदस्यो की कुशलतापूर्वक एव सरलता से सन्देशवाहन पूरा करने की क्षमता पर बहुत बडी मात्रा मे प्रभाव डालती है।"** *सगठन मे जितने ही अधिक स्तर होगे, सन्देशवाहन* मे उतनी ही अधिक बाधाएँ उत्पन्न होगी। अधिक स्तर से गुजरने से बहुत से सन्देश प्राय उन स्तरो पर कार्य करने वालो द्वारा ही रोक दिए जाते है।

ऊर्ध्वगामी (Upward) सन्देशवाहन विभिन्न स्तरो पर कार्य करने वालो के विरुद्ध भी हो सकते हैं। इसी कारण उच्च प्रबन्धक वर्ग तक पहुँच नही पाते हैं।

2 **भाषा की समस्या (Barriers due to Language)**—यह बाधा उस समय उत्पन्न हो जाती है, जबकि प्रेषक एव प्रेषिति एक ही शब्द को विभिन्न अर्थों मे प्रयोग करते है। श्रोता अपने अनुभव एव सुविधा से शब्दो का अर्थ लगाते है। इससे सन्देश को समझने मे बहुत बडी बाधा उत्पन्न होती है।

प्रायः देखा जाता है कि लोग शब्दो का अर्थ दो प्रकार से लगाते है। एक अर्थ मे, शब्दो का भाषा मे रूपान्तर किया जाता है तथा जो कुछ शब्द बोलते है उसी के अनुसार अर्थ लगा लिया जाता है। द्वितीय, शब्दो का अर्थ भावनाओ के अनुसार भी लगाया जाता है। शब्दो के पीछे जो भावनाएं होती है, उनको समझा जाता है। इस प्रकार जब कभी लोग शब्दो का अर्थ शब्दार्थ मे लगाते हैं और भावनाओ को ताक मे रख देते है, तो प्राय सन्देश प्रभावहीन हो जाता है।

इसके अतिरिक्त कभी-कभी अलग-अलग स्तर के लोग शब्दो का भिन्न-भिन्न अर्थ भी लगाते है। विभिन्न विषयो का ज्ञान रखने वाले व्यक्ति विभिन्न शब्दो का प्रयोग करते है। अत कभी-कभी कोई व्यक्ति विशेष दूसरे विषय की शब्दावली का समझने मे भी अडचन महसूस करता है। इसमें भी सन्देशों के उचित प्रकार से सवहन मे बाधा पडती है। स्ट्रॉग (Strong) का भी मानना है कि **'शब्दो के अनेक अर्थ होते हैं। सन्देश में शब्द किसी अर्थ को प्रेषित करने के लिए सकेत रूप मे प्रयोग किये जाते हैं। अतः उनका अर्थ सन्देश प्राप्तकर्त्ता अपनी सुविधा एव इच्छानुसार लगाता है और यह आवश्यक नहीं है कि यह अर्थ सदेश देने वाले व्यक्ति के अर्थ से मिलता ही हो।"** अत यह स्पष्ट है कि भाषा मे प्रयुक्त शब्दो के भिन्न अर्थ से सन्देश के पहुँचने मे बाधा उपस्थित हो जाती है।

3 **अवस्था की समस्या (Barriers due to Status)**—सगठन म प्रेषक एव प्रेषिति की अवस्था (Status) के अन्तर के कारण सन्देशवाहन मे बाधा उपस्थित हो जाती है। अवस्थाएँ सगठन सरचना मे स्थान, वेतन व अधिकारो के आधार पर बनती हैं। अवस्थाओ की भिन्नता के कारण सन्देशवाहन का स्पष्ट रूप मे आदान प्रदान नहीं हो सकता है। प्राय अधीनस्थ अपने उच्चाधिकारियों को सुझाव एव शिकायतें प्रस्तुत करने से डरते हैं और वे ही बात कहते है जो उच्चाधिकारियों को पसन्द होती हैं। इसी प्रकार उच्चाधिकारी भी कर्मचारियो से अपने पद के गर्व मे आकर यथोचित रूप से बात नही करते हैं और आवश्यक सूचनाएँ भी नहीं पहुँचाते हैं। डूबिन (Dubin) ने उचित ही लिखा है कि **अधिकारी को सन्देशवाहन की खाई में रखा जाता है तथा कर्मचारी अपने आपको अच्छा सिद्ध करना चाहता है तथा यह प्रकट करता है कि सभी कार्य आशानुरूप हो रहे हैं।"**

4 **भावनात्मक स्थिति (Barriers due to Emotional Attitude)**—भावनात्मक स्थिति के अन्तर के कारण भी सन्देश को उचित रूप मे नही समझा

जाता है। कभी कभी भावना तथा विचार इतने दृढ़ हो जाते हैं कि प्रेषिति प्राय. प्रेषक की प्रत्येक बात का एक ही अर्थ लगाता है।

भावना कई बातों से प्रभावित होती है। व्यक्ति किसी व्यक्ति से बात करना चाहता है तो किसी से बात नहीं करना पसन्द करता है। इसमें भी सन्देशवाहन की सफलता पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। एक विद्वान ने तो यहाँ तक लिखा है कि **नाक की शक्ल, होंठ, रूप, कपड़ो का कट तथा आवाज आदि से भी व्यक्ति की भावनाएँ प्रभावित होती हैं और ये तत्त्व उस व्यक्ति की बात को सुनने व न सुनने को प्रेरित करते हैं।** ("External factors like shape of the person's nose, the curl of his lip, the cut of his cloth, or the pitch of his voice may also influence the emotional attitude.")

5 **श्रवण** (Barriers due to Listening)—प्रेषक एवं प्रेषिति द्वारा किसी सन्देश को ठीक प्रकार से न सुनना सन्देश के प्रभावशाली होने में सबसे बड़ी बाधा है। **जोसेफ डूहर** (Josheph Dooher) के अनुसार, "Listening is most neglected skill in communication. "Half listening is like racing your engine with the gear in neutral. You use gasoline but you get nowhere." इस प्रकार स्पष्ट है कि यदि कोई व्यक्ति सन्देशों को ठीक प्रकार से नहीं सुनता है तो वह सन्देशों को ठीक प्रकार से समझ भी नहीं सकता है। परिणामस्वरूप सन्देशों में इच्छित कार्य भी पूरा नहीं करवा सकता है।

6 **मनोवैज्ञानिक** (Psychological Barriers)—इस प्रकार की बाधा भी अधिकारी एवं अधीनस्थ के सम्बन्धों के कारण उत्पन्न हो जाती है। ऊर्ध्वगामी सन्देशवाहन पर अधिकारी के प्रति अधीनस्थ की मनोवैज्ञानिक भावना का प्रभाव पड़ता है। यदि यह अनुकूल है तो सन्देशवाहन के मार्ग में कोई बाधा उत्पन्न नहीं होगी। परन्तु यदि यह प्रतिकूल है तो सन्देशवाहन के मार्ग में बहुत बड़ी बाधा होगी।

7 **पदोन्नति की मनोकामना** (Barriers due to desire of promotion)—जब पदोन्नति अपने उच्चाधिकारी के द्वारा ही की जाती है तो प्राय अधीनस्थ कर्मचारी शिकायत एवं सुझाव उच्चाधिकारियों तक नहीं पहुँचाते हैं। इसमें अधीनस्थ के प्रति अच्छी मनोवृत्ति बन जाती है जो पदोन्नति में सहायक होती है।

8 **समयाभाव** (Barriers due to Shortage of Time)—कई ऐसे अवसर आते हैं जबकि समयाभाव के कारण सन्देश यथासमय नहीं भेजे जाते हैं और न लोगों से सम्पर्क ही किया जा सकता है। अतः सन्देशवाहन की प्रभावशालीनता कम हो जाती है।

9 **वैयक्तिक भेद** (Individual Differences)—संगठन में सभी व्यक्ति समान नहीं हो सकते हैं। संस्था में कोई व्यक्ति मराठी है तो कोई राजस्थानी,

कोई बंगाली है, तो कोई कश्मीरी । इसी प्रकार रहन सहन, बोलचाल, रीति रिवाज खान-पान आदि में भी अन्तर होता है । इसके परिणामस्वरूप उनकी मानसिक स्थिति में भी अन्तर पाया जाता है । इसके अतिरिक्त, संगठन के सदस्यों की शिक्षा के स्तर में भी अन्तर पाया जाता है । अन्ततोगत्वा परिणाम यह होता है कि इन सबका प्रभाव सन्देशों पर पड़ता है । प्रत्येक सदस्य प्रत्येक सन्देश का भावार्थ अपने स्तर, रीतिरिवाजों एवं वातावरण के अनुरूप ही लगाता है । अतः प्रत्येक सदस्य के पास प्रत्येक सन्देश भिन्न रूप में ही पहुँचता है । अर्ल पी स्ट्रॉंग (Earl P Strong) के अनुसार "मानव जाति की भिन्न-भिन्न एवं मिश्रित मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियाँ, तर्क प्रतिक्रियाएँ, भावनाएँ, विश्वास आदि होते हैं । जब एक व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति के साथ सन्देशवाहन करता है तो ये सभी भिन्नताएँ सक्रीय हो जाती हैं और सन्देश को उचित रूप से समझने में बाधक बन सकती हैं ।"

10 संस्था का वातावरण (Corporate climate)—संस्था का वातावरण भी कभी-कभी सन्देशवाहन की बहुत बड़ी बाधा बन जाता है । कभी-कभी संस्थाध्यक्ष का व्यवहार कर्मचारियों के प्रति स्वच्छ नहीं रहता है तो कभी कर्मचारी उनके प्रति रुष्ट हो जाते हैं और उनके प्रत्येक आदेश का विपरीत अर्थ ही लगाते हैं । कभी-कभी संस्था की निश्चित नीतियों के अभाव में कर्मचारियों का अधिकारियों के प्रति रुख बदल जाता है । अतः सन्देशों के उचित सम्प्रेषण में बाधा पहुँचती है ।

11 विकृत उद्देश्य (Unsound Objectives)—कई बार सन्देशवाहन में उद्देश्यों के अस्पष्ट रूप से निर्धारण में भी सन्देशवाहन में बाधा उत्पन्न हो जाती है । उद्देश्यों के उचित रूप से निर्धारित किये बिना सन्देशों की सफलता की आशा व्यर्थ है । उद्देश्यों के उचित निर्धारण के बाद ही उनके स्वरूप एवं भावों को तय किया जाना चाहिये । किन्तु यदि सन्देश भेजने वाला सन्देश के उद्देश्यों से भी परिचित नहीं होता है, तो वह कभी भी सन्देश का उचित प्रकार से प्रेषित करने में सफल नहीं हो सकता ।

12 अधिकारियों की उपेक्षा (Negligence of Superiors)—कई बार सन्देशवाहन में बाधाएँ इसलिए भी उपस्थित हो जाती है कि कई अधिकारी इनमें उपेक्षा बरतते हैं । वे केवल आदेश एवं निर्देश देकर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझते हैं । वे कर्मचारियों की शिकायतों एवं सन्देहों के प्रति ध्यान नहीं देते हैं । वे अपने कर्मचारियों की समस्याओं को सुनने का समय भी नहीं देते हैं । इससे भ्रान्तियाँ बढ़ती हैं और सन्देश प्रभावशाली सिद्ध नहीं हो पाते हैं ।

13 अनौपचारिक सन्देशवाहन (Informal Communication)—कई बार अनौपचारिक सन्देशवाहन औपचारिक सन्देशवाहनों के लिए अनेक बाधाएँ खड़ी कर देते हैं । कई बार गलत अफवाहों के कारण सही सन्देश पर लोगों का विश्वास

नही होन पाता है और गलत अफवाहो पर ही अधिक विश्वास करने लग जाते है। इससे सस्था मे बहुत अधिक अव्यवस्था फैल जाती है।

14 परिवतन का विरोध (Resistance to Change)—मानव प्रकृति है कि वे परिवतनो को कम पसन्द करते है। व अपनी वर्तमान परिस्थितियो मे ही काय करना पसन्द करते है। अत उन्हे किसी भी प्रकार के परिवर्तन से सम्बन्धित सूचनाएँ दी जाती है तो उन्हे बुरा लगता है। अतएव परिवर्तनो से सम्बन्धित सन्देशो के उचित प्रकार से सवहन म बहुत बाधाएँ उपस्थित हो जाती है।

15 भौगोलिक परिस्थितियाँ (Geographical Situations) —कई बार भौगोलिक परिस्थितिया भी सन्देशवाहन मे बाधक बन जाती है। वैसे आधुनिक समय म इन पर काफी नियन्त्रण कर लिया गया है। दूरस्थ बैठ व्यक्ति से भी टेलीफोन पर बात करके टेलेक्स पर सन्देश देकर, तार भेजकर भी सन्देश दिये जा सकते है। फिर भी कभी कभी भौगोलिक परिस्थितियो के कारण आवश्यकतानुसार तरीके से सन्देश नही दिया जा सकता है। कभी कभी किसी सन्देश को व्यक्तिश पहुचाना आवश्यक होता है किन्तु दूर बैठ व्यक्ति से मिलना कठिन हो जाता है। अत अन्य साधनो स ही सन्देश पहुँचाना पड़ता है।

सन्देशवाहन की बाधाओ को दूर करने के सुझाव
(Suggestions to overcome Barriers to Communication)

सन्देशवाहन की बाधाओ को दूर करने के लिए निम्न उपाय किये जा सकत है

1 प्रत्यक्ष सन्देशवाहन—सन्देशवाहन की बाधाओ को दूर करन के लिए प्रथम उपाय यह किया जा सकता है कि सन्देशवाहन प्रत्यक्ष (Direct) रूप मे दिये जाने चाहिए। इससे सन्देश सही रूप म एव अर्थो म प्रापिति के पास पहुँच सकेंगे। अतएव सन्देशवाहन मे कम स कम स्तर हो तथा जहा तक सम्भव हो प्रत्यक्ष रूप म सन्देश पहुँचाये जाये।

2 साधारण एव समझने योग्य भाषा—सन्देशवाहन की बाधाओ को दूर करने के लिए द्वितीय महत्त्वपूर्ण उपाय यह है कि सन्देश मे साधारण एव समझने योग्य भाषा का प्रयोग करना चाहिए न कि स्वय के स्तर एव ज्ञान के अनुसार। इसके अतिरिक्त, जहाँ तक सम्भव हो तकनीकी शब्दो का प्रयोग कम से कम किया जाना चाहिए। ऐसे शब्दो का प्रयोग यथा सम्भव नही करना चाहिए जिनके अनेक अर्थ आसानी से निकाले जा सकते हो।

3 प्रेषक को सुनने मे दक्ष होना चाहिये—सन्देश को सफलतापूर्वक तभी पहुँचाया जा सकता है, जबकि प्रेषक बोलने के साथ साथ सुनने म भी दक्ष हो। यदि वह प्रापिति की प्रतिक्रिया को सुनने मे सक्षम नही है तो सन्देश को ठीक प्रकार स नही पहुँचाया जा सकता है। अतएव प्रत्येक प्रबन्धक को सुनने की कला मे

विचय कुशलता प्राप्त कर लेनी चाहिए। जोसेफ डूहर (Joseph Dooher) के अनुसार, "कुशल श्रोता सचेतना का विकास कर लेता है, जो उस व्यक्तिगत बिलगाव की खाई को दूर करने तथा दूसरे के अनुभवो एवं भावनाओं का लाभ उठाने मे सहायता प्रदान करता है।"

4 **आपसी विश्वास एवं सद्भावना**—सन्देशवाहन की कुछ बाधाओं को आपसी विश्वास एवं सद्भाव के अभाव मे न तो प्रेषिति ही सन्देश को उचित रूप मे समझेगा और न प्रेषक प्रेषिति की प्रतिक्रिया को ही। अतएव उच्चाधिकारियो को सदैव अधीनस्थो की शिकायतें एवं सुझावों को सुनने के लिए तत्पर रहना चाहिए तथा अधीनस्थो को भी अपने अधिकारियो के प्रति स्वामिभक्त रहना चाहिये।

5. **अच्छी सन्देशवाहन अवस्था का निर्माण करना चाहिये**—सन्देशवाहन की सफलता इसी बात पर निर्भर करती है कि सन्देशवाहन के प्रेषक एवं प्रेषित किस अवस्था मे हैं। अत प्रबन्धक को चाहिये कि अच्छी अवस्था का निर्माण करें। इसके लिए अच्छी तरह सुनना एवं सूचना भेजना आवश्यक है। यदि कर्मचारियो का प्रबन्ध-वर्ग पर पूर्ण विश्वास नही है तो प्रबन्धको की सूचनाएँ व्यर्थ जावेंगी। अत सन्देश देने के पहले उनसे सलाह लेना आवश्यक है। उनमे इस भावना का विकास करना चाहिये कि वे सस्था के कार्य को अपना कार्य समझे एवं तुरन्त संदेशवाहन के अनुरूप कार्य करने को तत्पर हो जायें।

6 **संदेशवाहन की योजना बनानी चाहिये**—संदेशवाहन की एक निश्चित योजना होनी चाहिये। इससे कर्मचारी किसी संदेश की निश्चित समय पर आशा कर सकते हैं। योजनाबद्ध संदेशवाहन के कारण कर्मचारी-वर्ग भली-भाँति कार्य करेंगे एवं सूचनाओं के एकत्रित करने म अनावश्यक समय व्यर्थ नहीं करेंगे।

संदेशवाहन की योजना बनाते समय निम्नलिखित तथ्यो पर ध्यान अवश्य देना चाहिए—

(i) उद्देश्य का परीक्षण करना चाहिये।
(ii) संदेश की विषय-वस्तु को निर्धारित कर लेना चाहिये।
(iii) संदेश के सभी तथ्यो को भली प्रकार समझ लेना चाहिये।
(iv) संदेश के विभिन्न पहलुओं को क्रमबद्ध कर लेना चाहिये।
(v) संदेश के परिणामों का अनुमान भी लगा लेना चाहिये।

7 **संदेशों का यथा समय सम्प्रेषण**—संदेशवाहन की सफलता के लिए आवश्यक है कि संदेश यथा समय दिए जायें। समय निकलने के बाद या समय से पूर्व दिए गये संदेशों का कोई महत्त्व नही होता है।

8 **संगठन स्तरो मे कमी**—संदेशवाहन शीघ्रतापूर्वक एवं वास्तविक रूप म पहुँचाने के लिए संगठन स्तरों मे कमी करना आवश्यक है। किन्तु संगठन स्तर

कम करने से कई बार प्रत्येक स्तर पर कार्य करने में व्यक्तियों का कार्यभार बढ़ जाता है। अत संगठन के स्तरों में कमी करते समय इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिये।

9 **स्वयपूर्ण (Self cont ined) कार्यात्मक इकाइयों की स्थापना**—प्रत्येक सस्था स्वयपूर्ण कार्यात्मक इकाइयो की स्थापना करके भी सदेशवाहन की कई बाधाओं को दूर किया जा सकता है। जिन व्यक्तियों के बीच सदेशों का आदान-प्रदान बहुत अधिक करना पड़ता हो, उनकी अलग-अलग इकाइयाँ बनाई जा सकती हैं। ऐसा करने से उनमें निकट सम्पर्क बढ़ जावेगा और सदेशों के आदान प्रदान में सुविधा हो जावेगी।

10. सदेशवाहन के अनेक मार्ग—जब सगठन में अनेक स्तर हो जाते हैं और सदेशों के उचित प्रकार से आदान-प्रदान में कठिनाई होने लगती है। ऐसी स्थिति में सदेशवाहन के लिए अनेक मार्ग निश्चित करने चाहिये। इसके अतिरिक्त अनौपचारिक सदेशवाहन भी अपनाया जा सकता है।

11 **आपसी सहयोग**—सदेशवाहन की सफलता के लिए यह अत्यन्त अनिवार्य है। सगठन के प्रत्येक व्यक्ति में आपसी सहयोग होने से वे एक दूसरे द्वारा दिये गये सदेश का उचित अर्थ लगायेंगे और सदेश अनुरूप ही शीघ्रातिशीघ्र कार्य पूर्ण करके सगठन की कार्यकुशलता को बढ़ायेंगे।

12 **पूर्वाग्रह से बचना**—सदेश प्राप्त करने तथा भेजने वाले को पूर्वाग्रह से बचना चाहिये। उन्हें किसी भी तथ्य के बारे में किसी प्रकार का निश्चित विचार रखकर नहीं चलना चाहिये। उन्हें खुला दिमाग रखकर सदेश पर विचार करना चाहिये। अपनी पसन्द एव नापसन्द को ही सर्वोपरि नहीं मानना चाहिये।

13 **व्यवस्थित सन्देशवाहन**—सदेशवाहन को बाधाओं से मुक्त करने के लिए यह भी आवश्यक है कि सदेशवाहन व्यवस्थित होना चाहिये। सदेशवाहन को भाग्य के भरोसे नहीं छोड़ा जाना चाहिये। सदेशवाहन का समय, स्थान, उद्देश्य, विषय-वस्तु सभी पूर्व निश्चित होने चाहिये।

14 उचित माध्यम का चुनाव करना चाहिये।

15 समय, स्थान, आवश्यकता आदि भौतिक तत्वों को ध्यान में रखना चाहिये तथा मानवीय परिस्थितियों को समझकर सदेश देना चाहिये।

16 अपने सदेश में सार्थकता होनी चाहिये।

17 विनम्रता एव शिष्टाचार पद, आयु आदि के अनुसार होना चाहिये।

18 सदेश की मूल बातों पर यथेष्ट बल देना चाहिये।

19 सदेशवाहन में अनुवर्तन होना चाहिये।

20 सदेश की प्रतिक्रिया ज्ञात करते समय उसमे आवश्यक सुधार करना चाहिये । सुधारात्मक प्रक्रिया को पहले से ही निश्चित कर लेना चाहिये ।

अभ्यास के लिए प्रश्न

1 सदेशवाहन की विभिन्न बाधाओ का वर्णन कीजिये । बाधाओ को दूर करने के लिए उपयुक्त सुझाव दीजिये ।
Discuss the barriers to communication. Suggest suitable measures to over come there barriers

2 सदेशवाहन मे बाधाओ के क्या प्रभाव हो सकते है ?
What are the possible effect of communication to barriers.

— —

इकाई-2
(UNIT–2)

1

कार्यालय प्रबंध :

एक सामान्य अध्ययन

(Office Management : A General Study)

"The Office is to a business what the main spring is to a watch"
—*Dicksee*

आधुनिक युग मे व्यावसायिक संस्थाओ का कार्य-क्षेत्र बढता ही जा रहा है। व्यवसाय अब स्थानीय, राज्य स्तरीय, राष्ट्र स्तरीय सीमाओ को लाघकर अन्तर्राष्ट्रीय होता जा रहा है। व्यवसाय के क्षेत्र के विस्तृत हो जाने के परिणामस्वरूप प्रबन्धक अब व्यवसाय सम्बन्धी सभी सूचनाओ को अपने आप एकत्रित करने एव सुरक्षित रखने मे असमर्थ हो गये है। साथ ही वे सूचनाओ के अभाव मे अपने व्यवसाय का कुशलतापूर्वक संचालन करने मे भी असमर्थ हो जाते हैं। फलस्वरूप, व्यवसाय मे कार्यालय का महत्त्व दिन दुगना रात चौगुना बढता ही जा रहा है। कार्यालय का आकार भी बढ रहा है। कार्यालय मे कार्य करने वाले कर्मचारियो की संख्या भी बढती जा रही है। कार्यालय के उपयोग मे आने वाले उपकरणों तथा यन्त्रो की संख्या भी बढ रही है।

ऐसे विस्तृत कार्यालयो का कुशलतापूर्वक प्रबन्ध करना सरल कार्य नही है। इसे कार्यालयो का प्रभावपूर्ण तरीके से संचालन करने के लिए कुछ तकनीकों की आवश्यकता पडती है। हमने पुस्तक के आगे के कुछ अध्यायो मे उन तकनीको पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है।

कार्यालय की परिभाषाएं एव अर्थ
(Definitions and Meaning of Office)

सामान्य बोलचाल की भाषा मे कार्यालय का अर्थ उस स्थान से लगाया जाता है, जहाँ पर कई लिपिक बैठकर कार्य करते हैं तथा जहाँ पर अनेको फाइल, टाइपराइटर, प्रतिलिपि यन्त्र, (Duplicating Machines), पुराने रिकार्ड आदि होते हैं। कार्यालय का उचित एव विषय अनुरूप अर्थ समझने के लिए हम कार्यालय की कुछ विद्वानो द्वारा दी गई परिभाषाओ का अध्ययन करेंगे।

कार्यालय प्रबन्ध के जन्मदाता **विलियम हैनरी लीफिंगवैल** (William Henri Leefingwell) के मतानुसार कार्यालय किसी व्यवसाय का वह भाग है जहाँ पर विभिन्न प्रकार के आँकड़ों का संकलन, वर्गीकरण, तथा अभिलेख बनाने का कार्य किया जाता है तथा उन्हें सुरक्षित रखा जाता है। इन आँकड़ों का विश्लेषण करके उनका उपयोग नियोजन तथा क्रियाओं के परिणामों को ज्ञात करने में किया जाता है। यहाँ सूचनाओं एवं आदेशों को तैयार करने, निर्गमित करने और उन्हें हस्तान्तरण करने का कार्य किया जाता है तथा लिखित संदेश तैयार करने, उनको प्राप्त करने और प्रेषित करने का कार्य किया जाता है।

हिक्स तथा प्लेस (Hicks and Place) के मतानुसार "कार्यालय वह स्थान है जहाँ पर व्यवसाय का नियन्त्रण तन्त्र स्थित है, जहाँ पर नियन्त्रण करने, जानकारी प्राप्त करने तथा कुशलतापूर्वक कार्य करने के उद्देश्य से अभिलेख (Records) तैयार किये जाते हैं, उनको रखा जाता है तथा उपयोग किये जाते हैं।[1]

विली तथा ब्रेट (Wylie and Brecht) के अनुसार "कार्यालय स्वयं कोई व्यवसाय नहीं है, बल्कि वह स्थान है जहाँ पर व्यवसाय का नियन्त्रण तन्त्र स्थित है। यह वह स्थान है जहाँ पर अधिकारी तथा लिपिक वर्ग कार्य करते हैं, जहाँ पर आने-जाने वाले पत्रों को सम्बन्धित व्यक्तियों को भेजा जाता है, जहाँ पर लोग व्यवसाय से सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं तथा जहाँ पर न्यूनतम असुविधा से विभिन्न अभिलेखों एवं विभिन्न क्रियाओं पर ध्यान केन्द्रित किया जा सकता है।[2]

न्यूनर तथा कीलिंग (Neuner and Keeling) के शब्दों में, "कार्यालय व्यावसायिक उपक्रम की सेवा तथा लाभार्जन क्रियाओं को समन्वित करने का केन्द्र-बिन्दु है।[3]

वेब्स्टर डिक्शनरी (Webster's Dictionary) के अनुसार, कार्यालय वह स्थान है जहाँ पर किसी विशिष्ट प्रकार का व्यवसाय किया जाता है अथवा सेवा उपलब्ध की जाती है।[4]

---

1 An office is a place where the control mechanism for a business are located where proper records for the purpose of control information and efficient operation are prepared, handled and serviced
—Hicks and Place

2 'The office is not the business itself but the place where the control mechanism is located It is the place where the executives and clerical force work where mail is directed where the public can contact business and where various activities and records may be concentrated with a minimum of inconvenience
—Wylie and Brecht

3 Office is the focal point for correlating the service and profitmaking activities of a business enterprises
—Neuner and Keeling

4 Office is "a place where a particular kind of business is transacted or a service is supplied
—Webstar's New Collegiate Dictionary

हॉल (Hall) के शब्दों में "कोई भी स्थान जो लिपिकीय कार्य के लिए निश्चित हो," कार्यालय है।[1]

उपर्युक्त परिभाषाओं का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि कार्यालय एक स्थान है, जहाँ से सम्पूर्ण व्यवसाय का नियन्त्रण किया जाता है। इस स्थान पर अधिकारी एवं लिपिक सभी बैठते हैं। यहीं से ग्राहकों एवं सामान्य जनता से सम्पर्क स्थापित किया जाता है। यहीं से पत्र-व्यवहार किया जाता है। संस्था के व्यवसाय से सम्बन्धित महत्वपूर्ण अभिलेख भी यहीं रखे जाते हैं, जिन्हें आवश्यकता पड़ने पर देखा जा सकता है।

कार्यालय के लक्षण या विशेषताएँ
(Characteristics)

उपर्युक्त परिभाषाओं का अध्ययन करने से कार्यालय के निम्नलिखित लक्षण प्रकट होते हैं।

1. कार्यालय एक स्थान है—कार्यालय की परिभाषाओं के अध्ययन से यह *प्रकट होता है कि कार्यालय उस स्थान का नाम है, जहाँ पर व्यवसाय किया जाता है।* कार्यालय अपने आप में कोई व्यवसाय नहीं है। **विली तथा ब्रेट** (Wylie and Brecht) ने उचित ही लिखा है कि **"कार्यालय स्वयं कोई व्यवसाय नहीं है।"** (Office is not the business itself.) यह तो व्यवसाय करने का स्थान है। वेबस्टर (Webseter) ने भी लिखा है कि कार्यालय **"वह स्थान है जहाँ पर किसी विशिष्ट प्रकार का व्यवसाय किया जाता है अथवा सेवा उपलब्ध की जाती है।"** इसी प्रकार हॉल (Hall) ने भी परिभाषा देते समय इसे एक **"निश्चित स्थान"** ही बताया है। *संक्षेप में कार्यालय कोई व्यवसाय नहीं है, बल्कि व्यवसाय करने का स्थान है।*

2. कार्यालय व्यवसाय का साधन है—कार्यालय की दूसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि कार्यालय अपने आप में कोई साध्य नहीं है, बल्कि एक साधन है (Office is a means but not an end in itself)। इससे व्यवसाय करने में सहायता मिलती है। इसमें सम्पूर्ण व्यवसाय का नियन्त्रण किया जाता है। इसीलिए कई विद्वानों ने यह माना है कि **"कार्यालय वह स्थान है, जहाँ पर व्यवसाय का नियन्त्रण तन्त्र स्थित है।"**

3. कार्यालय कहीं पर भी बनाया जा सकता है—कार्यालय किसी स्थान विशेष का नाम नहीं हो सकता है। कार्यालय किसी भी ऐसे स्थान को कहा जा सकता है, जहाँ पर व्यवसाय से सम्बन्धित कार्य किये जाते हैं। इसीलिए **एडवर्ड रोश** (Edward Roche) ने उचित ही लिखा है कि **"किसी विशेष स्थान को ही कार्यालय मानना गलत है।"** उन्होंने आगे लिखा है कि **"कार्यालय वह है जहाँ पर कुछ प्रकार के कार्य किये जाते हैं।"**

---

1 "Any place set aside for work of a clerical nature, is Office —L. Hall

4 **कार्यालय का कार्य निरन्तर चलता है**—डेनायर (Denyer) के अनुसार '**कार्यालय वह कमरा है जहाँ पर आदतन लिपिकीय कार्य किया जाता है।**" (Office is the room where clerical job is habitually performed.) इस प्रकार कार्यालय का एक महत्त्वपूर्ण लक्षण यह भी है कि कार्यालय में कार्य निरन्तर रूप में चलता रहता है। यदि किसी स्थान विशेष पर कुछ दिनों के लिए व्यवसाय का कार्य किया जाता है तो उस स्थान को कार्यालय कहना अनुपयुक्त ही होगा।

5 **कार्यालय सूचनाएँ एकत्रित करता है**—कार्यालय का कार्य सूचनाएँ एकत्रित करना होता है। अतः कार्यालय में आने वाले पत्रों को एकत्रित करके सुरक्षित रखा जाता है तथा बाहर जाने वाले पत्रों की प्रतिलिपियाँ भी सुरक्षित रखी जाती हैं। इसके अतिरिक्त कार्यालय व्यवसाय से सम्बन्धित अन्य सभी सूचनाएँ भी एकत्रित करने का कार्य करता है।

6 **सूचनाएँ उपलब्ध करना**—कार्यालय की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि वह आवश्यकता पड़ने पर व्यवसाय से सम्बन्धित सभी सूचनाएँ प्रबन्धकों को उपलब्ध करता है।

7. **कार्यालय में अधिकारी एवं लिपिक कार्य करते हैं**—कार्यालय एक ऐसा स्थान है जहाँ पर संस्था के अधिकारी एवं लिपिक ही कार्य करते हैं। श्रमिक (Workers) तथा फोरमैन (Foreman) इस स्थान पर कार्य नहीं करते हैं।

8 **कार्यालय वस्तुओं के उत्पादन एवं विक्रय में सुविधा प्रदान करता है**—कार्यालय की एक विशेषता यह भी है कि वह वस्तुओं के उत्पादन एवं विक्रय में सुविधा प्रदान करता है। कार्यालय उत्पादन तथा विक्रय से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण प्रपत्रों एवं अभिलेखों का निर्माण करता है, उन्हें सुरक्षित रखता है तथा आवश्यकता पड़ने पर उपलब्ध करता है।

9 **कार्यालय सम्पूर्ण व्यवसाय की कुशलता का आधार है**—विली (Wylie) ने उचित ही लिखा है कि "**इसके (कार्यालय के) आधार पर व्यवसाय के संचालक अपने व्यवसाय को सुचारु रूप से चला सकते हैं।**" वास्तव में कार्यालय के द्वारा व्यवसाय की सम्पूर्ण क्रियाओं का नियन्त्रण एवं समन्वय किया जाता है। कार्यालय द्वारा प्राप्त सूचनाओं के आधार पर ही प्रबन्धक व्यवसाय की कुशलता बढ़ाने के लिए आवश्यक कदम उठाते हैं।

10 **कार्यालय एवं व्यवसाय को अलग-अलग नहीं किया जा सकता है**—हम ऊपर लिख चुके हैं कि कार्यालय अपने आप में कोई व्यवसाय नहीं है। किन्तु कार्यालय को व्यवसाय से अलग भी नहीं किया जा सकता है। **जिस प्रकार वायु-मण्डल में मौसम सदैव विद्यमान रहता है, उसी प्रकार व्यवसाय में कार्यालय सदैव विद्यमान रहता है।** व्यवसाय को कार्यालय से कभी भी अलग नहीं किया जा सकता है।

11. कार्यालय का अधिकांश कार्य स्टेशनरी से सम्बन्धित है—यह सर्व विदित है कि कार्यालय मे वस्तुओं का निर्माण नही होता है। वहाँ पर माल के रूप को परिवर्तित करके नई वस्तु का निर्माण नहीं किया जाता है। बल्कि कार्यालय में व्यवसाय से सम्बन्धित अभिलेख तैयार किये जाते हैं, सूचनाएँ प्राप्त की जाती है या भेजी जाती हैं। इन सब कार्यो मे स्टेशनरी की आवश्यकता पड़ती है। **भारतीय उत्पादकता दल** (Indian Productivity Team) जब अमेरिका गया, तब **फोर्ड मोटर कं०** (Ford Motor Co ,) के प्रबन्धकों ने उस दल के सामने रहस्योद्घाटन किया कि उस कम्पनी मे एक टन माल उत्पादन करने तक कार्यालय में लगभग एक टन कागज का प्रयोग हो जाता है।

12 यह व्यवसाय का नियन्त्रण एवं स्मरण केन्द्र है—हिक्स तथा प्लेस (Hicks and Place) के अनुमार "कार्यालय व्यवसाय का नियन्त्रण एवं स्मरण केन्द्र है।" वास्तव मे कार्यालय के द्वारा ही सम्पूर्ण व्यवसाय का नियन्त्रण किया जाता है। कार्यालय ही प्रबन्धकों को व्यवसाय के महत्वपूर्ण मामलों की याद दिलाता है और उन्हे यथा समय आवश्यक उपाय करने तथा कदम उठाने के लिए प्रेरित करता है।

कार्यालय के उद्देश्य
(Aims and Objectives of an Office)

विली (Wylie) के अनुसार "**कार्यालय के उद्देश्य व्यवसाय के विभिन्न विभागो की सेवा करना है।**" (The purpose of the office is to render service to the various decisions of the business) **लेफिंगवेल तथा रोबिन्सन** (Leefingwell and Robinson) ने भी इसी प्रकार कार्यालय के उद्देश्यों का वर्णन करते हुए लिखा है कि "**कार्यालय का उद्देश्य व्यवसाय में कार्य करने वालो को दक्षतापूर्वक लिपिकीय सेवाएँ उपलब्ध करना है।**" सक्षेप मे कार्यालय के प्रमुख उद्देश्य निम्न प्रकार है

1. आदेशों की शीघ्रतापूर्वक तथा उचित प्रकार से व्यवस्था करना।
2. शीघ्रतापूर्वक सही सही बिल बनाना।
3. पत्र व्यवहार पर शीघ्रतापूर्वक पर्याप्त ध्यान देना।
4. पत्रो को शीघ्र तथा सही-सही फाइल करना तथा खोजना।
5. उचित प्रकार से लेखे बनाना।
6. उचित प्रकार से पत्र व्यवस्था करना।
7. टाइप करने के समय को बढ़ावा देना।
8. सस्था मे उचित सदेशवाहन की व्यवस्था करना।
9. कार्य पद्धतियों का सरलीकरण करना।
10. आवश्यकता पड़ने पर यथाशीघ्र सही-सही आँकडे तथा सूचनाएँ देना।

कार्यालय के कार्य
(Functions of Office)

एक कार्यालय में कई प्रकार के कार्य किए जाते हैं। यदि उन सभी कार्यों का वर्णन किया जाय तो कई पृष्ठ आगामी से भर सकते हैं। अतएव हम इन कार्यों का संक्षेप में वर्णन करते हैं। सुविधा की दृष्टि से कार्यालय के कार्य को दो भागों में बाँट कर अध्ययन किया जा सकता है

I नियन्त्रण कार्य अथवा प्राथमिक कार्य

II व्यावहारिक कार्य अथवा गौण कार्य

I नियन्त्रण कार्य अथवा प्राथमिक कार्य
(Controlling Or Primary Functions)

कार्यालय का एक महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पूर्ण की संस्था के नियन्त्रण में प्रबन्धकों को योगदान देना है। डनायर (Denyer) के अनुसार **'कार्यालय का कार्य नियन्त्रण का कार्य है जो बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।'** अतः इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए उन्होंने यह लिखा है कि संक्षेप में कार्यालय का आधारभूत कार्य सूचनाएँ प्राप्त करना, उनको संग्रहित करना, उन्हें व्यवस्थित करना (तथा उनका विश्लेषण करना) तथा सूचनाएँ प्रदान करना है। **विली (Wylie) के अनुसार "आधुनिक व्यवसाय में नियन्त्रण अत्यधिक आवश्यक है और यह अभिलेख तथा सांख्यिकीय विश्लेषण पर आधारित है।** इस प्रकार स्पष्ट है कि व्यवसाय के नियन्त्रण के लिए कार्यालय को कई कार्य करने पड़ते हैं उनमें से कुछ कार्य निम्न प्रकार है

1 सूचनाएँ प्राप्त करना (Obtaining Information)—**जान (John) के अनुसार ' चूँकि कार्यालय संदेशवाहन का केन्द्र बिन्दु है। अतः इसके दैनिक कार्यों का महत्त्वपूर्ण भाग आंतरिक एवं बाह्य स्रोतों से सूचनाएँ प्राप्त करना है।** व्यावसायिक कार्यालय में प्रतिदिन कई पत्र आते हैं। इन पत्रों में कई सूचनाएँ होती हैं। कार्यालय इनको प्राप्त करके अपने पास रखता है। जहाँ कहीं से भी सूचनाएँ समय पर प्राप्त नहीं होती हैं कार्यालय उनसे भी सूचनाएँ प्राप्त करने का प्रयास करता है।

सूचनाएँ पत्रों के अतिरिक्त तार, टेलीफोन, टेलेक्स तथा अन्य साधनों के माध्यम से भी प्राप्त होती रहती हैं। ऐसी सूचनाएँ प्राप्त होते ही उन्हें कार्यालय या निर्दिष्ट व्यक्ति तक रखता है या लिख लेता है तथा सम्बन्धित व्यक्तियों को भी बता देता है।

कार्यालय स्वयं अपनी ओर से पहल करके भी सूचनाएँ एकत्रित करता है। कार्यालय अपने वर्तमान एवं सम्भाव्य ग्राहकों से पत्र व्यवहार करके बाजार से सम्बन्धित सूचनाएँ एकत्रित करता है, कर्मचारियों से बात चीत करके उनके विचारों एवं आवश्यकताओं की जानकारी प्राप्त करता है, अपने पूर्तिकर्ताओं से सम्पर्क स्थापित करके कच्चे माल की पूर्ति के सम्बन्ध में सूचनाएँ एकत्रित करता है। इस प्रकार कार्यालय

स्वत आने वाली सूचनाओं एव स्वय के प्रयासो से प्राप्त सूचनाओं को एकत्रित करता है । इसलिए मार्क साइम्स (Mark Symes) ने लिखा था कि "कार्यालय **व्यावसायिक सदेशवाहन का केन्द्र बिन्दु है ।"**

2 **सूचनाओं से अभिलेख बनाना** (Recording Information)—सूचनाओं को प्राप्त करने मात्र से ही कार्यालय का कार्य पूरा नहीं हो जाता है तथा प्रबन्धकों को सहायता नहीं मिल जाती है । अत कार्यालय में ऐसी सूचनाओं से प्रबन्धकों की आवश्यकता को ध्यान मे रखते हुए अभिलेख तैयार किये जाते है । सामान्यत एक व्यावसायिक कार्यालय में क्रयादेश, कार्य प्रगति, मूल्य-सूची, लागत विवरण (Cost Statements) आदि-आदि से सम्बन्धित अभिलेख तैयार किये जाते हैं । इन अभिलेखों के माध्यम से ही प्रबन्धक सम्पूर्ण संस्था पर नियत्रण करने का कार्य करते है । जे बेटी (J Batty) ने इसीलिए लिखा है कि अभिलेख तैयार करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिये कि ये **प्रबन्धकों को व्यवसाय नियन्त्रण को पूरा करने मे समर्थ हो ।** यदि ये अभिलेख प्रबन्धकों को व्यवसाय के नियन्त्रण मे सहायता प्रदान करने में असमर्थ होते हैं, तो इनका कोई विशेष महत्त्व नहीं है ।

हां ! इतना अवश्य है कि कई अभिलेख वैधानिक या कानूनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए ही बनाये जाते हैं । किन्तु, बेटी (Batty) ने इस सम्बन्ध में भी यही लिखा है कि **कानूनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए बनाये जाने वाले अभिलेखों को भी नियन्त्रण के लिए आवश्यक अभिलेखों का अभिन्न अंग बनाना चाहिये ।** अत अभिलेख ऐसे हो, जिनसे वैधानिक आवश्यकताओं के साथ-साथ व्यवसाय के नियन्त्रण में भी योगदान दे सकें ।

3 **सूचनाएँ व्यवस्थित करना** (Arranging Information)—कार्यालय का एक कार्य सूचनाओं को व्यवस्थित करना भी है । सूचनाओं को व्यवस्थित किये बिना उन्हें किसी भी उद्देश्य के लिए प्रयुक्त करना दुष्कर एव भय-युक्त कार्य है । सूचनाएँ कच्ची मिट्टी के समान होती है, जिन्हें एक कार्यालय अपने प्रबन्धकों की आवश्यकता के अनुसार रूप देता है । प्राय बहुत ही कम अवसर ऐसे आते है, जबकि प्रबन्धकों को उनकी आवश्यकता के अनुसार व्यवस्थित सूचनाएँ बाहर से ही मिल जाती है । अत कार्यालय को प्राय सूचनाओं का व्यवस्थित करना ही पड़ता है । कार्यालय विभिन्न स्थानों से सूचनाएँ, तथ्यों तथा आकडों को एकत्रित करके उनको व्यवस्थित करता है ।

कार्यालय का यह एक महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व है कि वह प्रबन्धकों को आवश्यक तथ्य तथा सूचनाएँ उनकी आवश्यकता के अनुसार उपलब्ध करे । अत सूचनाओं को व्यवस्थित करना अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण कार्य है । इस कार्य को पूरा करने के लिए कार्यालय को कुशल एव प्रशिक्षित कर्मचारियों की नियुक्ति करनी पड़ती है ।

4 सूचनाएँ उपलब्ध करना (Providing Information)—कार्यालय स्वत सूचनाएँ एकत्रित तथा व्यवस्थित करके अपने पास रखता ही नही है, बल्कि आवश्यकता पड़ने पर उपलब्ध भी करता है। कार्यालय संस्था प्रबन्धको को, जब भी व मागते है सूचनाए उपलब्ध करता है। प्राय प्रत्येक प्रबन्धक अपने दैनिक कार्य म कार्यालय म सूचनाए मागता ही रहता है। प्राय प्रबन्धक कार्यालय के प्रभारी (Incharge) से पूछते है कि अमुक कार्य का क्या हुआ ? उसकी क्या प्रगति है ? वह मीटिंग कब है ? कौनसी शाखा ने कितना विक्रय किया है ? माल के कितने आदेश प्राप्त हुए है ? कितने आदेशों की पूर्ति की जा चुकी है तथा कितने आदेशों की पूर्ति करनी है ? आदि आदि। कार्यालय इन सबके बारे म अपने पास एकत्रित एव व्यवस्थित सूचनाओं से प्रबन्धको को अवगत करवाता है। सूचनाएँ लिखित या मौखिक दी जा सकती है।

5 अभिलेखो को सुरक्षित रखना (Protecting Records)—कार्यालय का एक महत्त्वपूर्ण कार्य अभिलेखो को सुरक्षित रखना भी है। अभिलेखो को वर्तमान उद्देश्यो के लिए प्रयोग करने के बाद, उन्हे भविष्य के लिए सुरक्षित रखना भी आवश्यक है। भविष्य म इन अभिलेखो के सदर्भ की आवश्यकता पड़ सकती है। इन अभिलेखो के आधार पर आसानी से सस्था का आन्तरिक मूल्याकन तथा नियन्त्रण किया जा सकता है। इन्हे भविष्य म कई निर्णयो का आधार भी बनाया जा सकता है।

6 सूचनाओं की गोपनीयता बनाये रखना (To keep secrecy of the Information)—व्यवसाय म कई बाते गोपनीय रखनी पड़ती है जिससे आवश्यक प्रतिस्पर्धा का सामना न करना पड़े। इस हेतु कार्यालय का एक महत्त्वपूर्ण कार्य यह भी होता है कि कार्यालय म प्राप्त एव एकत्रित सूचनाओं की वाछित गोपनीयता बनाये रखे। कुछ सूचनाओं का कोई विशेष महत्त्व नही होता है किन्तु कुछ अन्य सूचनाएँ ऐसी भी होती है जिनकी गोपनीयता भग होने पर सस्था की स्थिति पर बहुत बुरा प्रभाव पड सकता है। अत ऐसी सूचनाओं को गोपनीय रखना कार्यालय का कर्त्तव्य है।

7 जन सम्पर्क (Public Relations)—कार्यालय का एक कार्य जन सम्पर्क बनाये रखने का भी है। सस्था से सम्पर्क स्थापित करने के लिए कई बाह्य व्यक्ति आते ही रहते है। कार्यालय ऐसे व्यक्तियो को उचित अधिकारियो से मिलाने तथा आवश्यक सूचनाएँ देने का काय भी करता है। कार्यालय का यह काय इतनी सावधानी से किया जाना चाहिये, जिससे बाहर से आने वाला प्रत्येक व्यक्ति सस्था की अच्छी तस्वीर अपने मस्तिष्क म बना सके। अत जन सम्पर्क अधिकारी की नियुक्ति करते समय बहुत ध्यान रखना चाहिये। ऐसा व्यक्ति अत्यन्त विनम्र, व्यवहार कुशल होना चाहिए।

II. सचालकीय कार्य अथवा गौण काय
(Operating or Secondary Functions)

सचालकीय कार्य ऐसे कार्य होते हैं, जिनको करना किसी कार्यालय को चलाने के लिए बहुत ही आवश्यक होता है। इनके बिना कार्यालय का कार्य चलाना कठिन हो जाता है। सामान्यत एक कार्यालय को निम्नलिखित सचालकीय अथवा गौण कार्य करने पडते हैं

1. कर्मचारियों की भर्ती, चुनाव तथा प्रशिक्षण (Recruitment, Selection and Training of Personnel)—कार्यालय के कार्यों को करने के लिए कई कर्मचारियों की आवश्यकता पड़ती है तथा कार्यालय कुशलता उसमे कार्य करने वाले कर्मचारियों पर निर्भर करती है। अत कार्यालय का कुशल सचालन करने के लिए कार्यालय को अच्छे कर्मचारियों का चुनाव करना पड़ता है। चुनाव करने के बाद उनके प्रशिक्षण की उचित व्यवस्था करनी पड़ती है।

2. कार्यालय के उपकरणों की व्यवस्था करना (Arranging Office Equipments)—आज का युग स्वचालित मशीनों का युग है। कार्यालय मे कई मशीनों की सहायता से कर्मचारी काय करते हैं। आज छोटे से छोटा कार्य करने के लिए भी मशीनों की सहायता ली जाती है। इन मशीनों की व्यवस्था करने या क्रय करने का कार्य भी कार्यालय का ही है।

3 सम्पत्ति की सुरक्षा करना (Maintenance of Assets)—सामान्यत सस्था की समस्त सम्पत्ति की सुरक्षा का दायित्व सस्था के कार्यालय पर ही होता है। कार्यालय के अभिलेखों के अन्तर्गत जितनी भी सम्पत्ति है, उसके प्रति कार्यालय का दायित्व माना जाता है। अत कार्यालय को अपने भवन, मैदान, गाडियाँ, फर्नीचर, यन्त्र तथा उपकरण की सुरक्षा के सभी उपाय करने पडते हैं। इनकी यथा समय मरम्मत तथा सफाई आदि का काय कार्यालय को करवाना पडता है।

4 कर्मचारियों के लिए वेतन व्यवस्था करना (Salary Administration for Employees)— कर्मचारियों की कार्य कुशलता एव रुचि को बनाये रखने के लिए उन्हे उचित वेतन देना एव अच्छी कार्य दशाएँ उपलब्ध करना बहुत ही आवश्यक है। कार्यालय के कर्मचारियों के उचित वेतन तथा कार्य दशाओं की व्यवस्था करना कार्यालय का एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। कर्मचारियों के लिए वेतन, छुट्टी, बीमारी छुट्टी, भविष्य निधि, पेंशन आदि की व्यवस्था करना कार्यालय का कार्य है।

5 कार्यालय की कार्य पद्धति का निर्धारण करना (Determining Office Procedures)—कार्यालय का कार्य एक निश्चित पद्धति से किया जाता है। तो कार्यालय का कार्य शीघ्र एव कुशलतापूर्वक पूरा किया जा सकता है। अत कार्यालय का एक कार्य कार्यालय मे सम्बन्धित कार्य पद्धति का निर्धारण करना भी है। इस

इन प्रत्येक कार्य का विश्लेषण किया जाता है तथा उस कार्य को सर्वोत्तम विधि से करने की पद्धति भी निश्चित की जाती है।

6 कार्यालय की स्टेशनरी का प्रमाप व अभिलेख प्रारूप निर्धारित करना Determining Standards for *Office* Stationary *and Forms for* Record —कार्यालय का कार्य उचित प्रमापों के अनुसार करने के लिए कार्यालय की कार्य पद्धति ही पर्याप्त नहीं है बल्कि प्रभावित स्टेशनरी तथा अभिलेख-प्रारूप भी होना आवश्यक है। पत्रों के लिखने के लिए प्रयोग में लिया जाने वाला कागज, टाइप मशीन उसका रिबन आदि सभी अपना महत्त्व रखते हैं। इन्हें पहले से निर्धारित कर लेना चाहिये। *इसी प्रकार अभिलेख बनाने के लिए कुछ निश्चित प्रारूपों के* रजिस्टर या प्रपत्र बना लेने चाहिये। इससे कार्य आसानी से तथा शीघ्रतापूर्वक पूरा किया जा सकता है।

आधुनिक कार्यालय की क्रियाएं
(Activities of a Modern Office)

कार्यालय कार्यों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि एक आधुनिक कार्यालय को दिन प्रतिदिन निम्नलिखित क्रियाएँ करनी पड़ती हैं—

1 उचित कार्य विधियों एवं कार्यालय दिनचर्या का निर्धारण करना।

2 अभिलेखों का निर्माण करना।

3 अभिलेखों का फाइलिंग तथा अनुक्रमणिका (Index) का निर्माण करना।

4 आगत एवं निर्गत पत्रों की व्यवस्था करना।

5 यथा समय गश्ती पत्र, विज्ञप्ति, सूचनाएँ जारी करना।

6 टेलीफोन एवं तार प्राप्त करना तथा उनका उत्तर देना।

7 बाह्य पक्षकारों से सम्पर्क स्थापित करना।

8 सभाएँ तथा सम्मेलन आयोजित करना अथवा इनमें भाग लेना।

9 पत्रों का टाइप करना, बहुप्रतिलिपिकरण (Duplications) करना, आदि।

10 विभिन्न प्रकार के विवरण (Statements) तथा प्रतिवेदन (Reports) *तैयार करना।*

11 *कार्यालय उपकरण यथा टाइप मशीनें, गणना यंत्र, अन्य यंत्र, फर्नीचर* आदि का क्रय करना।

12 कार्यालय के लिए आवश्यक प्रपत्रों का प्रारूप तैयार करना, रजिस्टरों का आकार तथा प्रारूप निश्चित करना।

13 कार्यालय कार्यों के लिए आवश्यक स्टेशनरी का क्रय करना तथा उसका करना।

14 सस्था के कर्मचारियो की भर्ती करना, उनका चुनाव करना तथा उनके प्रशिक्षण की व्यवस्था करना।

15 साख्यकीय सूचनाओं को एकत्रित करके उनका सारणीयन करना, चार्ट तथा ग्राफ बनाना तथा अन्य प्रकार से उचित रूप में प्रस्तुतीकरण करना।

16 कार्यालय यत्रो एव सम्पत्तियो की सुरक्षा की व्यवस्था करना।

कार्यालय का महत्त्व या लाभ
(Importance or Advantages of Office)

आज कार्यालय का एक व्यावसायिक सस्था मे महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह सम्पूर्ण सस्था का **'स्नायु केन्द्र'** है। उसे कुछ लोग **'व्यवसाय का हृदय'** भी कहते हैं। कुछ अन्य लोग इसे 'सेवा केन्द्र' अथवा व्यवसाय का मस्तिष्क भी कहते है। कभी-कभी तो लोग कार्यालय को ही व्यवसाय समझ लेते है। आज यह छोटे से छोटे कारखाने, दूकान या सेवा सस्थान मे भी पाया जाता है। यही वह स्थान है, जहाँ पर सस्था के सभी महत्त्वपूर्ण कार्यों को निर्धारित किया जाता है, नीतियाँ बनाई जाती हैं तथा सदेशो का आदान-प्रदान किया जाता है।

आधुनिक युग मे इसका महत्त्व दूज के चाँद की भाँति बढता ही जा रहा है। यह प्रत्येक सस्था का आधार है। इसके अभाव मे सस्था का सफलतापूर्वक कार्य करना दुष्कर हो जाता है। इसीलिये डिक्सी (Dicksee) ने उचित ही लिखा है कि **"व्यवसाय मे कार्यालय का उतना ही महत्त्व है जितना कि घडी में मुख्य कमानी का होता है।"** (The offices is to business what the main spring is to watch) यदि कोई घडी बिना कमानी के ठीक समय बता सकती है और सतोषप्रद ढग से चल सकती है तो व्यवसाय भी बिना कार्यालय के चल सकता है। किन्तु व्यवहार मे न तो घडी बिना कमानी के चल सकती है और न व्यवसाय बिना कार्यालय के कुशलता से कार्य ही कर सकता है। दोनो के लिये अपनी अपनी आवश्यकताएँ हैं और दोनो ही अभिन्न अग है, जिन्हे कभी भी अलग नही किया जा सकता।

कार्यालय के बढते हुए महत्त्व के कारण ही हेनरी ब्रूरे (Henry Brure) ने लिखा था कि **"कार्यालय को आज उत्पादन इकाई की तरह ही मान्यता प्राप्त है जिसकी कार्यक्षमता उतनी ही महत्त्वपूर्ण है, जितनी कि निर्माणी विभाग की।"** इस प्रकार कार्यालय व्यवसाय की एक महत्त्वपूर्ण इकाई है। कार्यालय सस्था की सफलता का आधार है। एक व्यावसायिक सस्था मे कार्यालय के महत्त्व को नीचे कुछ शीर्षको मे विस्तार पूर्वक समझाने का प्रयास किया गया है।

1. कार्यालय व्यवसाय का महत्त्वपूर्ण अग है— बरनी (Berni) के अनुसार **जिस तरह से आजकल व्यवसाय का संचालन किया जाता है, उसमे कार्यालय व्यवसाय का महत्वपूर्ण** अग है। आधुनिक समय मे छोटे तथा बडे सभी प्रकार की व्यावसायिक सस्थाओ मे कार्यालय का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रत्येक सस्था को कार्या

लगातार स्थापना करनी ही पड़ती है। व्यावसायिक संस्था की स्थापना के पूर्व से ही कार्यालय की आवश्यकता पड़ती है तथा संस्था की समाप्ति के बाद तक आवश्यकता रहती है। यह आधुनिक संस्थाओं का आधार है। इसके बिना संस्था के किसी भी विभाग की कार्य कुशलता की आशा करना व्यर्थ है। इसीलिए **चार्ल्स ई. विल्सन** (Charles E. Wilson) ने लिखा है कि "**कार्यालय के बिना कारखाने के पहिये नहीं चलते हैं तथा माल एवं सेवाओं का विक्रय सम्भव नहीं है।** (Without the office factory wheels do not turn and sales of goods and services is not possible.) स्पष्ट है कार्यालय व्यवसाय का एक महत्वपूर्ण अंग है।

2 **नियोजन मे सहायक**—कार्यालय का एक सर्वाधिक महत्त्व सम्पूर्ण संस्था के नियोजन में है। संस्था का नियोजन कार्यालय की सहायता के बिना पूरा नहीं किया जा सकता है। नियोजन में कई प्रकार की सूचनाओं, अभिलेखों, आँकड़ों, प्रतिवेदनों की आवश्यकता पड़ती है। इन सबकी उपलब्धि कार्यालय में ही हो सकती है। इसी लिए लेफिंगवेल तथा रोबिन्स (Leffingwell and Robinson) ने लिखा है कि "**एक सुव्यवस्थित कार्यालय प्रबन्धकों को कुशलता पूर्वक योजना बनाने, उन्हें कार्यान्वित करने, उनकी प्रगति को जानने, उनकी प्रभावशालीनता को निर्धारित करने, उनके परिणामों का यथाशीघ्र मूल्यांकन करने में सहायता प्रदान करता है।**"[1]

3 **निर्णयों मे सुविधा**—कार्यालय प्रबन्धकों को निर्णयन में सुविधा प्रदान करता है। यह सब विदित है कि सूचनाएं निर्णयों का आधार है। लेफिंगवेल तथा रोबिन्स (Leffingwell and Robinson) ने भी लिखा है कि "**यथा समय उपलब्ध विश्वसनीय अभिलेख निर्णयों के लिए आधार प्रदान करता है।**"[2] अतः कहा जा सकता है कि प्रबन्धकों का निर्णयन में कार्यालय की आवश्यकता पड़ती है।

4 *नियन्त्रण मे सहायता*—कार्यालय प्रबन्धकों को सम्पूर्ण व्यवसाय के नियन्त्रण में सहायता प्रदान करते हैं। विली (Wylie) के अनुसार "**कार्यालय संस्था के अधिकारियों को संस्था पर उचित नियन्त्रण स्थापित करने में सहायता प्रदान करते हैं।**" (Office assists company officials in exercising proper control) कार्यालय में संस्था के विभिन्न विभागों के लिए निर्धारित प्रमाप सुरक्षित रहते हैं तथा प्रत्येक विभाग की प्रगति प्रतिवेदन भी कार्यालय में ही आता है। अतः प्रबन्धकों को प्रमापों एवं वास्तविक कार्य प्रगति में तुलना करने का अवसर मिलता है और विचलनों के पाये जाने पर आवश्यक प्रयास करते हैं।

[1] A well organised office makes it possible for management to plan its operations intelligently, to put its plans into effect, to follow their progress currently, to determine their effectiveness promptly, to appraise the results without delay —Leffingwell and Robinson

[2] "Timely and reliable records [illegible] decisions."
—Leffingwell and Robinson

5 समन्वय मे सुविधा—कार्यालय प्रबन्धको को संस्था के विभिन्न विभागो के मध्य समन्वय स्थापित करने मे भी योगदान देता है। लेफिंगवेल तथा रोबिन्सन (Leffingwell and Robinson) ने उचित लिखा है कि **एक सुसगठित कार्यालय प्रबन्धको को व्यवसाय की सभी क्रियाओ मे समन्वय स्थापित करने मे सहायता प्रदान करता है।**[1] यदि किसी विभाग मे संस्था के उद्देश्यो के अनुरूप कार्य न हो तो प्रबधक ऐसे कार्यो को रोकने का प्रयास करता है। यदि किसी विभाग मे कार्यो का दोहराव हो रहा हो, तो भी उसे प्रबधक रोकने का प्रयास करता है। किन्तु यह सब तभी सम्भव हो जबकि सभी विभागों के सम्बन्ध मे कार्यालय से सूचनाएँ प्राप्त की जाय। कार्यालय सभी विभागो की तुलनात्मक सूचनाएँ रखता है जिससे ही समन्वय किया जा सकता है।

6. सुविधाएँ प्रदान करना—कार्यालय का महत्त्व इस दृष्टिकोण से भी है कि यह विभिन्न विभागो को विभिन्न सुविधाएँ प्रदान करता है। यह उत्पादन, क्रय, विक्रय, कर्मचारी लेखा रोकड आदि सभी विभागो को विभिन्न प्रकार से सुविधाएँ प्रदान करता है। ये सुविधाएँ मुख्यत कार्यालय द्वारा प्रदत्त सूचनाओ के कारण ही मिलती हैं। टैरी (Terry) ने उचित ही लिखा है कि **कार्यालय किसी व्यवसाय के उत्पादन, विक्रय, वित्त, इन्जीनियरिंग तथा क्रय जैसे महत्त्वपूर्ण कार्यों को पूरा करने के लिए आवश्यक सूचनाएँ प्रदान करके सहायता करता है।**

7 जन सम्पर्क का साधन—कार्यालय का एक महत्त्वपूर्ण लाभ यह भी है कि यह संस्था के जनसम्पर्क का साधन है। इसके माध्यम से ही संस्था सामान्य जनता से सम्पर्क करती है सदेशो का आदान प्रदान करती है।

8 वैधानिक नियम—वैधानिक नियमो के कारण भी कार्यालय का महत्त्व बढ गया है। कई अधिनियमो का परिपालन करने के लिए कार्यालय मे बहुत से लिपिकीय कार्य करने पडते है। उदाहरणार्थ, आयकर, विक्रयकर अधिनियम के अनुसार एक विशेष प्रारूप मे ही बही खाते बनाने पडते है। इसी प्रकार अन्य कई व्यवसायो मे भी कानूनी कार्यवाही पूरी करने हेतु कई खाते तैयार करने पडते है तथा कई प्रारूप (Forms) भरने पडते है। अत कार्यालय की आवश्यकता पडती है।

9 कुछ व्यवसायो की प्रकृति—कुछ व्यवसायो की प्रकृति ही ऐसी है, जिनमे *बिना कार्यालय के कार्य नहीं चल सकता है। उदाहरणार्थ बीमा व्यवसाय, विज्ञप्ति* वितरण व्यवसाय, दलाली का व्यवसाय, बैंक आदि इनमे न गोदामो की आवश्यकता पडती है, न कारखाने और न दुकानो की ही। इनमे कार्य प्राय कागजो पर ही होता है। जिसे कार्यालय मे बैठे हुए लिपिक ही करते है। अत ऐसे व्यवसायो के लिए कार्यालय आवश्यक हो गये है।

---

1 A well-organised office makes it possible for the management to coordinate all the activities of the business — Leffingwell and Robinson

10. वैज्ञानिक प्रबन्ध—आधुनिक युग के प्रबंधक अपने व्यवसाय का प्रबंध वैज्ञानिक प्रबंध के सिद्धान्तों के आधार पर करना पसन्द करते हैं। वे अपने-अपने व्यवसाय को केवल धारणाओं, मन की भावनाओं, तथा अनुमान के आधार पर चलाना पसन्द नहीं करते हैं। वे अपने व्यवसाय के लिए प्रत्येक निर्णय तथ्यों के आधार पर करना चाहते हैं। इनके लिए सूचनाओं को एकत्रित करने तथा व्यवस्थित करने की आवश्यकता पड़ती है जो कार्यालय में ही सम्भव है।

11. अभिलेखों की सुरक्षा —कार्यालय सूचनाओं को सुरक्षित रखने का कार्य भी करता है। यह अभिलेख बनाकर उन्हें भविष्य की आवश्यकता के लिये सुरक्षित रख लेता है तथा जब भी किसी भी व्यक्ति को उनकी आवश्यकता पड़ती है, उपलब्ध करता है।

12. नियंत्रण की अधिक आवश्यकता —कार्यालय का पिछले कुछ वर्षों में अत्यधिक महत्त्व बढ़ जाने का एक महत्त्वपूर्ण कारण यह भी है कि व्यवसाय में अधिक नियंत्रण की आवश्यकता होने लगी है। अत: आज बड़ी-बड़ी संस्थाओं में वर्ष में केवल एक बार ही वित्तीय लेखे नहीं बनाए जाते हैं बल्कि प्रतिमाह भी लेखे तैयार किये जाते हैं। प्रबंधक प्रतिमाह व्यवसाय की स्थिति से अवगत होना चाहते हैं। इसलिए कार्यालय का महत्त्व बढ़ता ही जा रहा है। संयुक्त पूँजी वाली कम्पनियों की स्थापना से स्वामी एवं प्रबन्धक अलग अलग हो गये हैं। इसलिये प्रबंधकों को संस्था की प्रगति का प्रतिवेदन (Report) भी देना पड़ता है। इसमें भी कार्यालय की सहायता की आवश्यकता पड़ती है।

II

कार्यालय प्रबन्ध की परिभाषाएँ एवं अर्थ

(Definitions and Meaning of office Management)

कार्यालय प्रबंध को अनेकों विद्वानों ने अनेक प्रकार से परिभाषित किया है। इसका प्रमुख कारण यह रहा है कि पिछले कुछ वर्षों में कार्यालय प्रबंध के क्षेत्र में बहुत ही आमूल-चूल परिवर्तन हुए हैं। यहाँ हम कुछ महत्त्वपूर्ण परिभाषाओं का अध्ययन करेंगे। तत्पश्चात् कार्यालय प्रबन्ध का अर्थ समझने का प्रयास करेंगे।

ब्रिटिश इन्स्टीट्यूट ऑफ ऑफिस मैनेजमेन्ट (British Institute of Office Management) के अनुसार, 'कार्यालय प्रबंध-प्रबंध की वह शाखा है जो सूचनाओं के प्राप्त करने, अभिलेख तैयार करने तथा विश्लेषण करने, नियोजन तथा संदेशवाहन की व्यवस्था करने से सम्बन्धित है, जिसकी सहायता से व्यवसाय का प्रबंधक वर्ग अपने व्यवसाय की सम्पत्तियों की सुरक्षा करता है, इसके कार्यों को बढ़ावा देता है तथा दूसरे उद्देश्यों को प्राप्त करता है।'[1]

---

1. 'Office Management is that branch of management which is concerned with the services of obtaining, recording and analysing informations of planning and communicating by means of which the management of a business safeguards its assets, promotes its affairs and achieves its objectives.' —British Institute of Office Management

लेफिंगवेल तथा रोबिन्सन (Leffingwell and Robinson) के अनुसार "कार्यालय प्रबंध, प्रबंध की वह कला तथा विज्ञान है, जो कार्यालय के कार्यों के दक्षतापूर्वक करने से सम्बन्धित है, जिन्हें कहीं पर किसी भी समय पूरा किया जाना है।[1]

विली तथा ब्रेट (Wylie and Brecht) के अनुसार "कार्यालय प्रबंध कम से कम प्रयास तथा धन खर्च करके, कम से कम समय में उच्च प्रबंधकों को स्वीकार्य पद्धति से यथा सम्भव श्रेष्ठ परिणाम प्राप्त करने के लिये मनुष्यों, पद्धतियों, मशीनों तथा सामग्री का प्रबंध एवं नियंत्रण है।[2]

टेरी (Terry) के अनुसार "कार्यालय प्रबंध का तात्पर्य कार्यालय कार्य का नियोजन, संगठन, उत्प्रेरण तथा नियंत्रण करने से है तथा उन व्यक्तियों से है जो पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये कार्य कर रहे हैं।[3]

आर्थर एच० गेगर (Arthur H Gager) के शब्दों में "कार्यालय प्रबंध किसी संगठन के संदेशवाहन तथा अभिलेख सेवाओं के प्रशासन का कार्य है।[4]

डेनायर (Denyer) के शब्दों में कार्यालय प्रबंध सर्वाधिक रूप से सुविधाप्रद वातावरण में यथा सम्भव श्रेष्ठ पद्धतियों के प्रयोग से एक विशिष्ट उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये कर्मचारियों का श्रेष्ठतम उपयोग करने हेतु कार्यालय का संगठन है।[5]

मिल्स तथा स्टेंडिंगफोर्ड (Mills and Standingford) के मतानुसार 'कार्यालय प्रबंध विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति के लिये वातावरण के अनुरूप साधनों के प्रयोग से कार्यालय के कर्मचारियों का मार्ग दर्शन करने की कला है।।'[6]

कार्यालय प्रबंध की उपर्युक्त परिभाषाओं का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि 'कार्यालय प्रबंध वह कला तथा विज्ञान है जिसके द्वारा कार्यालय के कार्यों का

---

1 'Office Management is that branch of the art and Science of management which is concerned with the efficient performance of office work, whenever and wherever that work is to be done
—Leffingwell and Robinson

2 'Office management may be defined as the manipulation and control of men, methods, machines and materials to achieve the best possible results results of the highest possible quality—with the expenditure of the least possible effort and expense in the shortest practicable time and in a manner acceptable to top management''
—Wylie and Brecht

3 "Office management is the planning, organising, actuating and controlling of office work and of there performing it so as to achieve the pre-determined objectives'
—Terry

4 'Office management is the function of administering the communication and record services of an organisation
—Arthur H Gager

5 "Office management is the organisation of an office in order to achieve a specified purpose, and to make the best use of the personnel by using the most appropriate machines and equipment, the best possible methods and by providing the most suitable environment
—Denyer

6 'Office management is the art of guiding the personnel of the office in the use of means appropriate to its environment in order to achieve its specified purpose''
—Mills and Standingford

इस प्रकार नियोजन संगठन, उत्प्रेरण तथा नियन्त्रण किया जाता है कि कम से कम प्रयासों तथा व्यय से अधिक से अधिक अच्छा कार्यालय कार्य किया जा सके।"

कार्यालय प्रबंध की विशेषताएं या लक्षण
(Characteristics of Office Management)

कार्यालय प्रबंध की विभिन्न परिभाषाओं का वर्णन करने से कार्यालय प्रबंध के निम्नलिखित कुछ महत्त्वपूर्ण लक्षण प्रकट होते हैं

1 कर्मचारी (Personnel)—कार्यालय प्रबंध का प्रथम लक्षण यह है कि कार्यालय का कार्य कर्मचारी करते हैं। कर्मचारी वर्ग को कार्यालय में से निकाल दिया जाय तो कार्यालय में कुछ भी नहीं रहता है। दूसरे शब्दों में, कर्मचारी वर्ग कार्यालय प्रबंध का आधार है। कर्मचारियों के अभाव में कार्यालय में कुछ भी कार्य करना सम्भव नहीं है। यदि किसी स्थान पर कार्य नहीं होगा तो उसे कभी भी कार्यालय नहीं कहा जायगा। अतएव कार्यालय प्रबंध कर्मचारियों से कार्य करवाता है और उन्हें मार्ग दर्शन देता है।

2 साधनों पर आधारित प्रबंध—कार्यालय प्रबंध की दूसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह कुछ साधनों (means) पर आधारित है। कार्यालय प्रबंध अब केवल सीमित साधनों यथा टाइपराइटर तथा टेलीफोन आदि से सम्भव नहीं है। कार्यालय का उचित प्रबंध करने के लिए अब विभिन्न आधुनिक साधन आवश्यक माने जाने लगे हैं। कार्यालय प्रबंध में विभिन्न प्रकार की फाइलें, संचार यन्त्रों, समय एवं श्रम संचय साधनों और विभिन्न प्रारूपों में रजिस्टरों, प्रपत्रों, फर्नीचर आदि की आवश्यकता पड़ती है। यह आधुनिक कार्यालय प्रबंध की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है।

3 वातावरण (Environment)—कार्यालय प्रबंध का एक महत्त्वपूर्ण लक्षण यह भी है कि इसकी सफलता कार्यालय के वातावरण से बहुत अधिक प्रभावित होती है। कार्यालय का आन्तरिक एवं बाह्य दोनों ही प्रकार का वातावरण कार्यालय प्रबंधक की कुशलता को बढ़ाता है।

4 पूर्व निश्चित उद्देश्य (Pre-determined Purposes)—कार्यालय प्रबंध संस्था के पूर्व निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रयोग करता है। कार्यालय प्रबंध के उद्देश्य सम्पूर्ण संस्था के उद्देश्यों की प्राप्ति में योगदान देते हैं। इसके उद्देश्य पृथक् ही नहीं हो सकते हैं।

5 कार्यालय प्रबंध प्रबंध का एक अभिन्न अंग है—कार्यालय प्रबंध संस्था के सम्पूर्ण प्रबंध का एक अभिन्न एवं महत्त्वपूर्ण अंग है। कार्यालय प्रबंध का अपने आप में कोई विशेष महत्त्व नहीं है। बल्कि कार्यालय प्रबंध का महत्त्व संस्था के सम्पूर्ण प्रबंध के कारण ही है। प्रबंधकों को ही कार्यालय प्रबंध की आवश्यकता पड़ती है।

6. **कार्यालय प्रबंध 'सुगमता' (Facilitating) प्रदान करने सम्बन्धी कार्य करता है**-कार्यालय प्रबंध की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह प्रबंधकों को संस्था के कार्यों में सुगमता प्रदान करने का कार्य करता है। कार्यालय संस्था के प्रबंधकों को वे सभी आवश्यक सूचनाएँ तथा साधन उपलब्ध करता है, जिससे प्रबंधकों को समस्त संस्था के संचालन में मदद मिलती है।

7. **यह प्रबंधकों को गतिशील बनाता है**—कार्यालय का एक महत्वपूर्ण लक्षण यह भी है कि यह प्रबंधकों को गतिशील बनाता है। एक विद्वान ने उचित ही लिखा है कि **"कार्यालय प्रबंध आधुनिक प्रबंधकों को गति प्रदान करने वाला प्रतिनिधि है।"** (Office management is a 'catalytic agent' of modern management.)। कार्यालय प्रबंध, प्रबंधकों को संस्था की प्रगति से सम्बन्धित सूचनाएँ तथा आँकड़े उपलब्ध करता है, उन्हें संस्था की प्रतिस्पर्द्धात्मक स्थिति से अवगत करवाता है, ताकि प्रबंधक यथा समय उचित निर्णय ले सकें।

8. **कार्यालय प्रबंध सूचनाओं के संकलन, सम्पादन तथा अभिलेख बनाने तथा संदेशवाहन का कार्य करता है**—*कार्यालय में मुख्य रूप से सूचनाओं को प्राप्त किया जाता है, उन्हें व्यवस्थित किया जाता है तथा उनको संस्था की आवश्यकता के अनुसार बनाकर उनसे अभिलेख तैयार किये जाते हैं। तत्पश्चात् इनको उन व्यक्तियों या अधिकारियों को उपलब्ध किये जाते हैं जिनको इनकी आवश्यकता होती है।*

9. *कार्यालय प्रबंध कार्यालय कार्यों का उचित नियोजन, संगठन, उत्प्रेरण तथा नियंत्रण करता है।*

10. *यह सम्पूर्ण संस्था का केन्द्र बिन्दु या नाड़ी संस्थान है।*

11. *यह सम्पूर्ण संस्था के समन्वय एवं नियंत्रण के लिए कार्य करता है।*

12. *कार्यालय प्रबंध कला तथा विज्ञान दोनों है।*

13. *कार्यालय प्रबंध करने के लिए ज्ञान, चातुर्य तथा अभ्यास की आवश्यकता पड़ती है।*

कार्यालय प्रबंध के कार्य

(Functions of Office Management)

कार्यालय प्रबंध के कई कार्य होते हैं। उनके प्रमुख कार्यों का निम्नलिखित भागों में बाँटकर अध्ययन किया जा सकता है :—

I. प्राथमिक या आधारभूत कार्य

II. गौण या सहायक कार्य

I. प्राथमिक या आधारभूत कार्य
(Primary or Fundamental Functions)

कार्यालय प्रबंधक को भी सामान्य प्रबंध की भाँति कुछ आधारभूत कार्य करने पड़ते हैं। ये आधारभूत कार्य निम्नलिखित हैं :—

1 नियोजन (Planning)—नियोजन करना कार्यालय प्रबन्ध का एक महत्त्वपूर्ण कार्य माना जाता है। नियोजन का तात्पर्य किसी भी कार्य की क्रियाविधि का पूर्व निर्धारण है। दूसरे शब्दों में, नियोजन वह कार्य है, जिसके द्वारा यह तय किया जाता है कि किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कौन सा कार्य किस समय किस स्थान पर, किस प्रकार से एवं किसके द्वारा किया जाय।

नियोजन करना एक सरल कार्य नहीं है। यह एक कठिन प्रक्रिया है, जिसको पूरा करने के लिए चिन्तन, विश्लेषण एवं योग्यता की आवश्यकता पड़ती है। पिछले कुछ वर्षों में कार्यालय तकनीक में हुए परिवर्तनों एवं विकास के परिणामस्वरूप कार्यालय कार्यों का नियोजन करना और भी कठिन कार्य हो गया है। इस परिस्थिति में कार्यालय प्रबन्धकों को भी नियोजन का कार्य करते समय इन सब बातों को ध्यान में रखना चाहिए। उसे ऐसी योजना का निर्माण करना चाहिये जिसमें कम से कम लागत तथा प्रयासों में अधिक से अधिक अच्छा कार्य हो सके। टैरी (Terry) ने उचित ही लिखा है कि **"अच्छा नियोजन देरी को रोकने का प्रयास करता है न कि देरी का सुधार करने का। यह भावी कठिनाइयों का अनुमान लगाता है तथा उनकी व्याख्या करता है तथा उनमें सावधानी बरतने की व्याख्या करता है।**[1]

2 संगठन (Organising)—प्रत्येक कार्यालय प्रबन्धक जब अपने भावी कार्यक्रमों की रूप रेखा तैयार कर लेता है तो उसे क्रियान्वित करना चाहता है। अर्थात् नियोजन के क्रियान्वयन करने के लिए संगठन का होना परमावश्यक है। संगठन का तात्पर्य कार्यों, कर्मचारियों तथा भौतिक साधनों के बीच आपसी सम्बन्धों का निर्धारण करने से है। संगठन वह साधन है जिसके द्वारा प्रबन्धक अपने नियोजित कार्यों को भली प्रकार पूरा कर सकता है। अच्छे संगठन के अभाव में नियोजन की सफलता संदिग्ध ही रहती है।

कार्यालय प्रबन्धक कार्यालय में कार्य करने वाले कर्मचारियों के बीच सम्बन्ध निर्धारित करता है, अधिकारों का प्रत्यायोजन, केन्द्रीयकरण या विकेन्द्रीकरण करने का निर्णय लेता है। इसके अतिरिक्त कार्यालय प्रबन्धक प्रत्येक व्यक्ति को उचित कार्य पर लगाता है उन्हें उचित कार्य वातावरण प्रदान करता है तथा उन्हें उचित कार्य स्थल भी उपलब्ध करता है। ऐसा करने पर ही प्रत्येक व्यक्ति अपना निश्चित कार्य निश्चित स्थान पर करता है। किसी व्यक्ति विशेष को अपना अधिकारी या अधीनस्थ समझता है। अतः प्रत्येक कार्यालय प्रबन्धक को संगठन का कार्य भी करना ही पड़ता है।

---

1 Good planning emphasises prevention rather than correction of delays. It anticipated and determines future possible difficulties and make provisions to care for them.
—Terry

3. उत्प्रेरण (Actuating)—कार्यालय प्रबन्धक का अगला महत्वपूर्ण कार्य कर्मचारियो को उत्प्रेरणा देना है। कार्यालय के कार्य स्वत पूरे नही हो जाते हैं। कार्यालय प्रबन्धक को अपने कर्मचारियो मे कार्य के प्रति रुचि उत्पन्न करनी पडती है। आज के युग मे कोई भी प्रबन्धक अपने कर्मचारियो से डड के बल पर कार्य नही करवा सकता है। उसे अपने कर्मचारियों मे कार्य करवाने के लिए अभिप्रेरणा (motivation) देनी ही पड़ती है।

अभिप्रेरणा कोई वस्तु नही है, जिसे बाजार से खरीदकर दी जा सके। यह कर्मचारियों मे पैदा की जाती है। कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने के लिए उनकी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करनी पडती है। उनकी आवश्यकताएँ शारीरिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक आदि कई प्रकार की होती है। शारीरिक आवश्यकताएँ अच्छा वेतन देकर पूरी की जा सकती हैं, किन्तु मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक आवश्यकताओं को धन से पूरा करना अत्यन्त कठिन होता है। इनको पूरा करने के लिए उन्हे पर्याप्त आदर देना पडता है तथा सस्था का अभिन्न अग समझना पड़ता है। उनके मन मे सस्था के प्रति अपनत्व की भावना पैदा करके ही अधिक एव अच्छा कार्य करने के लिए उत्प्रेरित किया जा सकता है।

4. नियन्त्रण (Controling)—कार्यालय प्रबन्धक का अतिम किन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण प्राथमिक कार्य कर्मचारियो का नियन्त्रण करना है। नियन्त्रण का तात्पर्य यह देखना है कि कार्य निर्धारित कार्य विधि एव नियोजित विधि मे हो रहा है अथवा नही। दूसरे शब्दो म, निर्धारित प्रमापो एव वास्तविक रूप मे निष्पादित क्रियाओं मे तुलना की जाती है। तुलना करके इनम विचलन ज्ञात किया जाते है। तत्पश्चात् इन विचलनो को समाप्त करने के लिए कार्य विधि या प्रभावो मे, जहाँ भी आवश्यक हो, सुधार किये जाते है। इस प्रकार स्पष्ट है कि नियन्त्रण प्रक्रिया मे चार तत्वो का समावेश होता है (i) प्रभावो का निर्धारण, (ii) कार्यो का मूल्याकन, (iii) विचलनो का ज्ञान करना, तथा (iv) सुधारात्मक प्रयास। कार्यालय प्रबन्धकों को कुशल नियन्त्रण स्थापित करने के उद्देश्य से इन तत्वों को ध्यान मे रखना चाहिए। इस सम्बन्ध मे यह बात भी अवश्य ध्यान म रखनी चाहिये, कि नियन्त्रण का तात्पर्य कार्यो के नियन्त्रण से है, न कि कार्य करने वालो के नियन्त्रण से।

कार्यालय प्रबन्ध को वांछित परिणाम प्राप्त करने के लिए सही प्रभावो का निर्धारण करना चाहिये। उन्हे कार्य कुशलता बढाने के लिए कार्यों का सरलीकरण करना चाहिये, कार्यों को करने की निश्चित विधि तय की जानी चाहिये। तथा कार्यालय के आवश्यक बजट बनाने चाहिए।

II गौण या सहायक कार्य (Secordary or Subsidiry Function)

कार्यालय प्रबन्ध का उपर्युक्त वर्णित प्राथमिक कार्यो के अतिरिक्त अन्य कई कार्य भी करने पडते हैं। उनको नीचे सक्षेप मे बताया गया है —

करता है। अत कार्यालय प्रबन्धकों को कार्यालय के कार्य के लिए उचित प्रकार के कागज, फाइलें, स्टेन्सिल, कार्बन, तथा समय एवं श्रम सचय के यन्त्र उपलब्ध करने चाहिये। कुशलतापूर्वक कार्य करवाने के लिए अच्छे से अच्छे साधनों का उपलब्ध करना कार्यालय प्रबन्ध का कार्य है।

कार्यालय प्रबन्ध का महत्त्व या लाभ

(Importance or Advantages of Office Management)

आज का कार्यालय कुछ वर्षों पूर्व के कार्यालय से काफी भिन्न है। आज के कार्यालय मे न केवल कर्मचारियो की संख्या ही बढ गई हैं, बल्कि कार्यालय मे कार्य करने की विधियाँ, पद्धतियाँ, साधन सभी बदल चुके हैं। अत अब कार्यालय का व्यवस्थित रूप मे प्रबन्ध करना महत्त्वपूर्ण हो गया है। आधुनिक युग मे कार्यालय प्रबन्ध के बढते हुए महत्त्व के निम्न कारण हैं

1. व्यवसाय की सफलता—न्यूनर तथा हेयन्स (Newner and Haynes) के अनुसार, **"किसी भी व्यवसाय की सफलता योग्य तथा प्रशिक्षित कार्यालय प्रबन्धकों पर निर्भर करती है।"** उक्त दोनों विद्वानो के कथन मे किसी भी प्रकार का सन्देह उत्पन्न नहीं हो सकता है। व्यवसाय की सफलता के लिये कार्यालय का कुशलता पूर्वक प्रबन्ध होना बहुत ही आवश्यक है। यदि कार्यालय का कार्य कुशलता पूर्वक नही चलता है, तो प्रबन्धक सम्पूर्ण व्यवस्था के संचालन से भी असफल ही होते हैं। यह सम्पूर्ण व्यवसाय की सफलता का आधार है। अत कार्यालय का प्रबन्ध कुशलतापूर्वक होना अपरिहार्य है।

2. आवश्यक सूचनाओं की उपलब्धि—कुशल कार्यालय प्रबन्ध का महत्त्वपूर्ण लाभ यह है कि यह प्रबन्धकों को उचित सूचनाएँ उपलब्ध करता है। प्रबन्धकों को अनेक सूचनाओं की आवश्यकता पड़ती है। सूचनाओं के अभाव मे प्रबन्धक कभी भी कुशलतापूर्वक सम्पूर्ण संस्था का प्रबन्ध नहीं कर सकते हैं। कार्यालय प्रबन्धक प्रबन्धकों को उत्पादन, विक्रय बाजार स्थिति जैसे अनेको महत्त्वपूर्ण पहलुओं के सम्बन्ध मे सूचनाएँ एकत्रित करके उपलब्ध करता है, जिसके आधार पर सम्पूर्ण व्यवसाय का संचालन किया जाता है।

3, कार्यालय उद्देश्य का निर्धारण—कार्यालय प्रबन्ध कार्यालय के उद्देश्य के निर्धारण का कार्य भी करता है। उद्देश्य के निर्धारित करने के बाद ही कार्यालय के कर्मचारी इन उद्देश्यों की प्राप्ति की दिशा में कार्य करते हैं। इस सम्बन्ध मे यह बात महत्त्वपूर्ण है कि कार्यालय के उद्देश्य सदैव ही सम्पूर्ण संस्था के अनुरूप ही होने हैं।

4 उच्च प्रबन्धकों के लिए सम्पर्क सूत्र—कार्यालय प्रबन्धक ही सम्पूर्ण संस्था तथा उच्च प्रबन्धकों के लिए सम्पर्क सूत्र होता है। अधिकांश उच्च प्रबन्धक विभिन्न विभागों से सम्पर्क स्थापित करने तथा उनकी प्रगति की जानकारी करने के लिए कार्यालय प्रबन्धक की ही सहायता लेते है।

5 **कार्यालय कार्यों का उचित रूप से निष्पादन**—अच्छे एवं कुशल कार्यालय प्रबन्धक अपने कार्यालय के कार्यों को उचित रूप से पूरा करवाने में सफल हो जाते हैं। वे अपने कर्मचारियों का इस प्रकार संगठन, समन्वय, उत्प्रेरण एवं नियन्त्रण करते हैं कि प्रत्येक कार्य उचित रूप से निष्पादन किया जाता है। इस हेतु वे विभिन्न प्रकार से उपयुक्त कार्यालय पद्धतियों का निर्धारण करते हैं तथा अच्छे से अच्छे उपकरणों की व्यवस्था करते हैं।

6 **कार्यालय कर्मचारियों का संगठन**—कार्यालय का कार्य-क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत हो गया है। इसके परिणामस्वरूप, कार्यालय में कर्मचारियों की संख्या अत्यधिक रूप से बढ़ती ही जा रही है। इतने अधिक कर्मचारियों को संगठित करके ही कार्य करवाया जा सकता है। तभी कार्यालय का कार्य व्यवस्थित रूप से पूरा किया जा सकता है। उचित संगठन के अभाव में कार्यालय के कर्मचारी एक भीड़ के समान ही है।

7. **कार्यालय में आधुनिकतम साधनों की उपलब्धि**—*कुशल कार्यालय प्रबंध* का एक लाभ यह भी है कि ये संस्था के कार्यालय के लिये अच्छे से अच्छे साधन उपलब्ध करते हैं। *जिससे सम्पूर्ण संस्था की कार्य कुशलता में वृद्धि होती है।* इसी के परिणामस्वरूप संस्था की प्रतिस्पर्धात्मक स्थिति मजबूत है। लेफिंगवेल और रोबिन्स (Leffingwell and Robinson) के अनुसार **"जिस प्रकार बिना घासफूस के ईंटें नहीं बनाई जा सकती है, उसी प्रकार बिना पर्याप्त सुविधाओं के न तो कार्यालय के अभिलेख ही तैयार किये जा सकते हैं और न उन्हें सुरक्षित ही रखा जा सकता है।** *अतः कार्यालय प्रबंध का यह दायित्व है कि वह कार्यालय अभिलेख* **बनाने तथा उन्हें सुरक्षित रखने के लिये सुविधाएं प्रदान करें।"**

8 **कार्य कुशलता में वृद्धि** *कुशल कार्यालय प्रबन्धक अपने कार्यालय के* कर्मचारियों की कुशलता में चार चाँद लगा सकते है। कर्मचारियों का कार्य कुशलता *बहुत बड़ी सीमा कार्यालय के वातावरण तथा कार्यालय के* साधनों पर निर्भर करती है किन्तु, कार्यालय की कुशलता कार्यालय के कर्मचारियों का उत्प्रेरित करके भी बढ़ाई जा सकती है। *अतः कुशल कार्यालय प्रबंधक येन केन प्रकारेण* कर्मचारियों की कुशलता को बढ़ाने में सफल हो जाते हैं।

9 **संस्था के लाभों में वृद्धि**—अच्छा कार्यालय प्रबंध का एक लाभ यह भी है कि इससे संस्था के लाभों में वृद्धि होती है। हम्फरीज (Humphries) के अनुसार **"कार्यालय प्रबंध प्रतिवेदनों तथा आँकड़ों को प्रस्तुत करके तथा उनकी व्याख्या करके संस्था के लाभों में योगदान देता है।"** (Office Management contributes to the profit of the organisation by providing and interpreting reports statistics and other data.")

अभ्यास के लिए प्रश्न

1 "एक व्यवसाय मे कार्यालय का उतना ही महत्त्व होता है जितना कि एक घडी मे मुख्य कमानी का।" इस कथन को स्पष्ट करते हुए कार्यालय का महत्त्व बताइये।
"Office is as important to a business what the main spring to a watch" Explain the statement and discuss the importance of an office.

2 कार्यालय क्या है ? इसके कार्यों का वर्णन कीजिये।
What is Office ? Describe its functions

3 कार्यालय प्रबन्ध से आप क्या समझते है। एक व्यावसायिक संस्था के लिए कार्यालय प्रबन्ध के महत्त्व को बताइये।
What do you mean by office management ? Discuss the importance of office management for business concern

4 कार्यालय प्रबन्धक के कार्यों का विस्तार से उल्लेख कीजिये।
Narrate in detail the functions of office management

5 कार्यालय प्रबन्ध की परिभाषा दीजिए। कार्यालय के कार्यों का विवेचन कीजिए।
Define Office Management. Discuss the work to be done in an office

6 कार्यालय को सेवा-केन्द्र क्यों कहा जाता है ? आधुनिक व्यवसाय मे कार्यालय को स्पष्ट कीजिए।
Why office is known as service centre ? Discuss the importance of office work in modern business

7 कार्यालय प्रबन्ध के मुख्य लक्षणों की व्याख्या कीजिए।
Discuss the chief characteristics of the office management

2

कार्यालय-संगठन
(Office Organisation)

The work an unknown good man has done is like a vein of water flowing hidden underground, secretly making the ground green
—Thomas Carlyle

जब व्यवसाय का क्षेत्र सीमित था, कार्यालय भी छोटे होते थे। इन कार्यालयों में काम करने वाले व्यक्ति भी बहुत कम होते थे। अतः कार्यालय प्रबन्धक के समक्ष उनके संगठन की कोई समस्या नहीं थी। किन्तु कार्यालय में कार्यों तथा कर्मचारियों की संख्या बढ़ जाने के कारण कार्यालय का कार्य जटिल हो गया है। कर्मचारियों को विभिन्न समूहों में बांटना आवश्यक हो गया है तथा उनके कार्यों एवं अधिकारों को निश्चित करना भी आवश्यक हो गया है। दूसरे शब्दों में उनको उचित रूप से संगठित करना अपरिहार्य हो गया है। इसीलिए इस अध्याय में हमने संगठन से सम्बन्धित कुछ पहलुओं का वर्णन किया है।

परिभाषाएं
(Definitions)

कार्यालय संगठन की परिभाषा करने के लिए सर्वप्रथम संगठन का अर्थ समझना होगा।

संगठन की परिभाषा विभिन्न विद्वानों द्वारा विभिन्न अर्थों में की जाती है। उदाहरणार्थ, कुछ लोग संगठन को संचार व्यवस्था (A system of Communication) कहते हैं तो कुछ अन्य लोग इसे समस्या निवारण का साधन (A means of problem solving) कहते हैं। किन्तु अध्ययन की सुविधा के लिए कुछ परिभाषाओं का हम नीचे अध्ययन करेंगे।

डेविस (Davis) के अनुसार, "संगठन मूलतः व्यक्तियों का एक समूह है जो एक नेता के निर्देशन में सामान्य उद्देश्य की पूर्ति हेतु सहयोग प्रदान करते हैं।"[1]

---

1 "As a group of people who are cooperating under the direction of leadership for the accomplishment of a common end." —Ralph C. Davis

ओलिवर शेल्डन (Oliver Sheldon) के अनुसार, सगठन वह कार्य विधि है जिसके द्वारा आवश्यक विभागों मे व्यक्तियो या समूहों द्वारा किये जाने वाले कार्य को इस प्रकार सयोजित किया जाता है कि उनके प्रयत्नों को शृंखलाबद्ध करके कुशल व्यवस्थित एव समन्वित बनाया जा सके।'[1]

कोर्नेल (Cornell) के अनुसार, "सगठन का आशय एक उपक्रम के प्रारूप या ढाँचे मे है तथा उसके भागो की इस प्रकार व्यवस्था है कि उसके कार्यों तथा प्रयोग मे सुविधाजनक हो।'

हॉज एव जॉनसन (Hodge and Johnson) के विचार मे, "सगठन मानवीय एव भौतिक साधनों तथा कार्यों का आपसी जटिल सम्बन्ध है, जो एक प्रक्रिया के अन्तर्जाल क रूप म निर्मित किया जाता है।[3]

उपर्युक्त परिभाषाओ का अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि सगठन **किन्हीं कार्यों से सम्बन्धित व्यक्तियो का एक समूह है, जिसके द्वारा कार्यों का इस प्रकार सयोजन किया जाता है जिससे समूह के उद्देश्यो को अधिकतम सफलता के साथ पूरा किया जा सके।**

सगठन के लक्षण—उपर्युक्त परिभाषाओ के अध्ययन मे एक सगठन के निम्न प्रमुख लक्षण सामने आते है—

1 यह व्यक्तियो का समूह है जो छोटा अथवा बड़ा हो सकता है।

2 यह समूह कार्यकारी नेतृत्व के निर्देशो क अन्तर्गत कार्य करता है।

3 यह प्रबन्ध का साधन है।

4 इसम निर्देश क्षमता होती है जिसम समूह के प्रयासो को नियन्त्रित किया जाता है।

5 इनमे श्रम, अधिकार एव दायित्व के विभाजन या नियोजन किया जाता है।

6 यह कार्यों एव दायित्वो के स्वरूप का निर्धारण करता है।

7 यह सामान्य उद्देश्यो की पूर्ति के लिए बनाया जाता है।

8 यह क्रियात्मक विचारधारा है।

---

1 'Organisation is the process of so combining the work which individuals or group have to perform with the facilities successary for its execution, that the duties so performed provide the best channels for the efficient systematic positive, and coordinated application of the available effort"
—Oliver Sheldon

2 'Organisation means the structure or form of an enterprise and the arrangement of all parts thereof in a manner suitable for use or service'
—William B Cornell

3 An organisation is "a complex of relationships among human and physical resources and work, cemented together into a net work of system'
=Hodge and M Johnson

कार्यालय सगठन (Office Organisation)—कार्यालय सगठन कार्यालय कार्यो से सम्बन्धित व्यक्तियो का समूह है जिसके द्वारा कार्यालयो के कार्यों का इस प्रकार सयोजन किया जाता है कि जिसस कार्यालय के काय अधिकतम सफलता के साथ पूरे किये जा सक ।

कार्यालय सगठन का महत्व
(Importance of office Organisation)

आधुनिक युग म कार्यालय का अत्यधिक महत्त्व है । एक कार्यालय सगठन के निर्माण स कार्यालय प्रबन्धक को विभिन्न कर्मचारियो का निर्देशन, समन्वय, नियत्रण आदि आदि करना सरल हो जाता है विशिष्टीकरण हो जाता है तथा कर्मचारियो का मनोबल बढ़ता है । जिसके परिणाम स्वरूप समस्त कार्यालय की कार्यक्षमता बढ जाती है ।

1 प्रबन्ध क्षमता मे वृद्धि (Increases Managerial Efficiency)—अच्छा कार्यालय सगठन कार्यालय प्रबन्धको की क्षमता को कई प्रकार से बढा सकता है । इससे कार्यों के निष्पादन म लगने वाले अधिक समय की बचत होती है, कार्य का दोहराव (Repetition) नही होता है एव आपसी मतभेद समाप्त हो जाते है । इन सबके परिणामस्वरूप, प्रबन्धीय क्षमता म वृद्धि होना सम्भव है ।

2 विशिष्टीकरण को प्रोत्साहन (Encourages Specialisation)—कार्यालय सगठन सरचना करके काय विश्लेषण के आधार पर सही व्यक्ति को सही काम पर (Right Job to the right man) लगाया जाता है । विशिष्ट योग्यता वाले व्यक्ति को विशिष्ट काय दिया जाता है । इससे पर्याप्त मात्रा मे विशिष्टीकरण को प्रोत्साहन मिलता है ।

3 समन्वय मे सुविधा (Facilitates Co ordination)—विशिष्टीकरण के परिणामस्वरूप समन्वय की समस्या का जन्म होता है । सगठन सरचना म विभिन्न विभागो एव उपविभागो कर्मचारियों एव अधिकारियो के मध्य आपसी सम्बन्धो का निर्धारण किया जाता है जिससे समन्वय करने मे बडी सुविधा मिल जाती है ।

4 अधिकार प्रत्यायोजन मे सुविधा (Facilitates Delegation) –सगठन चार्ट मे एक अधिकारी को यह ज्ञात हो जाता है कि कौन कौन व्यक्ति उसके अधीनस्थ तथा किस काय के करने म विशिष्ट है । इससे अधिकारी सम्बन्धित व्यक्ति को सम्बन्धित काय एव अधिकार दे सकता है ।

5 मनोबल बढाता है (Contributes to Morale)—अच्छा कार्यालय सगठन कर्मचारियो के मनोबल को भी बढाता है । प्रत्येक व्यक्ति के काय एव अधिकार निश्चित होने से उनको अपने अस्तित्व का ज्ञान होता है जो अन्ततोगत्वा मनोबल की वृद्धि मे सहायक होता है ।

6 कार्य क्षेत्र का स्पष्ट विभाजन (Clear-cut Division of Area)—प्रत्येक अधिकारी एव कर्मचारी का कार्य-क्षेत्र निर्धारित करने मे सहायता मिलती है। इससे एक दूसरे के कार्य-क्षेत्र मे हस्तक्षेप नही होता है और अच्छे सम्बन्धो का निर्माण होता है।

7. नियन्त्रण मे सुविधा (Facilitates Control)—प्रत्येक अधिकारी एव कर्मचारी के क्षेत्र निर्धारण के पश्चात् उसके कार्यों के नियन्त्रण की समस्या भी सामने आती है। अच्छी सगठन सरचना से नियन्त्रण मे सुविधा प्राप्त होती है।

8 कार्यकुशलता मे वृद्धि (Increases Efficiency)—निश्चित उद्देश्य कार्यों, दायित्वो एव आपसी सम्बन्धो से एक अधिकारी एव कर्मचारी की कार्य कुशलता मे वृद्धि होती है। अन्ततोगत्वा, सम्पूर्ण सस्था की कार्यकुशलता मे वृद्धि होती है।

9 भ्रष्टाचार की समाप्ति (Eradicates Corruption)—एक अच्छा कार्यालय सगठन अपने कर्मचारियो को परिश्रमी, निष्ठावान एव ऊँचे चारित्रिक गुणो वाला बनाने मे सहायता प्रदान करता है। यह सब कुशल नियन्त्रण एव वैयक्तिक मान्यता (Personal indentification) से ही सम्भव है, जो स्वय कुशल सगठन सरचना पर निर्भर है।

कार्यालय संगठन के सिद्धान्त
(Principles of Office Organisation)

ब्रेच (Brech) के अनुसार **"यदि किसी सगठन की सरचना के लिये किसी व्यवस्थित विधि का होना आवश्यक है, तो कुछ सर्वमान्य सिद्धान्त अवश्य होने चाहिये।"**[1] कार्यालय सगठन सरचना के लिए किन्ही विशिष्ट सिद्धान्तो का निर्माण अब तक नही किया गया है। परन्तु कार्यालय सगठन भी किसी अन्य सगठन की भांति ही एक सगठन है। अत एक सगठन के सिद्धान्तो के आधार पर कार्यालय सगठन के निम्नांकित सिद्धान्त है—

1 उद्देश्य का सिद्धान्त (Principles of Objective) **"सगठन के प्रत्येक विभाग एव उपविभाग के उद्देश्य निश्चित तथा व्यवसाय के उद्देश्यो के अनुरूप होने चाहिये।"** (Each part and subdivision of organisation should be the expression of definite purpose in harmony with the objectives of the udnertaking) । अत: कार्यालय सगठन के प्रत्येक विभाग एव उपविभाग के उद्देश्य भी निश्चित होने चाहिये। साथ ही साथ ये उद्देश्य सस्था के सम्पूर्ण उद्देश्यों के अनुरूप ही होने चाहिये।

---

1 "If there is to be a systematic approach to the formation of organisation structure, there ought to be a body of accepted principles" E F L Brech, Organisation The Frame Work of Management, p 12.

2 विशिष्टीकरण का सिद्धान्त (Principle of Specialization)—इस सिद्धान्त के आधार पर कार्यालय संगठन की अधिकाधिक कार्य कुशलता प्राप्त करने के दृष्टिकोण से एक कर्मचारी को वही कार्य सौंपना चाहिये, जिसमें वह कुशल हो। इस सिद्धान्त के पालन से कम से कम खर्च पर कार्यालय उद्देश्यों को अधिकाधिक सफलता से प्राप्त किया जा सकता है।

3 समन्वय का सिद्धान्त (Principle of Co-ordination)–**मूनी तथा रेले** (Mooney and Reiley) के अनुसार **"सभी संगठनों का अन्तिम उद्देश्य सरलता से सुन्दर समन्वय करना होता है।"** (The final objective of all organisations is smooth and effective coordination.) अतः कार्यालय संगठन के प्रत्येक विभाग तथा कर्मचारियों में समन्वय स्थापित होना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त कार्यालय संगठन व संस्था के अन्य विभागों में भी समन्वय स्थापित होना आवश्यक है।

4 'नियन्त्रण के विस्तार' का सिद्धान्त (Principle of Span of Control)—'नियन्त्रण के विस्तार' (Span of Control) से आशय कर्मचारियों की उस संख्या से है, जिसका एक प्रबन्धक द्वारा सफलता पूर्वक नियन्त्रण किया जा सके। इस सिद्धान्त के प्रतिपादक **ग्रेकुनास** (Graicunas) हैं। उनके अनुसार **"कोई भी अधिकारी प्रत्यक्ष रूप से पाँच और अधिक से अधिक छः अधीनस्थों से अधिक का निरीक्षण नहीं कर सकता।"** संगठन के सिद्धान्तों के प्रतिपादक **कर्नल एल उर्विक** (Col. L Urwick) ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि **"उच्चाधिकारियों के सहायक कर्मचारियों की आदर्श संख्या चार है तथा संगठन के निम्न स्तर पर जहाँ पर कार्यों का निष्पादन किया जाता है, न कि निरीक्षण, यह संख्या आठ से बारह हो सकती है।"** अतः कार्यालय संगठन की संरचना में कार्यालय प्रबन्धक को नियन्त्रण के विस्तार के सम्बन्ध में इन बातों को ध्यान में रखना चाहिये।

5 व्याख्या का सिद्धान्त (Principle of Definition)—**टेलर** (Taylor) के अनुसार **"प्रत्येक संगठन में प्रत्येक स्थिति स्पष्ट रूप से लिखित होनी चाहिये।"** (Every position in every organisation should be clearly prescribed in writing.) कार्यालय संगठन के किस व्यक्ति को क्या कार्य करना है तथा उसके क्या क्या अधिकार एवं दायित्व होंगे। इसके अतिरिक्त, संगठन में एक-दूसरे कर्मचारी के बीच क्या सम्बन्ध होंगे, इस बात की स्पष्ट रूप से व्याख्या कर लेनी चाहिये। इससे प्रत्येक का कार्य-क्षेत्र अलग अलग होगा और कोई भी एक दूसरे के क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं कर सकेगा।

6 **आदेश का सौपानिक सिद्धान्त** (Principle of Scalar Organisation)—प्रत्येक संगठन में ऊपर से नीचे तक की औपचारिक अधिकार रेखा स्पष्ट होनी चाहिये। कार्यालय संगठन में यह स्पष्ट होना चाहिये कि कौन व्यक्ति किसकी अधीनता में कार्य करेगा। अधिक स्पष्टता की दृष्टि से एक कार्यालय संगठन के

उच्चाधिकारियों, निम्नाधिकारियों एवं कर्मचारियों के आपसी सम्बन्धों को स्पष्ट कर लेना चाहिये।

7 आदेश की एकरूपता का सिद्धान्त (Principle of Unity of Command)—इस सिद्धान्त के अनुसार "एक व्यक्ति एक ही समय में दो अधिकारियों की सेवा नहीं कर सकता।" ("No man can serve two bosses at the same time.") संगठन के कुशल संचालन के लिए, एक व्यक्ति को एक ही अधिकारी से आदेश एवं निर्देश प्राप्त होने चाहियें। जब एक से अधिक अधिकारियों से आदेश मिलते हैं तो वह किसी भी अधिकारी द्वारा सौंपे गये कार्य को उचित रूप से पूरा नहीं कर सकेगा। फलतः संगठन का उद्देश्य भी प्राप्त न होगा।

8 अधिकार एवं दायित्व का सिद्धान्त (Principle of Authority and Responsibility)—यह सिद्धान्त यह बताता है कि "अधिकार एवं दायित्व साथ साथ होने चाहियें।" (Authority should be coupled with responsibility.) केवल दायित्व निर्धारित कर देने से कार्य पूरा नहीं हो सकता। इन दायित्वों को पूरा करने के लिए अधिकारों का दिया जाना भी आवश्यक है। यदि अधिकार एवं दायित्व दोनों समानानुपात में भी न दिये गये तो भी कोई व्यक्ति कुछ भी नहीं कर सकेगा।

9 अन्तिम दायित्व का सिद्धान्त (Principle of ultimate Responsibility)—इस सिद्धान्त के अनुसार "अधीनस्थों के कार्य के लिए उच्चाधिकारियों का अन्तिम दायित्व होना आवश्यक है।" (The responsibility of higher authority for the acts of its subordinates is absolute.) यद्यपि विशिष्टीकरण के सिद्धान्त का पालन कर कार्यों का विभाजन कर दिया जाता है तथा अधिकार तथा कर्त्तव्यों को भी निर्धारित कर दिया जाता है परन्तु अन्तिम दायित्व अधीनस्थों के अधिकारी का ही रहना चाहिये।

10 अपवाद का सिद्धान्त (Principle of Exception)—इस सिद्धान्त का प्रतिपादक वैज्ञानिक प्रबन्ध के जन्मदाता टेलर (F W Taylor) ने किया था। इस सिद्धान्त के अनुसार दिन प्रतिदिन के कार्यों के करने के लिए अधीनस्थों को अधिकार दे दिये जाने चाहियें तथा अपवाद पूर्ण एवं महत्वपूर्ण मामलों पर निर्णय करने के कार्य उच्चाधिकारियों पर छोड़ देने चाहिये।[1]

11 एकात्मक निर्देश का सिद्धान्त (Principle of Unity of Direction)—प्रत्येक व्यावसायिक संस्था की एक ही योजना होनी चाहिये और उसमें

---

1 According to this concept decisions which occur frequently should be reduced to a routine and delegated to subordinates leaving more important issues and exceptional matter to superiors W Warren Haynes and Joseph L Massie Management Analysis Concepts and Cases p 41

कार्यालय सगठन के प्रत्येक विभाग को इसी योजना के अनुसार काय करना चाहिये।

12 अनुरूपता का सिद्धान्त (Principle of Homogenity)—एक कुशल कार्यालय सगठन सरचना के लिए यह भी महत्त्वपूर्ण है कि सगठन के विभिन्न पदाधिकारियो के अधिकार एक दूसरे मे न टकराय। साथ ही साथ दूसरे सगठन के अधिकारियो के अधिकार मे भी न टकराय। समान दायित्व वाले अधिकारियो के अधिकार भी समान ही होने चाहिये। अनुरूपता होने मे ही कार्यों का समुचित निष्पादन सम्भव होता है।

13 सरलता का सिद्धान्त (Principle of Simplicity)—कार्यालय सगठन का ढाचा सरल हो ताकि प्रत्येक काय के निष्पादन म कम से कम समय एव खर्च लगे। सरलता के अभाव म सदेशो के आदान प्रदान म भी कई कठिनाइयाँ सामने आती है।

14 निरन्तरता का सिद्धान्त (Principle of Continuety)—सगठन एक प्रक्रिया है जो निरन्तर चलती है। अत एव कार्यालय सगठन एसा होना चाहिये जो व्यवसाय की आवश्यकताओ को निरन्तर पूरा कर सके। इस उद्देश्य से सगठन सरचना एसी हो कि सस्था की आवश्यकतानुसार उसे परिवर्तित किया जा सके तथा इस प्रकार परिवर्तन करते समय सगठन के कार्यों म कोई बाधा उपस्थित न हो।

15 समुचितता का सिद्धान्त (Principle of Appropriateness)—सगठन की सरचना सस्था के उद्देश्यो को ध्यान म रखकर ही करनी चाहिये। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन फेयोल (Fayol) ने किया है। फेयोल (Fayol) द्वारा प्रतिपादित इस सिद्धान्त के अनुसार **मानवीय एक भौतिक सगठन उपक्रम के उद्देश्य, साधन एव आवश्यकताओ के अनुरूप होना चाहिये।**

16 लचीलेपन का सिद्धान्त (Principle of Flxibility)—एक कार्यालय सगठन की सरचना लचीली होनी चाहिये ताकि आवश्यकतानुसार उसे बदला जा सके एव सगठन की कायकुशलता मे वृद्धि की जा सके।

कार्यालय सगठन के प्रारूप[1]
(Types of Forms of Office Organisation)

सामान्यत कार्यालय सगठन के चार प्रारूप माने जाते है। वे निम्नलिखित है—

(i) लाइन या रेखा सगठन (Line Organisation)
(ii) रेखा एव स्टाफ सगठन (Line and Staff Organisation),
(iii) क्रियात्मक सगठन (Functional Organisation)।

---

1 कार्यालय प्रबन्ध मे सामान्यत समिति प्रबन्ध का प्रयोग नही किया जाता है।

लाइन या रेखा संगठन (Line Organisation) :

रेखा सगठन सरलतम सगठन का प्रारूप है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह प्राचीनतम प्रारूप कहा जाता है।

मेक्फारलेण्ड (McFarland) के अनुसार "रेखा संरचना मे प्रत्यक्ष शीर्ष रैखा सम्बन्ध होते हैं, जो प्रत्येक स्तर की स्थिति एवं कार्यो से ऊपर एवं नीचे के स्तर से सम्बन्ध स्थापित करता है।"[1]

एलेन (Allen) के अनुसार, "रेखा आदेश की वह श्रृंखला है, जो सचालन मण्डल से विभिन्न प्रत्यायोजनो एव पुनः प्रत्यायोजनो द्वारा अधिकारो एव दायित्वो को उस बिन्दु तक पहुँचती है, जहाँ पर कम्पनी की मुख्य क्रियाओ को पूरा किया जाता है।"[2]

सी० बी० गोइग (C B Going) के अनुसार रेखा सगठन मे "अधिकारो एवं दायित्वो की रेखाएँ सम्पूर्ण सस्था मे सतत् रूप से ऊपर से नीचे की ओर चलती हैं, जैसे कि पत्तियो की सिराएँ वृन्त के पास एकत्रित होती हैं और कई पत्तियों के वृन्त टहनी से मिलते हैं और कई टहनियाँ शाखाओ से मिलती हैं तथा कई शाखाएँ तने मे मिलती हैं और सिराएँ, वृन्त, टहनियाँ, शाखाएँ तथा तने को सामान्यतः पेड के जीवन एव विकास मे वे सभी कार्य करने पडते हैं।"[3]

यह ध्यान देने योग्य बात है कि रेखा सगठन मे एक स्तर का व्यक्ति अपने ही स्तर के व्यक्ति पर बिल्कुल निर्भर नहीं होता है। दूसरे शब्दो मे, एक व्यक्ति अपने ही स्तर के व्यक्तियो को न आदेश देता है और न आदेश प्राप्त ही करता है। सक्षेप मे रेखा सगठन मे अधिकारी अपने अधीनस्थो को प्रत्यक्ष आदेश देते है। अतः प्रत्येक अधिकारी यह जानता है कि उसे किस को आदेश देना है और प्रत्येक अधीनस्थ को भी यह ज्ञात होता है कि उसे किन अधिकारी को अपने कार्यो की रिपोर्ट भेजनी है। रेखा सगठन को नीचे चार्ट द्वारा समझाया गया है —

---

1 "Line structure consists of the direct vertical relationship which connect the positions and tasks of each levels with those above and below it
—McFarland

2 "The line is the chain of command that extends from the board of directors through the various delegation and redelegation of authority and responsibility to the point where the primary activities of company are performed"
—Allen

3 The lines of authority and responsibility run continuously though the whole body from top to bottom, as veins of the leaf gather to the stalk and many leaf stalks to the twig, and many twigs to branch, and many branches to the trunk and veins and stalk and twigs and branch and trunk have practically similar duties to perform in the life and growth of the tree.
—C. B. Going
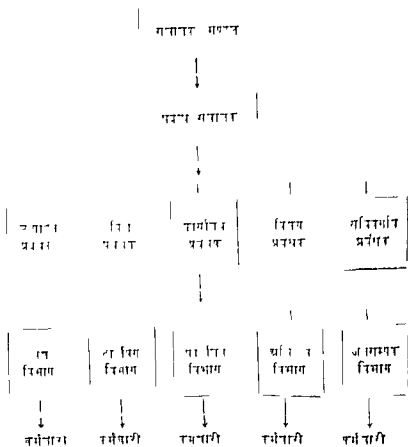
5 सभी कार्यों का अन्तिम दायित्व सर्वोच्च अधिकारी का होता है।
6 इस प्रकार के संगठन में विशिष्टीकरण सम्भव नहीं होता।

लाभ (Advantages)—रेखा संगठन के होने वाले लाभों का विवेचन निम्न प्रकार है —

1 इस प्रकार की संगठन संरचना में पूर्णत मितव्ययिता बनी रहती है।
2 यह अत्यन्त सरल संगठन का प्रारूप है।
3 इसमें अधिकारों का केन्द्रीयकरण बना रहता है।
4 इसमें निर्णय शीघ्र लिये जा सकते हैं।
5 निर्णयों का शीघ्र क्रियान्वयन करना भी सम्भव है।
6 उत्तरदायित्व से कोई भी बच नहीं सकता है।
7 प्रबन्धकीय योग्यता का विकास होता है।
8 एकात्मक नियन्त्रण बना रहता है।
9 इसमें लचीलापन पाया जाता है जिसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन करना सम्भव होता है।
10 कर्मचारियों में पर्याप्त अनुशासन बना रहता है।
11 प्रभावशाली नियन्त्रण स्थापित करना सरल होता है।
12 लालफीताशाही का प्रादुर्भाव नहीं हो सकता।
13 शीघ्र सन्देशवाहन सम्भव है।
14 कर्मचारियों से प्रत्यक्ष सम्पर्क हो सकता है।
15 कार्यों के समन्वय में सुविधा रहती है।

दोष (Disadvantages)—रेखा संगठन के जहाँ अनेक लाभ हैं वहाँ पर उसके दोष भी हैं जो निम्नलिखित हैं —

1 पर्याप्त विशिष्टीकरण का अभाव रहता है।
2 प्रबन्धक पर उत्तरदायित्व का भारी बोझ होता है।
3 प्रबन्धक का कार्य करने के लिए बहुत योग्य, क्षमतावान एवं सर्वगुणसम्पन्न व्यक्ति की आवश्यकता पड़ती है जिनका मिलना कठिन है।
4 पर्याप्त लोच का अभाव पाया जाता है।
5 प्रबन्धक का स्थानान्तरण (Transfer) हो जाने या मृत्यु हो जाने पर समस्त संगठन अस्त व्यस्त हो जाता है।
6 अधीनस्थों में बहुत अधिक प्रबन्धकीय योग्यता का विकास नहीं हो पाता है।
7 अधीनस्थों में प्रबन्धकीय योग्यता का विकास न होने के कारण उनकी पदोन्नति के अवसर भी समाप्त हो जाते हैं।
8 एकाकी एवं जल्दी निर्णय लिये जाते हैं जो कभी-कभी बड़े हानिप्रद सिद्ध होते हैं।

9 प्रशासकों की कार्य स्वतन्त्रता समाप्त हो जाती है।

10 विस्तृत व्यवसाय गृहों के लिए यह प्रारूप सर्वथा अनुपयुक्त रहता है।

उपयुक्तता (S iabil ty)—यद्यपि रेखा संगठन के कई दोष हैं फिर भी इसका महत्त्व कम नहीं है। अनेक छोटे व्यावसायिक संगठन भी इसी प्रकार से संगठित हैं। इतना ही नहीं सभी रेखा एवं कर्मचारी संगठनों (Line and Staff O r n t i) में भी रेखा संगठन के तत्त्व विद्यमान होते हैं। **डेविस (Davis)** के अनुसार **सभी कर्मचारी संगठन प्रारूपों का प्रादुर्भाव मुख्यतः रेखा संगठन में ही हुआ है।** उन्होंने आगे लिखा है कि **एक मनुष्य रेखा व्यावसायिक संगठन के प्रत्येक चेतनायुक्त विभाग की रीढ़ की हड्डी है।** इस प्रकार रेखा संगठन की अपनी विशिष्ट उपयोगिता है। रेखा संगठन सामान्यतः निम्न दशाओं में उपयुक्त समझा जाता है—(1) जब कार्य क्षेत्र की संख्या सीमित हो। (2) कर्मचारियों की संख्या सीमित हो। (3) जब विशिष्टीकरण की आवश्यकता न हो। (4) जब कर्मचारी अनुशासित हों।

रेखा तथा कर्मचारी संगठन (Line and Staff Organisation)

बढ़ती हुई कार्यालय कार्य की जटिलताओं के परिणामस्वरूप रेखा संगठन अपर्याप्त सिद्ध हुआ और रेखा तथा कर्मचारी संगठन का प्रादुर्भाव हुआ। यह संगठन का वह प्रारूप है जिसमें अधिकारियों को परामर्श देने के लिए कुछ विशिष्ट कर्मचारी (St) होते हैं। इस प्रकार के संगठन में भी अधिकार सीधी रेखा या लम्बवत रूप में ही चलते हैं किन्तु प्रत्येक कार्य के लिए एक विशिष्ट व्यक्ति नियुक्त किया जाता है जो अधिकारियों को उनके कार्यों में अपना विशिष्ट परामर्श देता है।

चित्र रेखा तथा कर्मचारी संगठन

संचालक मण्डल
↓
प्रबन्ध संचालक
↓
विशेषज्ञ ———→ कार्यालय प्रबन्धक ← — — विशेषज्ञ
↓
कार्यालय अधीक्षक
↓
कर्मचारी
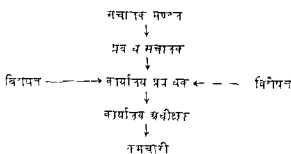
यहाँ पर यह स्पष्ट कर देना भी अनावश्यक न होगा कि विशिष्ट विशेषज्ञ के परामर्श को मानना या न मानना पूर्णतः अधिकारी की इच्छा पर निर्भर करता है अर्थात् अधिकारी किसी कर्मचारी (Staff) के परामर्श को मानने के लिए बाध्य नहीं है।

ऐलन (Allen) के अनुसार, "कर्मचारी (Staff) से आशय सगठन के उन व्यक्तियो से है जो रेखा अधिकारियो को परामर्श देते हैं।"[1] मूने (Mooney) के शब्दो मे, "सगठन मे कर्मचारी सेवा का आशय परामर्श से होना है, जो अधिकार या निर्देश से भिन्न होता है।"[2]

कर्मचारियो का महत्त्व—*व्यावसायिक जटिलता के परिणामस्वरूप 'कर्मचारियो'* का महत्त्व बढता जा रहा है। आधुनिक प्रबन्धक तभी सफल सिद्ध हो सकता है, जबकि वह पहले की अपेक्षा कई गुना चतुर, चौकन्ना, ज्ञानवान व विवेकशील हो। किन्तु वह भी 'मानव' होने के नाते सर्वगुणसम्पन्न नही हो सकता है और इस जटिलता से कुशलतापूर्वक व्यवसाय का मचालन करना आसान कार्य नही है। परिणामस्वरूप, आज एक प्रबन्धक को अपने प्रत्येक कार्य के लिए दूसरे व्यक्तियो से परामर्श करना पडता है, तथा दूसरे व्यक्तियो से कार्य मे सहायता प्राप्त करनी पडती है। सगठन मे कर्मचारियो का प्रमुख कार्य अनुसन्धान करना, तथ्यों का पता चलाना तथा अधिकारियो से परामर्श करना होता है। फिफनर तथा शेरवुड (Phiffner and Sherwood) के मतानुसार, "कर्मचारी एक सगठन का नियोजन करने एव सोचने का शस्त्र है।" (Staff is the thinking and planning arm of the organisation) कर्मचारी आदेश नही देते हैं, बल्कि सुझाव देते है, जिनको कार्यान्वित करना अथवा न करना रेखा अधिकारियो पर निर्भर करता है।

लक्षण (Characteristics)—रेखा एव कर्मचारी सगठन के निम्न लक्षण होते हैं—

1 इसमे अधिकारियो को विशिष्ट कर्मचारियो (Staff) की सलाह की सहायता मिल जाती है।

2 विशिष्ट कर्मचारियो की सलाह किसी भी सम्बन्धित निर्णय मे प्रयोग मे लाई जा सकती है।

3 ये विशिष्ट कर्मचारी अपने परामर्श के लिए पूर्णरूप से उत्तरदायी होते हैं।

4 इसमे अधिकारी कर्मचारियो के परामर्श को मानने के लिए बाध्य नही है।

5 इसमे निर्णय अधिक ठोस होते हैं।

6 अधिकारियो के कार्य का बोझ हल्का हो जाता है।

7 इसमे भी सभी आदेश एव निर्देश क्रमश सम्बद्ध रूप मे चलते है।

---

1 "Staff refers to those elements of the organisation which provide advice and service to the line —Allen

2. "Staff service in organisation means the service of advice or counsel, as distinguished from the function of authority or command" —James D Mooney

लाभ—रेखा एवं कर्मचारी संगठन के अपनाने से निम्न लाभ प्राप्त हो सकते हैं

1 यह प्रबन्धकों को शीघ्र एवं अच्छे रूप में कार्य करने में सहायता प्रदान करता है।

2 यह विशिष्टीकरण के लाभ प्रदान करता है।

3 यह अधिकारियों के कार्य के बोझ को हल्का कर देता है।

4 यह प्रबन्धकीय योग्यता का विकास करता है।

5 कुशल कर्मचारियों को पदोन्नति के अवसर मिलते हैं।

6 लोच पर्याप्त मात्रा में पाई जाती है। अतः व्यवसाय के बढ़ने के साथ ही साथ संगठन का आकार भी बढ़ाया जा सकता है।

7 यह मितव्ययितापूर्ण है।

8 शीघ्र एवं सुदृढ़ निर्णय लिए जा सकते हैं।

9 अधिकारियों का केन्द्रीयकरण करना सम्भव है।

10 प्रशासन की कुशल पद्धतियों का प्रयोग असम्भव हो जाता है।

दोष—1 विशिष्ट कर्मचारियों एवं रेखा अधिकारियों में आपसी सम्बन्धों पर मतभेद उत्पन्न हो जाता है।

2 छोटी संस्थाओं के लिए विशिष्ट कर्मचारियों को नियुक्त करना कठिन होता है।

3 किसी एक व्यक्ति को उत्तरदायी ठहराना कठिन होता है।

4 विशिष्ट कर्मचारियों की सलाह को मानना आवश्यक नहीं होता है। अतः उन कर्मचारियों के स्वाभिमान का हनन होता है।

5 कार्यों के निष्पादन में प्राय काफी समय लग जाता है।

6 समन्वय करना भी इस संगठन में एक समस्या बन जाती है।

7 यह संगठन अधिकारों का केन्द्रीयकरण को प्रोत्साहन देता है जो अन्ततः संगठन का स्वयं एक अवगुण है।

क्रियात्मक संगठन (Functional Organisation)

क्रियात्मक संगठन के जन्म का श्रेय वैज्ञानिक प्रबन्ध के जन्मदाता एफ डब्ल्यू टेलर (F W Taylor) को दिया जाता है।

एल० के० जानसन (L K Johnson) के अनुसार "क्रियात्मक संगठन वह संगठनात्मक व्यवस्था है जिसमें अधिकार की रेखाएँ कई क्रियात्मक विभागों में से होती हुई श्रमिकों तक पहुँचती हैं। अधिकार का प्रत्येक स्तर योजना एवं अपने अधीनस्थों के सम्पूर्ण नहीं बल्कि कुछ कार्यों के लिए उत्तरदायी होता है।

टेलर के अनुसार, 'क्रियात्मक प्रबन्ध का अर्थ प्रबन्ध का इस प्रकार विभाजन से है जिससे सहायक अधीक्षक से लेकर नीचे तक के व्यक्तियों को इतने कम कार्य दिये जाएँ, जितने वे आसानी से पूरे कर सकें। यदि सम्भव हो सके, तो प्रबन्ध के प्रत्येक व्यक्ति को केवल एक ही महत्वपूर्ण कार्य दिया जाना चाहिए।" इसी प्रकार कून्टज एवं ओ'डोनेल (Koontz and O'Donell) के शब्दों में, "क्रियात्मक अधिकार एवं प्रबन्ध की विशिष्ट प्रक्रियाओं, नीतियों या मामलों पर अधिकार है जो अन्य विभाग के कर्मचारियों के कार्य करने से सम्बन्धित है।

क्रियात्मक संगठन में रेखा संगठन की भाँति अधिकार लम्बवत् रूप में नहीं चलते हैं। क्रियात्मक संगठन में प्रत्येक कार्य को कई छोटे-छोटे भागों में बाँट दिया जाता है। कार्य के प्रत्येक छोटे भाग के लिये एक विशिष्ट ज्ञान वाला व्यक्ति (Specialist) नियुक्त किया जाता है। प्रत्येक विशिष्ट व्यक्ति अपने सम्बन्धित कार्य को करवाने के लिये आदेश एवं निर्देश दे सकता है और पूरे अधिकार रखता है।

लक्षण—क्रियात्मक संगठन के प्रमुख लक्षण निम्न हैं—

1 इस प्रकार के संगठन में प्रत्येक कार्य कई भागों में बाटा जाता है।

2 इसमें प्रत्येक विशिष्ट कार्य के लिए एक विशेषज्ञ होता है।

3 इसमें विशेषज्ञ स्वयं ही आदेश एवं निर्देश देने का अधिकार रखते हैं।

4 प्रत्येक निर्णय लेने में पूर्व विशेषज्ञों से परामर्श करना प्रभावात्मक होता है।

5 प्रत्येक विशेषज्ञ केवल अपने विशिष्ट क्षेत्र के सम्बन्ध में ही आदेश एवं निर्देश दे सकता है।

6 विशेषज्ञों के दायित्वों का निष्पादन अन्य अधिकारियों एवं अधीक्षकों द्वारा किया जाता है।

लाभ—1 इस प्रकार के संगठनों में विशेषज्ञों का पूरा-पूरा लाभ उठाया जा सकता है।

2 यह संगठन अधिकारियों को विशिष्ट तकनीकी समस्यों पर सोचने के बोझ से हल्का कर देता है।

3 निर्णय सरल व शीघ्र हो जाते हैं।

4 निर्णयों का क्रियान्वयन एवं नियन्त्रण करना सरल होता है।

5 संचालन में मितव्ययिता आती है।

6 विशिष्टीकरण करना सरल हो जाता है।

7 यह आर्थिक लोच प्रदान करता है।

8 निर्णयों में एकरूपता बनी रहती है।

दोष—1 यह संगठन 'आदेश की एकरूपता (Unity of Command) के सिद्धान्त के विरुद्ध है।

चित्र—क्रियात्मक कार्यालय सगठन
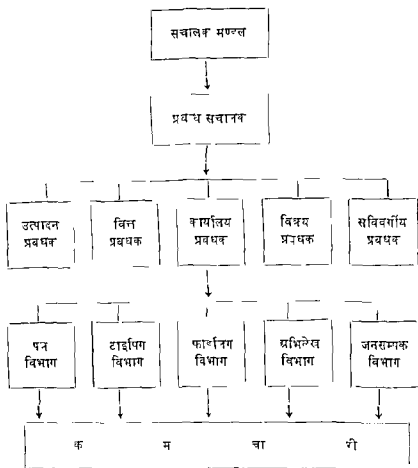
2 यह कार्य निष्पादन प्रक्रिया को कठोर बना देता है क्योंकि एक ही व्यक्ति को कई अधिकारियों से आदेश प्राप्त करने पड़ते हैं।

3 यह श्रम अधीनस्थों के कार्य भार को भी बढ़ा देता है।

4 यह सगठन विशेषता की तुलना म अधिकारियों का महत्व भी कम कर देते हैं।

5 यह सगठन सस्था म अधिकारों के केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति को बढ़ावा देता है।

6 यह प्रबन्ध को लोचहीन बनाता है।

7 यह सगठन सस्था को सत्ताधारी एव निरकुश बना देता है।

8 ऐसे सगठनो मे अवनति के कारणो का ज्ञान करना कठिन हो जाता है।

9 समन्वय स्थापित करना भी ऐसे सगठनो के लिए एक समस्या बन जाती है।

10 ऐसे सगठनो के अधीनस्थो मे अनुशासन बनाये रखना भी कठिन होता है।

11 इसमे उत्तरदायित्व से बचने की भावना का विकास होता है।

उपयुक्तता—इस प्रकार का सगठन उन व्यावसायिक सस्थाओ के लिए उपयुक्त रहता है, जो भीमकाय उत्पादन एव विक्रय करती हो तथा साथ ही जिस सस्था के लिए पर्याप्त मात्रा मे विशिष्टीकरण करना लाभप्रद हो।

कौन सा प्रारूप उपयुक्त है ?

(Which Form is Suitable ?)

कार्यालय सगठन के लिए किसी एक विशेष प्रकार के प्रारूप को उपयुक्त या अनुपयुक्त कहना अत्यन्त कठिन है। किन्तु एक विशेष प्रकार के प्रारूप चुनाव करते समय कई बातो को ध्यान मे अवश्य रखना चाहिये। सामान्यत किसी प्रकार के सगठन प्रारूप का चुनाव करते समय निम्नलिखित तत्वो का विशेष ध्यान रखना चाहिये—

1 सगठन का आकार।
2 कार्यालय की क्रियाएँ।
3 कार्यालय प्रबन्धको का चातुर्य।
4 कर्मचारियो की सामाजिक एव मानवीय आवश्यकताएँ।
5 सस्था की विकास सम्भावनाएँ।
6 कार्यालय के विभिन्न विभागो की सख्या।
7 प्रबन्धको की नीतियाँ।
8 सस्था की वस्तुओ का बाजार क्षेत्र।
9 समान सस्थाओ के कार्यालय सगठन का प्रकार।
10 सस्था तथा कार्यालय के उद्देश्य।

इन सभी तत्वो को ध्यान मे रखकर ही किसी विशेष प्रकार के सगठन प्रारूप का चुनाव करना चाहिये।

कार्यालय संगठन की प्रक्रिया

(Process of Organising Office)

कार्यालय का सगठन करने के लिए कई क्रियाएँ करनी पडती हैं। किन्तु, निम्नलिखित प्रक्रिया द्वारा कार्यालय का सगठन अभीष्ट प्रकार से सुविधापूर्वक किया जाता है —

पडती है। अत. कार्यों पर लगाये जाने वाले व्यक्तियों को कार्य के लिये अच्छी मशीनें एवं अन्य औजार दिये जाने चाहिये। कार्यालय के भौतिक वातावरण में भी सुधार करने का प्रयास करना चाहिये।

7. अधिकारों का प्रत्यायोजन (Delegation of Authority)—प्रत्येक व्यक्ति को उसके कार्यों के अनुरूप उसे अधिकार भी दिये जाने चाहिये। केवल कार्य सौंप दिये जाने से कार्य पूरे नहीं हो जाते हैं। कार्यों को करने के लिये अधिकारों का प्रत्यायोजन परमावश्यक है।

8 आपसी सम्बन्धों का निर्धारण (Determining Relationship)—तत्पश्चात् विभिन्न व्यक्तियों के बीच आपसी सम्बन्धों का भी निर्धारण कर दिया जाना चाहिये। कौन व्यक्ति किसका अधीनस्थ होगा, इस बात की स्पष्ट रूप से व्याख्या कर देनी चाहिये।

केन्द्रीयकरण बनाम विकेन्द्रीकरण
(Centralisation v s Decentralisation)

आधुनिक कार्यालय में दिन प्रतिदिन अनेकों कार्य होते हैं। पत्र व्यवहार, फाइलिंग, लेखा कार्य, विक्रय आदेशों का क्रियान्वयन करना, क्रय आदेश भेजना, धनराशि प्राप्त करना तथा भुगतान करना, कर्मचारियों के वेतन तथा कल्याण की व्यवस्था करना, आंकड़ों से अभिलेख बनाकर सुरक्षित रखना आदि आदि अनेक कार्य हैं, जिन्हें एक कार्यालय में सदैव किया जाता है। जब व्यवसाय का आकार छोटा होता है, तब तो ये सभी कार्य सभी विभागों के लिए एक ही स्थान पर किये जाते ही हैं। किन्तु जब व्यवसाय का आकार बढ़ने लगता है, तब व्यवसाय में कार्यालय कार्य भी बढ़ने लगते हैं। अत व्यवसाय के प्रबन्धकों के समक्ष दो विकल्प होते हैं कि वे या तो कार्यालय कार्यों को प्रत्येक विभाग के साथ विकेन्द्रीकृत कर दें अथवा सभी कार्यालय कार्यों की व्यवस्था एक स्थान पर कर दें। उदाहरण के लिए एक संस्था का आकार बहुत बड़ा हो गया है। अत इस संस्था को कई विभागों एवं उपविभागों में विभक्त कर दिया जाता है यथा क्रय विभाग, विक्रय विभाग, लेखा विभाग, कर्मचारी विभाग, रोकड़ विभाग, नियोजन विभाग आदि इन सभी विभागों के कुशलता पूर्वक सचालन के लिए कई कार्यालय सेवाओं की आवश्यकता पड़ती है उदाहरणार्थ टाइपिंग, टेलीफोन, टैलेक्स, स्वागत कक्ष, सन्देशवाहक प्रतिलिपिकरण, पुस्तकालय सेवा, आदि। इन कार्यालय सेवाओं की व्यवस्था यदि किसी एक केन्द्रीय स्थान पर कर दी जाती है, तो कार्यालय का केन्द्रीयकरण कहा जाता है। किन्तु यदि इन सभी सेवाओं की व्यवस्था प्रत्येक कार्यालय में ही उपलब्ध कर दी जाती है, तो उसे विकेन्द्रीकृत कार्यालय की संज्ञा दी जाती है।

प्रत्येक संस्था इन दोनों विकल्पों में से किसी एक विकल्प का चुनाव कर सकती है अर्थात् एक संस्था या तो सभी कार्यालय सेवाओं की व्यवस्था किसी एक

सभी विभागो मे यह नोटिस टाइप किया जावेगा। इससे समय, श्रम एवं धन सभी का अनावश्यक व्यय होता है।

4 साज-सामान में कम विनियोग (Low Investment in Equipment)—जब सभी कार्य केन्द्रीयकृत कार्यालय मे होते है तो बहुत कम मात्रा मे कार्यालय उपकरणों की आवश्यकता होती है और बहुत कम धन विनियोग होता है। इसके विपरीत विकेन्द्रीकृत कार्यालय स्थापित करने पर प्रत्येक विभाग म कार्यालय के सभी साज-सामान अथवा उपकरण उपलब्ध करने पड़ेगे। फलत बहुत बड़ी मात्रा मे धन विनियोग करना पड़ेगा।

5. प्रमापीकरण (Standardisation)—सभी कार्य एक ही केन्द्रीयकृत कार्यालय मे होने के कारण उनका प्रमापीकरण आसानी से किया जा सकता है। स्टेशनरी, कार्यालय मे प्रयुक्त होने वाले फार्म, उपकरण, आदि समान प्रकार के रखे जा सकते है। कार्यालय कार्य की एक निश्चित दिनचर्या या कार्य विधि (Procedure) निश्चित की जा सकती है।

6 निरीक्षण मे सुधार तथा खर्च मे कमी (Supervision in Improved and Costs Reduced)—एक ही साथ कार्य कर रहे कर्मचारियों के कार्यो का निरीक्षण अपेक्षाकृत शीघ्र किया जा सकता है निरीक्षकों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने मे ही समय बरबाद नही करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त, अनेक कर्मचारियो मे कई अच्छे एव कुशल कर्मचारी भी होते है। वे अपने साथियो के कार्यो म आवश्यक सुधार कर सकते हैं। इन कारणों के परिणामस्वरूप निरीक्षक अपेक्षाकृत अधिक कर्मचारियों के कार्यों का निरीक्षण कर सकते है। अतएव निरीक्षण व्यय भी घट जाते हैं।

7. कुशल सेविवर्गीय प्रबन्ध (Efficient Personnel Management)—केन्द्रीयकृत कार्यालय होने पर कार्यालय कर्मचारियो की भर्ती चुनाव, प्रशिक्षण, पदोन्नति का एक तरीका निश्चित किया जा सकता है। ऐसा इसलिए सम्भव हो पाता है क्योंकि ऐसे कार्यालय मे बहुत बड़ी सख्या मे कर्मचारी होते है। किन्तु विकेन्द्रीकृत कार्यालय मे ऐसा सम्भव नही हो पाता है क्योंकि वहाँ पर कर्मचारियो की सख्या भी बहुत कम हो जाती है।

8 कार्यालय कार्यों में लोच (Flexibility in Office Work)—एक केन्द्रीयकृत कार्यालय के कार्यो मे पर्याप्त लोच पाई जाती है। यदि किसी समय पर कार्य-भार बढ जाता है तो सभी कर्मचारी थोड़ा-थोड़ा कार्य का बँटवारा करके आसानी से पूरा कर लेते है। विकेन्द्रीकृत कार्यालय मे कर्मचारियो की सख्या कम होने से थोड़ा सा कार्य बढने पर भी कर्मचारियों को भारी बोझ अनुभव होने लगता है।

9 व्यक्तिगत कुशलता मे तुलना (Comparision of Individual Efficiency)—केन्द्रीयकृत कार्यालय मे समान कार्य करने वाले कर्मचारियो की सख्या बहुत बड़ी होती है। अतः कार्य करने वाले कर्मचारियों की कुशलता मे आसानी से

तुलना की जा सकती है। इससे पदोन्नति प्रशिक्षण आदि से सम्बन्धित निर्णय लेने में मदद मिलती है।

10 समय का सदुपयोग (Proper Utilisation of Time)—केन्द्रीयकृत कार्यालयों में किसी विभाग में कम तथा किसी विभाग में अधिक कार्य होने से प्रतिदिन काम सन्तुलन बना रहता है। अतः कर्मचारियों को हाथ पर हाथ रखकर बैठे नहीं रहना पड़ता है।

11 सहयोग एवं समन्वय की सुविधा (Facilitates Cooperation and Coordination)—एक केन्द्रीय कृत कार्यालय में सभी कर्मचारी एक साथ कार्य करते हैं। वे एक दूसरे को व्यक्तिगत रूप से जानने लगते हैं। इससे कर्मचारियों में आपसी सहयोग बढ़ता है। इसके अतिरिक्त समन्वय में भी सुविधा मिलती है क्योंकि सभी कार्य एक ही व्यक्ति के अधिकार एवं नियन्त्रण में किये जाते हैं।

केन्द्रीयकरण के दोष (Disadvantages of Centralization)

कार्यालय सेवाओं के केन्द्रीयकरण करने से कई दोष भी उत्पन्न हो जाते हैं। ये दोष निम्नानुसार हैं —

1. कार्य निष्पादन में विलम्ब (Delay in Performance of Work)—कार्यालय का केन्द्रीयकरण कर देने पर विभागों और कार्यालय में दूरी बढ़ जाती है। अतः विभाग के प्रत्येक कार्य को करने में कार्यालय सेवाओं को तत्काल प्राप्त नहीं किया जा सकता है। इससे कार्यों को करने में विलम्ब होने लगता है।

2 गोपनीयता का अभाव (Lack of Secrecy)—प्रत्येक विभाग को अपने कार्यों को करने के लिए आवश्यक सेवाएँ केन्द्रीय कार्यालय से ही प्राप्त होती हैं। अतः विभाग की सभी बातें केन्द्रीय कार्यालय में भी फैल जाती हैं और गोपनीयता समाप्त हो जाती है।

3 लाल फीताशाही का बोलबाला (Red-tapism)—केन्द्रीयकृत कार्यालय की स्थिति में एक दोष यह भी पैदा हो जाता है कि कार्यों में लालफीता शाही का दोष बढ़ जाता है। कभी विभाग के व्यक्ति कार्य समय पर पूरा नहीं करते हैं तो कभी कार्यालय के व्यक्ति समय पर आवश्यक सेवा प्रदान नहीं करते हैं। इससे लाल-फीताशाही पनपने लगती है।

4 विभागों की कार्यकुशलता पर विपरीत प्रभाव (Adverse Effect on the Efficiency of Departments)—केन्द्रीय कृत कार्यालय की दशा में विभागों की कार्य कुशलता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। समय पर कार्यालय सेवाएँ उपलब्ध नहीं होने की स्थिति में विभागों की कार्यकुशलता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

5 कार्यालय कर्मचारियों में विभागीय निष्ठा का अभाव (Lack of Loyalty among Office Personnel)—जब कार्यालय का केन्द्रीयकरण कर दिया जाता है, तब उस कार्यालय के कर्मचारियों की विभाग के कार्यों के प्रति निष्ठा नहीं

रहती है। इसका कारण यह है कि विभाग के कार्यों के अच्छे या बुरे होने में उनका प्रत्यक्ष हित नहीं होता है।

6 उच्च अधिकारियों का विरोध (Opposition by Top Executives)—बड़े एवं उच्च अधिकारी समन्वित केन्द्रीयकृत कार्यालय व्यवस्था का विरोध करते हैं। इसका कारण यह है कि कार्यालय सेवाएँ उनके नियन्त्रण में नहीं रहती हैं। इसमें वे समय पर कार्य नहीं करवा पाते हैं तथा उनकी कार्यकुशलता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

7 आवश्यक सामग्री प्राप्ति में विलम्ब (Delay in Getting Necessary Material)—केन्द्रीयकृत कार्यालयों की स्थिति में प्रत्येक विभाग को उसके काम में आने वाली आवश्यक रजिस्टर, कार्ड, फाइलें आदि भी वहीं से मिलते हैं। अतः उन कार्यालय को यह सामग्री प्राप्त करने में कई औपचारिकताओं का पालन करना पड़ता है।

8 अधिक व्यय (Higher Expenses)—विभाग एवं केन्द्रीय कार्यालय के मध्य आने-जाने तथा सेवाओं के प्राप्त करने में खर्च भी बढ़ जाता है।

9 कर्मचारियों का सकुचित विकास (A Normal development of Personnel)—केन्द्रीयकृत कार्यालय में कार्यों का विशिष्टीकरण करने से एक व्यक्ति एक ही कार्य में विशेष ज्ञान प्राप्त कर पाता है। इससे उनका अन्य कार्यों से सम्बन्ध समाप्त हो जाता है।

विकेन्द्रीकरण के लाभ (Advantages of Decentralisation)

विकेन्द्रीकृत कार्यालय की दशा में प्रत्येक विभाग में उस विभाग से सम्बन्धित सभी क्रियाओं के निष्पादन के लिए सभी आवश्यक सेवाएँ उपलब्ध रहती हैं। ऐसे विकेन्द्रीकृत कार्यालय की दशा में निम्नलिखित लाभ होते हैं—

1 गोपनीयता (Secrecy)—प्रत्येक विभाग में अनेक गोपनीय कार्य किए जाते हैं। यदि केन्द्रीयकृत कार्यालय में ये गोपनीय कार्य करवाए जाते हैं तो बहुत से व्यक्तियों को गोपनीय बात की जानकारी हो जायेगी। इससे गोपनीयता भंग हो जाती है। विकेन्द्रीकृत कार्यालय में ऐसी गुप्त बातें कुछेक व्यक्तियों को ही ज्ञात हो पाती है। इससे गोपनीयता बनी रहती है।

2 विभागीय निष्ठा (Departmental Loyalty)—विकेन्द्रीकृत कार्यालय की दशा में विभिन्न विभागों में कार्यालय कार्य करने वाले अलग अलग व्यक्ति नियुक्त किये जाते हैं। वे अपने विभाग के कार्यों से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित होते हैं। अतः वे अपने विभागीय कार्यों को अधिक निष्ठा के साथ पूरा करते हैं।

3. अधिकारियों का समर्थन (Support of officials)—इस व्यवस्था को विभागीय अधिकारियों का भी समर्थन मिलता है। इसका कारण यह है कि प्रत्येक विभाग के अधिकारी के पास कार्यालय सेवा उपलब्ध रहती है। इससे वह अपनी कार्यकुशलता में वृद्धि कर सकता है।

4. यथा समय कार्य (Work in Proper Time)—विभागीय कार्यों का महत्त्व विभाग के निरटस्त व्यक्ति ही अधिक गम्भीरता से समझ पाते है। अत. महत्त्वपूर्ण कार्यों को कार्यालय कर्मचारी शीघ्रता पूर्वक पूरा कर देते है। इससे कार्य यथा समय होते है।

5. समय एव श्रम की बचत (Saving Time and Labour)—जब प्रत्येक विभाग के सभी कार्यालय कार्य विभाग मे ही पूरे हो जाते है, तो विभाग से कार्यो को केन्द्रीयकृत कार्यालय म करवाने नही आना-जाना पड़ता है। इससे कर्मचारियो के समय एव श्रम की बचत होती है।

6. शीघ्र निर्णय (Quick Decisions)—विकेन्द्रीकृत कार्यालय की दशा मे प्रत्येक विभाग का अधिकारी शीघ्र निर्णय ले सकता है। अपने कार्यालय के कार्यों की प्रक्रिया एव कार्यविधि स्वय निश्चित कर सकता है।

विकेन्द्रीकरण के दोष (Disadvantages of Decentralisation)

कार्यालय कार्यों के विकेन्द्रीकरण से कई दोष भी उत्पन्न हो सकते है। उनमे प्रमुख दोष निम्नानुसार है —

1. विशिष्टीकरण का अभाव (Lack of Specialisation)—विकेन्द्रीकृत कार्यालय की दशा म विशिष्टीकरण करना सामान्यत सम्भव नहीं हो पाता है। इसका कारण यह है कि प्रत्येक विभाग मे कर्मचारी कम होते है। उन थोड़े कर्मचारियो को ही सभी कार्य करने होते है।

2 लागत मे वृद्धि (Higher Expenses) कार्यालय कार्यो का विकेन्द्रीकरण करने का एक दोष यह भी उत्पन्न होता है कि कार्यालय खर्च बढ़ जाता है। सभी विभागो के लिए अलग अलग कर्मचारियो की नियुक्ति की जाती है तथा अलग-अलग कार्यालय उपकरणों की व्यवस्था करनी पड़ती है। इस प्रकार कार्यालय खर्च म वृद्धि होती है।

3 निरीक्षण की कठिनाई (Difficult to Supervise) अलग विभागो म कार्यालय कार्य होने पर कार्यालय पर्यवेक्षक को कर्मचारियो के निरीक्षण मे भी कठिनाई आती है।

4. कार्यभार मे असतुलन (Imbalance of Work load) —विकेन्द्रीयकरण करने पर कभी कभी यह समस्या आती है। कि कुछ विभागो म कार्यभार बहुत अधिक बढ़ जाता है तथा कुछ कार्यालयो म अत्यन्त ही कम हो जाता है। अत कुछ कर्मचारी कार्यभार से दब जाते है तथा कुछ बेकार बैठे रहते है। केन्द्रीयकृत कार्यालय म कार्य का समान बँटवारा किया जा सकता है।

5 कार्यों का दोहराव (Duplication of Work)—विकेन्द्रीकृत कार्यालयो का एक दोष यह भी है कि कुछ कार्य सभी कार्यालयों मे करने ही पड़ते है। यदि कार्यालय केन्द्रीयकृत हो तो उन्हे एक ही स्थान पर करके समाप्त किया जा सकता है।

6 प्रमापीकरण मे कठिनाई (Difficulty in Standardisation)—विकेन्द्रीकरण का एक दोष यह भी है, कि इससे कार्यों के प्रमापीकरण म भी कठिनाई आती है। स्टेशनरी, फार्मों, रजिस्टरो, कार्यविधियो, नीतियों आदि का प्रमापीकरण करने मे कठिनाई आती है। प्रत्येक विभाग का अध्यक्ष अपनी सुविधा, आवश्यकता, समझ, अनुभव आदि के अनुसार ही कार्यालय कार्य को करवाता है।

7 सेविवर्गीय कार्यों मे कठिनाई (Difficulty in Personnel Functions)—विकेन्द्रीकृत कार्यालयो मे कर्मचारियो के चुनाव, प्रशिक्षण, पदोन्नति आदि विभिन्न नीतियो के निर्धारण एव क्रियान्वन मे भी कई कठिनाइयाँ आती है।

निष्कर्ष (Conclusion)

कार्यालय के केन्द्रीयकरण तथा विकेन्द्रीकरण के लाभ एव दोषो का क्रमश अध्ययन करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि दोनो ही विकल्प अपनी-अपनी जगह उपयुक्त है। व्यवहार मे देखा जाता है कि कुछेक कार्यालयो मे सेवाओ का केन्द्रीयकरण किया जाता है तथा अन्य कुछेक सेवाओं का विकेन्द्रीकरण। अत प्रत्येक सस्था को अपनी आवश्यकतानुसार कुछ सेवाओ का केन्द्रीयकरण कर देना चाहिए। प्राय स्वागत कक्ष, डाक सेवा, स्टेशनरी, टेलीफोन, डुप्लीकेटिंग, रिकार्ड कार्य, कर्मचारियो के चुनाव, प्रशिक्षण, पदोन्नति आदि के कार्यो का केन्द्रीयकरण किया जा सकता है। किन्तु अन्य प्रकार के कार्यो यथा-टाइपिंग, हिसाब किताब, तथा आवश्यक छोटे उपकरणो आदि की व्यवस्था को विकेन्द्रीकृत किया जा सकता है।

अभ्यास के लिए प्रश्न

1 कार्यालय सगठन से आप क्या समझते है? इसके सिद्धान्तो का वर्णन कीजिये।

What do you mean by office organisation? Discuss its principles

2 कार्यालय सगठन का क्या महत्त्व है?

What is the importance of office organisation?

3 कार्यालय सगठन के विभिन्न प्रारूपो का वर्णन कीजिये।

Describe various forms of office organisation

4 आदर्श कार्यालय सगठन के आवश्यक तत्त्वों का वर्णन कीजिये।

Describe the essentials of an ideal office organisation

5 कार्यालय सगठन की प्रक्रिया का उल्लेख कीजिये।

Discuss the process of office organisation

6 कार्यालय संगठन के विभिन्न प्रारूपों का वर्णन कीजिये। एक आधुनिक कार्यालय के लिए व्यावसायिक संगठन का कौनसा प्रारूप आप उपयुक्त समझते है ?

Discuss the various forms of office organisation ? Which one do you think would be suitable for modern office

7 कार्यालय क्रियाओं के केन्द्रीयकरण से क्या तात्पर्य है ? केन्द्रीयकरण बनाम विकेन्द्रीयकरण के लाभों तथा हानियों का विश्लेषण कीजिये।

What is meant by centralization of office activities Discuss the advantages and disadvantages of centralization and decentralization of office work

---

3

कार्यालय का स्थान
(Office Site)

"The office activity should be located where it can best serve the requirements of sales, production and other management functions."
—*Littlefield and Peterson.*

कार्यालय की स्थापना का निर्णय करते समय कार्यालय का स्थान महत्त्वपूर्ण पहलू होता है। प्रबन्धकों को कार्यालय का स्थान का निर्णय बहुत ही सोच-समझ कर करना पड़ता है। कार्यालय का स्थान कार्यालय के वातावरण को प्रभावित करता है और कार्यालय का वातावरण कर्मचारियों के विचारों तथा उनकी कार्य-क्षमता को प्रभावित करता है। इतना ही नहीं, दुनिया की लगभग 40% कार्यशील जनता अपने दैनिक काल के भाग को कार्यालय में ही व्यतीत करती है। अतः कार्यालय के स्थान का कार्यालय प्रबन्ध में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

कार्यालय के स्थान का चुनाव करते समय ध्यान रखने योग्य बातें
(Factors to be Considered While Selecting on Office Site)

कार्यालय व्यवसाय का महत्त्वपूर्ण अंग है। यह संस्था का प्रतिबिम्ब है। जैसी संस्था होती है, उसका कार्यालय भी वैसा ही होता है, ऐसा कई लोग मानते हैं। अतः एक व्यावसायिक संस्था को कार्यालय के स्थान का चुनाव बहुत ही सावधानी से करना चाहिए। लिटिलफील्ड तथा पीटरसन (Littlefield and Peterson) ने उचित ही लिखा है कि **"कार्यालय क्रियाओं की स्थिति को निश्चित करने का निर्णय व्यावसायिक संस्था की स्थापना की वृहद् समस्या के साथ ही निकटतम रूप से जुड़ा हुआ है।"** वास्तव में कार्यालय के स्थान का चुनाव एक जटिल समस्या है। इस समस्या के निवारण के लिए कई पहलुओं पर ध्यान देने की आवश्यकता पड़ती है। सामान्यतः कार्यालय के स्थान का चुनाव करते समय निम्नलिखित तीन पहलुओं पर ध्यान दिया जाना चाहिये

I आर्थिक पहलू

II कानूनिक पहलू

III मनोवैज्ञानिक पहलू

I. आर्थिक पहलू
(Economic Aspect)

पवित्र बाइबल (Bible) में कहा गया है कि **"कोई भी व्यक्ति मीनार की लागत का हिसाब लगाये बिना, मीनार नहीं बनवाता है।"** (No man buildeth a tower without counting the cost thereof, The Bile) यह बात आज कार्यालय के स्थान के चुनाव के सम्बन्ध में भी समान रूप से लागू होती है। कार्यालय के स्थान का चुनाव करते समय सर्वाधिक महत्त्व प्रायः आर्थिक पहलू को ही दिया जाता है। वास्तव में, यह एक महत्त्वपूर्ण पहलू है, जिस पर ध्यान देना आवश्यक ही है। कार्यालय के स्थान का चुनाव करते समय आर्थिक दृष्टि से निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिये।

1. लागतों का अध्ययन (Study of Costs)—कार्यालय कई प्रकार के भवनों यथा-नया, पुराना, किराये का, संस्था का अपना, आदि में स्थापित किया जा सकता है। अतः इन सभी प्रकार के भवनों की लागतों का तुलनात्मक अध्ययन करना चाहिये। नये भवन बनाने का निर्णय लेने से पूर्व नये भवन की भूमि की लागत, उसके बनवाने की लागत, उस पर धन व्यय करने से आने वाला ब्याज आदि बातों को ध्यान में रखना चाहिये, नया भवन बनाने में शहरों तथा गावों की अपेक्षा शहरों में अधिक लागत आती है। अतः इस तथ्य को भी ध्यान में रखना चाहिये।

यदि किसी पुराने भवन को खरीद कर ही कार्यालय स्थापित करना है तो उस भवन की लागत किराया भी ज्ञात करना चाहिये तथा नये भवन की लागत से तुलना करनी चाहिये। कार्यालय किराये के भवन में भी स्थापित किया जा सकता है। अतः भवन के खरीदने एवं किराये पर लेने सम्बन्धी प्रश्नों पर भी विचार करना चाहिये।

2. कर (Taxes)—विभिन्न स्थानों पर विभिन्न दरों से कार्यालयों पर तथा कार्यालयों द्वारा किये गये व्यवहारों पर कर लगता है। कार्यालय पर कर नगरपालिका द्वारा वसूल किया जाता है। अतः कार्यालय पर यदि कोई कर वसूल किया जाता है, तो उस कर का तुलनात्मक अध्ययन कर लेना चाहिये तथा जहाँ कर कम हो वहीं कार्यालय स्थापित करने का प्रयास करना चाहिये। इसी प्रकार कार्यालय द्वारा किये गये व्यवहारों पर, कर कार्यालय के क्षेत्र की सरकार द्वारा निश्चित किये जाते है, जो भिन्न-भिन्न हो सकते है। उदाहरणार्थ भारत में विभिन्न राज्य सरकारें अपने राज्य में बिकने वाली वस्तुओं पर बिक्री कर लगाती है। इनकी दरें एक सी नही है। अतः इन दरों को ध्यान में रखकर भी कार्यालय का स्थान तय किया जा सकता है।

5 सुविधाओं की लागतें (Cost of Facilities)—कार्यालय के स्थान का चुनाव करने समय कार्यालय तथा कार्यालय के कर्मचारियों को उपलब्ध होने वाली

सुविधाओं की लागत का अध्ययन कर लेना चाहिये । आधुनिक समय मे सभी सुविधाएँ सभी स्थानो पर मिल तो जाती हैं । किन्तु, जब उनका मूल्य अधिक हो तो लोग उन सुविधाओं से वंचित रह जाते है । अत जहाँ सुविधाओं का कम से कम मूल्य हो वहीं कार्यालय स्थापित करने चाहिये ।

4. कर्मचारी लागत (Cost of Employees)—कई स्थानो पर कर्मचारी मिल नहीं पाते हैं । फलस्वरूप, कर्मचारी दुलर्भ रूप से उपलब्ध होने पर उन्हे अधिक पारिश्रमिक देना पड़ता है । अत कार्यालय स्थापित करते समय कर्मचारी लागतों का भी तुलनात्मक अध्ययन कर लेना चाहिये ।

II कार्यात्मक पहलू
(Functional Aspect)

कार्यालय की स्थापना मे कार्यात्मिक पहलू भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है । यद्यपि यह पहलू आर्थिक पहलू से काफी मिलता है और कहीं कहीं पर आर्थिक एव कार्यात्मिक पहलू में अन्तर करना कठिन हो जाता है, फिर भी इन दोनो को अलग-अलग रूप मे समझने का प्रयास कर रहे हैं । कार्यात्मिक पहलू मे वे बातें सम्मिलित हैं जो किसी कार्यालय के संचालन के समय आवश्यक होती हैं । किसी संस्था मे ये बाते लागू हो सकती हैं तो किसी मे नही भी । किन्तु सामान्यत कार्यालय की स्थापना म इन तथ्यो को ध्यान मे रखा जाता है

1. उचित कर्मचारियों की उपलब्धि (Availability of Proper Personnel)—कार्यालय का कार्य कर्मचारियो के बिना नहीं चला सकता है । कार्यालय मे क्लर्क, शीघ्रलिपिक (stenographer) टाइपिस्ट आदि की आवश्यकता पड़ती है । किन्तु, कुछ विशिष्ट योग्यता वाले व्यक्ति हर स्थान पर उपलब्ध नहीं होते हैं । उदाहरणार्थ, यदि राजस्थान के छोटे गाव में कार्यालय स्थापित किया जाता है तो कार्यालय के लिए उपयुक्त कर्मचारी नही मिल सकेगे। अत कार्यालय की स्थापना के समय इस बात पर ध्यान देना चाहिये कि जिस स्थान पर कार्यालय स्थापित किया जा रहा है वहाँ उपयुक्त कर्मचारी उपलब्ध कर सकेंगे अथवा नहीं । जहाँ पर उपयुक्त कर्मचारी उपलब्ध नहीं हो सकते, वहा पर कार्यालय स्थापित करने का विचार त्याग देना ही उपयुक्त होगा ।

2 यातायात की सुविधाएँ (Transport Facilities)—कार्यालय के लिए कर्मचारी दूर-दूर से आ सकते है । किन्तु, यह तभी सम्भव है जबकि कर्मचारियों एव आने-जाने के लिए यातायात की पर्याप्त सुविधाएँ उपलब्ध हो । इतना ही नहीं य सुविधाएँ इतनी सुलभ एव सस्ती होनी चाहियें, जिससे कि कर्मचारी सदैव आने-जाने न पड़ते वाले समय, श्रम तथा धन के भार को सहन कर सकें ।

3 कर्मचारियों के लिए सुविधाएँ (Facilities for Personnel)—कर्मचारी वहीं अधिक समय तक रहकर कार्य करते है, जहाँ पर उन्हें सर्वाधिक सुविधाएँ-होटल के जलपान, आराम, गाड़ी के पार्किंग की सुविधा-उपलब्ध हो । कई बार

कर्मचारी कार्यालय से घर जाने से पूर्व बाजार से महत्त्वपूर्ण कार्य करके ही जाना चाहते है। उदाहरण के लिए, दवा खरीदना, पत्र पत्रिकाएँ खरीदना, अन्य सामान्य या वस्तुएँ खरीदना, आदि। यदि कार्यालय के पास-पास ये सभी सुविधाएँ उपलब्ध हो, तो अति उत्तम रहता है। ऐसे कार्यालयो मे अच्छे कर्मचारी भी आने को उत्सुक रहते हैं तथा सस्था मे अधिक लम्बे समय तक टिकते हैं, ऐसा कई मनोवैज्ञानिको का मानना है। बड शहरो के लिए यह बात विशेष रूप से लागू होती है।

4 *हवाई अड्डे, रेल्वे स्टेशन आदि की समीपता* (Proximity of Airport, Rly Station etc)—कार्यालय के स्थान का चुनाव करते समय इस बात को भी ध्यान मे रखना चाहिये। कई व्यवसायो मे भ्रमण कार्य अधिक रहता है। अधिकारियो को बार-बार बाहर जाना पडता है। ऐसे व्यवसायो के कार्यालयो की स्थापना करते समय हवाई-अड्डे, बस स्टेण्ड रेल्वे स्टेशन आदि की स्थिति को भी ध्यान मे रखना चाहिये।

5 *डाक-तार सुविधाएँ* (Post and Telegraph Facilities)—कार्यालय मूलत सूचनाओ का आदान-प्रदान करता है। डाक तार सेवाओ के अभाव मे कार्यालय की कुशलता सदेहास्पद है। अत कार्यालय की स्थापना करते समय डाक-तार सुविधाओ की उपलब्धि को भी ध्यान मे रखना चाहिये।

6 **ग्राहको के लिए सुविधाजनक** (Suitable for Customers)—कार्यालय की स्थापना करते समय ग्राहको की सुविधा को भी मे ध्यान रखना चाहिये। कार्यालय ऐसे स्थान पर होना चाहिये जहाँ पर ग्राहक आसानी से पहुँच सके, तथा वे कम समय एव खर्च से कार्यालय मे पहुँच सके।

7. *अन्य सस्थाओं से सम्पर्क की सुविधा* (Easy to Contact other Institutions)—कार्यालय की स्थापना करते समय एक महत्त्वपूर्ण बात यह भी ध्यान मे रखनी चाहिये कि सस्थाओ से सम्पर्क आसानी से बनाये रखा जा सके। यदि कार्यालय कही अन्य सस्थाओ से दूर शहर के किसी एक कोने मे स्थापित कर दिया जाता है तो अन्य सस्थाओ से निरन्तर सम्पर्क बनाने मे कठिनाई आती है। प्राय कार्यालय वही स्थापित करने चाहिये जहाँ अन्य प्रतियोगी सस्थाओं के कार्यालय स्थित है। व्यवहार मे प्राय ऐसा ही देखा जाता है। उदाहरण के लिए, जौहरी बाजार जयपुर मे सभी बडे जौहरियो के कार्यालय स्थित है, तो चौडा रास्ता जयपुर मे प्राय सभी बडे पुस्तक विक्रेताओ एव प्रकाशको के कार्यालय है। इसी प्रकार अन्य उद्योगो मे भी पाया जाता है।

8. **शहर से समीपता** (Proximity of City)—यह आवश्यक नही है कि कार्यालय की स्थापना सदैव शहर मे ही की जाय किन्तु, इतना अवश्य ध्यान मे रखना चाहिये कि कार्यालय शहरो के समीप ही हो ताकि कार्यालय की आवश्यकता पूर्ति तत्काल हो सके। इसके अतिरिक्त बार-बार शहरो मे जाने एव आने के खर्चों मे भी बचत हो सके।

9 स्थान की पर्याप्तता (Adequacy of Place)—कार्यालय स्थापित करने से पूर्व यह भी देख लेना चाहिये कि जिस स्थान पर कार्यालय स्थापित किया जा रहा है, वह वर्तमान आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त है या नही। यदि अपर्याप्त स्थान पर कार्यालय स्थापित कर दिया गया तो कार्यालय का कार्य सुचारु रूप से नही चल सकेगा। कार्यालय मे आने वाली तथा कार्यालय के कर्मचारियों, सभी को असुविधा का सामना करना पडेगा।

10 भावी विकास की सम्भावनाएँ (Possibilities of Future Development)—कार्यालय की स्थापना करते समय भावी विकास की सम्भावनाओं को ध्यान मे रखना चाहिए। व्यवसाय के बढने से कार्यालय मे अधिक स्थान की आवश्यकता पडती है। किन्तु कार्यालय के एक निश्चित स्थान को घटाया बढाया तो नही जा सकता है। परन्तु कार्यालय ऐसा होना चाहिये, जिसकी व्यवस्था मे परिवर्तन करने से अपेक्षाकृत अधिक कर्मचारियों, अधिक मशीनें आदि समा सकें।

11. सुरक्षा (Safety)—कार्यालय सुरक्षित स्थान पर होना चाहिये। कार्यालय यदि ऐसे स्थान पर है जहा पर बहुत कम लोग रहते हैं तो कोई भी लूट सकता है। अत कार्यालय पर्याप्त बस्ती वाले स्थान पर ही होना चाहिये। इसी प्रकार कार्यालय नदियों, विस्फोटक वस्तुओं के गोदाम तथा कारखानों से दूर होने चाहिये। परिणाम-स्वरूप, कार्यालय पूर्णत सुरक्षित रह सकेगा।

12 ख्याति (Prestige)—कार्यालय ऐसे स्थान पर होना चाहिये जो संस्था की ख्याति मे चार चाँद लगा सके। स्थानो के आधार पर कई बार संस्था की स्थिति का पता लगाया जाता है। सामान्यत विख्यात तथा अच्छी संस्थाओं के कार्यालयो के साथ ही संस्था के कार्यालय की स्थापना करने से संस्था की ख्याति बढती है।

13 अन्य विभागो से समीपता (Proximity of Other Departments)—कार्यालय के स्थान का चुनाव करते समय इस बात को ध्यान मे रखना भी आवश्यक है कि कार्यालय अन्य विभागो के समीप ही रहे। लिटिलफील्ड तथा पीटरसन (Littlefield and Peterson) के अनुसार "कार्यालय वहा स्थापित करना चाहिये जहां से यह विक्रय, उत्पादन तथा अन्य प्रबन्ध कार्यों की आवश्यकताओं को भली प्रकार पूरा कर सके।" किन्तु अन्य सभी विभाग एक स्थान पर स्थित नही हैं तो यह समस्या उत्पन्न होगी कि किस विभाग के पास कार्यालय स्थापित किया जाय। ऐसी स्थिति से कार्यालय के स्थान का चुनाव से पूर्व यह विश्लेषण करना चाहिये कि किस विभाग से सर्वाधिक रूप मे कार्य पडता है और प्रबन्धकों को इससे सम्बन्धित अन्य तथ्यो के सम्बन्ध मे भी जानकारी प्राप्त करनी चाहिये। तत्पश्चात् कार्यालय के स्थान का निर्णय लेना चाहिये।

14. हवा एव रोशनी (Air and Light)—कार्यालय के स्थान का निर्णय लेते समय हवा एव रोशनी जैसे महत्त्वपूर्ण बातो को नही भूलना चाहिये। कार्यालय

इस स्थान पर होना चाहिए जहाँ पर पर्याप्त हवा आती हो। यदि हवा की कमी रहती है तो वातानुकूल व्यवस्था की सम्भावना पर विचार करना चाहिए। इसी प्रकार कार्यालय में पर्याप्त रोशनी भी आनी चाहिए। किन्तु यदि रोशनी नहीं आती है। तो कृत्रिम प्रकाश की व्यवस्था का भी भली प्रकार अध्ययन कर लेना चाहिए।

II मनोवैज्ञानिक पहलू
(Psychological Aspect)

कार्यालय के स्थान का चुनाव करते समय मनोवैज्ञानिक पहलू पर भी ध्यान देना आवश्यक है। कर्मचारी जो कार्यालय में काम करते हैं वे अपने दैनिक कार्य काल का लगभग तिहाई भाग कार्यालय में ही बिताते हैं, उनके विचार निश्चित ही कार्यालय के स्थान से प्रभावित होते हैं। काम के प्रति रुचि एवं अरुचि उत्पन्न करने में कार्यालय का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

कार्यालय की स्थिति से ही कार्यालय का वातावरण बनता है। वातावरण से मनुष्य के आचार विचार तथा भावनाएँ बनती हैं। अतः कार्यालय की स्थापना करते समय मनोवैज्ञानिक बातों पर भी ध्यान देना चाहिए। प्रबन्धकों को कार्यालय के स्थान का चुनाव करते समय कार्यालय के आस-पास के वातावरण से परिचित होना चाहिए। उन्हें पहले से ही इस बात पर विचार करना चाहिए कि कार्यालय का अमुक स्थिति में कर्मचारियों की कार्यक्षमता तथा विचारों पर क्या प्रभाव पड़ेगा? क्या यह स्थिति कर्मचारियों, सदस्यों, ग्राहकों तथा अन्य आगन्तुकों के मस्तिष्क में संस्था के प्रति अच्छी भावना उत्पन्न कर सकेगी? यदि प्रबन्धक इन प्रश्नों का उत्तर संस्था के हित में पाते हैं तो उन्हें उस अमुक स्थान पर कार्यालय स्थापित करना चाहिए अन्यथा नहीं।

कार्यालयों का स्थान शहर बनाम कस्बा
(Site of Office City v s Town)

कई बार यह प्रश्न उठता है कि कोई व्यावसायिक संस्था अपने कार्यालय को शहरों में स्थापित करे या कस्बों तथा गाँवों में। यह बड़ा ही विवादास्पद प्रश्न है। इस प्रश्न का उत्तर देने से पूर्व हम शहरों तथा कस्बों में कार्यालय खोलने के सभी लाभों एवं दोषों का क्रमशः अध्ययन कर लेना चाहिए

शहरों मे कार्यालय खोलने के लाभ (Advantages)

शहरों में कार्यालय खोलने से प्राय निम्नलिखित लाभ होते हैं

1 सचार सुविधाएँ—शहरों में कार्यालय की स्थापना से कार्यालय के महत्त्वपूर्ण उद्देश्य —सूचनाएँ प्रदान करने तथा प्राप्त करने का उद्देश्य— आसानी से पूरा हो जाता है। क्योंकि शहरों में सचार के साधन काफी विकसित होते हैं।

2. अन्य सुविधाएँ—शहरों में बैंक, बीमा कम्पनियों आदि की सुविधाएँ मिल जाने से संस्था का संचालन आसानी से किया जा सकता है।

3. बाजार—एक ही शहर में प्राय: काफी विस्तृत बाजार प्राप्त हो जाता है। अतः माल के विक्रय में कठिनाई नहीं आती है।

4. यातायात सुविधाएँ—शहरों में यातायात के साधन पर्याप्त विकसित होते हैं। अतः कर्मचारियों को आने-जाने तथा अधिकारियों को व्यावसायिक यात्रा करने में कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ता है।

5. प्रतिस्पर्द्धी तथा अन्य व्यावसायिक संस्थाओं से सम्पर्क—प्राय: शहरों में एक ही व्यवसाय की अनेकों फर्में पाई जाती हैं। अत: शहरों में कोई भी संस्था अन्य व्यावसायिक संस्थाओं से आसानी से सम्पर्क स्थापित कर सकती है।

6. कुशल कर्मचारियों की उपलब्धि—शहरों में कई तरह के लोग बसते हैं। अत: कार्यालय में कार्य करने के लिए कार्यालय की आवश्यकतानुसार आसानी से स्थानीय कर्मचारी उपलब्ध हो जाते हैं।

शहरों में कार्यालय खोलने के दोष (Disadvantages) :

शहरों में कार्यालय खोलने के निम्नलिखित प्रमुख दोष भी हैं। उनको शहरों में कार्यालय खोलते समय ध्यान रखना चाहिये।

1. कार्यालय भवन की लागत—शहरों में कार्यालय भवन की लागत बहुत पड़ती है। यदि कार्यालय भवन क्रय किया जाता है तो बहुत अधिक धन राशि विनियोग करनी पड़ती है। यदि कार्यालय किराये पर लिया जाता है तो भी बहुत बड़ी धन राशि प्रति माह किराये के रूप में देनी पड़ती है, जो प्राय: कस्बों की तुलना में काफी अधिक होती है।

2. कर—शहरों में नगरपालिकाओं द्वारा लिया जाने वाला कर प्रायः कस्बों से अधिक ही होता है। कहीं-कहीं तो कस्बों में कार्यालयों पर कोई कर वसूल नहीं किया जाता है।

3. भीड़-भाड़—शहरों में प्राय भीड़-भाड़ होती है। उन्हें घरों में, बसों में, कार्यालय में, लिफ्ट में, सिनेमा में, घूमने-फिरने के स्थानों पर भीड़-भाड़ ही देखने को मिलती है। कार्यालय के कर्मचारी शहरों के ऐसे जीवन से उकता जाते हैं। अतः उनमें कार्य के प्रति रुचि नहीं रहती है।

4. दूषित वातावरण—शहरों में अनेकों कारखाने, यन्त्र आदि होते हैं, अनेकों पेट्रोल तथा डीजल से, चलने वाले स्वचालित वाहन होते हैं। इन सबके परिणामस्वरूप शहरों का वातावरण दूषित होता जा रहा है। अतः कई लोग शहरों में रहना उचित नहीं समझते हैं।

कस्बों में कार्यालय स्थापित करने के लाभ (Advantages) :

कस्बों में कार्यालय स्थापित करने के शहरों की तुलना में कुछ लाभ हैं जो निम्नलिखित हैं :—

1 कम लागत—कस्बों या छोटे शहरों में कार्यालय स्थापित करने का इसमें बड़ा लाभ यह है कि वहाँ पर कम लागत में कार्यालय उपलब्ध हो जाते हैं। कार्यालय का भवन खरीदना हो तो शहरों की अपेक्षा कम कीमत पर मिल सकता है और बनवाना है तो कम लागत पर बनवाया जा सकता है। यदि भवन किराये पर लेना हो तो भी कस्बों में शहरों की तुलना में कम किराये पर मिल सकता है। अतः कस्बों में कार्यालय स्थापित करने का यह महत्त्वपूर्ण लाभ है।

2 कार्यालय कर्मचारियों की खुशी—आधुनिक बड़े शहरों के जीवन से कई लोग तंग आ चुके हैं। वे पुनः कस्बों में जाकर रहने की सोचने लगे हैं। अतः यदि कार्यालय के कर्मचारियों की यही भावना है तो कस्बों में कर्मचारी अधिक खुश रहेंगे। उन्हें घण्टों कार्यालय पहुँचने में खराब नहीं करने पड़ेंगे।

3 कम वेतन पर—शहरों की अपेक्षा कस्बों तथा गाँवों का जीवन स्तर कम खर्चीला ही रहता है। कर्मचारियों को कार्यालय पहुँचने के लिए भी बहुत अधिक समय खर्च नहीं करना पड़ता है। अतः कस्बों में कर्मचारी कम वेतन पर भी उपलब्ध हो जाते हैं।

4 अच्छा वातावरण—कस्बों का वातावरण साफ सुथरा होता है जो स्वास्थ्य की दृष्टि से लाभदायक होता है। इस वातावरण में सभी लोग रहना पसन्द करते हैं।

5 विभिन्न सुविधाओं की उपलब्धि सम्भव—आजकल कस्बों में भी शहरों की भाँति सभी सुविधाएँ उपलब्ध की जा सकती हैं। यातायात, संचार आदि की सुविधाएँ उपलब्ध हो जाती हैं।

6 समान क्षेत्रीय विकास—यदि व्यावसायिक संस्थाओं के कार्यालय शहरों से कस्बों में जाने लगें तो सभी क्षेत्रों का समान विकास हो सकता है। भारत में गिने चुने ही शहरों में अधिकांश कार्यालय केन्द्रित हैं। यदि इन्हें कस्बों या गाँवों में स्थानान्तरित किया जाए तो उनका पर्याप्त विकास किया जा सकता है।

7 सरकारी नीति को बल—यदि व्यावसायिक संस्थाएँ अपने कार्यालयों को शहरों से हटाकर कस्बों में तथा गाँवों में स्थानान्तरित करती हैं या कस्बों में भी कार्यालय खोलती हैं तो इसमें सरकारी नीति को बल मिलता है। भारत में सरकारी नीति के परिणामस्वरूप ही बैंक, बीमा आदि संस्थाओं के कार्यालय कस्बों तथा गाँवों में खुल रहे हैं।

कस्बों में कार्यालय स्थापित करने के दोष (Disadvantages)

कस्बों में कार्यालय स्थापित करने के जहाँ कई लाभ हैं वहाँ इसके कुछ दोष भी हैं। उनका भी हम नीचे संक्षेप में वर्णन करते हैं —

1 कई सुविधाओं का अभाव—भारत के कस्बों में कार्यालय स्थापित करने में सबसे बड़ी बाधा यह है कि वहाँ पर कई सुविधाओं का अभाव है। कहीं टेलीफोन की सुविधा का अभाव है तो कहीं टेलेक्स की। इसी प्रकार कहीं कहीं पर तो डाक

तार, बैंक, बीमा की सुविधाएँ भी अपर्याप्त हैं। अतः कस्बों में कार्यालय स्थापित करने में बड़ी कठिनाई हो जाती है।

2 योग्य कर्मचारियों का अभाव—कार्यालय के कार्य में विशिष्ट योग्यता वाले व्यक्तियों की आवश्यकता पड़ती है, कस्बों में इस प्रकार की विशिष्ट योग्यता वाले व्यक्ति बहुत ही कम उपलब्ध होते हैं। अतः कस्बों में कार्यालय स्थापित करने में यह कठिनाई उत्पन्न होती है।

3 अन्य संस्थाओं से सम्पर्क में कठिनाई—कस्बों में प्रायः बहुत कम कार्यालय होते हैं। अधिकतर कार्यालय शहरों में ही स्थित होते हैं। अतः अन्य संस्थाओं से सम्पर्क स्थापित करने में कठिनाई उत्पन्न होती है।

4 कस्बों तथा शहरों के बीच सम्पर्क साधनों का अभाव—कई व्यावसायिक संस्थाएँ कस्बों में कार्यालय इसलिए भी स्थापित नहीं करना चाहती है, क्योंकि कस्बों तथा शहरों के बीच पर्याप्त सम्पर्क साधनों का अभाव है। यातायात के तीव्र एवं प्रभावशाली साधन उपलब्ध नहीं है।

5 निष्कर्ष—शहरों एवं कस्बों में कार्यालय स्थापित करने के लाभ-दोषों का अध्ययन करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं, कि कार्यालय ऐसे स्थान पर स्थापित किया जाना चाहिये, जहाँ पर मितव्ययतापूर्वक तथा कुशलता से कार्यालय का संचालन किया जा सके। व्यवसायी को कार्यालय के स्थान का निर्णय लेने से पूर्व उन सभी बातों को ध्यान में रखना चाहिये, जो कि कार्यालय के स्थान का चुनाव करते समय ध्यान में रखी जानी आवश्यक होती है।

कार्यालय भवन निजी बनाम किराये का
(Office Building Own v, s Rental Building)

कार्यालय भवन का निर्णय करते समय यह बात भी सामने आती है कि कार्यालय का भवन निजी हो, अथवा किराये पर लिया जाए। वास्तव में यह प्रश्न प्रबन्धकों के विचार का है, तथा इसका उत्तर बहुत कुछ सीमा तक प्रबन्धकों की नीति पर निर्भर करता है। किन्तु हम प्रश्न के दोनों पहलुओं के लाभ-दोषों का अध्ययन करके यह ज्ञात कर सकते हैं, कि सैद्धान्तिक रूप से कौन सा विकल्प अधिक अच्छा है।

निजी भवन में कार्यालय स्थापित करने से लाभ (Advantages) :

निजी भवन में कार्यालय स्थापित करने से निम्नलिखित प्रमुख लाभ प्राप्त हो सकते हैं —

1 आवश्यकतानुसार परिवर्तन—निजी भवन में कार्यालय स्थापित करने का सबसे बड़ा लाभ यह है, कि अपने भवन में आवश्यकतानुसार परिवर्तन करवाये जा सकते हैं। यदि भवन नया बनवाया जा रहा है, तो बनवाते समय ही आवश्यकता का ध्यान में रखा जा सकता है।

2 संस्था की ख्याति—प्राय संस्था का निजी भवन संस्था की ख्याति बढा सकता है। संस्था का भवन संस्था के नाम से होता है तो संस्था की ख्याति बढती ही है। उदाहरणार्थ टाइम्स ग्राफ इण्डिया बिल्डिंग, एक्सेसो भवन, इण्डियन प्रेस बिल्डिंग ग्रादि नाम संस्थाग्रो के नाम से सम्बन्धित है। इससे कार्यालय तथा संस्था की ख्याति बढती है। निजी भवन होने पर ही संस्था के नाम को भवन के नाम से जोडा जा सकता है।

3 ग्राय का स्रोत—निजी भवन संस्था के लिए ग्राय का स्रोत भी बन सकता है। संस्था के भवन का एक भाग जो वर्तमान में संस्था के लिए ग्रावश्यक नही है किराये पर दिया जा सकता है। किराया निरन्तर रूप से स्थाई ग्राय का साधन हो जाता है।

4 कार्यालय विस्तार में ग्रासानी—जब निजी भवन होता है तो कार्यालय का विस्तार ग्रासानी से किया जा सकता है। यदि भवन का कोई भाग किराये पर दे रखा है तो उसे खाली कराकर कार्यालय के लिए प्रयोग मे लिया जा सकता है। यदि किराये पर नही दे रखा है तो उस भवन का विस्तार करके कार्यालय के विस्तार की ग्रावश्यकता की पूर्ति की जा सकती है।

5 स्थिरता—निजी भवन होने पर कार्यालय को बार बार स्थानान्तरित नही करना पडता है। कार्यालय का स्थान एक ही बना रहता है।

6 ग्राहको को सुविधा—कार्यालय एक ही स्थान पर स्थापित रहने से ग्राहको को बहुत सुविधा रहती है। उन्हे नये नये स्थानो पर कार्यालय की खोज करने की ग्रावश्यकता नही रहती है। वे शीघ्रता एव ग्रासानी से कार्यालय पर पहुँच सकते है।

7 सचार सुविधाएँ—निजी भवन होने से सचार व्यवस्था मे भी सुविधा हो जाती है। बार बार पते बदल जाने से पत्र तथा तार देर से पहुँचते, कभी कभी पत्रो के यथा स्थान नही पहुँचने के कारण भारी व्यावसायिक क्षति होती है। इसके ग्रतिरिक्त कार्यालय के परिवर्तन के कारण टेलीफोन, टेलेक्स यथा ग्रन्य यत्रो के पुन स्थापना की ग्रावश्यकता भी पडती है। किन्तु निजी भवन मे इस प्रकार की किसी भी कठिनाई का सामना नही करना पडता है।

8 सुरक्षित विनियोग—कार्यालय के भवन मे लगाया धन तुलनात्मक रूप से ग्रधिक सुरक्षित रहता है। ग्रत कोई भी संस्था जिसके पास पर्याप्त सचित कोष है, वह भवन को क्रय करके विनियोग कर सकती है। संस्था जब चाहे भवन को बेचकर धन राशि प्राप्त कर सकती है।

निजी भवन मे कार्यालय स्थापित करने के दोष (Disadvantages)

निजी भवन मे कार्यालय स्थापित करने के निम्नलिखित दोष है

1 भारी विनियोग—कार्यालय के लिए निजी भवन के बनवाने या क्रय करने मे बहुत बडी राशि का विनियोग करना पडता है।

2. मरम्मत आदि की आवश्यकता—निजी भवन मे कार्यालय स्थापित करने पर मरम्मत तथा देखभाल आदि का भार भी सस्था पर ही पडता है।

3 परिवर्तनो पर व्यय—जब कभी भी कार्यालय मे नई मशीनें लगाई जाती है या कार्यालय के कार्य तकनीक मे परिवर्तन किया जाता है, तब भवन मे भी काफी परिवर्तन करने पडते है। अत: उन परिवर्तनो का व्यय-भार भी सस्था को ही उठाना पडता है।

4. छोटी सस्थाओ के लिए कठिन—छोटी सस्थाओ के लिए अपने कार्यालय का भवन खरीदना या बनवाना अत्यन्त कठिन होता है। उनके पास इतने वित्तीय साधन नही होते है, कि वे कार्यालय के भवन का क्रय करने या बनवाने के लिए धन का विनियोग कर सके।

किराये के भवन मे कार्यालय स्थापित करने से लाभ (Advantages) :

किराये के भवन मे कार्यालय स्थापित करने के निम्नलिखित प्रमुख लाभ हैं —

1. भवन क्रय करने या बनवाने की समस्या से मुक्ति—किराये के भवन मे कार्यालय स्थापित करने का पहला लाभ यह है, कि प्रबन्धको को कार्यालय के लिए भवन क्रय करने या बनवाने की समस्या से मुक्ति मिल जाती है। इसमे भवन की मरम्मत या देखभाल की समस्या उत्पन्न भी नही हो पाती है।

2. वित्तीय साधनो पर अनुकूल प्रभाव—जब कार्यालय के लिए भवन किराये पर लिया जाता है, तो सस्था के वित्तीय साधनो पर अनुकूल प्रभाव ही पडता है। यदि भवन क्रय कर लिया जाय या बनवा लिया जाय, तो सस्था के साधन सकुचित हो जाते हैं। भवन खरीदते समय काफी धन व्यवसाय मे से एक साथ निकाल कर देना पडता है।

3. स्थान परिवर्तन मे सरलता—जब कभी भी कार्यालय के स्थान के परिवर्तन की आवश्यकता पडती है, बहुत आसानी से कार्यालय के स्थान का परिवर्तन किया जा सकता है। जबकि, अपने निजी भवन मे अपनत्व उत्पन्न हो जाने के कारण परिवर्तन मे बाधा उपस्थित होती है।

4 छोटे कार्यालयो को सुविधा—कई छोटे कार्यालय जिनको बहुत ही कम स्थान की आवश्यकता होती है, उनके लिए निजी भवन असुविधाजनक हो सकते हैं। उनके पास कार्यालय भवन की विस्तृत जगह के प्रयोग करने की समस्या उत्पन्न हो जाती है। अत उन्हे किराये की छोटी सी जगह प्राप्त करने मे ही सुविधा रहती है।

5. भवन के क्षय से हानि नहीं—यदि किराये के भवन मे ही कार्यालय स्थापित किया जाता है, कार्यालय के भवन मे होने वाली हानि से सस्था को कोई हानि नही पहुँचती है। निजी भवन होने पर भवन के किसी भी प्रकार के नुकसान से सस्था को नुकसान उठाना पडता है।

किराये के भवन में कार्यालय स्थापित करने के दोष (Disadvantages)

किराये के भवन में कार्यालय स्थापित करने के निम्नलिखित दोष हैं —

1 **बार-बार स्थान परिवर्तन**—किराये के भवन में कार्यालय स्थापित करने का बड़ा दोष यह है, कि कार्यालय के स्थान को बार बार परिवर्तित करना पड़ता है। जब भी भवन का मालिक भवन खाली करने के लिए कहे, भवन खाली कर देना पड़ता है।

2 **बार बार किराया बढ़ाने की माँग**—यदि भवन मालिक बार-बार किराया बढ़ाने की माँग करता है। अतः समस्या या किराया बढ़ाना पड़ता है। जिससे संचालन लागत बढ़ जाती है।

3 **ख्याति की राशि**—कई बड़े शहरों में यह परम्परा है कि भवन का मालिक भवन किराये देने में पूर्व ख्याति की राशि माँगते हैं। भारत में 'पगड़ी' की राशि के नाम से भी जाना जाता है। पगड़ी की राशि भी बहुत अधिक होती है। कई बार यह राशि एक बार रूप में ही अधिक होती है। अतः किराये पर भवन लेने के लिए यह राशि देनी ही पड़ती है।

4 **भारी किराया**—कार्यालय का भवन किराये पर लेने में एक कठिनाई यह भी आती है, कि भवन मालिक आजकल भवन का बहुत अधिक किराया माँगते हैं। चूँकि भारत में भवनों की कमी है। अतः मुँह माँगा किराया देना ही पड़ता है।

5 **संचार की अव्यवस्था**—जब कार्यालय को एक भवन को खाली करके दूसरे भवन में जाना पड़ता है तो संचार व्यवस्था अव्यवस्थित हो जाती है। पत्र यथा स्थान नहीं पहुँच पाते हैं। टेलीफोन, टेलेक्स आदि अन्य मशीनों की पुनः स्थापना में समय लगने के कारण भी अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है।

6 **परिवर्तन में व्यय**—कार्यालयों में बार बार परिवर्तन करने से यातायात का खर्च लगता है, सामान एवं मशीनों की स्थापना में भी व्यय होता है। इसके अतिरिक्त टूट फूट हो जाने, सामान खो जाने आदि से भी आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता है।

7 **आवश्यकता के अनुसार भवन मिलना कठिन**—किराये के भवन लेने में कठिनाई यह भी आती है कि भवन आवश्यकता के अनुसार नहीं मिलता है। इसके अतिरिक्त उसमें परिवर्तन भी आवश्यकतानुसार नहीं करवाये जा सकते हैं। अतः कई असुविधाओं का सामना करना पड़ता है।

निष्कर्ष—निजी तथा किराये के भवन में कार्यालय स्थापित करने के लाभ दोषों का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि निजी भवन में कार्यालय स्थापित करने के अधिक लाभ होते हैं। किन्तु निजी भवन के लिए पर्याप्त धन राशि के विनियोग की आवश्यकता पड़ती है, जो किसी भी छोटी संस्था के लिए कठिन कार्य है।

अभ्यास के लिए प्रश्न

1. कार्यालय स्थान का चुनाव करते, समय किन किन तत्वो को दृष्टिगत रखना चाहिये ?
   What factors should be taken in to consideration while selecting an office site ?
2. एक कार्यालय को शहर या कस्बे म स्थापित करने के लाभ-दोषो का तुलनात्मक अध्ययन कीजिये।
   Discuss the Comparative merits and demerits of locating an office either in a city or in a town ?
3. निजी भवन तथा किराये के भवन मे कार्यालय स्थापित करन के लाभ-दोषो का तुलनात्मक वर्णन कीजिये।
   Give a Comparative Statement of advantages and disadvantages of locating an office in an own or rental building ?

4

कार्यालय नियोजन
(Office Planning)

प्रसिद्ध अंग्रेजी दार्शनिक एवं इतिहासकार **आर्नाल्ड टोयान्बी** (Arnold Toynbee) के अनुसार **'मनुष्य का यह गुण है कि वह योजना बनाता है।"** प्रत्येक व्यवसाय व कार्यालय के प्रबन्धक भी इस सामान्य सत्य के अपवाद नहीं है। वे भी *कार्यालय कार्यों को भली प्रकार नियोजित करते हैं। नियोजन करने से कार्य यथा-*समय सुचारु रूप से पूरे किये जा सकते हैं।

नियोजन की परिभाषाएं एवं अर्थ (Definitions and Meaning)—

कास्ट तथा रोजेन्जवेग (Kast and Rosenzweig) के अनुसार, ' नियोजन पूर्व निर्धारित गति विधियों का समूह है।[1]

कून्टज तथा ओ'डोनेल (Koontz and O Donnel) के अनुसार, नियोजन एक बौद्धिक प्रक्रिया है किसी क्रिया के कारण का निर्धारण है तथा निर्णयों को लक्ष्यों, तथ्यों तथा पूर्व विचारित अनुमानों पर आधारित करना है।[2]

हैमेन (Haiman) के अनुसार, क्या किया जाना है का पूर्व निर्धारण ही नियोजन है।[3]

हार्ट (Hart) के मतानुसार, नियोजन कार्यों की श्रृंखला का अग्रिम निर्धारण है, जिसके द्वारा निश्चित परिणाम प्राप्त किये जाते है।[4]

संक्षेप में, हम यह कह सकते हैं कि **नियोजन का तात्पर्य भविष्य की क्रियाओं का वर्तमान में निर्धारण करना है।** यह वह प्रविधि है जिसके द्वारा प्रबन्धक अपने

---

1 "A plan is determined course of action —Kast and Rosenzweig

2 ' Planning is an intellectual process the conscious determination of cause of action, the basing of decisions on purchases facts and considered estimates " —Koontz and O Donnel Op Cit p 21

3 ' Planning is deciding in advance what is to be done " —Haiman

4 "Planning is the determination in advance of a line of action by which certain results are to be achieved ' —Hart

साधनो को उद्देश्यो के अनुसार समायोजित करते हैं। यह सचेतन अग्रिम निर्धारण है कि क्या किया जाना है, कब किया जाता है, किस प्रकार किया जाना है और किसके द्वारा किया जाता है ?

नियोजन के लक्षण (Characteristics)

उपर्युक्त परिभाषाओ से नियोजन के निम्न प्रमुख लक्षण स्पष्ट होते है —

1 नियोजन का सारतत्त्व भविष्य के लिये ध्यान मे रखना है।

2 इसमे पूर्वनिर्धारित कार्य सम्मिलित हैं।

3 नियोजन मे वैकल्पिक कार्यविधि होती है।

4 इसमे एक निश्चित समय दिया होता है।

5 इसका उद्देश्य अच्छे परिणाम प्राप्त करना होता है।

6 यह निरन्तर मिश्रित प्रक्रिया है।

7. इसमें उद्देश्यो का चयन, नीतियो, कार्यक्रमो, प्रविधियो का विकास सम्मिलित है।

8 नियोजन मे व्यक्तिगत या सगठनात्मक तत्त्व पाया जाता है।

9 नियोजन का प्रमुख तत्त्व यह है कि इसमे समय के अनुसार परिवर्तन होता है।

10 यह एक सगठन के सदस्यो के लिए निर्देशक का कार्य करता है।

कार्यालय नियोजन का अर्थ—नियोजन शब्द के साथ कार्यालय शब्द जोड देने से कार्यालय नियोजन शब्द का निर्माण हो गया है। अत कार्यालय नियोजन से आशय कार्यालय की भावी क्रियाओ का वर्तमान मे निर्धारण करना है। यह वह प्रविधि है जिसके द्वारा कार्यालय प्रबन्धक अपने साधनो को कार्यालय के उद्देश्यो के अनुसार समायोजित करते हैं। यह जानबूझकर अग्रिम निर्धारण कि क्या किया जाना है, कब किया जाना है, किस प्रकार किया जाना है और किसके द्वारा किया जाना है।

कार्यालय नियोजन के उद्देश्य
(Objectives of Office Planning)

1 न्यूनतम लागत पर कुशलतापूर्वक सूचनाएँ तथा तथ्यो का सग्रहण करना।

2 कम से कम लागत पर पर्याप्त सूचनाएँ तथा तथ्यो को प्रबधको के समक्ष प्रस्तुत करना।

3. उचित समय मे आवश्यकतानुसार सूचनाएँ प्राप्त करना।

4 सस्था के विभागो की अपेक्षित सेवाओ को यथा समय उपलब्ध करना।

5 प्रभावपूर्ण जनसम्पर्क स्थापित करना।

6 महत्व के अनुसार कार्यों को प्राथमिकता प्रदान करना।

7 उचित व्यक्तियों को उचित कार्य सौंपना।
8 पुनरावलोकन कार्यों का निरीक्षण करना।

प्रभावशाली कार्यालय नियोजन की आवश्यक बातें
(Pre requisites of Effective Office Planning)

प्रभावशाली कार्यालय नियोजन करने के लिए निम्नलिखित बातों का होना आवश्यक है—

1 स्पष्ट निर्धारित उद्देश्य (Well defined Objectives)—स्पष्ट उद्देश्य ही सभी नियोजनों के आधार होते हैं। अतः एक अच्छा नियोजन वह होता है जिसके उद्देश्य स्पष्ट एवं पूर्व निर्धारित होते हैं।

2 सरल (Simple)—एक आयोजन को प्रभावशाली बनाने के लिए उसमें सरलता का गुण होना भी अत्यन्त आवश्यक है। यह आयोजन इतना सरल हो कि कार्यालय का प्रत्येक व्यक्ति उसे सरलता से समझ सके। आधुनिक जटिल व्यावसायिक युग में इसका और भी अधिक महत्त्व है। इसीलिए डेविस (Davis) ने उचित ही लिखा है कि "मानवीय क्षेत्र के सभी कार्यों में जहाँ विस्तृत संगठित क्रियाओं की आवश्यकता होती है, वहाँ नियोजन में सरलता एक गुण माना जाता है।"

3 विस्तृत (Comprehensive)—नियोजन विस्तृत होना चाहिये ताकि उसे समझने में किसी प्रकार की कठिनाई उपस्थित न हो। एक नियोजन में वे सभी कार्य सम्मिलित किये जाने चाहिए जो कि सम्पूर्ण नियोजन को पूरा करने के लिए आवश्यक हों।

4 लोच (Flexible)—एक प्रभावशाली नियोजन का एक महत्त्वपूर्ण लक्षण यह भी है कि वह लोचशील हो। नियोजन का लोचशील होने का तात्पर्य यह है कि कि नियोजन में अनुमानित घटनाएँ नहीं होती हैं तो उपस्थित घटनाओं के अनुसार नियोजन में परिवर्तन किया जा सके। डेविस (Davis) के शब्दों में "नियोजन लोचशील होता है जिसे बिना किसी भयंकर आर्थिक एवं कार्यक्षमता की हानि के बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित किया जा सके।

5 सन्तुलित (Balanced)—एक प्रभावशाली नियोजन का सन्तुलित होना भी परमावश्यक है। अनेक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु साधनों के प्रयोग में पूर्ण रूप से सन्तुलन होना चाहिये अन्यथा भयंकर परिणामों का सामना करना पड़ सकता है।

6 मितव्ययी (Economical)—नियोजन मितव्ययी भी होना चाहिये। संगठन के साधनों का ध्यान रखते हुए यह योजना बनी होना चाहिए। साथ ही नियोजन द्वारा यह भी सम्भव हो कि संस्था के उद्देश्य मितव्ययितापूर्ण पूरे किये जा सकें।

7 स्पष्टता (Free from Ambiguity)—एक नियोजन को अच्छा बनाने के लिए उसमें कोई अस्पष्टता नहीं रहने देनी चाहिये। स्पष्टता के अभाव में किसी भी कर्मचारी को उसके कार्यों के प्रति उत्तरदायी ठहराना कठिन होगा।

8 भविष्य का ध्यान (Futurity)—नियोजन तो वास्तव में भविष्य के लिए पूर्वानुमान है। अत. एक नियोजन की सफलता के लिए भविष्य को ध्यान में रखना बहुत ही आवश्यक माना जाना चाहिये।

9. हिस्सेदारी (Participation)—एक अच्छे नियोजन के लिए हिस्सेदारी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अत नियोजन के समय अधिकारियो से ही नही बल्कि अधीनस्थो से भी परामर्श करना चाहिये। नियोजन विभाग के स्टॉफ द्वारा निर्मित नियोजन की सफलता की आशा करना केवल हवाई महल या रेत के महल (Ivory Tower) खडे करने के समान होगा।

10 व्यावहारिकता (Practicable)—नियोजन ऐसा हो जिसे व्यावहारिक रूप प्रदान किया जा सके। यदि नियोजन को क्रियान्वित करना सम्भव नही है तो नियोजन करना ही व्यर्थ होगा।

कार्यालय नियोजन की प्रक्रिया

(Process or Steps of Office Planning)

नियोजन भविष्य मे किये जाने वाले कार्यों का निर्धारण करना है तथा किसी भी कार्य को करने की एक सतत प्रक्रिया होती है। इस प्रक्रिया मे सामान्यत निम्न लिखित कदम उठाये जाते हैं—

1 उद्देश्यो का निर्धारण करना (Establishment of Objectives)—नियोजन प्रक्रिया का प्रारम्भ नियोजन के उद्देश्यो का निर्धारण करके किया जाता है। सर्वप्रथम सम्पूर्ण सस्था के नियोजन के उद्देश्यो का निर्धारण कर लेना चाहिये। तत्पश्चात् विभागो एव उप-विभागो के उद्देश्यो का निर्धारण करना चाहिये। इन उद्देश्यो के अनुसार ही कार्यालय के उद्देश्यो का निर्धारण करना चाहिये। उद्देश्यो का निर्धारण कर लेने पर ही योजना को निश्चित स्वरूप प्रदान किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त उद्देश्यो का निर्धारण करने मे ही यह ज्ञात हो सकता है कि उन उद्देश्यो को पूरा करने के लिये किसी नये नियोजन की आवश्यकता पडेगी या किसी पुरानी योजना मे सुधार करना पडेगा आदि।

2. सम्बन्धित क्रियाओं के सम्बन्ध मे पूर्ण जानकारी प्राप्त करना (Obtaining complete Information about the activities involved)—नियोजन के उद्देश्यो के निर्धारण के बाद नियोजन से सम्बन्धित क्रियाओ के सम्बन्ध मे आवश्यक सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करना परमावश्यक है। इसके अतिरिक्त, इन क्रियाओ का सस्था की अन्य क्रियाओ पर क्या प्रभाव पडेगा, की जानकारी भी करना परमावश्यक होता है। इस हेतु पुराने रकार्ड, प्रतिस्पर्धी सस्थाओ की क्रियाओ का अवलोकन, अनुसधान आदि आदि सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

3 सूचनाओं का वर्गीकरण एव विश्लेषण करना (Analysing and Classifying the Information)—प्राप्त सूचनाओ एव जानकारी का वर्गीकरण एव विश्लेषण करना चाहिये तथा यह ज्ञात करना चाहिये कि इन सूचनाओ का

नियोजन से कोई सम्बन्ध है अथवा नहीं। इस हेतु प्राप्त सूचनाओं एवं तथ्यों का वर्गीकरण करना चाहिये तथा उनका विश्लेषण करना चाहिये।

4 नियोजन की मान्यताओं को निश्चित करना (Establishment of Planning Premises) नियोजन के लिए कुछ मान्यताओं को निश्चित करना भी आवश्यक होता है। मान्यताएँ नियोजन की वे सीमाएँ होती हैं जिनके अन्तर्गत नियोजन किया जाता है। इन मान्यताओं का जितना विश्लेषण किया जा सके, करने का प्रयास करना चाहिये। यह मालूम करना होता है कि वातावरण को प्रभावित करने वाले तत्व समान रहेंगे। अतः नियोजन की मान्यताओं को जितना स्पष्ट कर लिया जायेगा उतना ही लाभप्रद होगा।

5 वैकल्पिक योजनाओं का निर्धारण (Determining Alternative Plans) किसी भी नियोजन को अन्तिम रूप देने से पहले कई वैकल्पिक नियोजन सामने होते हैं। कून्टज तथा ओ'डोनेल (Koontz and O Donnel) के मतानुसार, **शायद ही कभी ऐसा नियोजन किया जाता है जिसका कोई विकल्प नहीं होता है।**' अतः एक नियोजन के लिए कई वैकल्पिक योजनाओं का निर्माण करना भी नियोजन प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण कदम कहा जा सकता है।

6 विकल्पों का मूल्यांकन (Evaluation of Alternative Plans) — वैकल्पिक योजनाओं के निर्माण के बाद एक नियोजन इन योजनाओं का तुलनात्मक अध्ययन करता है और वैकल्पिक योजनाओं का मूल्यांकन करता है। मूल्यांकन करते समय कई बातों को ध्यान में रखा जाता है। यद्यपि सभी विकल्प किसी न किसी दृष्टिकोण से संस्था को लाभप्रद होते ही हैं। किन्तु किस विकल्प से संस्था को अत्यधिक लाभ प्राप्त हो सकता है इस बात को ध्यान में रखकर मूल्यांकन करना चाहिए।

7 सर्वोच्च नियोजन का चुनाव (Selection of the best Plan) — विकल्पों के मूल्यांकन के बाद सर्वोत्तम विकल्प का चुनाव किया जाता है। व्यवहार में देखा जाता है कि प्रायः सर्वोत्तम नियोजन एक ही विकल्प से सम्भव नहीं हो पाता है। अतः एक से अधिक विकल्पों का चुनाव किया जाता है। ऐसी परिस्थिति में इन दोनों विकल्पों में इस प्रकार का समन्वय होना चाहिये कि नियोजन के क्रियान्वयन में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित न हो।

8 सहायक योजनाओं का निर्माण (Formulation of Derivative Plans)—एक वृहद योजना के निर्माण के पश्चात् उसके क्रियान्वयन के लिए कई सहायक योजनाओं के निर्माण की आवश्यकता पड़ती है ताकि बड़ी योजना सुगमता पूर्वक पूरी की जा सके।

9 क्रियान्वयन में सहयोग प्राप्त करना (Getting Cooperation in Execution)—अच्छा नियोजन कर लेने मात्र से ही अच्छे परिणाम प्राप्त नहीं हो पाते हैं। अच्छा नियोजन तभी अच्छा परिणाम दे सकता है जबकि इसके क्रियान्वयन में उस कार्यालय तथा संस्था के प्रत्येक व्यक्ति का सहयोग प्राप्त हो। इस हेतु कार्या

लय के प्रत्येक सम्बन्धित व्यक्ति को नियोजन से अवगत करवाना चाहिये, नियोजन मे पग पग पर सम्बन्धित व्यक्ति के सुझाव आमन्त्रित करते रहना चाहिये। उनमे कार्य एव योजना के प्रति रुचि उत्पन्न करने का भरसक प्रयास करना चाहिये।

10. नियोजन का अनुवर्तन (Follow-up of the Plan)—नियोजन का क्रियान्वयन करने तक ही नियोजन प्रक्रिया समाप्त नही हो जाती। नियोजन प्रक्रिया इसके बाद भी चलती रहती है। नियोजन के क्या परिणाम है, उन्हें यथासमय ज्ञात करते रहना चाहिये। यदि वाछित परिणाम प्राप्त नही हो पाते हैं तो इसके कारणो को ज्ञात करना चाहिये तथा नियोजन मे आवश्यक सुधार करके वाछित परिणाम प्राप्त करना चाहिये।

अभ्यास के लिए प्रश्न

1. कार्यालय प्रबन्ध का नियोजन किस प्रकार मे किया जाता है? सविस्तार बतलाइए।

   Explain as to how the management of office is actually planned

2. कार्यालय का नियोजन करते समय किन किन बातों को दृष्टिगत रखना परमावश्यक है?

   What considerations should be kept in mind while planning the office management

5

कार्यालय अभिन्यास

(Office Layout)

"Office Layout result in more efficient work at lower cost."
—Neuner and Haynes

कार्यालय प्रबन्ध में कार्यालय अभिन्यास का अत्यधिक महत्त्व है। उचित कार्यालय अभिन्यास से न केवल कार्यालय की ही कार्यक्षमता बढ़ती है बल्कि सम्पूर्ण संस्था की कार्यकुशलता में भी वृद्धि होती है। अच्छा कार्यालय अभिन्यास कर्मचारियों, कार्यालय के उपकरणों, यन्त्रों तथा अन्य साधनों का सदुपयोग करने में सहायता प्रदान करता है। यह कर्मचारियों के मनोबल को बढ़ा सकता है तथा कार्यालय सेवाओं की लागतों को घटाने में महत्त्वपूर्ण रूप से योगदान दे सकता है।

कार्यालय अभिन्यास की परिभाषाएं एवं अर्थ (Definitions and Meaning of Office Layout)

हिक्स तथा प्लेस (Hicks and Place) के अनुसार, "कार्यालय अभिन्यास उपलब्ध स्थान में कार्य केन्द्रों की इस प्रकार व्यवस्था करने से सम्बन्धित है जिससे कि समस्त उपकरण, सामग्रियाँ, प्रक्रियाएँ तथा कर्मचारी अधिकतम दक्षता के साथ कार्य कर सकें।"[1]

जार्ज आर० टेरी (George R. Terry) के शब्दों में, "कार्यालय अभिन्यास स्थान की आवश्यकता का निर्धारण करने, तथा इस स्थान का पूर्ण उपयोग करने को कहते हैं जिसके कि न्यूनतम खर्च पर कार्यालय के कार्यों को पूरा करने के लिए भौतिक तत्त्वों की व्यावहारिक उपलब्धि हो सके।"[2]

---

1 "Office layout relates to the arrangement of work stations in the space involved so that all equipment, supplies, procedures and personnel can function at maximum efficiency." —Hicks and Place

2 "Office layout is the determination of the space requirements and of the detailed utilization of this space in order to provide a practical arrangement of the physical factors considered necessary for the execution of the office work within reasonable costs." —George R. Terry

लिटिल फील्ड तथा रसेल (Littlefield and Rachel) के मतानुसार "उपलब्ध स्थल पर उपकरणों की व्यवस्था करना" कार्यालय अभिन्यास है।[1]

उपर्युक्त परिभाषाओं के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि कार्यालय अभिन्यास से तात्पर्य कार्यालय के लिए उपलब्ध स्थान का इस प्रकार उपयोग करना है कि कार्यालय में उपलब्ध समस्त उपकरण, सामग्रियाँ, प्रक्रियाएँ तथा कर्मचारियों का संस्था के कार्यालय के लिए अधिकतम कुशलता से प्रयोग किया जा सके।

लक्षण (Characteristics) कार्यालय अभिन्यास के प्रमुख लक्षण इस प्रकार हैं —

1 कार्यालय अभिन्यास कार्यालय के लिए उपलब्ध भवन का कार्यालय के लिए प्रयोग निश्चित करता है।

2 कार्यालय अभिन्यास बनाने के लिए कार्यालय की आवश्यकताओं का निर्धारण किया जाता है।

3 कार्यालय अभिन्यास बनाने का उद्देश्य साधनों की अधिकतम कार्य कुशलता का लाभ उठाना है।

4 कार्यालय के स्थान का विभिन्न प्रकार से प्रयोग करने की सम्भावनाएँ होती हैं।

5 कार्यालय के अभिन्यास को बनाते समय कार्यालय के भावी विकास सम्भावनाओं को आंका जाता है।

6 इसमें कार्यालय कर्मचारियों के आने जाने तथा बैठने के स्थान का निर्धारण किया जाता है।

7 अभिन्यास के द्वारा पहले से ही पर्यवेक्षण की समस्या पर ध्यान दिया जा सकता है।

8 कार्यालय का अभिन्यास बनाकर गोपनीय विभागों के स्थानों को पूर्व निश्चित किया जा सकता है।

कार्यालय अभिन्यास के उद्देश्य
(Objects of Office Layout)

न्यूनर एवं कीलिंग (Neuner and Keeling) के अनुसार, "कार्यालय अभिन्यास के उद्देश्य कम या उसी लागत पर अधिक कार्य करना, कार्य प्रवाह में सुधार करके कार्यों के करने वाले समय को घटाना और अत्यधिक सतोषप्रद कार्य दशाएँ प्रदान करके कर्मचारियों के मनोबल को बढ़ाना है।" वास्तव में कार्यालय अभिन्यास तैयार करने का उद्देश्य कार्यालय में कार्यकुशलता तथा मितव्ययता को बनाना है। कार्यालय अभिन्यास केवल स्थान निर्धारण करने का एक साधन मात्र

---

1 Office layout is 'the arrangement of equipment within available floor space.'
—Littlefield and Rachel

नही है। इसके अनेक कई उद्देश्य हो सकते हैं। संक्षेप मे कार्यालय अभिन्यास के निम्नलिखित प्रमुख उद्देश्य हो सकते हैं :—

1 प्रभावशाली कार्य-प्रवाह बनाये रखना।

2 कार्यालय के लिए उपलब्ध भूमि या स्थान का पूरा-पूरा उपयोग करना।

3 कर्मचारियों की सुविधा एवं संतुष्टि की कार्यालय मे व्यवस्था करना।

4 पर्यवेक्षण कार्य को सुविधाप्रद बनाना।

5. ग्राहकों एवं आगन्तुकों में संस्था की ख्याति बनाना।

6 कार्यालय के भावी विकास के लिए उसी स्थान मे व्यवस्था करना।

7. कार्यालय के कार्य-प्रवाह के प्रत्येक स्तर पर कर्मचारियों एवं उपकरणों मे सन्तुलन बनाये रखना।

8 कार्य-प्रवाह मे सुधार करके कर्मचारियों की कार्यक्षमता का पूरा-पूरा उपयोग करना।

9 सतोषप्रद कार्य वातावरण उपलब्ध करके कर्मचारियों के मनोबल को बढाना।

10 कम या उसी लागत पर अधिक कार्य करना।

अच्छे कार्यालय अभिन्यास का महत्व या लाभ
(Importance or Advantages of Good Office Layout)

अच्छे कार्यालय अभिन्यास का महत्त्व सदैव रहा है और भविष्य मे भी रहेगा। इसके अनेक कारण हैं। वर्तमान मे अच्छे कार्यालय अभिन्यास का महत्त्व निम्नलिखित कारणों से है :

1. कुशलतापूर्वक कार्यों का निष्पादन—अच्छे कार्यालय अभिन्यास का सर्वाधिक महत्त्व इसलिए है कि इसमें कार्यालय के कार्य बहुत ही कुशलता के साथ पूरे किये जा सकते है। टेरी (Terry) ने उचित ही लिखा है कि **"एक प्रभावशाली कार्यालय अभिन्यास कार्यों को प्रभावशाली तरीके से पूरा करने में सहायता प्रदान करता है जबकि अकुशल कार्यालय व्यवस्था कार्य परिणामों पर अत्यधिक बुरा प्रभाव डालती है।"** अतः कार्यालय के कार्यों को कुशलतापूर्वक पूरा करने के लिए अच्छे कार्यालय अभिन्यास का होना परमावश्यक है।

2. शीघ्र कार्य—अच्छे कार्यालय अभिन्यास का एक लाभ यह है कि इसके कार्य शीघ्र पूरे किये जा सकते हैं। अच्छे कार्यालय अभिन्यास में कार्य-प्रवाह तीव्र होता है। परिणामस्वरूप कार्यालय के कार्य शीघ्रता से ही निपटते है।

3. सभी विभागों को उचित स्थान—अच्छे कार्यालय अभिन्यास मे कार्यालय के सभी विभागो को यथोचित महत्त्व दिया है। प्रत्येक विभाग को स्थापित करने से पूर्व उस विभाग की स्थिति को आंका जाता है, उस विभाग के अधिकारियों से

परामर्श किया जाता है। परिणामस्वरूप, सभी विभागो को सामान्यत उचित स्थान उपलब्ध हो जाता है।

4 निरीक्षण में सुविधा—अच्छे कार्यालय अभिन्यासो मे कार्यालय के निरीक्षण की सुविधा को भी ध्यान मे रखा जाता है। प्राय. अधिकारियो के कक्षो की स्थिति तो ऐसी रखी जाती है कि वे सभी कर्मचारियो को कार्य करते हुए देख सकें तथा आने-जाने वालो का भी ध्यान रख सके।

5 शोरगुल एव कार्य बाधाओ से मुक्ति—अच्छा कार्यालय अभिन्यास बनाने मे एक महत्त्वपूर्ण लाभ यह भी होता है कि कार्यालय मे आवश्यक शोर गुल नही होता हो तथा कार्य मे बाधाएँ भी उपस्थित नही होती हैं। प्रत्येक कार्य निश्चित प्रवाह मे होता रहता है। लोगो को कार्य साधनो को ढूँढने के लिए भी समय बरबाद नही करना पड़ता है। उन्हे फाइलें, यन्त्र, तथा अन्य सुविधाएँ यथा स्थान मिल जाती हैं। फलस्वरूप उनके कार्य मे बाधाएँ उपस्थित नही होती हैं।

6 कर्मचारियो की सुविधाएँ—कर्मचारियो को कई सुविधाएँ अच्छे कार्यालय अभिन्यास के कारण भी मिलती हैं उदाहरण के लिए, जलपान, शौचालय, मूत्रालय, आराम गृह, मनोरजन गृह, वाचनालय आदि कुछ ऐसी सुविधाएँ हैं जिनकी प्रत्येक कर्मचारी को आवश्यकता होती है। कुछ कार्यालयो मे इस प्रकार की सुविधाओ का अभाव पाया जाता है। किन्तु अच्छा कार्यालय अभिन्यास इन सभी आवश्यकताओ की पूर्ति कर सकता है तथा उचित स्थान पर इन सभी सुविधाओ की उपलब्धि होती है।

7. स्वास्थ्यवर्द्धक कार्य वातावरण—अच्छा कार्यालय अभिन्यास कार्यालय मे यथा सम्भव स्वास्थ्यवर्द्धक काय वातावरण उपलब्ध करता है। अच्छे अभिन्यास मे प्राकृतिक प्रकाश तथा हवा के आवागमन की व्यवस्था रहती है। फर्नीचर का उपयुक्त ढग से स्थापित किया जाता है ताकि प्रकाश सही दिशा मे आये तथा वायु का आवागमन बना रह सके।

8 अपेक्षाकृत कम लागत मे अच्छा कार्य—अच्छे कार्यालय अभिन्यास का एक लाभ यह है कि इसमे कार्यालय के सभी स्थानो का सदुपयोग हो जाता है, कार्य प्रवाह बढ जाता है, कर्मचारियो की कार्यक्षमता बढ जाती है। इसके परिणामस्वरूप, कम खर्च मे अपेक्षाकृत अच्छा कार्य हो जाता है। न्यूनर तथा हेयन्स (Neuner and Haynes) ने इस तथ्य का समर्थन करते हुए लिखा है कि **"कार्यालय नियोजन तथा अभिन्यास के परिणामस्वरूप कम लागत पर अच्छा कार्य होता है।"**

9 स्थान का श्रेष्ठ उपयोग—कार्यालय अभिन्यास वास्तव मे स्थान का श्रेष्ठ उपयोग करने का साधन है। इसके द्वारा कार्यालय के लिए निर्धारित स्थान का अधिकाधिक कुशलता के साथ प्रयोग किया जा सकता है। अच्छे अभिन्यास मे कार्यालय के स्थान का तिल भर भी दुरुपयोग होने की सम्भावना नही रहती है।

10. विस्तार की सुविधा—कार्यालय अभिन्यास बना लेने से भविष्य में कार्यालय का विस्तार होने पर असुविधाओं का सामना नहीं करना पड़ता है। इसमें पहले से ही भविष्य की आवश्यकताओं का निर्धारण कर लिया जाता है तथा ध्यान रखा जाता है।

11 सुरक्षा—अच्छा कार्यालय अभिन्यास कार्यालय को सुरक्षा प्रदान करता है। इसमें चोरी डकैती आग, भूकम्प तथा अन्य ऐसी किसी दुर्घटना के बचाव का पहले ही ध्यान रखा जाता है। अतः कार्यालय सुरक्षित रहता है।

12 गोपनीयता—गोपनीयता व्यवसाय के लिए बहुत आवश्यक है। कुछ मामले इतने गोपनीय होते हैं कि उनके प्रकट होने से समस्त संस्था का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाता है। अच्छे कार्यालय अभिन्यास में ऐसे महत्त्वपूर्ण मामलों की गोपनीयता बनाये रखने का पूर्ण प्रावधान होता है।

13 सदेशवाहन में सुविधा—अच्छा कार्यालय अभिन्यास का एक लाभ यह भी है कि यह आन्तरिक सन्देशवाहन में सुविधा प्रदान करता है। लोग आपस में मौखिक रूप में संदेशों का आदान-प्रदान कर सकते हैं। ऐसे अच्छे कार्यालयों में लोगों के मिलने जुलने तथा आपसी वार्तालाप करने की सुविधा रहती है।

14 संस्था की ख्याति—अच्छा कार्यालय अभिन्यास ग्राहकों तथा आगन्तुकों को भी प्रभावित किये बिना नहीं रहता है। इसमें संस्था की ख्याति बढ़ती है।

15 कर्मचारियों में मनोबल का निर्माण—अच्छा कार्य वातावरण, संस्था की ख्याति, कार्यों में शीघ्रता, कर्मचारियों को मिलने वाली सुविधाएँ आदि सभी मिलकर कर्मचारियों में मनोबल का निर्माण करने में सहायक होते हैं।

कार्यालय अभिन्यास बनाते समय ध्यान रखने योग्य बातें
(Factors to be considered while preparing an Office Layout)

अथवा

कार्यालय अभिन्यास के सिद्धान्त
(Principles of Office Layout)

कार्यालय अभिन्यास बनाते समय कई बातों को ध्यान में रखना पड़ता है। दूसरे शब्दों में, इसके निर्माण में कई सिद्धान्तों का पालन करना पड़ता है। परिणामस्वरूप, कार्यालय का कार्य अविलम्ब एवं सुविधापूर्वक होता रहता है। सामान्यतः कार्यालय अभिन्यास के प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित माने जाते हैं :

1 कार्यों का प्रवाह—कार्यालय अभिन्यास का पहला सिद्धान्त यह बताता है कि कार्यों में प्रवाह (Flow of work) होना चाहिये। अर्थात्, जहाँ तक सम्भव हो कार्यालय के विभागों की इस प्रकार व्यवस्था हो जिससे कि प्रलेखों, कार्यों आदि का प्रवाह एक निश्चित दिशा में ही बना रह सके। **लिटिलफील्ड तथा पीटरसन** (Littlefield and Peterson) ने लिखा है कि "कार्यों का प्रवाह लगातार आगे की

ओर होना चाहिए तथा जहाँ तक सम्भव हो यह प्रवाह पास-पास तथा सीधी रेखा में हो।"

2. विभागों की उचित स्थिति का निर्धारण—कार्यालय अभिन्यास तैयार करते समय उचित विभागो को उचित स्थान पर स्थापित करने का प्रयास करना चाहिये। जिन विभागो के कार्य एक दूसरे के कार्यों से मिलते-जुलते या सम्बन्धित हो उन्हें एक दूसरे के पास पास स्थापित करने का प्रयास करना चाहिये। जिन विभागो का कार्य जनसम्पर्क से सम्बन्धित हो उन्हें मुख्य द्वार के निकट ही स्थापित करना चाहिये। सक्षेप मे, एक दूसरे से सम्बन्धित काय करने वाले विभागो को पास-पास रखना चाहिये किन्तु शोर, गन्दगी, भीडभाड उत्पन्न करने वाले विभागो को काफी दूर स्थापित करना चाहिये।

3. निजी कक्ष—कार्यालय अभिन्यास बनाते समय बडे अधिकारियों के कमरे भी निश्चित किए जाने चाहिए। बडे अधिकारियों के कमरो या कक्षो को निश्चित करने समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह स्थान ऐसा हो जहाँ पर दूसरे विभागो का हस्तक्षेप तथा शोर गुल कम से कम हो। इसके अतिरिक्त, ये कक्ष ऐसे स्थानो पर स्थापित किए जाने चाहिए जिससे पास के विभागो मे जाने वाली प्राकृतिक रोशनी मे किसी प्रकार की बाधा न पडे।

4 सुरक्षा—कार्यालय का अभिन्यास बनाने समय कार्यालय सुरक्षा को भी ध्यान म रखना चाहिए। विभाग की स्थिति फाइलिंग विभाग की स्थिति तो सुरक्षा की दृष्टि स महत्त्वपूर्ण होती ही है किन्तु अन्य विभागो की स्थिति भी सुरक्षा की दृष्टि से अनुकूल होनी चाहिए। आग, भूकम्प आदि की स्थिति मे कार्यालय स तत्काल बाहर निकलने तथा खतरों से मुक्ति पाने की व्यवस्था भी होनी चाहिए।

5 कर्मचारी सुविधाओं की उचित स्थिति—कार्यालय मे कर्मचारियो की सुविधाओं की व्यवस्था भी आती है अत कार्यालय अभिन्यास बनाने मे भी इनको ध्यान म रखा जाना चाहिए। जलपान गृह, आराम गृह, वाचनालय, शौचालय, मूत्रालय आदि की स्थिति ऐसी रखनी चाहिए जिससे कर्मचारी शीघ्रतापूर्वक आसानी से ऐसे स्थानो पर पहुँच सके तथा उनका सुविधा से प्रयोग कर सके।

6 स्वागत कक्ष—यह एक ऐसा विभाग है जहाँ पर बाहर के लोग आते हैं अत ऐसे विभाग की स्थिति सदैव कार्यालय के मुख्य द्वार के पास ही रखी जानी चाहिए।

7. अव्यवस्थित विभागो की स्थिति—कई विभाग बडे अव्यवस्थित रहते हैं जिनको ठीक प्रकार से व्यवस्थित करना प्राय कठिन ही होता है। ऐसे विभागो को कार्यालय मे एक तरफ कोने मे स्थापित करना चाहिए।

7 गोपनीयता एव एकाग्रता पर बल—कार्यालय मे कई कार्य गोपनीय होते हैं तथा कुछ कार्यों को करने के लिए पर्याप्त एकाग्रता की आवश्यकता पडती है।

अत कार्यालय का अभि यास बनाते समय । से विभागा की व्यवस्था ऐसे स्थानो पर क नी चाहिए जहाँ पर गोपनीयता एव एकाग्रता बनायी रखी जा सके ।

9 सेवा विभागो का स्थान—काय लय अभियास बनाते समय सेवा विभागा के स्थान को बहुत ही सोच समझकर स्थापित करना चाहिए । इसका प्रमुख कारण यह है कि इन सेवा विभागा से प्राय अ य सभी विभागो को सम्पर्क बनाये रखना पडता है । य सेवा विभाग मारणीय टकण प्रतिलिपिकरण फाइलिंग आदि हो सकते ह । अत इन विभागा को उन विभागो क निकट स्थापित करना चाहिए जो इन विभागो की सेवाग्रा का उपयोग करत ह ।

10 कम से कम हिलना डुलना—कार्यालय अभियास बनाते समय इस बात का भी यान रखना चाहिये कि कमचारियो को कम से कम हिलना डुलना पडे । कम स कम हिलने डुलने से समय की बचत होती है । शोर गल कम होता है तथा कमचारियो की काय क्षमता मे वृद्धि होती है । अत फर्नीचर लगाने टलीफोन स्थापित करन तथा प्रवेश तथा प्रस्थान रखने के स्थान का उचित प्रकार से निश्चित करना चाहिए ।

11 शोरगुल को सीमित करना—कार्यालय का अभियास तैयार करते समय कार्यालय क कार्यो तथा अ य विभागा म उत्पन्न होने वाले शोरगुल को भी ध्यान म रखना चाहिए । एक विद्वान का मानना है कि **कायकुशलता पूवक बढाने के लिए शोर गुल को न्यूनतम मात्रा तक घटाने का प्रयास करना चाहिये ।** लोगो का कार्यालय म हिलना डुलना कम होने पर भी कार्यालय म शोर गल कम हो सकता है । इसके अतिरिक्त शोर गल उत्पन्न करने के लिए शोर पैदा करने वाली मशीनो को साउन्डप्रूफ (S u d l r ol) कमरो म स्थापित करना चाहिए तथा जनसम्पर्क वाले कार्यालयो को मुख्य द्वार के आस पास ही स्थापित करना चाहिए ।

12 फर्नीचर की स्थिति कार्यालय का अभि यास तैयार करते समय *कार्यालय म फर्नीचर की स्थिति भी निश्चित कर ली चाहिए । कार्यालय म फर्नीचर* को क्रमबद्ध रूप से लगाना का अपना महत्व है । इस सम्ब ध म यह निश्चित करना चाहिए कि फर्नीचर किस प्रकार और कहाँ रखना है कितनी जगह छोड कर फर्नीचर रखना है आदि । इसके अतिरिक्त कर्मचारियो की टबलो से फाइलो की आलमारी की दूरी खिडकी की दूरी तथा द्वार की दूरी कृत्रिम रोशनी तथा नाप मापक यन्त्र की दूरी आदि का भी ध्यान म रखना चाहि ए । फर्नीचर लगाते समय इतनी जगह अवश्य छोडनी चाहिए कि कक्ष विशेष म लोगो को कोई कठिनाई न उठाना पडे तथा फर्नीचर म रगड न लगे

13 लोचशील—कार्यालय का अभि यास अत्यन्त ही सावधानी एव ध्यानपूवक बनाना चाहिए । इसम लोचशीलता का गुण भी पाया जाना चाहिए जिससे कि भविष्य म कार्यालय क विस्तार म किसी भी प्रकार की कठिनाई का सामना न करना पडे ।

14. प्रकाश व्यवस्था—कार्यालय ऐसे स्थान पर होना चाहिये जहाँ पर कर्मचारी की टेबल पर पर्याप्त प्रकाश पहुँचता हो। जहाँ तक सम्भव हो कर्मचारी की टेबल पर प्राकृतिक प्रकाश की व्यवस्था होनी चाहिये। इसके अतिरिक्त, टेबल की स्थिति ऐसी होनी चाहिये जिसमे प्रकाश कर्मचारी के बायीं ओर से ही आये।

15 कर्मचारियो एवं पर्यवेक्षकों की स्थिति—कार्यालय मे कर्मचारियों एव पर्यवेक्षकों की स्थिति भी बडी सूझबूझ से निर्धारित करनी चाहिये। सामान्यत कर्मचारियो के मुँह एक ही दिशा मे रखे जाने चाहिये तथा पर्यवेक्षकों को कर्मचारियो के पीछे बिठाया जाना चाहिये। इसके अतिरिक्त कर्मचारियों को कभी खिडकी की तरफ मुँह करवा कर नही बिठाना चाहिये।

कार्यालय अभिन्यास प्रक्रिया
(Process of Office Layout)

सामान्यत कार्यालय अभिन्यास के बनाने की कोई निश्चित प्रक्रिया नही होती है किन्तु निम्नलिखित प्रक्रिया अपनाई जा सकती है—

1 कार्यालय के लिए उपलब्ध स्थान का नक्शा प्राप्त करना (Securing a map of the available place)—कार्यालय अभिन्यास बनाने से पूर्व कार्यालय के लिए जो स्थान निश्चित किया गया है उसका नक्शा प्राप्त करना चाहिये। यह नक्शा बिल्कुल सही होना चाहिये। यदि नक्शा उपलब्ध नहीं है तो सबसे पहले उस स्थान का नक्शा बनवाना चाहिये। नक्शा बनाने के लिए सामान्यत $2'' = 1'$ अर्थात् चौथाई इच रेखा के बराबर 1 फुट जमीन का पैमाना लिया जाता है। नक्शे म खिडकियाँ, दरवाजे, दरवाजे का नाप, बिजली की फिटिंग, पाइप फिटिंग, टेलीफोन तारो की स्थिति, पानी की नालियाँ, प्रवेश द्वार आदि-आदि को स्पष्ट रूप से दिखाना चाहिये। यदि नक्शे में गलती होगी तो कार्यालय मे अभिन्यास में भी गलती होने की सम्भावना बढ जावेगी। अत नक्शा बिल्कुल सही एव उचित होना चाहिये।

2 आवागमन के मार्ग तय करना (Determining the area of main trafic movement)—स्थान का नक्शा प्राप्त करने के बाद कार्यालय मे आवागमन का स्थान निश्चित किया जाता है। कार्यालय मे आवागमन का स्थान कार्यालय के स्थान की लम्बाई चौडाई पर निर्भर करता है। सामान्यत आवागमन के मार्ग प्रवेश द्वार, निकास द्वार, सीढियाँ, आरामकक्ष आदि होते हैं। आवागमन का मार्ग तय करके ही मुख्य बरामदा, स्वागतकक्ष, आलमारी कक्ष आदि की स्थिति तय की जाती है।

3. कार्यालय के कार्यों को दृष्टिगोचर करना (Have a overall-picture of the office work)—तत्पश्चात् इस बात पर विचार करना चाहिये कि कार्यालय मे कौन कौन से कार्य किये जावेगे। साथ ही साथ यह भी ज्ञान करना चाहिये कि कार्य किस क्रम से पूरे किये जावेंगे। कार्यों तथा कार्यों के क्रम के आधार पर

ही फर्नीचर तथा मशीनों की स्थापना की व्यवस्था की जाती है। अत यह एक महत्त्वपूर्ण कदम है।

4. इकाइयों का निर्धारण (Determining Units)—कार्यालय कार्यों पर विचार करने के बाद उन्हें विभिन्न इकाइयों में बाट देना चाहिये अर्थात् यह निर्धारित करना चाहिये कि कार्यालय कितनी इकाइयों में बाटा जाना है। कार्य इकाइया सख्या के आधार पर निर्भर करती हैं। ये अधिक या कम सख्या मे हो सकती है। इकाइया निर्धारित करके कार्यों के केन्द्रीयकरण को रोका जा सकता है। उदाहरणार्थ, एक कार्यालय मे 1000 पत्र आते है। चू कि एक विभाग इन सभी पत्रो को निपटा नही सकता है अत पत्रो के कार्य को कई इकाइयो मे बाटा जा सकता है। मान लीजिए कि एक इकाई 250 पत्र निपटा सकती है तो कार्यालय मे 4 इकाइयो की स्थापना करनी पड़ेगी। अत अभिन्यास बनाने के पूर्व ही इन इकाइयो को ध्यान म रखना पडेगा।

इसी प्रकार कार्यालय म कई काय ऐसे होते है जिनके कारण कार्यालय म शोरगुल होता है या कार्यालय कार्य मे बाधा उपस्थित होती है तो ऐसे कार्यों को करने के लिए भी अलग स्थान की आवश्यकता पडती है। अत इस बात को ध्यान म रखते हुए ही इकाइयो को निर्धारित करना चाहिए।

5 कार्यालय के विभिन्न कार्य समूहो को ज्ञात करना (Identify the basic groups of the office)—कार्यालय अभिन्यास तैयार करने से पूर्व कार्यालय के विभिन्न काय समूहों को भी ज्ञात कर लेना चाहिये। यह सूचना कार्यालय के सगठन चार्ट से आसानी से ज्ञात की जा सकती है। सामान्यत कार्य समूह ज्ञात करते समय उच्च प्रबन्धको, विभागो एव उपविभागो, खण्डों, आदि म कार्य कर रहे कर्मचारियो के सम्बन्ध म जानकारी प्राप्त की जाती है। सामान्यत कार्य समूह कार्यात्मक आधार पर बनाये जा सकते हैं। उच्च प्रबन्धक, क्रय विक्रय, वित्तीय लेखाकन, लागत लेखाकन, फाइलिंग टाइपिंग आदि आदि प्रमुख कार्य समूह है। ये कार्य समूह कार्यालय अभिन्यास को सर्वाधिक रूप से प्रभावित करते है। अत ऐसे कार्य समूहो का निर्धारण बहुत ही सोच समझ कर करना चाहिए।

6 कार्य समूहो के अध्यक्षो से परामर्श करना (Consultation the heads of the work group)—कार्य समूह निर्धारित कर लेने के बाद कार्यालय अभिन्यास बनाने के लिए काय समूहो के अध्यक्षो से परामर्श करना चाहिए। उनसे यह पूछ लेना चाहिए कि उनका विभाग कार्यालय भवन मे कहाँ पर स्थापित किया जा सकता है। परामर्श कर लेने से कभी कभी बहुत ही रचनात्मक सुझाव आ सकते है और कार्यालय अभिन्यास बनाने मे बहुत अधिक सुविधा मिल सकती है। परामर्श करने से विभिन्न इकाइयो या कायो के लिए आवश्यक स्थान की जानकारी भी हो जाती है।

7 निजी कक्षों की आवश्यकता निर्धारण (Determining needs for private office)—तत्पश्चात् यह भी ज्ञात करना चाहिए कि कार्यालय मे कितने निजी कक्षो की आवश्यकता पडेगी । निजी कक्षो की आवश्यकता का निर्धारण करके कार्यालय अभिन्यास मे निजी कक्षो के स्थान को निर्धारित किया जा सकता है।

8. मॉडल तैयार करना (Preparing Models)—इसके बाद कार्यालय की विभिन्न कार्य इकाइयो के मॉडल तैयार करने चाहिए। ये मॉडल कार्डबोर्ड या कागज के तैयार किये जा सकते हैं। इन मॉडलो से यह ज्ञान हो जाता है कि प्रत्येक इकाई के लिए कितने स्थान की आवश्यकता होगी। इन मॉडलो के लिए भी 1 '=1' का पैमाना लेना उपयुक्त है। इन मॉडलो को तैयार करके यह अनुमान लगाया जा सकता है कि कार्य इकाई अभिन्यास कैसा होगा।

9 प्रत्येक इकाई के मॉडल को व्यवस्थित करना (Arranging model of each Unit)—कार्यालय की प्रत्येक इकाई का मॉडल बन जाने पर उसे व्यवस्थित किया जाता है। प्रत्येक इकाई के प्रत्येक विभाग की स्थिति को फेर-बदल करके देखा जाता है। जो स्थिति सर्वाधिक उचित होती है उसे निश्चित कर लिया जाता है तथा उसका फोटो ले लिया जाता है या चित्र बना लिया जाता है जिसे भविष्य मे आवश्यकता पडने पर उपयोग मे लिया जा सकता है।

10 सम्पूर्ण अभिन्यास को बनाना और छोटे मोटे संशोधन करना (Preparing complete layout and making minor adjustments)—अब अभिन्यास के स्वरूप को बनाने का प्रयास किया जाता है। इस हेतु सभी इकाइयो के अभिन्यासो को मिलाया जाता है तथा यह देखा जाता है कि कार्यालय का क्या स्वरूप होगा। इस स्वरूप को देखकर यह पता लगाया जाता है कि कार्यालय मे कार्यो का उचित प्रवाह बनाया जा सकेगा अथवा नही। सम्पूर्ण कार्यालय के ढाँचे का एक बार पुन अवलोकन किया जाता है तथा जहाँ कहीं भी अटपटापन लगता है, उसमे संशोधन कर दिया जाता है।

11. कार्य प्रवाह, टेलीफोन तथा बिजली की लाइन को अंकित करना (Indicating flow of work and telephone and electric wiring)—कार्यालय का मॉडल या नक्शा निश्चित हो जाने के बाद भी यह पूरा अभिन्यास नही बनता है। इसमे यह भी दिग्दर्शित करना चाहिए कि कार्यों का प्रवाह किस प्रकार रहेगा, बिजली तथा टेलीफोन के तार किस जगह से होकर निकाले जायेंगे। इसी प्रकार पानी के पाइप, नालियो आदि की स्थिति को भी मॉडल या नक्शे पर बनाने का प्रयास करना चाहिए।

यहाँ यह भी लिखना असगत नही होगा कि मॉडल या नक्शे मे यह भी दिखाना चाहिए कि कौन सा विभाग या इकाई किस व्यक्ति के अधिकार मे कार्य करेगा। इस प्रकार नाम लिख देने से प्रबन्धकों को कार्यालय प्रबन्ध मे बडी सुविधा मिलती है।*

12 उच्च प्रबन्धकों की स्वीकृति प्राप्त करना (Securing approval of top management)—जब कार्यालय का अभिन्यास तैयार हो जाता है तो अभिन्यास को उच्च अधिकारियों की स्वीकृति के लिए उनके पास भेजा जाता है। उच्च अधिकारियों के समक्ष अभिन्यास प्रस्तुत करते समय यह बात भी बताई जाती है कि सभी इकाई तथा विभागाध्यक्षों ने अपने अपने विभाग तथा इकाई के अभिन्यास को स्वीकृत कर लिया। उच्च प्रबन्धक प्रायः इस बात को जान कर ही अपनी स्वीकृति देते हैं तथा कार्यालय के अभिन्यास को मूर्तरूप देने का कार्य शुरू हो जाता है।

अभ्यास के लिए प्रश्न

1. संक्षेप में उन सिद्धान्तों का वर्णन कीजिये जिन पर आधुनिक कार्यालय का अभिन्यास आधारित होता है।
   Briefly describe those principles on which the layout of a modern office should be based.
2. एक अच्छे कार्यालय अभिन्यास का क्या महत्त्व है?
   What is the importance of a good office layout
3. कार्यालय अभिन्यास बनाने की प्रक्रिया का संक्षेप में वर्णन कीजिये।
   Discuss in brief, the process of preparing office layout?
4. एक अच्छे कार्यालय अभिन्यास का क्या महत्त्व है? किन सिद्धान्तों पर यह आधारित होना चाहिए?
   What is the importance of a good office lay-out? What are the principles on which it should be based?
5. आपको एक व्यावसायिक संगठन के सामान्य कार्यालय के अभिन्यास को पुनर्व्यवस्थित करना है। बतलाइये कि आप इस कार्य को कैसे करेंगे?

6

कार्यालय अधिकारियों की नियुक्ति

(Staffing the Office)

"Human resources of any organisation constitute one of its most importants assets. Its success and failure are largely determined by the caliber of its work force and the efforts it exerts."
—*Dale S. Beach*

वर्तमान युग मे व्यवसाय प्रगति के पथ पर अग्रसर हो रहा है। चहुँ ओर विकास ही विकास की धूम मच रही है। अधिकाधिक बड़े-बड़े कार्यालयो की स्थापना हो रही है। इन सब के लिए प्रतिदिन व्यक्तियो की आवश्यकता पड़ती है। अत नये-नये पदो का सृजन किया जा रहा है। पुराने पदो से नये पदो पर पदोन्नतियाँ की जा रही हैं, व्यक्ति उज्ज्वल भविष्य की कामना किये हुए एक सस्था से दूसरी सस्था में प्रविष्ट कर रहा है, कई बुजुर्ग अपनी शारीरिक अशक्तता से त्रस्त होकर अपना पद त्याग कर रहे हैं या सेवा निवृत हो रहे हैं, सस्था मे तकनीकी परिवर्तनो के परिणाम स्वरूप नये व्यक्तियो की आवश्यकता पड रही है। इन सबके परिणामस्वरूप कार्यालय मे कर्मचारियो की नियुक्ति करने का कार्य एक महत्त्वपूर्ण एव दिन-प्रतिदिन का कार्य हो गया है।

कर्मचारियो की नियुक्ति करने के लिए दो महत्त्वपूर्ण प्रक्रियाएँ पूरी करनी पड़ती हैं। उनमे से प्रथम भर्ती तथा द्वितीय, चुनाव की प्रक्रिया होती है। अब हम इन दोनो का सक्षेप मे वर्णन कर रहे हैं।

भर्ती की परिभाषाएँ एवं अर्थ
(Definitions and Meaning)

फिलप्पो (Flippo) के मतानुसार, "भर्ती का आशय भावी कर्मचारियो की खोज करना तथा उन्हे उपक्रम मे कार्य करने के लिए आवेदन करने हेतु प्रेरणा देना एव प्रोत्साहित करना है।"[1]

बीच (Beach) के अनुसार, "भर्ती का तात्पर्य पर्याप्त मानव शक्ति स्रोतो का विकास करना एव उनको बनाये रखना है। इसमे उपलब्ध कर्मचारियो का एक

---

1. "Recruitment is the process of searching for prospective employees and stimulating them to apply for jobs in organisation."
—Edwin B. Flippo

पूर्ति निर्माण करना भी सम्मिलित है जिसमे कि संगठन मे अतिरिक्त कर्मचारियो की आवश्यकता पड़ने पर प्राप्त किया जा सके।[1]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भर्ती करने का तात्पर्य लोगो को यह बताना है कि अमुक कार्यालय मे रिक्त स्थान है, और उन्हे रिक्त स्थानो के लिए आवेदन करने के लिए प्रोत्साहित करना है। इस सम्बन्ध मे यह बात ध्यान मे रखने योग्य है कि भर्ती करने का तात्पर्य कर्मचारी की नियुक्ति करना नही है। कई बार लोग इस भ्रान्ति के शिकार हो जाते है कि भर्ती का आशय चुनाव है। भर्ती एव चुनाव मे काफी अन्तर है। भर्ती तो नियुक्ति का प्रथम चरण है। भर्ती की प्रक्रिया मे कर्मचारियो की खोज का कार्य किया जाता है जबकि चुनाव की प्रक्रिया मे खोज किये गये कर्मचारियो मे से कार्यालय के लिए उपयुक्त व्यक्तियो को छाटना है।

लक्षण (Characteristics)—इस प्रकार भर्ती के निम्न लक्षण प्रकट होते है—

1 यह एक प्रक्रिया है, जो सदैव चलती रहती है।

2 इस प्रक्रिया मे अच्छे कर्मचारियो की खोज की जाती है।

3 भर्ती प्रक्रिया द्वारा कर्मचारियो को आवेदन देने हेतु प्रेरित किया जाता है।

4 इसमे मानवशक्ति स्रोतो का विकास किया जाता है तथा उन्हे बनाये रखने का प्रयास किया जाता है।

5 भर्ती का तात्पर्य चुनाव से नही है अर्थात् भर्ती एव चुनाव मे पर्याप्त अन्तर होता है।

6 भर्ती करने पर चुनाव करना अनिवार्य नही होता है।

7 भर्ती वर्तमान आवश्यकताओ के लिए होता ही आवश्यक नही है, भविष्य की आवश्यकता के लिए भी की जा सकती है।

भर्ती की आवश्यकता

(Need for Recruitment)

प्रत्येक कार्यालय मे कर्मचारियो की आवश्यकता कई कारणो से पड़ती है। कार्यालय मे कर्मचारी जाते एव आते रहते है। कभी व्यक्ति एक संस्था को छोड़कर दूसरी संस्था मे जाते है तो कभी नये पदो के निर्मित हो जाने से नये व्यक्तियो की आवश्यकता पड़ती है। सामान्यत भर्ती की आवश्यकता निम्न कारणो से पड़ती है—

1 कर्मचारी आवर्तन (Employee Turn over)—जैसा कि हम ऊपर भी लिख चुके हैं, कि कर्मचारियो का संस्था मे आना एव जाना लगा ही रहता है। कभी कर्मचारी स्वयं संस्था को छोड कर जाना चाहते है तो कभी कर्मचारियो को

---

1 Recruitment is the development and maintenance of adequate manpower sources It involves the creation of a pool of available labour whom the organisation can draw when it needs additional employees

—Dale S Beach

सस्था स निकाल दिया जाता है । कर्मचारियो को जब दूसरी सस्थाओ मे अच्छा पद प्राप्त हो जाता है, या शारीरिक रूप से कार्य करने मे अशक्त हो जाते हैं, तो वे सस्था को स्वत छोडकर जा सकते हैं । प्राय महिला कर्मचारी शादी के बाद अपनी सेवाएँ स्वत समाप्त कर लेती हैं । कभी-कभी कर्मचारी अपना स्वय का व्यवसाय प्रारम्भ कर लेने के कारण भी अपने आप सस्था को छोडकर चले जाते हैं, और सस्था को नये व्यक्तियो की भर्ती करनी पडती है । इसके अतिरिक्त, कभी-कभी कर्मचारियो को सस्था स्वय निकाल देती है । इसके कई कारण हो सकते हैं । जब कर्मचारी अकुशल हो, कर्मचारी वर्तमान तकनीकी आवश्यकता को पूरा करने मे असमर्थ हो या सेवा निवृति का समय आ जाय, तो सस्था स्वय कर्मचारियो का निकाल देती है, और नये कर्मचारियो की भर्ती करनी पडती है ।

2 वर्तमान कर्मचारियो की प्रकृति (Nature of Present work force)—वर्तमान कर्मचारियो की प्रकृति से भी भर्ती की आवश्यकता प्रभावित होती है । इसका तात्पर्य यह है, कि सस्था मे तकनीकी परिवर्तन हो जाते हैं, नई-नई आधुनिक मशीनो की स्थापना की जाती है तो पुराने कर्मचारियो के स्थान पर नये कर्मचारियो की नियुक्ति करनी पडती है । कभी कभी पुराने कर्मचारियो को प्रशिक्षण देकर भी नई तकनीकी आवश्यकता को पूरा किया जा सकता है, किन्तु व्यवहार मे फिर भी इस कारण मे भी कुछेक व्यक्तियो की भर्ती करना अनिवार्य हो जाता है । कभी-कभी तकनीकी परिवर्तनो के कारण कुछ नये पदो का भी सृजन करना आवश्यक हो जाता है, और बाहर से भर्ती करना भी आवश्यक हो जाता है ।

3. सस्था का विकास—सस्था का विकास होने पर उसके कार्य भी बढ जाते हैं, और इन बढे हुए कार्यो के लिए कार्यालय मे कर्मचारी भी बढाने पडते हैं । अत भर्ती की आवश्यकता पडती है ।

भर्ती के स्रोत[1]

(Sources of Recruitment)

भर्ती के विभिन्न स्रोत हैं, उनको स्थूल रूप से दो भागो मे बाँटा जा सकता है —

1 आन्तरिक स्रोत (Internal sources)—सामान्यत जब कार्यालय मे कार्य कर रहे या सस्था के किसी अन्य भाग मे कार्य कर रहे, कर्मचारियो का स्थानान्तरण या पदोन्नति द्वारा रिक्त स्थान को भरा जाता है, तो आन्तरिक स्रोत से भर्ती की जाती है । वैसे आन्तरिक स्रोत निम्नलिखित हैं —

(1) कार्यालय के वर्तमान कर्मचारियो की पदोन्नति योजना बना कर कार्यालय के रिक्त पदो के लिए भर्ती की जा सकती है ।

---

1 भर्ती के विभिन्न स्रोत हैं । उन सबका विस्तार से इकाई—4 के पाठ 4 मे वर्णन किया गया है ।

(ii) संस्था के अन्य भागों में कार्य कर रहे कर्मचारियों का स्थानान्तरण करके भर्ती की जा सकती है।

(iii) संस्था के कर्मचारियों के सम्बन्धियों या उनके मित्रों में से किसी की भर्ती की जा सकती है।

II बाह्य स्रोत (External Sources)—कार्यालय में कर्मचारियों की भर्ती के लिए अनेक बाह्य स्रोत भी उपलब्ध हैं उनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं —

1 कार्यालय के भूतपूर्व कर्मचारी जो पुनः संस्था में आना चाहते हैं।

2 स्वतः प्राप्त प्रार्थना पत्र, जो प्रायः कई लोगों से प्राप्त हो जाते हैं। सामान्य प्रकार लोग जब नौकरी की तलाश में जगह जगह जाते हैं तो वे अच्छी संस्थाओं में अपना प्रार्थना पत्र इसलिए दे आते हैं कि यदि भविष्य में संस्था को आवश्यकता हो तो उन्हें बुलवा लेगी।

3 विज्ञापन कर्मचारियों की भर्ती का सर्वाधिक प्रचलित स्रोत है।

4 विश्वविद्यालय महाविद्यालय तकनीकी स्कूलों में से निकलने वाले छात्रों में भर्ती की जा सकती है।

5 रोजगार कार्यालय भी भर्ती का एक अच्छा साधन है।

6 प्रतिस्पर्द्धी संस्थाओं के कार्यालयों के कर्मचारियों को अधिक वेतन देकर अपनी संस्था के कार्यालय में नियुक्त किया जा सकता है।

7 अन्य व्यावसायिक संस्थाओं के कार्यालयों से भी अच्छे कर्मचारियों की भर्ती की जा सकती है।

कार्यालय कर्मचारियों का चुनाव करना
(Selecting office Personnel)

भर्ती के उपर्युक्त वर्णित विभिन्न स्रोतों से अनेकों प्रार्थी अपना अपना प्रार्थना पत्र भेजते हैं। इन अनेकों प्रार्थियों में से कार्यालय की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए व्यक्तियों को नियुक्ति के लिए छाँटना ही कर्मचारियों का चुनाव है। इस चुनाव कार्य की निश्चित प्रक्रिया होती है उसका हम यहाँ संक्षेप में वर्णन करेंगे।

चुनाव प्रक्रिया[1]
(Selection Process)

चुनाव प्रक्रिया में प्रायः निम्नलिखित प्रमुख चरण होते हैं —

1 कार्यालय में प्रार्थी का स्वागत —कर्मचारी चुनाव प्रक्रिया का प्रथम स्तर प्रार्थी के कार्यालय में आने के साथ ही प्रारम्भ होता है। प्रार्थी जब अपनी चुनाव प्रक्रिया के दौरान संस्था में आता है तो उसका नियोजन कार्यालय में स्वागत करना चाहिये। सभी प्रार्थियों को संस्था के मेहमानों के रूप में मानना चाहिये। उन्हें किसी भी प्रकार से उनके आत्म सम्मान को ठेस नहीं पहुँचने देनी चाहिये।

---

1 चुनाव प्रक्रिया का इकाई 4 में विस्तार से क्रमबद्ध रूप में वर्णन किया है।

किन्तु, सामान्यत आजकल एक ही पद के लिए हजारो प्रार्थी आते हैं अत सस्थाएँ इस स्तर का इतना सतर्कता पूर्वक पालन नही कर पाती है।

2. प्रारम्भिक साक्षात्कार—चुनाव प्रक्रिया का दूसरा चरण इस साक्षात्कार से प्रारम्भ होता है। इस साक्षात्कार मे उन लोगो को छाँट लिया जाता है, जिनमे सभी वाञ्छित योग्यताएँ तथा अभिधाएँ उपलब्ध होती है। बाकी प्रार्थियो का स्पष्ट रूप से चुनाव मे नहीं लेने का खेद प्रकट कर दिया जाता है। इसीलिए इसे छटनी साक्षात्कार (Screening interview) भी कहते है। यह साक्षात्कार लगभग दस मिनट का होता है। इस समय प्रार्थी को कार्य की प्रकृति, वेतनमान, सेवा शर्तें आदि मे अवगत करवाया जाता है। साक्षात्कारकर्ता प्रार्थी से उसकी शैक्षणिक योग्यता, अनुभव, अन्य योग्यताएँ, कार्य के प्रति रुचि आदि के बारे मे सूचनाएँ प्राप्त कर लेता है।

नोट—सामान्यत उपर्युक्त दोनो चरणो का कोई भी सस्था पालन नही करती है।

3. प्रार्थना पत्र फार्म भरना—जब प्रार्थी प्रारम्भिक साक्षात्कार मे सफल हो जाता है, तो उससे एक प्रार्थना पत्र फार्म भरवाया जाता है। इसमे प्रार्थी के नाम, पता, पिता का नाम, व्यवसाय, पता, शैक्षणिक योग्यताएँ, अन्य योग्यताएँ, कार्यानुभव, न्यूनतम स्वीकार्य वेतन आदि के सम्बन्ध मे प्रश्न पूछे जाते है। उनका प्रार्थी को उत्तर लिखना पड़ता है। प्रार्थी को इनका उत्तर सही-सही लिखना चाहिये।

4. चुनाव जांच[1]—चुनाव जाँच, चुनाव प्रक्रिया का एक महत्त्वपूर्ण स्तर है। आजकल चुनाव से पूर्व जाँच करना सामान्य सा हो गया है। चुनाव जाँच के द्वारा प्रार्थी की योग्यता, चातुर्य आदि की जाँच की जा सकती है। इससे प्रार्थी की रुचि, अरुचि आदि की जानकारी की जा सकती है।

चुनाव जाँच कई प्रकार की हो सकती हैं। यथा-योग्यता जाँच, निष्पादन जाँच, व्यक्तित्व जांच, अभिरुचि जाँच, प्रकृति जाँच, स्थिति जाँच आदि। आवश्यकतानुसार इसमे से किसी भी जाँच या अनेको जाँचो का एक साथ प्रयोग किया जा सकता है। चुनाव जाँच करने से चुनाव एव नियुक्ति के विभिन्न खर्चों मे कमी की जा सकती है तथा सही व्यक्ति का सही पद के लिए चयन करने मे बडी सहायता मिलती है।

5. मुख्य नियोजन कार्यालय मे साक्षात्कार[2]—जो प्रार्थी जाँच मे उत्तीर्ण होते हैं, उनका साक्षात्कार लिया जाता है। यद्यपि साक्षात्कार चुनाव का कोई महत्त्वपूर्ण आधार नही बन सकता है, फिर भी किसी भी प्रार्थी के चयन करने मे

---

1 चुनाव जाँच के सम्बन्ध मे विस्तार से नीचे इसी अध्याय मे दिया गया है।
2 साक्षात्कार के सम्बन्ध मे विस्तार से नीचे इसी अध्याय मे दिया गया है।

साक्षात्कार का महत्त्वपूर्ण स्थान है। एक अनुसंधान से यह ज्ञात हुआ है, कि लगभग 98% संस्थाओं में चुनाव के लिए साक्षात्कार किया जाता है। साक्षात्कार इसलिए आवश्यक है कि प्रत्येक सेवायोजक अपने भावी कर्मचारी की नियुक्ति से पूर्व देख कर बातचीत कर सके।

इस साक्षात्कार का मुख्य उद्देश्य सूचनाओं का आदान प्रदान करना है, जिसके आधार पर साक्षात्कारकर्ता यह निश्चित करता है, कि कोई व्यक्ति अच्छा कर्मचारी हो सकता है अथवा नहीं।

6 प्रार्थी के सदर्भ में जानकारी प्राप्त करना—साक्षात्कार पूरा हो जाने के पश्चात् प्रार्थी के सदर्भ में विशेष जानकारी प्राप्त की जाती है। कभी कभी इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है किन्तु प्रार्थी के सम्बन्ध में जानकारी बहुत लाभप्रद होती है। प्रार्थी के सदर्भ में मुख्यत चरित्र शिक्षा पूर्व कार्यानुभव आदि के बारे में जानकारी प्राप्त की जाती है।

इन बातों के सम्बन्ध में जानकारी स्कूलों कॉलेजों, भूतपूर्व नियोक्ताओं, प्रार्थी द्वारा सदर्भ हेतु दिये गए नाम प्रार्थी के पड़ौसियों आदि से प्राप्त की जा सकती है।

7 चिकित्सा परीक्षा—चिकित्सा परीक्षा या शारीरिक चिकित्सा (Physical Examination) चुनाव प्रक्रिया का एक महत्त्वपूर्ण स्तर है। आजकल बैंक, बीमा कम्पनियों की सेवाओं सरकारी सेवाओं सभी में चिकित्सा परीक्षा करवाना आवश्यक है। चिकित्सा परीक्षा द्वारा यह ज्ञात किया जाता है कि प्रार्थी कार्यालय में काम करने के लिए शारीरिक रूप से उपयुक्त है अथवा नहीं। यदि वह शारीरिक रूप से उपयुक्त होता है तो प्रार्थी की नियुक्ति की जा सकती है।

8 प्रत्यादेश देना या नियुक्ति का निर्णय करना—चुनाव प्रक्रिया के स्तरों के समाप्त होने से पूर्व दो निर्णयों में से एक निर्णय लेना ही पड़ता है। किसी प्रार्थी को प्रत्यादेश (Reject) दिया जाय या नियुक्त किया जाय। जब कोई प्रार्थी संस्था के पद के लिए उपयुक्त नहीं दिखता है उसे प्रत्यादेश देना पड़ता है। किन्तु प्रत्यादेश देते समय बहुत सावधानी बरतनी चाहिए। प्रार्थी को यह महसूस नहीं होने देना चाहिए कि उसे अपमानित किया गया है या उसमें योग्यता की कमी है। उसे नम्रतापूर्ण शब्दों में प्रत्यादेश की सूचना देनी चाहिए।

जब नियुक्ति का निर्णय लिया जाता है तो उस प्रार्थी को नियुक्ति से पूर्व कई बातों के सम्बन्ध में जानकारी दी जाती है। काम भार सभालने की तिथि के सम्बन्ध में पूछताछ की जाती है। उस संस्था के अभिन्न अग के रूप में स्वीकार करना चाहिए।

9 कार्य परिचय—जब किसी प्रार्थी की नियुक्ति हो जाती है, तो वह प्रार्थी से कर्मचारी बन जाता है और उसे संस्था में आवश्यक कार्य सौंपा जाता है। भली प्रकार कार्य करवाने के लिए नये कर्मचारी को कार्य परिचय करवाना बहुत आवश्यक

है। सामान्यत कार्य परिचय की दृष्टि से निम्न बातो के सम्बन्ध मे बतलाया जाता है :—

(i) सस्था का इतिहास, (ii) सस्था की निर्मित वस्तुएँ व मुख्य क्रियाएँ (iii) सस्था की सामान्य नीतियाँ तथा नियन्त्रण, (iv) कार्यालय मे आपसी सम्बन्ध, (v) वेतन तथा वेतन नीतियाँ, (vi) कार्य के घन्टे, छुट्टियाँ इत्यादि, (vii) अनुशासन एव शिकायत विधि, (viii) सामाजिक लाभ योजनाएँ, (ix) मनोरजन की सुविधाएँ, (x) पदोन्नति व स्थानान्तरण के अवसर, आदि।

चुनाव जांच
(Selection Tests)

आधुनिक सस्थाएँ प्रार्थना पत्र फार्मो तथा साक्षात्कार से ही सन्तुष्ट नही होती हैं। वे इनके अतिरिक्त चुनाव-जांच का भी विक्रयकर्ताओ के चुनाव म प्रयोग करने लगी हैं। अत यह कहा जाय कि आधुनिक समय म चुनाव जांच सम्पूर्ण चुनाव प्रक्रिया का आवश्यक अग बन गया है, तो भी कोई अतिशयोक्ति नही होगी।

चुनाव-जांच मनोविज्ञान के सिद्धान्तो के आधार पर की जाती है। इन जांचो के द्वारा प्रार्थी के सन्दर्भ मे उन बातो की जानकारी प्राप्त की जाती है जो चुनाव प्रक्रिया के अन्य स्तरो के बाद भी ज्ञात नही हो पाती हैं। इन जांचो के द्वारा प्रार्थी की विशेषताओ, प्रवृत्तियों, व्यवहार, कमियो तथा अच्छाइयो को ज्ञात करने का प्रयास किया जाता है। किन्तु इस सम्बन्ध मे यह ध्यान रहे कि चुनाव जांच म उत्तीर्ण होने मात्र से ही चुनाव नही हो जाता है। चुनाव जांच तो सम्पूर्ण चुनाव प्रक्रिया का एक भाग है। चुनाव जांच कर लेने से प्रार्थियो की छंटनी करने का एक और अवसर प्राप्त हो जाता है।

चुनाव जांच के प्रकार
(Types of Selection Tests)

सामान्यत विक्रयकर्ताओ की चुनाव जांच निम्न प्रकार की होती है

1. मानसिक योग्यता-जांच (Mental Ability Tests)—इस जांच का उद्देश्य प्रार्थियों की मानसिक योग्यता, क्षमता एव सामान्य योग्यता के स्तर को ज्ञात करना होता है। इस जांच को **"पेपर तथा पेंसिल जाँच"** (Paper and Pencil test) भी कहते हैं। योग्यता कई बातो से प्रभावित होती है और इस जाच के द्वारा योग्यता के सम्बन्ध मे कई तथ्यो की जानकारी प्राप्त की जा सकती है, जिससे योग्य व्यक्तियो के चुनाव मे सहायता मिलती है। जो प्रार्थी एक निश्चित योग्यता स्तर म नीचे रहता है उसके चुनाव के लिए आगे विचार नही किया जाता है।

2 उपयुक्तता या प्रवृत्ति उन्मुखता परीक्षा (Aptitude Tests)—उपयुक्तता या उन्मुखता परीक्षा का उद्देश्य यह ज्ञात करना है कि प्रार्थी को किसी नये कार्य को सीखने की क्षमता है या नहीं। दूसरे शब्दो म यदि प्रार्थी को पर्याप्त

प्रशिक्षण दिया जाय तो वह किसी कार्य को सीख सकता है अथवा नहीं, इस बात की जानकारी हेतु ही यह जाँच आयोजित की जाती है। वोल्फ (Wolf) के अनुसार, "उपयुक्तता जांच यह मापने के लिए की जाती है कि एक व्यक्ति अपनी सीखने की योग्यताओं के सदर्भ मे क्या कर सकता है, न कि वह जो कुछ पहले जानता है उसके सदर्भ मे।"[1] इस जांच की सर्वाधिक उपयोगिता वहां है, जहाँ पर किसी कार्य का भावी विकास या अधिक विस्तृत क्षेत्र है और विक्रयकर्ता को समय के अनुसार नई बातें सीखने की आवश्यकता पड़ती है।

3 निष्पादन या सम्प्राप्ति जांच (Achievement Tests)—ये जाँच प्रार्थी की उस क्षमता का मापन करने के लिए ली जाती है जो कि प्रार्थी ने अब तक अर्जित की है। टिफिन व मेक्कोर्मिक (Tiffin and McCormick) के अनुसार इन जाचो का प्रयोग तब किया जाता है, जबकि—

(i) किसी पद के लिए अनुभवी व्यक्तियो को लिया जाना हो,

(ii) किसी पद पर किसी व्यक्ति की पदोन्नति करनी हो,

(iii) किसी व्यक्ति का एक पद से दूसरे पद पर स्थानान्तरण करना हो, तथा

(iv) प्रशिक्षण की आवश्यकता का पता लगाना हो।

सम्प्राप्ति जाच को सामान्यत दो रूपो मे आयोजित किया जा सकता है—(i) निष्पादन क्षमता जाच (Performance Tests), तथा (ii) व्यापारिक जाँच (Trade Tests)। सम्प्राप्ति जाँच को आधुनिक युग मे बहुत अधिक प्रयुक्त किया जाने लगा है। स्टेनोग्राफर, टाइपिस्ट, आदि जैसे अनेकों तकनीकी ज्ञान वाले पदो पर नियुक्त करने से पहले इन जाँचो का प्रयोग किया जाता रहा है किन्तु पाश्चात्य देशो मे आजकल कुछ सस्थाएँ विक्रयकर्ताओ का चुनाव करने के लिए इन जाँचो का प्रयोग करने लगी है। विक्रयकर्ताओ की इस प्रकार की जांच करना एक सरल कार्य नही है अतएव जाचकर्ता विशेषज्ञ ही होना चाहिए।

4 व्यक्तित्व जांच (Personality Tests)—व्यक्तित्व जाँच के द्वारा प्रार्थियो के आत्म विश्वास, भावनाओं सामान्य-आचरण, प्रतिक्रियाओ, आदतो, आत्म अभिव्यक्ति आदि का मापन किया जाता है। किन्तु व्यक्तित्व जाँच के बारे मे अनेकों विद्वानों की विपरीत धारणाएँ है। प्रो० मेक्फारलैण्ड (McFarland) के अनुसार, "सभी प्रकार की जाँचो मे से, व्यक्तित्व जाँच सबसे अधिक आलोचनाओ का शिकार है, तथा इन्हे ठीक प्रकार से आयोजित करना बहुत कठिन है। स्टेनले स्टाक (Stanley Stark) जो कि बहुत बडे मनोवैज्ञानिक है, का मत है कि "व्यक्तित्व जांच न तो पहल ही करता है और न सेवायोजक ही कर्मचारियो की मान्यताओ एव

---

1 *Aptitude tests are designed to measure what a man 'can do' in terms of his ability to learn, rather in terms of what he already knows*

—William B Wolf

विश्वासों का निश्चित ज्ञान प्राप्त करना चाहता है, क्योंकि साक्षात्कार एवं अवलोकन व्यक्तित्व के विश्लेषण का आधार प्रस्तुत कर देते हैं।"

इस प्रकार स्पष्ट है, कि व्यक्तित्व जाँचों का कोई विशेष महत्त्व नहीं है, क्योंकि इस जाँच के आधार पर किसी सही तथ्य पर पहुँचना बहुत कठिन होता है फिर भी इन जाँचों को आयोजित किया जाय तो इन्हें बहुत ही उच्च कुशलता प्राप्त व्यक्तियों के द्वारा ही आयोजित किए जाना चाहिए।

5 **रुचि या अभिरुचि जाँच** (Interest Tests)—इन जाँचों के द्वारा प्रार्थियों की किसी कार्य या धन्धे के प्रति रुचियों का पता लगाया जाता है। इन जाँचों के द्वारा प्रार्थियों की आदतों एवं खाली समय के उपयोग करने सम्बन्धी तथ्यों की जानकारी भी की जाती है। ये जाँचें इन मान्यताओं पर आधारित हैं, कि एक व्यक्ति की रुचि स्थिर रहती है अर्थात् सामान्यत एक व्यक्ति की 21 वर्ष की आयु मे जो रुचियाँ है वे ही 40 वर्ष की आयु मे भी पायी जायेंगी। यदि किसी व्यक्ति की किसी कार्य विशेष मे रुचि है और उस कार्य की आदत है और उसे उस कार्य विशेष मे लगा दिया जाय तो वह अधिक कुशलतापूर्वक उस कार्य को करेगा।

इन जाँचों का प्रयोग सामान्यत सलाह, मार्ग-दर्शन देने के लिए किया जाता है। सामान्यत चुनाव प्रक्रिया मे इस जाँच के बाद काफी व्यक्तियों की छटनी की जाती है।

6 **प्रकृति या स्वभाव जाँच** (Temperament Tests)—इन जाँचों के द्वारा किसी भी व्यक्ति की इच्छाओं, पसन्द नापसन्द, आदतों को ज्ञात किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त ये जाँचें यह बताने मे भी समर्थ हैं कि प्रार्थी सामाजिक है या अलग रहने की प्रकृति का है या मिलनसार है अथवा नहीं।

7 **स्थिति जाँच** (Situation Tests)—स्थिति जाँच के द्वारा प्रार्थियों की वास्तविक स्थिति पर कार्य करने की क्षमता की जाँच की जाती है। इस जाँच मे वैयक्तिक जाँच एवं निष्पादन क्षमता जाँच दोनों के ही तत्व सम्मिलित हैं।

चुनाव जाँचों के लाभ (Advantages)—अनेकों विद्वानों का मत है कि यदि सही प्रकार से चुनाव जाँचों का आयोजन किया जाय तो, ये चुनाव प्रक्रिया मे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। लोपेज (Lopez) के मतानुसार, "ये जाँचें कर्मचारियों की योग्यतात्मक एवं उत्प्रेरणात्मक क्षेत्रों को अधिक पकड़ सकने हैं तथा प्रार्थियों को भी अधिक स्वीकृत होते हैं।" सक्षेप मे चुनाव जाँच के निम्न प्रमुख लाभ हैं—

(i) चुनाव जाँच से चुनाव प्रक्रिया मे पक्षपात की मात्रा घट जाती है।

(ii) चुनाव जाँच का प्रयोग करने से श्रम आवर्तन घटता है।

(iii) चुनाव जाँच द्वारा चुने गए विक्रयकर्ताओं की कार्य-क्षमता अपेक्षाकृत अधिक अच्छी होती है।

(iv) इनमे चुनाव एवं नियुक्ति के खर्चों मे बचत होती है।

(v) उचित योग्यता वाले व्यक्ति को ढूँढना सरल है।

(vi) ये जाच स्थानान्तरण एव पदोन्नति मे बहुत सहायक हैं।

(vii) ये प्रार्थियो की तुलना का समान आधार प्रस्तुत करते हैं।

(viii) इनसे प्रार्थी की उन योग्यताओ का पता लगाया जा सकता है जिनका चुनाव प्रक्रिया के अन्य स्तरो पर पता लगाना सम्भव न हो।

(ix) इनसे प्रार्थी की विशेष योग्यता तथा विशेष कमजोरी का भी पता लगाया जा सकता है।

(x) इन जाचो मे सामान्य से अधिक प्रच्छन्न के विश्वसनीय प्राप्त किये जा सकते है।

(xi) प्रशिक्षण के खर्चों की बचत होती है।

(xii) प्रार्थी की कार्य पर सफलता के अवसर बढ जाते है।

चुनाव जाच के दोष या सीमाएँ (Disadvantages or Limitations)—

इन जाचो से कई लाभ होने के उपरान्त भी कई दोष है। प्रमुख दोषो के कारण निम्न आलोचनाएँ की जाती हैं—

(i) अनुसधान व आकडे जाचो की वैधता को चुनौती देते हैं।

(ii) ये जाच विभिन्न कार्यो मे लगने वाले जटिल गुण सयोगो का मापन करने मे असमर्थ है।

(iii) इन जाचो के द्वारा चुनाव प्रक्रिया मे एकत्रित की जाने वाली अनेको सूचनाओ मे से कुछ सूचनाएँ ही एकत्रित हो पाती है।

(iv) इन जाचो से केवल व्यक्तिगत कार्यक्षमता का पता लग सकता है। भविष्य मे भी इसी प्रकार कार्य कर सकेगा इस बात का उत्तर इन जाँचो से नही मिलता है।

(v) ये जाच उत्प्रेरण के लिए निश्चित उपाय प्रदान नही करती हैं।

(vi) अब तक कोई ऐसी जाँच का आविष्कार नही हुआ है, जिसे सब संस्थाओ मे समान रूप से लागू किया जा सकता हो।

(vii) कोई भी जाच विभाग प्रबन्धक के निर्णय का स्थानापन्न नही बन सकती है बल्कि उसके निर्णयन मे सहयोग देती है।

साक्षात्कार
(Interview)

कर्मचारियो के चुनाव मे साक्षात्कार का महत्त्वपूर्ण स्थान है। कही कही तो साक्षात्कार अपने आप मे चयन प्रक्रिया है। अनुसन्धानो से यह सिद्ध हो चुका है कि अधिकाश अर्थात् लगभग 98 चुनाव साक्षात्कार करने के बाद ही होते है।

साक्षात्कार के उद्देश्य (Objectives)—साक्षात्कार करने के सामान्यत निम्न उद्देश्य होते हैं—

1. चुनाव के लिए प्रार्थी की योग्यताओं का मूल्यांकन करना ।

2. प्रार्थी को संस्था के सम्बन्ध में आवश्यक बातों, यथा कार्य के घण्टे, कार्य की प्रवृत्ति, चिकित्सा सुविधाएँ, कर्मचारी सेवाएँ आदि से अवगत कराना ।

3. प्रार्थी में आपसी विश्वास एवं समझ उत्पन्न करना ।

4 प्रार्थी के मस्तिष्क में संस्था की ख्याति बनाना ।

5 प्रार्थी की पहल शक्ति, निर्णय शक्ति तथा बोलने की क्षमता का पता लगाना ।

6 प्रार्थना-पत्र फार्म में दी गई बातों में यदि कोई अस्पष्टता रह गई हो तो उनका निवारण करना ।

7. चुनाव प्रक्रिया के अन्य स्तरों पर यदि प्रार्थी के सम्बन्ध में कोई विपरीत सूचनाएँ प्राप्त हुई हों तो उनके बारे में विशेष जानकारी एवं तथ्यों का पता लगाना ।

8 प्राथमिक साक्षात्कार एवं अन्य स्तरों पर प्रार्थी से कोई सूचना इंगित करना रह गई हो तो वह सूचना प्राप्त करना ।

9 प्रार्थी की विनय क्षमता, ग्राहकों से सम्बन्ध बनाने की क्षमता, विक्रय तथा विपणन सिद्धान्तों का ज्ञान आदि बातों के सम्बन्ध में मूल्यांकन करना ।

10 प्रार्थी के भविष्य के कार्यों एवं अनुभव का मूल्यांकन करना ।

अच्छे साक्षात्कार की आवश्यक बातें (Essential Features of a Good Interview)—अच्छे साक्षात्कार में निम्न बातें होना आवश्यक है—

1 साक्षात्कार मण्डल (Interview board) की संरचना तथा उनके सदस्यों की संख्या निश्चित करते समय बहुत ध्यान रखना चाहिए। साक्षात्कार मण्डल बहुत बड़ा नहीं होना चाहिए, लेकिन उसके विभागाध्यक्ष या उसके प्रतिनिधि को अवश्य शामिल करना चाहिए।

2 साक्षात्कार के उद्देश्यों एवं आधारों को भली प्रकार निर्धारित कर लेना चाहिए, ताकि साक्षात्कार में उद्देश्यों के अनुरूप ही प्रश्न पूछे जा सकें।

3 साक्षात्कार का उचित ढंग निर्धारित करना चाहिए ।

4 साक्षात्कार के लिए आने वाले व्यक्तियों के बैठने एवं आराम करने के लिए उचित व्यवस्था होनी चाहिए।

5 साक्षात्कार मित्रतापूर्ण व्यवहार तथा अनौपचारिक तरीके से ही होना चाहिए।

6 साक्षात्कार में ऐसे ही प्रश्न पूछे जाने चाहिए जिनके द्वारा प्रार्थियों को कुछ उत्तर देने का अवसर मिल सके तथा अपने विचारों को अभिव्यक्त कर सके ।

7. प्रश्न ऐसे नहीं पूछने चाहिए जिनका उत्तर केवल हाँ या ना में ही हो ।

8 साक्षात्कारकर्ता को प्रार्थी के उत्तरों को ध्यानपूर्वक एवं शान्तिपूर्ण तरीके से सुनना चाहिए ।

9 साक्षात्कार के पश्चात् अन्तिम निर्णय पूर्व निर्धारित आधारों को ध्यान में रखकर करना चाहिए

साक्षात्कार में क्या करना चाहिए तथा क्या नहीं करना चाहिए (Do's and Dont's of Interviewing)—शीर (Scheer) के अनुसार साक्षात्कार में निम्न कार्य करने चाहिये—

(i) साक्षात्कार के लिए शान्त एवं आरामदायक स्थान की व्यवस्था करनी चाहिए।

(ii) प्रार्थी को सुखदायक अवस्था में रखना चाहिए।

(iii) व्यक्ति तथा कार्य दोनों में रुचि रखनी चाहिए।

(iv) कार्य की आवश्यकताओं को स्पष्ट कर देना चाहिए।

(v) नियोजन की शर्तों की स्पष्ट व्याख्या करनी चाहिए।

(vi) सेवाओं, लाभों एवं पदोन्नतियों के सम्बन्ध में सभी बातों को बता देना चाहिए।

(vii) प्रार्थी को प्रश्न करने को प्रोत्साहित करना चाहिए।

(viii) प्रार्थी को मार्गदर्शन देना चाहिए।

(ix) प्रार्थी को सुनना चाहिए तथा प्रार्थी को स्वतन्त्र रूप से बात करने का अवसर देना चाहिए।

(x) बातचीत की भाषा में ही साक्षात्कार होना चाहिए।

(xi) साक्षात्कार को कब और कैसे बन्द किया जाय इस सम्बन्ध में पहले से ही विचार कर लेना चाहिए।

(xii) अपने निर्णय को स्पष्ट कर लेना चाहिए।

शीर (Scheer) के अनुसार ही साक्षात्कार में निम्न कार्य नहीं करने चाहिए —

1 प्रार्थी को प्रतीक्षा में मत रखिये।
2 झूठी उम्मीदें मत दिलाइए।
3 कार्य के बारे में बढ़ा चढ़ाकर नहीं कहना चाहिए।
4 साक्षात्कार के समय प्रार्थी के बीच हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।
5 साक्षात्कार में जल्दी नहीं करनी चाहिए।
6 उन प्रश्नों को नहीं पूछना चाहिए जो कि प्रार्थना-पत्र फार्म में पूछ लिए गए हैं।
7 सीधे सादे प्रश्नात्मक साक्षात्कार न हों।
8 अपने विचार मत बताइए।
9 अनावश्यक रूप से व्यक्तिगत जीवन पर प्रश्न नहीं पूछना चाहिए।
10 किसी का पूर्व निर्णय तथा पक्षपात नहीं करना चाहिए।

11. प्रार्थी को नीचा दिखाने की कोशिश नही करनी चाहिए।
12 प्रार्थी के साथ दुर्व्यवहार करके नही भेजना चाहिए।

सफल साक्षात्कारकर्ता के गुण
(Qualities of a Good Interviewer)

साक्षात्कार की सफलता साक्षात्कारकर्ता पर निर्भर करती है। अत साक्षात्कार करने वाले मे कुछ विशेष गुणो का होना परमावश्यक है। सामान्यत एक सफल साक्षात्कारकर्ता मे निम्न गुण होने चाहिए

1. साक्षात्कारकर्त्ता को उस क्षेत्र का अनुभव व ज्ञान होना चाहिए, जिस क्षेत्र के प्रार्थियों का साक्षात्कार करना है।

2 साक्षात्कारकर्त्ता के कार्य एव विचार पूर्ण परिपक्व होने चाहिए।

3. साक्षात्कारकर्त्ता मे आत्मविश्वास एव सहयोग की क्षमता होनी चाहिए।

4 उसमे मानवीय अनुभवो एव आचरणो को समझने की क्षमता होनी चाहिए।

5 उसमे निर्णय क्षमता होनी चाहिए।

6 सगठन के नियमो के अनुसार सुपरवाइजरो एव अन्य अधिकारियो के साथ कार्य करने की योग्यता होनी चाहिये।

7 उसमें साक्षात्कार आयोजित करने की योग्यता होनी चाहिए।

8 साक्षात्कारकर्त्ता को नवीनतम सूचनाओ एव पद्धतियो का पूरा-पूरा ज्ञान होना चाहिए।

9 सस्था की चयन नीति की जानकारी होनी चाहिए।

10 उसे मनोविज्ञान का ज्ञान होना चाहिए।

साक्षात्कार करने की योजना
(Interview Plan)

The National Institute of Industrial Psychology of U S A ने निम्न 'सप्त बिन्दु योजना' का निर्माण किया है जो एक अच्छे साक्षात्कार के लिए आवश्यक है। यह योजना निम्न प्रकार है—

1 शारीरिक बनावट (Physical make-up)—साक्षात्कार मे सबसे पहले यह देखना चाहिए कि शारीरिक बनावट ठीक है अथवा नहीं है। प्रार्थी मे कोई शारीरिक कमी तो नही है जिसके कारण वह अपने कार्य को पूरा नही कर सकेगा। प्रार्थी का स्वास्थ्य, शक्ति, आकृति आदि बातो को भी ध्यान मे रखना चाहिए।

2 उपलब्धियाँ (Attainments)—इसके बाद उसकी उपलब्धियो के बारे मे जानकारी की जानी चाहिए। क्या शिक्षा, प्रशिक्षण तथा पूर्वानुभव सस्था के कार्य

को टीर प्रकार से करन के लिए पर्याप्त हैं । उसन पहले किस प्रकार का कार्य किया है यादि आदि बातो की जानकारी प्राप्त की जानी चाहिए ।

3 सामान्य बौद्धिक योग्यता (General Intelligence)—साक्षात्कार के दौरान प्रार्थी की सामान्य बौद्धिक योग्यता की जानकारी करनी चाहिए ।

4 विशिष्ट उपयुक्तता (Special Aptitudes)—प्रार्थी म किस प्रकार का विशेष ज्ञान है जैसे तकनीकी ज्ञान मानसिक ज्ञान आदि बातो की पूछताछ करनी चाहिए ।

5 रुचियाँ (Interests)—साक्षात्कार म यह ज्ञात करना चाहिए कि प्रार्थी की रुचिया किस प्रकार की है । रुचिया चुनाव को काफी प्रभावित करती हैं ।

6 स्वभाव (Disposition)—प्रार्थी का स्वभाव कैसा है । क्या वह दूसरो को प्रभावित करने की स्थिति में है क्या उसे अपने आप पर विश्वास है, आदि आदि बातो की जानकारी प्राप्त करनी चाहिए ।

7 परिस्थितियाँ (Circumstances)—प्रार्थी की घरेलू परिस्थितिया कैसी है क्या वह इन परिस्थितिया के होते हुए भी संस्था म कुशलतापूर्वक कार्य कर सकेगा आदि बातो की भी छानबीन करनी चाहिए ।

साक्षात्कार की पद्धतिया
(Methods of Interviews)

साक्षात्कार की प्रमुख पद्धतियाँ निम्न प्रकार है

(1) प्रतिरूपित साक्षात्कार

(2) अप्रत्यक्ष या अनिर्देशित साक्षात्कार

(3) प्रतिबल साक्षात्कार

(4) समूह साक्षात्कार

हम क्रमश सक्षेप म इनका विवेचन करेंगे ।

1 प्रतिरूप साक्षात्कार (Patterned Interviews)–प्रतिरूप साक्षात्कार को कभी कभी प्रमाणित साक्षात्कार के नाम से भी जाना जाता है । साक्षात्कार की इस पद्धति म पूर्ण रूप से विस्तृत प्रश्नावली का प्रयोग किया जाता है । इस प्रश्नावली म दिये गये विभिन्न प्रश्नो का उत्तर साक्षात्कारकर्त्ता प्रार्थी से प्राप्त करता है । प्रतिरूप साक्षात्कार पद्धति की भी पद्धतियाँ है । प्रथम पद्धति का आविष्कार ई एफ वोण्डरलिक (E F Wonderlic) ने किया था । इस पद्धति से साक्षात्कार करने के लिए वोण्डरलिक ने एक Diagnostic Interviewers Guide तैयार की । दूसरी पद्धति के जन्मदाता रोबर्ट एन० मेकमुरी (Robert N Memurry) माने जाते हैं । मेकमुरी ने अनेक प्रकार के साक्षात्कार प्रारूप तैयार किये । ये साक्षात्कार

प्रारूप मुख्यत कार्यालय एव कारखाने के कार्यों, विक्रय कार्यों, अधिशासी कार्यों से ही सम्बन्धित थे।

साक्षात्कार की इस पद्धति मे अनेको प्रकार के प्रश्न पूछे जाते हैं। दूसरे शब्दो मे सभी प्रश्न प्रार्थी से पूछ लिए जाते है, जिससे प्रार्थी के सम्बन्ध मे सभी महत्वपूर्ण बातो की जानकारी हो सके। ये प्रश्न विशेष रूप से प्रार्थी के छात्र जीवन, कार्य अनुभव, पारिवारिक जीवन एव परिस्थितियों, वित्तीय स्थिति आदि के सम्बन्ध मे ही होते हैं। मण्डेल (Mandell) ने 273 सस्थाओ की साक्षात्कार पद्धतियो का अनुसधान करके यह ज्ञात किया कि लगभग 72 (26%) सस्थाओ मे प्रतिरूप साक्षात्कार पद्धति ही प्रयोग की जाती है। साक्षात्कार की इस पद्धति की प्रमुख बाते निम्न प्रकार हैं—

(i) साक्षात्कारकर्ता कार्य विशिष्ट विवरणो के आधार पर कार्य करता है, अर्थात् वह यह जानता है कि किसी कार्य विशेष को करने के लिए किन-किन योग्यताओ की आवश्यकता पडेगी।

(ii) साक्षात्कारकर्ता के पास पूर्व निश्चित प्रश्न होते है।

(iii) साक्षात्कारकर्ता साक्षात्कार लेने की कला मे निपुण होता है।

(iv) साक्षात्कार से पहले ही प्रार्थी के सम्बन्ध मे महत्त्वपूर्ण बातो का पता कर लिया जाता है।

(v) साक्षात्कारकर्त्ता मे कुछ ऐसी कला होती है कि वह प्रार्थी से आवश्यक सूचनाएँ प्राप्त कर उनका मूल्याकन एव निर्वचन कर लेता है।

(vi) साक्षात्कार करने वालो मे पूर्ण बौद्धिक कुशलता होती है एव भावनात्मक रूप से पूर्ण समायोजित होता है।

लाभ (Advantages)—साक्षात्कार की इस पद्धति के प्रमुख लाभो का नीचे विवेचन किया गया है—

(i) यह पद्धति साक्षात्कारकर्त्ता को प्रार्थी के सम्बन्ध मे महत्वपूर्ण तथ्यो की प्राप्ति मे सहयोग पहुँचाती है।

(ii) ऐसे साक्षात्कारो मे उन सभी प्रश्नो का पूछना सम्भव है, जिन पर प्रार्थी की कार्य मे सफलता निर्भर करती है।

(iii) ऐसे साक्षात्कारो से प्रार्थी की कार्य करने की योग्यता तथा कार्य न कर सकने की योग्यता को ज्ञात किया जा सकता है।

(iv) साक्षात्कार मे साक्षात्कारकर्त्ता अनुचित पक्षपात नही कर सकता है।

(v) यह साक्षात्कार की प्रमाणित पद्धति है।

(vi) यह पद्धति बहुत ही अधिक विश्लेषणात्मक है, तथा साक्षात्कारकर्त्ता भी बहुत कुशल होते हैं।

(vii) साक्षात्कार म कुछ निश्चित एव आवश्यक प्रश्न ही पूछे जाते है इससे समय की बरबादी नही होती है।

दोष (Disadvantages)—साक्षात्कार की इस पद्धति के प्रमुख कुछ दोष निम्नांकित है—

(i) इस साक्षात्कारों म कई बार आवश्यक सूचनाएँ प्राप्त नही की जा सकती है।

(ii) इस साक्षात्कारों म सामान्यत यही ज्ञात किया जा सकता है कि प्रार्थी क्या कर सकता है न कि प्रार्थी क्या कर सकेगा।

(iii) इस पद्धति से साक्षात्कार करने पर साक्षात्कारकर्ता प्रार्थी के वचनो एव बातो म प्रभावित होने लगता है और पक्षपात होने का भय बना रहता है।

2 अप्रत्यक्ष या अनिर्देशित साक्षात्कार (Indirect or Non directive Interviews)—ये साक्षात्कार ऐसे साक्षात्कार है जिनमे कुछ निश्चित प्रश्न नही पूछे जाते है और ये प्रश्नोत्तर रूप म भी नही होते है बल्कि ये साक्षात्कार सामान्य बातचीत एव अनौपचारिक रूप म ही होते है। ऐसे साक्षात्कार म प्रार्थी को पूरा पूरा बोलने का अवसर दिया जाता है ताकि वह स्वतन्त्रतापूर्वक अपने विचारो को प्रकट कर सके तथा अपने अनुभव प्रशिक्षण तथा भावी योजना के बारे म बता सके। ऐसे साक्षात्कार ऊपरी तौर म देखने पर सरल लगते है किन्तु ऐसे साक्षात्कार करने के लिए कुशल एव अनुभवी साक्षात्कारकर्ता की आवश्यकता पडती है। इसम साक्षात्कारकर्ता कुछ ही प्रश्न पूछते हैं और प्रार्थी को काफी समय तक अपने आप बोलने का पर्याप्त अवसर देते है।

लाभ (Advantages) अप्रत्यक्ष या अनिर्देशित साक्षात्कार के निम्न प्रमुख लाभ हैं—

(i) प्रार्थी को बहुत सुविधा रहती है। वह सही या गलत उत्तरो के प्रति चिन्तित नही रहता है।

(ii) प्रार्थी केवल उन पहलुओ पर ही बातचीत करता है जिनम वह स्वय रुचि रखता है और अपने लिए उचित समझता है।

(iii) ऐसा साक्षात्कार भविष्य म अच्छे सम्बन्धो के निर्माण म योगदान दे सकता है।

(iv) धोखेबाजी की सम्भावना नही रहती है।

(v) प्रार्थी की रुचि व्यवहार तथा व्यक्तित्व के बारे म पूर्ण जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

दोष या सीमाए (Disadvantages or Limitations)—इस प्रकार के साक्षात्कार की सबसे बडी सीमा यही है कि साक्षात्कारकर्ता कुशल होने चाहिये। अकुशल साक्षात्कारकर्ता प्रार्थी के बजाय स्वय भी बोलते रहते हैं। इसम

अतिरिक्त साक्षात्कारकर्ता मे ऐसे साक्षात्कारो के मूल्यांकन की पूर्ण क्षमता होनी चाहिये।

3. **प्रतिबल साक्षात्कार** (Stress Interviews)—प्रतिबल साक्षात्कार पद्धति का विकास संयुक्त राज्य अमेरिका मे द्वितीय युद्ध काल मे युद्ध सम्बन्धी सेवाओ मे जासूसो के चयन करने के लिए हुआ था। इस प्रकार के साक्षात्कारो मे साक्षात्कारकर्ता जानबूझ कर प्रार्थी को नाराज करता है, निराश करता है। और उसे अपना आत्म-नियन्त्रण खो देने को मजबूर करता है। चूंकि प्रतिबल साक्षात्कार का उद्देश्य प्रार्थी मे आचरण एव व्यवहार मे नियन्त्रण क्षमता का पता लगाना होता है। इसलिए इस प्रकार की परिस्थितियो का उत्पन्न करना साक्षात्कारकर्ता के लिए बहुत आवश्यक है। जो प्रार्थी इस प्रकार के निराशाजनक, उत्तेजक प्रश्नो का उत्तर देने मे भी अपना नियन्त्रण नही खोते हैं, वे ऐसे साक्षात्कारो मे सफल माने जाते हैं।

विक्रयकर्ताओ के चुनाव मे भी इस प्रकार के साक्षात्कारो का प्रयोग किया जाता है क्योंकि ग्राहक कई प्रकार के होते हैं। कुछ ग्राहक गम्भीर होते हैं तो कुछ बहुत गुस्से वाले झगड़ालू आदि भी हो सकते हैं। अतएव प्रार्थी का ऐसे ग्राहक के प्रति किस प्रकार का व्यवहार हो सकता है इसकी जानकारी प्राप्त करने के लिए इस प्रकार के साक्षात्कार लिये जा सकते हैं।

साक्षात्कार की इस पद्धति को कई लोग व्यावहारिक दृष्टि से उचित नही मानते हैं। इससे प्रार्थी का संस्था के प्रति प्रारम्भ से ही अच्छा दृष्टिकोण नही बन पाता है। प्रार्थी भी असहयोगात्मक रुख अपनाने लगते हैं। किन्तु यदि इस पद्धति को अपनाया जाता है, तो अनुभवी एव योग्य साक्षात्कारकर्ताओ को ही यह पद्धति अपनानी चाहिये ताकि इस पद्धति के दोषो को प्रकट होने से बचाया जा सके।

4. **समूह साक्षात्कार** (Group Interviews)—समूह साक्षात्कार पद्धति के जन्मदाता प्रो० मिल्टन एम० मेण्डल (Milton M Mandell) को माना जाता है। इस पद्धति मे प्रार्थियो के समूह के समक्ष कोई समस्या रख दी जाती है। प्रत्येक प्रार्थी उस समस्या पर अपना अपना दृष्टिकोण प्रकट करता है। साक्षात्कारकर्ता ध्यानपूर्वक प्रत्येक प्रार्थी के विचारो, बोलने की शक्ति, सोचने के दृष्टिकोण आदि का अवलोकन करता है। अन्त मे जो प्रार्थी सब बातो को ध्यान मे रखते हुए अच्छा लगता है उसका चयन कर लिया जाता है। किन्तु साक्षात्कार की इस विधि मे पक्षपात होने का बहुत अधिक भय है।

अभ्यास के लिए प्रश्न

1 भर्ती एव चुनाव से आपका क्या तात्पर्य है ? भर्ती की आवश्यकता क्यो पड़ती है ?

"What do you mean by recruitment and selection ? What is the need for recruitment ?

इकाई-3
(UNIT–3)

1

कार्यालय कार्य-विधि[1]

(Office Procedure)

"Office procedures are a series of clerical acts organised under supervision to accomplish the purpose of the office."

—*Libbey*

प्रत्येक कार्यालय के कार्य को व्यवस्थित रूप से पूरा करने के लिए कार्य-विधियों का होना परमावश्यक है। कार्यविधियाँ कार्यालय के कार्यों की सफलता का आधार होती हैं। इनके द्वारा कार्यालय के कार्यों को क्रमबद्ध रूप से किया जा सकता है, *मितव्ययता प्राप्त की जा सकती है तथा कार्यों को शीघ्र एवं यथा समय पूरे* किये जा सकते हैं।

कार्यविधि की परिभाषाएं तथा अर्थ

(Definitions and Meaning of a Procedure)

लिब्बे (Charles O Libbey) के अनुसार "कार्यालय कार्यविधियाँ कार्यालय के उद्देश्य को पूरा करने के लिए लिपिकीय क्रियाओं की शृंखला है जो किसी के पर्यवेक्षण (निरीक्षण) में सगठित की जाती हैं।"[2]

न्यूनर एवं कीलिंग (Neuner and Keeling) के अनुसार "कार्यविधि व्यवसाय के दैनिक व्यवहारों को समानता एवं क्रमबद्ध रूप मे पूरा करने के लिए कार्यों का नियोजित अनुक्रम है।"[3]

न्यूशेल (Neuschel) के मतानुसार "कार्यविधि व्यवसाय के दैनिक व्यवहार मे *समानता बनाये रखने के लिए लिपिकीय कार्यों का अनुक्रम है जिसमे सामान्यत* एक या कई विभागों के लोग सम्बन्धित होते हैं।"[4]

---

1 कार्यालय कार्यविधि को ही कार्यालय परिपाटी (Office routine) के नाम से जाना जाता है।

2. "Office procedures are a series of clerical acts organised under supervision to accomplish the purpose of the office" —Charles O Libbey

3. "A procedure is a planned sequence of operations for handling securing business transactions uniformly and consistently"

—Neuner and Keeling

4 "A procedure is a sequence of clerical operations, usually involving several people in one or more departments, established to ensure uniform handling of a recurring transaction of the business" —Neuschel

लेफिंगवेल तथा रोबिन्सन (Leffingwell and Robinson) के अनुसार कार्यालय परिपाटी का अर्थ 'किसी कार्यालय के कार्य को सम्पन्न करने के लिए उठाये गये कदमों से है।'[1]

टेरी (Terry) के मतानुसार 'एक कार्यविधि सम्बन्धित क्रियाओं की एक श्रृंखला है जो कालक्रम के क्रमों या अनुक्रमों का निर्माण करती है तथा किसी कार्य को करने की निश्चित विधि है।'[2]

उपर्युक्त परिभाषाओं का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि **कार्यविधि कार्यालय के लिपिकीय कार्यों की एक ऐसी श्रृंखला है जो पूर्व निश्चित होती है तथा जिसका उद्देश्य व्यवसाय के दैनिक कार्यों में एकरूपता तथा क्रमबद्धता बनाये रखना है।** कार्य विधि किसी कार्य को करने के लिए मार्गदर्शन करती है। कार्यविधि कार्यों की ही मार्गदर्शक होती है न कि किसी विचार की। उदाहरण के लिए विक्रय कार्य में एक निश्चित कार्यविधि अपनाई जाती है। इसमें माल भेजना, माल का हिसाब करना, भुगतान प्राप्त करना, शिकायतों का निवारण करना आदि क्रियाएं एक निश्चित कार्यविधि होती है।

लक्षण (Characteristics)—कार्यालय कार्यविधि के प्रमुख लक्षण इस प्रकार है

1 कार्यविधि लिपिकीय कार्यों की श्रृंखला है।

2 यह कार्य श्रृंखला पूर्व निश्चित होती है।

3 यह व्यवसाय के दैनिक कार्यों को करने का आधार बनती है।

4 इसका उद्देश्य व्यवसाय के कार्यों में एकरूपता एवं समानता लाना है।

5 कार्यविधि पूर्व निश्चित होती है।

6 कार्यविधि किसी अधिकारी द्वारा निश्चित की जाती है तथा उसका निरीक्षण किया जाता है।

7 कार्यविधि दैनिक कार्यों से ही सम्बन्धित होती है। विशिष्ट कार्यों को करने के लिए इसका प्रयोग करना आवश्यक नहीं है।

8 यह तथ्यों पर आधारित होती है।

9 यह तर्कयुक्त होती है।

10 यह लोचशील होते हुए भी स्थिर होती है।

---

1 Office routine is "a series of steps in the performance of the office work."
—Leffingwell and Robinson

2 "A procedure is a series of related tasks that makes up the chronological sequence and the established way of performing the work to be accomplished."
—George R. Terry

शब्दावली की समस्या
(Terminological Tangle)

कई बार छात्र कार्यविधि का अर्थ समझने मे गलती कर जाते हैं क्योंकि कार्यविधि मे सम्बन्धित अन्य शब्द भी कार्यालय प्रबन्ध म प्रयोग किये जाते हैं। अत: उन प्रमुख शब्दों का अर्थ समझाकर छात्रों की भ्रान्ति का निवारण कर देना उपयुक्त ही होगा।

(1) पद्धति अथवा व्यवस्था (System)

न्यूनर तथा कीलिंग (Neuner and Keeling) के अनुसार "व्यवस्था या पद्धति से तात्पर्य कार्यालय कार्य के एक चरण के पूरा करने मे सम्मिलित कर्मचारियों, प्रपत्रो अभिलेखो, मशीनो और उपकरणो के सम्पूर्ण दृश्य से है। [1]

लिटिलफील्ड तथा रसैल (Littlefield and Rachel) के अनुसार "निश्चित उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए की जाने वाली योजनाबद्ध क्रियाओं को ही पद्धति कहते हैं।"[2]

एक विद्वान के अनुसार, "पद्धति व्यवसाय की किसी मुख्य दिशा को करने के लिए किसी समन्वित योजना मे बनाई गई सम्बन्धित कार्यविधियो का अन्तर्जाल है।' वास्तव में, "पद्धति व्यवसाय के किसी एक बडे कार्य को करने की वह सम्पूर्ण विधि है, जिसमें कर्मचारियो, प्रपत्रो, अभिलेखो, मशीनों तथा उपकरण आदि की कार्यविधियाँ सम्मिलित हैं। उदाहरण के लिए, हम विक्रय पद्धति को ले सकते है। इस पद्धति मे हम विक्रय से सम्बन्धित प्रलेख, प्रारूपो, विक्रयकर्ताओ, विक्रय उपकरणों तथा विक्रय अभिलेखो आदि सभी कार्यविधियो (Procedures) को सम्मिलित करते हैं, जिनके अनुसार आदेश प्राप्ति से आदेशित माल की सुपर्दगी तथा भुगतान प्राप्त करने के लिए विभिन्न क्रियाएं की जाती है। इस प्रकार **पद्धति किसी बडे कार्य को पूरा करने के लिए उन विभिन्न कार्यविधियों** का योग है जो कि उस **बडे कार्य के प्रत्येक भाग को पूरा करने के लिए प्रयोग की जाती है**। इस प्रकार पद्धति के प्रमुख लक्षण निम्नलिखित होते हैं—

1 पद्धति विभिन्न कार्यविधियो का योग है।

2 यह किसी एक बडे कार्य को करने की पूर्व निर्धारित क्रमबद्ध कार्य योजना है।

3 इसके अन्तर्गत कर्मचारियो, प्रपत्रो, अभिलेखो, मशीनो आदि की दिन चर्या अथवा कार्य सम्मिलित हैं।

---

1 The term system refers to a complete picture of the personnel, forms, records, machines and equipment involved in completing a phase of a office work —Neuner and Keeling

2 A system "is a planned approach of activities necessary to attain desired objectives" —Littlefield and Rachel

4 पद्धति किसी उद्देश्य की प्राप्ति का साधन है साध्य नही।

5 यह कार्यों म सरलता मितव्ययता लोचशीलता सतुलन प्रदान करती है।

6 यह प्रत्यक काय का समन्वय करने म सहायक होती है, जिससे सम्पूण सस्था का समन्वय किया जा सकता है।

(ii) प्रणाली (Method)

न्यूनर तथा कीलिग (Neuner and Keeling) क अनुसार प्रणाली वह मानवीय या यन्त्रीकृत साधन अथवा उपकरण है जिसके द्वारा प्रत्यक क्रिया का पूरा किया जाता है।[1] इस प्रकार प्रणाली किसी भी क्रिया को करन क लिए एक साधन है। दूसरे शब्दों म प्रणाली वह मानवीय या यन्त्रीकृत साधन है, जिसके द्वारा प्रत्येक लिपिक अपना काय करता है। उदाहरण के लिए क्रयादेश को क्रियान्वित करन क लिए भी एक निश्चित प्रणाली होती है। इसम प्राप्त क्रयादेश के लिए क्रता को धन्यवाद देना उसके सम्बन्ध म आर्थिक स्थिति की जानकारी प्राप्त करना बिल बनाना तथा बिलों की प्रतियां उचित विभागों म पहुँचाना आदि सभी प्रणाली क अन्तगत ही आते है।

सक्षप मे हम यह कह सकत है कि कार्यविधि (Procedure) किसी एक क्रिया को करने क लिए लिपिकीय कार्यों का अनुक्रम है जबकि पद्धति (System) किसी व्यवसाय क विभिन्न क्रियाओं को करने क लिए जो काय विधियाँ निश्चित की जाती है उनका समूह है। प्रणाली (Method) किसी कार्य को करने का वह मानवीय या यन्त्रीकृत साधन है जिसके द्वारा प्रत्येक लिपिक अपना कार्य करता है। कार्यविधि कार्यों की शृंखला है जबकि प्रणाली किसी एक ही कार्य विशेष के सम्बन्ध म क्रियाओं के स्तरों को बताती है। प्रणाली यह बताती है किसी एक स्तर पर किस प्रकार स काय करना है। काय विधि पद्धति तथा प्रणाली को एक उदाहरण के माध्यम से समझाया जा सकता है।

उदाहरण क लिए एक सस्था को क्रयादेश प्राप्त होता है जब सस्था को क्रयादेश प्राप्त होता है तो एक निश्चित कार्यविधि (Procedure) अपनाई जाती है। सबस पहले क्रयादेश को सस्था म क्रियान्वित किया जाता है। जब सस्था की ओर स क्रियान्वित हो जाता है तब उसे माल भेजने के लिए व्यवस्था की जाती है। माल भेजने क साथ ही माल का हिसाब किताब तैयार किया जाता है जिसम खच आदि सभी जोड जात है। तत्पश्चात् भुगतान प्राप्त किया जाता है। इसके बाद यदि ग्राहक को माल क सम्बन्ध म कोई शिकायतें होती हैं तो उनका निपटारा

---

1 A method is the manual or mechanical means and devices by which each operation is performed —Neuner and Keeling

किया जाता है। तत्पश्चात विक्रय का विश्लेषण भी किया जाता है, जिससे यह ज्ञात किया जा सकता है कि विक्रय म क्या कमी रही है तथा भविष्य मे विक्रय की किस प्रकार की प्रवृत्ति (Trend) रहेगी।

कार्यविधि के प्रत्येक स्तर पर एक निश्चित प्रणाली का प्रयोग किया जाता है। विक्रय विभाग मे क्रयादेश की क्रियान्विति, माल भेजने, माल के हिसाब किताब, भुगतान प्राप्त करने, शिकायतें निवारण करने तथा विक्रय विश्लेषण करने की कार्यविधि के प्रत्येक स्तर की एक निश्चित प्रणाली होती है। क्रयादेश को क्रियान्वित करने के लिए सबसे पहले क्रेता को क्रयादेश प्राप्ति की पुष्टि की जाती है। इसक साथ ही आवश्यकता होने पर क्रेता की आर्थिक स्थिति एव सदभं की जानकारी प्राप्त की जाती है। तत्पश्चात् विक्रय करने का निर्णय करके बिल तैयार किया जाता है। बिल की कई प्रतियाँ तैयार की जाती हैं। बिल की प्रतियाँ माल भेजने वाले विभाग या भण्डारण विभाग तथा पैकिंग विभाग को भेजी जाती हैं। तत्पश्चात् भण्डारण विभाग तथा पैकिंग विभाग से एक प्रति पुन प्राप्त की जाती है, और यह ज्ञात किया जाता है कि बिल के अनुसार माल बाध दिया है अथवा नहीं। यदि किसी प्रकार का माल नही है अथवा माल कम मात्रा मे उपलब्ध है, तो उसका बिल म सशोधन किया जाता है। साथ ही बिल मे पैकिंग तथा माल भेजने के सम्बन्ध म किये गये खर्चे भी जोडे जाते हैं। तत्पश्चात् बिल की प्रतियाँ ग्राहक, लेखा विभाग फाईलिंग विभाग को भेजी जाती हैं। इस प्रकार आदेश की क्रियान्विति के सम्बन्ध में यह प्रणाली अपनाई जाती है।

कार्यविधि तथा प्रणाली मे प्रयुक्त होने वाली मशीनो, उपकरणो, प्रारूपा, अभिलेखो, कर्मचारियो सभी को सम्मिलित रूप से पद्धति कहते हैं। ये एक-दूसरे से सम्बन्धित होते हैं। पद्धति कार्यविधिया एव प्रणालियो का समूह है।

कार्यालय परिपाटी, कार्यालय पद्धति तथा कार्यालय प्रणाली में अन्तर
(Distinction between Office Routine, Office System and Office Method)

अन्तर का आधार	कार्यालय परिपाटी (Office Routine)	कार्यालय पद्धति (Office System)	कार्यालय प्रणाली (Office Method)
1 परिभाषा	कार्यालय परिपाटी कार्यालय केउद्देश्य को पूरा करने के लिए लिपिकीय कार्यों की शृखला है जो किसी के निरीक्षण मे पूरी की जाती हैं।	कार्यालय पद्धति किसी बडे कार्य को पूरा करने के लिए उन विभिन्न कार्यविधियो का योग है जो उस बडे कार्य के प्रत्येक भाग को पूरा करने के लिए प्रयोग की जाती है।	प्रणाली वह मानवीय या यन्त्रीकृत साधन है जिसके द्वारा प्रत्येक क्रिया को पूरा किया जाता है।

2 क्षेत्र	परिपाटी का क्षेत्र पद्धति से संकुचित है किन्तु प्रणाली से विस्तृत है।	इसका क्षेत्र परिपाटी तथा प्रणाली दोनों की तुलना में विस्तृत है।	इसका क्षेत्र कार्यालय पद्धति तथा परिपाटी दोनों की तुलना में संकुचित है।
3 आधार	अनेक प्रणालियों से कार्य परिपाटियों का निर्माण होता है।	विभिन्न कार्यों की परिपाटियों से सम्पूर्ण कार्यालय पद्धति का निर्माण होता है।	प्रत्येक क्रिया की प्रणाली से परिपाटी बनती है तथा अनेक परिपाटियों से सम्पूर्ण पद्धति का निर्माण होता है।
4 उपयोगिता	कार्यालय परिपाटी से कार्यों में एकरूपता आती है।	पद्धति से संस्था के कार्यों में सरलता मितव्ययता तथा शीघ्रता आती है। यह संस्था के सम्पूर्ण कार्यों के स्वरूप का निर्धारित करती है।	इसके द्वारा प्रत्येक कार्य के विभिन्न स्तरों पर होने वाली क्रियाओं को पूर्व निश्चित किया जाता है। दूसरे शब्दों में प्रणाली यह बताती है कि किसी एक स्तर पर किस प्रकार से कार्य करना है।

कार्यालय कार्यविधियों का महत्व या लाभ
(Advantages or Importance of Office Procedures)

कार्यालय में कार्यविधियों का होना अत्यावश्यक है जिससे व्यवसाय के दैनिक व्यवहारों को पूरा करने में एकरूपता तथा समानता बनी रह सके। माइकल (Michel) के अनुसार "**कार्यविधियाँ लिपिकों के समय एवं परिश्रम को बचाती हैं, लिपिकों के कार्यों को गति प्रदान करती हैं तथा उनके कार्य की किस्म में भी सुधार करती हैं तथा संचालकीय नियन्त्रण को भी प्रभावशाली बनाती हैं ताकि सुपरिणाम प्राप्त हो सकें।**" कार्यालय कार्यविधियों के लाभों का नीचे विस्तार से वर्णन कर रहे हैं —

1 **कार्यों का शीघ्र निष्पादन**—कार्यालय कार्यविधियों की स्थापना करने का सबसे बड़ा लाभ यह है कि कार्यों का शीघ्र निष्पादन हो जाता है। इसका कारण यह है कि प्रत्येक कार्य को पूरा करने के कुछ चरण निश्चित कर दिये जाते हैं। अत कार्य स्वत होता रहता है। इससे कार्य शीघ्र पूरे किये जा सकते हैं।

2 **कार्यकुशलता में वृद्धि**—जब कार्यविधियों के द्वारा प्रत्येक लिपिक के लिए कार्य निश्चित कर दिया जाता है तो वह उसी कार्य को करते करते कुशलता प्राप्त कर लेता है। इसके अतिरिक्त प्रमापित प्रारूप रजिस्टर आदि के अपनाने से भी कार्यकुशलता में वृद्धि होती है।

3. कार्यों में एकरूपता—टेरी (Terry) के मतानुसार कार्यविधियों का एक लाभ यह भी है कि इनके "कार्यों में एकरूपता लाई जाती है।" (Uniformity of action is obtained) चूंकि समान प्रकार के कार्यों को करने के लिए समान प्रक्रिया अपनाई जाती है, अत कार्यों में एकरूपता लाना सम्भव है।

4 मितव्ययता—जब कार्य करने का अनुक्रम (Sequence) तय हो जाता है, तो लिपिकों का समय व्यर्थ नही जाता है। इसमें मितव्ययता प्राप्त होती है। इसी प्रकार लिपिका द्वारा कार्यकुशलता प्राप्त कर लेने में भी कार्य अधिक होता है कार्यों का दोहराव भी रुक जाता है। परिणामस्वरूप भी मितव्ययता प्राप्त होती है।

5 निश्चित उत्तरदायित्व—कार्यालय कार्यविधियों का एक लाभ यह भी है कि इसके द्वारा निश्चित व्यक्तियों या व्यक्तियों के समूह को कार्य का उत्तरदायित्व सौंपा जा सकता है। आवश्यकता पड़ने पर ऐसे व्यक्तियों को उत्तरदायित्वों को पूरा न करने पर वर्णित करना भी सरल होता है। इसमें कर्मचारियों म टालम टोली (Buck passing) की भावना का विकास नही हो पाता है।

6. प्रशिक्षण की आवश्यकता का निर्धारण करना सरल—कार्यविधियों के द्वारा यह निश्चित हो जाता है, कि किसी अमुक लिपिक को कौन-कौन से कार्य करने पड़ेंगे। इन कार्यों की प्रकृति को ध्यान में रखकर उनके प्रशिक्षण की विषय वस्तु को निर्धारित किया जा सकता है।

7 गलतियों की कम सम्भावना—कार्यविधियों के निश्चित हो जाने के कारण गलतियों की सम्भावना भी कम हो जाती है। कार्यविधि किसी कार्य के समस्त चरणों का वर्णन करती है। अत कार्य क्रमश अपने आप होता है, तथा गलती होने की सम्भावना कम हो जाती है। इसके अतिरिक्त, लिपिक भी एक ही कार्य को करते करते कुशल हो जाते है। इसके परिणामस्वरूप भी गलतियों की सम्भावना कम हो जाती है।

8 कार्यालय सेवाओं में सुधार—कार्यविधियों का एक महत्वपूर्ण लाभ यह है कि इनके द्वारा कार्यालय सेवाओं में सुधार होता है। लिपिक उसी कार्य को श्रेष्ठतर रूप से करने लगता है। इससे कार्यालय की सेवाओं में सुधार होता है।

9 यथा समय कार्य—कार्यालय में कार्यविधियों के अनुसार कार्य करने से कार्य यथा समय पूरे किये जा सकते हैं। प्रत्येक कार्य के प्रत्येक स्तर पर लगने वाले समय का पहले से ही ध्यान रखा जाता है, तथा प्रत्येक क्रिया यथा समय पूरी की जाती है। इसके परिणामस्वरूप, कार्य यथा समय स्वत होते चले जाते हैं।

10 समन्वय में सुविधा—कार्यविधियाँ कार्यालय के कार्यों में समन्वय स्थापित करने में भी योगदान देती हैं। कार्यविधियों में समस्त व्यवसाय की क्रियाओं को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है, इससे संस्था के उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायता मिलती है।

कार्यालय कार्य विधि के सिद्धान्त
(Principles of Office Procedures)
अथवा
कार्यालय निर्धारित करते समय ध्यान रखने योग्य बातें
(Factors to be considered while determining Procedure)

कार्यालय मे काय करने की कई विधिया होती है । टेरी (Terry) के अनुसार कार्यविधि को निर्धारित करते समय निम्न छ बातें ध्यान म रखनी चाहिये —

1 सम्पूर्ण काय प्रक्रिया का अध्ययन करना चाहिये—कार्यविधि को निर्धारित करते समय सर्वप्रथम कार्यालय की सम्पूर्ण क्रियाओं का अध्ययन करना चाहिये । इस हेतु यह ज्ञात करना चाहिये कि कार्यालय मे कौन कौन से कागजी काय किये जाते हैं उनम कितना समय लगता है उनके प्रवाह म क्या क्या कठिनाइयाँ आती है । इसके अतिरिक्त कार्यालय के अभिन्यास का भी अध्ययन करना चाहिए क्योकि कार्यालय अभिन्यास कार्यालय की कार्यविधि को प्रभावित करता है । कार्यालय की सम्पूर्ण काय प्रक्रिया का अध्ययन करते समय इस बात को भी नही भूलना चाहिए कि कार्यविधि सम्पूर्ण संस्था के कार्यों को प्रभावित करती है ।

2 आवश्यक चरणो का अनुक्रम तयार करना—*कार्यालय कार्यविधि का* निर्धारण करते समय किसी काय को करने के लिए आवश्यक चरणो का अनुक्रम (Sequence of steps) भी तैयार करवा लेना चाहिए । अर्थात् यह निर्धारित कर लेना चाहिए कि किसी काय की उपक्रियाएँ किस क्रम म पूरी होगी । कार्यविधि का प्रत्येक चरण मुख्य काय को पूरा करने म योगदान देने वाला होना चाहिए । ऐसे चरणो को नही रखना चाहिए जिनका काय कुशलता म कुछ भी योगदान नही होता है । विभिन्न चरणो को निर्धारित करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कही पर भी किसी क्रिया का दोहराव न हो तथा कही पर भी अनावश्यक रूप से अधिक समय न लगे ।

3 कागजी कार्यों को कम से कम स्थान—कार्यालय कार्यविधि को निर्धारित करते समय इस बात को भी ध्यान म रखना चाहिए कि कम कार्यो को करने के लिए कम से कम कागजी काय करना पडे । कागजी कार्यवाही से *काय बहुत ही धीमी* गति से होता है तथा कही कही अनावश्यक ही सदेह उत्पन्न हो जाते है जिनको पुन दूर करना कठिन हो जाता है । इसी के कारण लालफीताशाही (Redtapism) भी पनप सकती है ।

4 कार्यालय की सुविधा—प्रत्येक कार्यालय के काय एव परिस्थितियाँ अलग होती है । अत एक कार्यालय द्वारा अपनाई जाने वाली कार्यविधि किसी दूसरे कार्यालय के लिए उपयोगी हो यह आवश्यक नही है । अत कार्यविधि निर्धारित

करते समय कार्यालय की आवश्यकता एव सुविधा को ध्यान में रखना चाहिए। सुविधा तथा आवश्यकता के अनुसार ही कार्यविधि निर्धारित करनी चाहिए।

5 **कर्मचारियों से परामर्श**—कार्यविधि को निर्धारित करने से पूर्व यदि सम्बन्धित कर्मचारियों से परामर्श कर लिया जाता है तो वह कार्यविधि और भी प्रभावशाली हो जाती है। कर्मचारियों से परामर्श करके वर्तमान कार्यविधि मे भी सुधार किये जा सकते हैं। परामर्श करने से बहुत ही अच्छे सुझाव भी आ सकते है। सुझावों के आधार बनाई गई कार्यविधि को लागू करना अत्यन्त आसान एव सुविधाजनक होता है। इससे कर्मचारियों के मनोबल को बढाने का अवसर भी मिलता है जिससे उनकी कार्य-कुशलता मे वृद्धि करने म भी सहायता मिलती है।

6. **समान कार्य को समान कार्यविधि से करना चाहिये**—सभी प्रकार के कार्यों के लिए किसी एक ही कार्यविधि को लागू करना उचित नहीं होता है। जिस प्रकार प्रत्येक ताले की अलग अलग चाबी होती है उसी प्रकार प्रत्येक कार्य के लिए अलग-अलग कार्यविधि होनी चाहिए। अलग-अलग कार्यविधि से ही कार्यालय के कार्य अधिक कुशलता एव विश्वसनीयता के साथ पूरे किए जा सकते हैं। किन्तु समान कार्यों के लिए समान कार्यविधि ही अपनानी चाहिए। ऊपर द्वारा बताई गई उपर्युक्त छ बातो के अतिरिक्त कार्यालय कार्यविधि बनाते समय निम्न बातो को भी ध्यान मे रखना चाहिये।

7. **अपवाद**—कार्यालय के कार्यों को करने के लिए कार्यविधि पूर्णत अपनानी चाहिए। कभी कभी अत्यधिक आवश्यकता पड़ने तथा विशेष परिस्थितियो म ही कार्यालय का उल्लघन करना चाहिए। ऐसी परिस्थितियों का कार्यविधि मे स्पष्ट उल्लेख कर देना चाहिये।

8 **निरीक्षण मे सुविधाजनक हो**—कार्यालय कार्यविधि ऐसी होनी चाहिए जिसमे कार्यालय के कार्यों का निरीक्षण करने मे भी सुविधा मिले। ऐसी कार्यविधि अच्छी मानी जाती है जिसमे कम मे कम व्यवधान से कार्यों का निरीक्षण किया जा सके। अत. कार्यविधि बनाते समय कार्यों के निरीक्षण की सुविधा को भी ध्यान म रखना चाहिये।

9 **स्पष्टता**—कार्यविधि स्पष्ट होनी चाहिए। अस्पष्ट कार्यविधि कार्यों के प्रवाह मे बाधा उपस्थित करती है। अत कार्यविधि का प्रत्येक चरण स्वत स्पष्ट होना चाहिये।

10. **स्वत समन्वित**—कार्यविधि स्वत समन्वित (Self Coordinated) होनी चाहिए अर्थात् कार्यविधि ऐसी होनी चाहिए कि विभिन्न कार्यों का स्वत समन्वय होता रहे।

कार्य सरलीकरण
(Work Simplification)

डेनायर (Denyer) के अनुसार कार्य सरलीकरण का तात्पर्य "कार्य करने के लिए सरल एवं अधिक अच्छे तरीके की खोज करने के लिए सामान्य ज्ञान का सगठित रूप से उपयोग करना है।"[1] इन्होंने ही आगे स्पष्ट करते हुए लिखा है कि कार्य सरलीकरण "कार्य करने के तरीको का वैज्ञानिक निरीक्षण है जिससे कि अधिकतम कार्य कुशलता प्राप्त की जा सके।"[2]

मिलर (Miller) ने भी इसी से मिलती-जुलती परिभाषा दी है। इनके अनुसार कार्य सरलीकरण "अपव्यय को रोकने के लिए सामान्य ज्ञान का सगठित रूप से उपयोग करना है।"[3]

इस प्रकार उपर्युक्त परिभाषाओं के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि कार्य सरलीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा कार्य में लगने वाले समय, शक्ति तथा माल में कुछ मितव्ययता प्राप्त की जाती है। इसके द्वारा कार्य की सर्वोत्तम विधि (Procedure) का निर्माण किया जा सकता है। कार्य सरलीकरण के द्वारा कार्य को समुचित भागों में बाँटा जाता है तथा उसे क्रमश पूरा किया जाता है। इसमें कार्य करने के वर्तमान तरीको पर प्रहार किया जाता है और उसे अधिक अच्छी तरह पूरा करने के लिए कदम उठाये जाते है।

लक्षण (Characteristics)—उपर्युक्त परिभाषाओं का अध्ययन करने से कार्य सरलीकरण के निम्न लक्षण या विशेषतायें प्रकट होती है—

1 इसके द्वारा कार्य करने के अधिक अच्छे तरीको की खोज की जाती है।

2 इन तरीको की खोज करने के लिए सामान्य ज्ञान का सगठित रूप से उपयोग किया जाता है।

3 इसमें कार्य के पुराने तरीको के स्थान पर नये तरीको को निश्चित किया जाता है।

4 कार्य सरलीकरण में पहले कार्य को समुचित भागो में विभक्त किया जाता है, तत्पश्चात् उन्हे क्रमश पूरा किया जाता है।

5 कार्य सरलीकरण से अपव्यय को रोका जाता है।

6 इससे कम से कम शक्ति एवं समय से अधिक से अधिक कार्य किया जा सकता है।

---

1 Work simplification is "the organised use of common sense to find easier and better ways of doing work." —J C. Denyer

2 Work simplification is "a scientific checking on the way work is done, to ensure that utmost efficiency is obtained" —J C Denyer

3 Work simplification is "the organised application of common sense to eliminate waste." —O Owen Miller

7 इसमे वैज्ञानिक विधि से कार्यों का निरीक्षण करके कार्य की सर्वोत्तम विधि की खोज की जाती है।

कार्य सरलीकरण के लिए आवश्यक बात
(Essential Elements for Work Simplification)

कार्य सरलीकरण के लिए निम्नलिखित बातो का होना अपरिहार्य है—

1 कार्य का उत्पादक होना—कार्य सरलीकरण के लिए प्रथम आवश्यक बात यह है कि कार्यालय का प्रत्येक कार्य सख्यात्मक तथा गुणात्मक रूप से आवश्यक हो। कार्यालय म किसी अनावश्यक कार्य को नही किया जाना चाहिए। अनावश्यक कार्यो के लिए कार्यालय मे कोई स्थान न हो। दूसरे शब्दो मे, कार्यालय मे होने वाला प्रत्येक कार्य ऐसा होना चाहिए जिससे कार्यालय की कुशलता मे योगदान मिल सके।

2 कार्य सतुलित हो—कार्यालय म किये जाने वाले प्रत्येक कार्य पर उचित महत्त्व दिया जाना अनिवार्य है। यदि बहुत महत्त्वपूर्ण कार्यों के एव सामान्य कार्यों मे सतुलन नही रहता है तो कार्यालय कार्यों का सरलीकरण नही हो सकता है।

3. कार्य निर्बाध रूप से पूरे हों—कार्यालय कार्य के सरलीकरण के लिए यह भी आवश्यक है कि सभी कार्य निर्बाध गति से पूरे हो। कार्यों में पर्याप्त प्रवाह होना चाहिए। कार्यो मे प्रवाह नही होने पर देरी एव अपव्यय होने लगता है।

4 कार्यविधि सरल हो—कार्य सरलीकरण के लिए यह बात अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि कार्यों की कार्यविधि (Procedure) सरल हो तथा सभी कर्मचारियो एव सम्बन्धित व्यक्तियो के आसानी से समझ म आ सके।

5 आपसी सहयोग हो—किसी कार्य को सरलता, सुगमता मितव्ययता से तब तक नही किया जा सकता है जब तक कर्मचारियो मे आपसी सहयोग न हो। कर्मचारियो मे अच्छे सम्बन्ध होने अति आवश्यक हैं। इसी से कार्य के प्रति रुचि उत्पन्न होती है तथा अच्छा कार्य वातावरण का निर्माण होता है। अत कार्य सरलीकरण के लिए कर्मचारियो का सहयोग भी अपेक्षित है।

कार्यालय मे यत्रीकरण
(Mechanisation in Office)

कार्यालय मे यत्रीकरण करने से तात्पर्य कार्यालय के कार्यों मे यत्रो के उपयोग से है। आधुनिक समय मे कार्यालय मे यत्रो का महत्त्व बढता ही जा रहा है। प्रत्येक आधुनिक कार्यालय म अनेको यत्र देखने को मिल ही जाते हैं। आज कार्यालय के छोटे से छोटे कार्य से लेकर बडे से बडे कार्य के करने मे यत्रो का महत्त्व है।

कार्यालय मे यन्त्रीकरण का महत्व या लाभ
(Importance or Advantages of Mechanisation in Office)

आधुनिक युग मे व्यापार मे प्रतिस्पर्द्धा दिन दुगुनी रात चौगुनी होती चली जा रही है। व्यापार का क्षेत्र दिन प्रतिदिन बढ रहा है। किन्तु मनुष्य की शक्ति सीमित ही है। व्यापार की सफलता भी मितव्ययता कुशलता शीघ्रता आदि बातो पर निर्भर कर रही है। अत कार्यालय के कार्यों मे यन्त्रो का महत्व भी बढता ही जा रहा है। विकसित राष्ट्रो के व्यावसायिक कार्यालयो म एक दृष्टि डाली जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि कार्यालय यन्त्रो के बिना सूना है तथा वहाँ का व्यवसाय यन्त्रो के अभाव मे असम्भव है। सक्षेप म कार्यालय म यन्त्रो का महत्त्व दिन प्रतिदिन बढ रहा है। निम्नलिखित कुछ कारण इसके बढते हुए महत्त्व के औचित्य को सिद्ध करते हैं

1 **मितव्ययता**—कार्यालय कार्यों का यन्त्रीकरण करने से सबसे बडा लाभ यह होता है कि कार्यों म होने वाले व्ययो को कम किया जा सकता है। अनेको कर्मचारियों द्वारा किये जाने वाले काय को कुछेक कर्मचारियो द्वारा सम्पन्न किया जा सकता है।

2 **समय की बचत**—मशीनो से काय करने के कारण कम समय म अधिक काय किया जा सकता है। इससे सस्था मे कर्मचारियो की सख्या को कम किया जा सकता है जिससे मितव्ययता प्राप्त की जा सकती है।

3 **श्रम की बचत**—मशीनो के प्रयोग करने स एक लाभ यह भी होता है कि कर्मचारियो के श्रम की भी बचत होती है। उन्ह अधिक शारीरिक श्रम नही करना पडता है। कम से कम शारीरिक श्रम से अधिकाधिक काय कर सकते हैं।

4 **काय नीरसता की समाप्ति**—मशीनो के उपयोग स एक अन्य लाभ यह है कि कभी कभी काय नीरसता भी समाप्त हो जाती है। जब कार्य म नीरसता के स्थान पर काय मे रुचि पैदा होने लगती है तो कर्मचारी पहले की अपेक्षा अधिक अच्छा काय करने लगते है।

5 **काय कुशलता मे वृद्धि**—जब काय मे श्रम की बचत होती है काय म नीरसता समाप्त होती है तो कार्यो मे कुशलता बढने लगता है।

6 **गडबडी की कम सम्भावना**—मशीनो द्वारा काय करने से गडबडी की सम्भावना को कम किया जा सकता है। हिसाब किताब की मशीनो से हिसाब किताब की गडबडी को, कैश रजिस्टर से नकद गडबडी को चैक लेखन की मशीन से चैक लिखने की गडबडी को दूर किया जा सकता है।

7 **एक साथ कई काय**—मशीनो के द्वारा एक साथ कई काय किये जा सकते हैं। उदाहरण के लिये एक ही मशीन से एक ही साथ अको को जोड घटाया

तथा भाग दिया जा सकता है। बहुप्रतिलिपिकरण के साधनों से एक साथ कई प्रतियाँ प्राप्त की जा सकती है।

8 कार्य मे एकरूपता—मशीनो की सहायता से किये जाने वाले कार्य मे एकरूपता बनी रहती है। उदाहरण के लिये, यदि कोई कार्य टाइपराइटर से किया जाता है तो सबमे एक समान लेख लिखा होगा। किन्तु यदि वही कार्य अलग अलग हाथो से लिखा जाय, तो बहुरूपिया हो जायेगा।

9 स्वच्छता—यन्त्रो का उपयोग कार्यों मे स्वच्छता को भी बढावा देता है। प्रायः हाथ के काय की अपेक्षा मशीनो से किये गये कार्य मे अधिक स्वच्छता रहती है।

10 प्रबन्धकों को सुविधा—मशीनो के उपयोग से प्रबधको को बहुत सुविधा प्राप्त होती है। वे अधिकाधिक कार्य करवा सकते हैं। वे कार्यो का अधिक आसानी से नियन्त्रण कर सकते हैं। उनके विभाग के कर्मचारियो की कार्य कुशलता बढ़ने से उनकी स्वय की कुशलता भी बढ जाती है।

यन्त्रीकरण के दोष (Disadvantages of Mechanisation)

कार्यालय मे यन्त्रीकरण के कई लाभ होते है, किन्तु इसके कुछ दोष भी उत्पन्न हो सकते है—

1 कार्यालय मे मशीनो के उपयोग से अनेक कर्मचारियो को अपदस्थ किया जा सकता है।

2 यन्त्रो के क्रय करने मे भारी पूँजी विनियोग करनी पड़ती है।

3 छोटे कार्यालयों के लिए यन्त्र मितव्ययी नही हो सकते हैं।

4 यन्त्रो का उपयोग कुछ कार्यों के लिय सम्भव नहीं हो पाता है।

5 यन्त्रों की सुरक्षा एव मरम्मत के लिए पर्याप्त खर्चा करना पड़ता है।

6 यन्त्रो की तकनीक के परिवर्तन होने पर पुराने यन्त्र बेकार हो जाते हैं।

7 विद्युत चालित यन्त्रो का उस समय महत्त्व समाप्त हो जाता है, जबकि विद्युत उपलब्ध न हो।

8 कई मशीनो के सचालन के लिए प्रशिक्षित व्यक्ति की आवश्यकता होती है। यदि वह व्यक्ति उपलब्ध नही है, तो मशीन का उपयोग करना असम्भव हो जाता है।

सगठन तथा प्रणाली (O and M) सेवा
('Organisation and Methods' Service)

कार्यालय मे सगठन तथा प्रणाली' सेवा का आजकल महत्त्व निरन्तर बढ़ता ही जा रहा है। यह कार्य सरलीकरण के ही समान माना जाता है। 'सगठन तथा प्रणाली' सेवा के द्वारा किसी कार्यालय के कार्यों को कुशलता एव प्रभावपूर्ण तरीके

ने पूरा करने के लिये समय प्रयास किये जाते हैं। इस सेवा को प्रयत्न कर कार्यालय संगठन, प्रणाली, कार्य विधियाँ, प्रणालियों तथा पद्धतियों, मशीनों के उपयोग आदि आदि में सुधार किया जा सकता है। यह कार्यालयों में प्रपत्रों के प्रारूपों का निश्चित करने, उनकी प्रतियों की संख्या को निर्धारित करने से भी सम्बन्धित है।

संगठन तथा प्रणाली सेवा किसी कार्य के एक भाग विशेष के लिए लागू की जा सकती है अथवा कार्यालय की कार्यविधियों के लिए लागू की जा सकती है। इसी प्रकार संगठन तथा प्रणाली सेवा को लागू करने के लिये संस्था में एक अलग विभाग की स्थापना की जा सकती है इसके विपरीत यह कार्य कार्यालय निरीक्षक को भी सौंपा जा सकता है। यह सेवा किस प्रकार से लागू की जाती है, यह सम्बन्धित संस्था के आकार आदि व स्वभाव आदि पर निर्भर करता है। किन्तु, यह सेवा लागू करने के लिए ऐसे व्यक्तियों की सेवाएँ ली जानी चाहिये जो इस सेवा के लिए प्रशिक्षित हों। ऐसे व्यक्तियों में धैर्यता, सहनशीलता, तीक्ष्ण बुद्धि होनी चाहिए। ऐसे व्यक्ति को कार्यालय कार्य विधियों तथा मशीनों की प्रक्रिया का भी ज्ञान होना चाहिये। इसमें लोगों से मिल जाने, बातचीत करने, सहयोग प्राप्त करने की क्षमता भी होनी चाहिये।

संगठन तथा प्रणाली सेवा के उद्देश्य (Objects of O and M)

संगठन एवं प्रणाली सेवा के उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

1 सभी अनावश्यक क्रियाओं का समाप्त करना।

2 कार्य के सरलतम तरीकों की खोज करना।

3 अपव्यय को रोकना।

4 उन क्रियाओं को संशोधित करना जिनके प्रयोग करने से हानियाँ होती हैं।

5 कार्यालय में कार्य विधियों एवं प्रणालियों को निश्चित करना।

6 कार्यालय कार्यों को मात्रात्मक (Quantitatively) तथा गुणात्मक (Qualitatively) रूप से सुधार करना।

7 कार्यालय कार्यों को उचित प्रकार प्रभावित करना।

'संगठन तथा प्रणाली' सेवा की संचालन विधि

(Method of operation of O and M)

संगठन तथा प्रणाली सेवा का संचालन करने की एक *निश्चित विधि* अपनानी चाहिए। इस कार्य के करने में अधिक बातों को ध्यान किया जा सकता है। सामान्यतः इस सेवा के संचालन की निम्न विधि अपनाई जाती है—

1 उद्देश्यों का निर्धारण—सबसे पहले संगठन एवं प्रणाली सेवा को लागू करने के उद्देश्यों को स्पष्ट कर लेना चाहिये। इन उद्देश्यों को स्पष्ट रूप से लिख लेना और भी उपयुक्त होगा।

2 नियोजन करना—तत्पश्चात् उद्देश्यों के अनुरूप कार्यों के लिए नियोजन करना चाहिये। नियोजन करते समय कार्यों की प्रकृति, कार्यों की मात्रा आदि का ध्यान मे रखना चाहिये। इन बातों को ध्यान मे रखकर, यह भी निश्चित कर लेना चाहिये कि किस प्रकार की सूचनाएँ एकत्रित करनी हैं तथा उनके स्रोत क्या होंगे ?

3 वर्तमान कार्य विधियों के सम्बन्ध मे सूचनाएँ एकत्रित करना—उद्देश्यों के निर्धारण कर लेने के बाद वर्तमान कार्य विधियों तथा प्रणालियों के सम्बन्ध में सूचनाएँ एकत्रित करनी चाहिए। कार्यालय कार्य विधियों तथा प्रणालियों के सम्बन्ध मे सामान्यत निम्नलिखित प्रकार की सूचनाएँ एकत्रित की जाती हैं—

- (i) प्रत्येक क्रिया का क्या उद्देश्य है ?
- (ii) उस क्रिया को करने के लिए क्या प्रणाली अपनाई जाती है ?
- (iii) उस क्रिया को कुशलतापूर्वक करने के लिये किस प्रकार के मनुष्य की आवश्यकता होती है ?
- (iv) उस क्रिया को करने के लिए कौन व्यक्ति लगा हुआ है ?
- (v) उस क्रिया को कहाँ पर किया जा रहा है ?
- (vi) उस क्रिया मे सूचनाओं का प्रवाह कैसा है तथा उसमे समता है अथवा नहीं ?
- (vii) उस क्रिया मे प्रलेखों के कौन-कौन से प्रारूप उपयोग मे आते हैं ?
- (viii) उस क्रिया मे कौन कौन से व्यवहार (Transactions) होते हैं ?
- (ix) उस क्रिया मे किस प्रकार के निरीक्षण की आवश्यकता है ?
- (x) उस कार्य मे किस सीमा तक यन्त्रीकरण हो चुका है ?
- (xi) सचालन लागत क्या है ?
- (xii) मितव्ययता के क्या आधार है ?

4 सूचनाओं के स्रोतों का अध्ययन—कार्य विधियों के सम्बन्ध मे सूचनाएँ एकत्रित करने के बाद सूचनाओं के स्रोतों का भी अध्ययन किया जाता है। सूचनाओं के स्रोतों का अध्ययन करने के लिये निम्न तथ्यों के सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त की जाती है—

- (i) प्रलेख मशीनों द्वारा तैयार किये जाते हैं अथवा कर्मचारियों से ?
- (ii) प्रलेख तथा सूचनाएँ स्वत उत्पन्न हो जाते हैं अथवा बनाये जाते हैं ?
- (iii) प्राप्त सूचनाओं तथा वांछित सूचनाओं की तुलना की सीमा क्या है ?
- (iv) क्या सूचनाएँ शीघ्रता से प्राप्त की जा सकती हैं ? यदि नहीं तो देरी के क्या कारण हैं ?

5 सुधार का प्रस्ताव रखना—सूचनाएँ प्राप्त करने तथा तथ्यों के विश्लेषण करने के बाद कार्य विधियों मे सुधार के प्रयास का प्रस्ताव करना चाहिए जिससे

भविष्य म कार्य अधिक कुशलता के साथ पूरे किये जा सकें। प्रत्येक प्रस्ताव सम्बन्धित विभागाध्यक्ष को भेज दिया जाना चाहिये, जिससे वे उन सुधारात्मक कार्य प्रस्ताव को अपने कार्यों म लागू कर सकें।

लाभ या महत्व (Advantages or Importance of 'O and M')

1 सभी अनावश्यक क्रियाओं को समाप्त किया जा सकता है।

2 कार्य के सरलतम तरीकों की खोज की जा सकती है।

3 कार्यालय कार्यों म मितव्ययता प्राप्त की जा सकती है।

4 कार्यालय कार्यविधियों को भली प्रकार पूर्व निश्चित किया जा सकता है।

5 कार्यालय कार्यों म गुणात्मक (Qualitative) सुधार होता है।

6 कार्यालय कर्मचारियों की कार्यक्षमता बढ़ती है।

7 कार्यालय कार्यों में पर्याप्त प्रवाह बनता है।

8 कार्यों को लालफीताशाही से मुक्त रखा जा सकता है।

9 कार्यालय मे होने वाले कार्यों की मात्रा भी बढ़ती है।

10 कार्यों की कुशलता एवं शीघ्रता म वृद्धि होती है।

दोष (Disadvantages of O and M)

संगठन तथा प्रणाली सेवा का अपना कोई दोष नहीं है। लेकिन इसमे कई दोष उत्पन्न हो सकते हैं। यदि इसको उचित रूप से संस्था मे लागू नहीं किया जाता है। इसकी सफलता इस सेवा के संचालन करने वाले के व्यक्तिगत गुणों पर निर्भर करती है। अत इस सेवा को ध्यान से लागू करके इसके सभी लाभ प्राप्त किये जा सकते हैं।

अभ्यास के लिए प्रश्न

1 कार्यालय कार्यविधि से आप क्या समझते है? कार्यविधि, पद्धति एवं प्रणाली म अन्तर स्पष्ट कीजिए।
What do you mean by office procedure? Distinguish between procedure, system and method

2 कार्यालय म एक अच्छी कार्यविधि का क्या महत्व है?
What is the importance of a good procedure?

3 कार्यालय कार्यविधि के निर्धारण मे किन किन बातों को ध्यान मे रखना चाहिए?
What factors should be considered while determining a office procedure?

4 कार्यालय मे कार्य-सरलीकरण एव यन्त्रीकरण से आप क्या समझते है ? सविस्तार समझाइये ।

What do you understand by simplification and mechanisation of office work ? Explain in detail

5 कार्यालय कार्यों के यन्त्रीकरण के लाभ एव दोषो का वर्णन कीजिये ।

Describe the merits and demerits of mechanisation of office work

6 एक कार्यालय मे 'सगठन तथा प्रणाली' सेवा (O and M Service) का क्या महत्त्व है । इस सेवा की क्या पद्धति है ?

What is the importance of 'Organisation and Method' Service in an office What is the procedure of this service ?

2

कार्यालय कार्य का विश्लेषण

(Analysis of Office Job)

Success or failure in business is caused more by mental attitude even than by mental capacities —*Walter Dill Scott*

कार्यालय कार्यों की प्रकृति समान नहीं है। कार्यालय में प्रत्येक कार्य भिन्न भिन्न प्रकृति का होता है। अतः इन कार्यों को करने के लिए भिन्न भिन्न योग्यताओं, कार्य क्षमताओं, अनुभव एवं प्रशिक्षण वाले व्यक्तियों की आवश्यकता पड़ती है। कार्य विश्लेषण कार्यों की प्रकृति को जानने तथा उन कार्यों को करने के लिए उपयुक्त कर्मचारियों की योग्यताओं का निर्धारित करने का महत्त्वपूर्ण औजार है।

कार्य विश्लेषण की परिभाषा (Definition) —

जूसियस (Jucius) के अनुसार "कार्य विश्लेषण क्रियाओं, कर्त्तव्यों एवं कार्यों के संगठन सम्बन्धी पहलुओं के अध्ययन की प्रक्रिया है, जिसमें विशिष्टताओं का, जिन्हें कुछ लोग कार्य विवरण कहते हैं, का प्रमाप किया जा सके।"

उपर्युक्त परिभाषा के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कार्य विश्लेषण के द्वारा किसी कार्य के सम्बन्ध में अनेकों सूचनाएं प्राप्त की जाती हैं। इसके अन्तर्गत विभिन्न क्रियाओं, उपक्रियाओं, कर्त्तव्यों और कार्यों से सम्बन्धित सूचनाएं एकत्रित की जाती हैं तथा यह ज्ञात किया जाता है कि इन कार्यों, क्रियाओं तथा कर्त्तव्यों को पूरा करने के लिए किस प्रकार के चातुर्य, ज्ञान एवं अनुभव की आवश्यकता पड़ेगी।

संक्षेप में कार्य विश्लेषण में निम्न तथ्यों का ज्ञात किया जाता है :

(i) कार्य का नाम, प्रकृति एवं कार्य की विशिष्टताएं।

(ii) कर्मचारी द्वारा किसी कार्य को पूरा करने के लिए की जाने वाली क्रियाएं।

(iii) कर्मचारी द्वारा कार्य करने में उठाई जाने वाली कठिनाइयां।

(iv) कार्य को पूरा करने में प्रयोग किए जाने वाले औजार एवं पदार्थ।

(v) कार्य को पूरा करने में लगने वाला समय।

(vi) कार्य की दशाएँ।

(vii) कार्य का उत्तरदायित्व।

(viii) कार्य में जोखिम की मात्रा ।

(ix) कार्य में लगने वाला ज्ञान, चातुर्य एवं अनुभव ।

(x) कार्य को पूरा करने वाले व्यक्ति के व्यक्तिगत गुण ।

(xi) इस कार्य का अन्य कार्यों से सम्बन्ध ।

कार्य विश्लेषण करने के लिए कार्य से सम्बन्धित कई प्रकार की सूचनाओं की आवश्यकता पड़ती है। इन सूचनाओं को प्राप्त करने के लिए विश्लेषण के निम्न दो प्रकार के विवरण तैयार करने पड़ते हैं—

(i) कार्य विवरण

(ii) व्यक्ति विशिष्ट विवरण

कार्य विवरण
(Job Description)

परिभाषाएँ एवं अर्थ (Definitions and Meaning)

फिलप्पो (Flippo) के अनुसार "कार्य विवरण एक विशिष्ट कार्य का संगठित तथ्ययुक्त कार्यों एवं दायित्वों का विवरण है।"[1]

बेथल, एटवाटर आदि (Bethel, Atwater, etc) के शब्दों में "कार्य विवरण कार्य विश्लेषण का सारांश विवरण है, जो दूसरे कार्य विश्लेषकों को कार्य को पहचानने में मदद करता है।"[2]

क्यूमिंग (Cuming) के अनुसार "कार्य विवरण किसी कार्य के उद्देश्य, क्षेत्र, कार्यों तथा उत्तरदायित्वों का विस्तृत विवरण है।"[3]

इस प्रकार स्पष्ट है कि कार्य विवरण एक व्यवस्थित एवं लिखित किसी कार्य विशेष के, सम्बन्ध में की जाने वाली क्रियाओं एवं दायित्वों का विवरण है। कार्य को करने के लिए आवश्यक योग्यता एवं चातुर्य, वे परिस्थितियाँ जिनके अन्तर्गत कार्य किया जाता है, तथा कार्य का दूसरे कार्यों से सम्बन्ध इत्यादि इस विवरण में सम्मिलित किये जाते हैं।

एक कार्य विवरण में कार्य का क्षेत्र कार्य करने वाले के अधिकार एवं दायित्व तथा संस्था में दूसरे व्यक्तियों के साथ सम्बन्धों को भली प्रकार स्पष्ट करना चाहिये। स्पष्ट एवं उचित प्रकार से बनाए गए कार्य विवरण के द्वारा प्रत्येक व्यक्ति अपना कार्य कुशलतापूर्वक पूरा कर सकेगा। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि एक कार्य विवरण संक्षिप्त सारगर्भित एवं स्पष्ट होना चाहिये।

---

1 "Job-description is an organised factual statement of the duties and responsibilities of a specific job." —Edwin B Flippo

2 "Job description is a boiled down statement of the job analysis and serves to identify the job for consideration by other job analysis." —Bethel, Atwater, Smith and Stackman

3 "A Job-description is broad statement of the purpose, scope, duties and responsibilities of a particular job." —M. B Cuming

काय विवरण मे उल्लखित बातें—सामान्यत एक काय विवरण म निम्न लिखित बाता का उल्लेख होना है —

(i) काय का कार्यालय द्वारा दिया गया नाम (The official name of the job)

(ii) काय की श्रेणी।

(iii) अन्य कोई नाम जिस नाम के द्वारा काय सामान्यत जाना जाता है।

(iv) काय के नाम के स्थान पर प्रयोग किये जाने वाले कोड नम्बर।

(v) विभाग एव उप विभाग का नाम जिसके अन्तगत काय किया जा रहा है।

(vi) काय की स्थान।

(vii) कमचारियो के काय।

(viii) काय म प्रयोग की जाने वाली मशीन औजार सामग्री इत्यादि।

(ix) निरीक्षण किसके द्वारा किया जायगा और कमचारी स्वय किसका निरीक्षण करेगा।

(x) कमचारियो के अधिकार एव दायित्व।

(xi) काय का अन्य कार्यों से सम्बन्ध।

व्यक्ति विशिष्ट विवरण
(Man Specifications)

व्यक्ति विशिष्ट विवरण, वह विवरण पत्र है जिसम किसी काय को करने वाले के लिए वांछित व्यक्तिगत योग्यताओं का वणन होता है। फिलप्पो (Flippo) के अनुसार व्यक्ति विशिष्ट विवरण किसी काय को करने के लिए न्यूनतम स्वीकृत आवश्यक मानवीय गुणों का विवरण है।[1]

ये विशेषताएँ सामान्यत ज्ञान पयवेक्षण क्षमता भावनात्मक योग्यता निर्णय क्षमता, निभरता बाह्य पक्षकारो से व्यवहार करने की योग्यता सामाजिक व्यवहार आदि से सम्बन्धित होती हैं। स्पष्ट रूप से यह कहा जा सकता है कि काय विशिष्ट विवरण म एक सफल कायकर्ता के व्यक्तिगत लक्षणों पर प्रकाश डाला जाता है।

व्यक्ति विशिष्ट विवरण मे उल्लखित बातें—उपर्युक्त विवरण के अतिरिक्त हम अध्ययन की सुविधा के लिए यहा और अधिक स्पष्ट कर देना चाहते है कि व्यक्ति विशिष्ट विवरण मे निम्नलिखित बात उल्लखित रहती है —

(i) शारीरिक स्वास्थ्य सुदृढ़ मृदुवाणी आकषक आदि आदि।

(ii) मानसिक उचित शिक्षा मानसिक सन्तुलन प्रशिक्षित सतकता इत्यादि।

---

1 A job specification is a statement of the minimum acceptable human qualities necessary to perform a job properly —Flippo

(iii) व्यक्तिगत : पहल शक्ति, सामान्य उत्साह, वाक्-चातुर्य, रात प्रस्तुत करने की क्षमता, इत्यादि।

(ii) कार्य अनुभव।

(v) अधिकार एव दायित्वों को वहन करने की क्षमता।

(iv) वातावरण सामाजिक सगठनों में सदस्यता, वैवाहिक स्थिति आदि।

(vii) भावात्मक गुण।

इस प्रकार इन दोनों विवरणों की सहायता से कार्य विश्लेषण पूरा किया जाता है। जिससे किसी कार्य के सम्बन्ध में विभिन्न क्रियाओं, उपक्रियाओं अधिकारों एव दायित्वों को आसानी से ज्ञात किया जा सकता है।

कार्य विश्लेषण की आवश्यकता तथा महत्त्व
(Need and Importance of Job Analysis)

कार्य विश्लेषण का महत्त्व विभिन्न दृष्टिकोणों से होता है। कार्य विश्लेषण कर्मचारियों की भर्ती के पूर्व से लेकर कर्मचारियों के संस्था में बने रहने तक उपयोगी होता है। कार्य विश्लेषण प्रबन्धक का महत्त्वपूर्ण औजार है। इसके अभाव में प्रबन्धक अपनी कई क्रियाओं को ठीक प्रकार से पूरा करने में सर्वथा असफल ही रहेगा बीच (Beach) के मतानुसार, **"कार्य विश्लेषण कर्मचारी कार्यक्रमों के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ प्रदान करता है। वह मानव शक्ति एवं सगठन के नियोजन, कर्मचारियों की भर्ती, चुनाव एव नियुक्ति करने, समान वेतनमान निश्चित करने, कार्य विधियों के सुधार, प्रशिक्षण कार्य-क्रमों के विकास, कार्य क्षमता-मूल्यांकन तथा दुर्घटना की रोकथाम कार्यक्रमों में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।"** इस प्रकार कार्य विश्लेषण का महत्त्व कई दृष्टिकोणों से है। सक्षेप में कार्य विश्लेषण का महत्त्व नीचे कुछ शीर्षकों में समझाने का प्रयास किया है —

1 कर्मचारियों के चुनाव करने में—कार्य विश्लेषण कर लेने से कर्मचारियों का चुनाव करने में सहायता मिलती है। कार्य विश्लेषण करके सही व्यक्ति को सही स्थान पर नियुक्त किया जा सकता है। कार्य विश्लेषण के द्वारा कार्य की प्रकृति के अनुसार कर्मचारियों की योग्यताओं का निर्धारण किया जाता है और कर्मचारियों का चुनाव इन निर्धारित योग्यताओं के आधार पर ही किया जाता है

2. पदोन्नति, पदावनति तथा स्थानान्तरण—कार्य विश्लेषण का महत्त्व कर्मचारियों की पदोन्नति, पदावनति तथा स्थानान्तरण में भी होता है। किसी भी कर्मचारी को पदोन्नति देने से पूर्व उसकी योग्यताओं की कार्य विवरण से तुलना की जाती है। यदि वह व्यक्ति उच्च पद के लिए निश्चित योग्यताओं के अनुरूप होता है, तो उसे पदोन्नति दे दी जाती है। इसी प्रकार यदि किसी व्यक्ति की योग्यताएँ उसके वर्तमान पद के कार्यों को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं, तो उसे पदावनति दी जाती है। इसके अतिरिक्त, स्थानान्तरण के लिए भी कार्य विश्लेषण का सम्बन्ध

3

पर्यवेक्षण[1]

(Supervision)

"In this environment the foreman stands—victim, not monarch, of all he surveys." —*F. J Roethlisberger*

पर्यवेक्षण का प्रत्येक कार्य में महत्त्व है। कार्यालय में पर्यवेक्षण का कई गुना अधिक महत्त्व है। प्रभावशाली पर्यवेक्षण के द्वारा कार्यालय के कार्यों में शीघ्रता, मितव्ययता तथा कुशलता लायी जा सकती है। कर्मचारियों को आसानी से अभिप्रेरित किया जा सकता है, उनकी भावनाओं एवं विचारों पर अधिक निकटता से ध्यान दिया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, कार्यालय कार्यों का कुशलतापूर्वक पर्यवेक्षण करने से कार्यालय की सम्पूर्ण कुशलता में वृद्धि की जा सकती है।

पर्यवेक्षण की परिभाषाएँ एवं अर्थ
(Definitions and Meaning)

पर्यवेक्षण शब्द लैटिन भाषा के 'Supervision' शब्द का हिन्दी अनुवाद है। यह शब्द 'Super' तथा 'Vision' दोनों के योग से बना है। 'Super' का अर्थ है अधिक अच्छा या ऊपर तथा 'Vision' का अर्थ है, दृष्टि या देखना। इस प्रकार दोनों शब्दों का योग करने से 'Supervision' का आशय ऊपर से देखना होता है। सामान्य बोलचाल की भाषा में पर्यवेक्षण का तात्पर्य 'दूसरों के कार्य का निरीक्षण करना है।' किन्तु, प्रबन्ध शास्त्र में इस शब्द का तात्पर्य कुछ विस्तृत अर्थ में लगाया जाता है, जो नीचे की कुछ परिभाषाओं के आधार पर स्पष्ट हो जाता है।

टर्नर (Turner) के अनुसार, पर्यवेक्षण किसी कार्य को भली प्रकार पूरा करने के लक्ष्य से कार्य के प्रभावशाली निर्देशन करने का पेशा है, जिसमें उन लोगों का प्रयोग किया जाता है, जो जीवन के सभी क्षेत्रों में वस्तुओं तथा सेवाओं के कुशलतापूर्वक उत्पादन करने के लिए आवश्यक चातुर्य में अभ्यस्त है।"[2]

---

1 पर्यवेक्षण को निरीक्षण भी कह सकते हैं।

2 Supervision is "The profession of effectively guiding an endeaver towards the goal of superior attainment by the application of trained personalities practiced in those skill needed for the effective production of goods and services in all walks of life." —Turner

आर्नोल्ड (Arnold) के अनुसार मशीनों, कर्मचारियों तथा कार्यों में समन्वय स्थापित करना तथा कर्मचारियों के मधुर सम्बन्धों के साथ न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन करना पर्यवेक्षण का कार्य है।[1]

विलियमसन (Williamson) के अनुसार पर्यवेक्षण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा कर्मचारियों को उनके ज्ञान एवं चातुर्य का सर्वोत्तम उपयोग करने तथा उनकी योग्यताओं में सुधार करने के लिए निश्चित कर्मचारी द्वारा सहायता प्रदान की जाती है ताकि वे अपने कार्य को अधिक प्रभावशाली ढंग से कर सकें तथा उन्हें एवं उनकी संस्था को अधिक सन्तोष मिल सके।[2]

उपर्युक्त परिभाषाओं का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि पर्यवेक्षण एक प्रक्रिया है जिसमें अधिकारी अपने अधीनस्थों के ज्ञान एवं चातुर्य का उनके कार्य में इस प्रकार प्रयोग करने में सहायता प्रदान करता है तथा मार्ग दर्शन देता है जिससे कि कम से कम परिश्रम तथा लागत पर अधिकाधिक कार्य पूरा किया जा सके।

कार्यालय पर्यवेक्षण—पर्यवेक्षण शब्द के साथ कार्यालय शब्द और जोड़ कर पर्यवेक्षण को विशिष्ट रूप में समझा जा सकता है। **कार्यालय पर्यवेक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें कार्यालय के अधिकारी कार्यालय में कार्य करने वाले कर्मचारियों के ज्ञान एवं चातुर्य का उनके कार्य में इस प्रकार प्रयोग करने में सहायता प्रदान करते हैं तथा मार्ग दर्शन देते हैं कि कम से कम परिश्रम तथा लागत पर अधिकाधिक कार्य पूरे किये जा सकें।**

लक्षण (Characteristics)—पर्यवेक्षण की उपर्युक्त परिभाषाओं का अध्ययन करने से निम्नलिखित लक्षण प्रकट होते हैं

1 पर्यवेक्षण एक प्रक्रिया है जो सदैव चलती रहती है। वह कभी समाप्त नहीं होती है।

2 पर्यवेक्षण के द्वारा अधिकारी अधीनस्थों को उनके चातुर्य एवं ज्ञान के प्रयोग में सहायता प्रदान करता है।

3 पर्यवेक्षण कर्मचारियों की कुशलता को बढ़ाने का साधन है।

4 पर्यवेक्षण के कारण कम से कम लागत पर अच्छा से अच्छा तथा अधिकाधिक कार्य होता है।

5 पर्यवेक्षण के द्वारा मशीनों, कर्मचारियों तथा कार्यों में समन्वय स्थापित किया जाता है।

---

1 It is supervision's job to coordinate machines employees and jobs and to provide maximum production at minimum cost and with smooth personnel relationships —Arnold

2 Supervision may be defined ' as a process by which workers are helped by a designated staff member to learn according to their needs to make the best use of their knowledge and skill and to improve their abilities so that they do their jobs more effectively and with increasing satisfaction to themselves and the agency —*Williamson*

6 कोई भी व्यक्ति अपना पर्यवेक्षण स्वय नही करता है, बल्कि उसका अधिकारी करता है।

पर्यवेक्षक[1]
(Supervisor)

सामान्य शब्दो मे पर्यवेक्षक वह व्यक्ति या अधिकारी होता है जो दूसरो के कार्यो की देख-रेख या निरीक्षण करता है। अमेरिका के **नेशनल लेबर मैनेजमेन्ट रिलेशन्स एक्ट** (The National Labour Management Relations Act of U S A) के अनुसार पर्यवेक्षक से आशय किसी भी ऐसे व्यक्ति से है, जिसको अपने नियोक्ता के हितो मे दूसरे कर्मचारियो को नियुक्त करने, स्थानान्तरित करने, निलम्बित करने, जबरी छुट्टी देने, पुन कार्य पर लगाने, पदोन्नति देने, सेवा मुक्त करने, कार्य सौपने, पारितोषिक देने या उन पर अनुशासनिक कार्यवाही करने का अधिकार होता है अथवा उन्हे निदर्शित करने या उनके परिवादो को निपटाने या ऐसे ही किसी कार्य की सिफारिश करने का अधिकार होता है। यदि यह सब उपर्युक्त बातो से सम्बन्धित हो। इस प्रकार के अधिकारो का प्रयोग दिन-प्रतिदिन के कार्य या लिपिकीय कार्यो मे नही है। बल्कि जिसमे आत्मनिर्णय की ही आवश्यकता पडे, उसमे प्रयोग होता हो।"

आधुनिक युग मे एक पर्यवेक्षक को प्राय ये सभी अधिकार नही होते है। अत हम आधुनिक सदर्भ मे परिभाषा करेंगे। टेरी ने एक आधुनिक पर्यवेक्षक को निम्न प्रकार से परिभाषित किया है।

टेरी (Terry) के अनुसार "पर्यवेक्षक *प्रबन्ध वर्ग का सदस्य है, जो सगठन के उस स्तर पर, जहाँ पर छोटे समूहो को सौपे गये कार्य मे भूल की आशा की जाती* है, वहाँ सतोषप्रद कार्यो के लिए विश्वस्त होने के लिए कार्य करता है।"

वास्तव मे आधुनिक युग मे पर्यवेक्षक एक प्रबन्ध वर्ग का ही व्यक्ति होता है, जो दूसरो के कार्यो का निर्देशन के बीच की कडी के रूप मे कार्य करता है।

कार्यालय पर्यवेक्षक की समस्याएं
(Problems of an Office Supervisor)

एक पर्यवेक्षक के सामने कई समस्याएँ होती हैं। उनमे प्रमुख समस्याएं निम्नलिखित हैं—

1 कार्यालय के उद्देश्यो को निर्धारित करने की समस्या।
2 कार्यालय-कार्यो के नियोजन की समस्या।
3 कार्यालय के सगठन की समस्या।
4 कार्यालय कार्यविधियो के निर्धारण की समस्या।

---

1 कई बार पर्यवेक्षक को निरीक्षक अथवा अधीक्षक भी कह देते हैं।

तथा कार्य सूची को ध्यान मे रखते हुए कर्मचारियो, पदो तथा कार्यो मे इस प्रकार सम्बन्ध निर्धारित करना चाहिए, कि विभागीय लक्ष्य आसानी से पूरे किए जा सकें। संगठन करने से पूर्व पर्यवेक्षक को अपने कार्यों तथा उनके तकनीकी पक्षों की पूर्ण जानकारी भी कर लेनी चाहिए। टेरी के अनुसार संगठन करने में एक पर्यवेक्षक को निम्नलिखित कार्य करने पड़ते हैं

(i) अधिकारों का प्रत्यायोजन (Delegation) करना।

(ii) विभाग के लोगो म कार्यो का विभाजन करना।

(iii) सामान्य कार्य एक ही इकाई को सौपना।

(iv) विभाग के लोगो मे उचित अधिकार सम्बन्धों का निर्धारण करना।

4. कार्यविधियो को निश्चित करना (Establishing Procedures)—पर्यवेक्षक जब कर्मचारियों का संगठन कर लेता है, तो उन कर्मचारियों से कार्य करवाने के लिए कार्यविधियो को भी निश्चित करना पड़ता है। कार्यविधियाँ किसी कार्य को करने के लिए लिपिकीय क्रियाओ की शृंखला है। पर्यवेक्षको को कार्यविधियाँ बहुत ही सोच विचार कर निश्चित करनी चाहिए। ये संस्था के प्रबन्धको द्वारा निश्चित कार्यविधियो को ध्यान मे रखकर निश्चित की जानी चाहिए। उसे अपने निरीक्षण मे होने वाले प्रत्येक कार्य की कार्यविधि निश्चित करनी चाहिए तथा उन्हें सदैव अच्छी बनाने के लिए आवश्यक परिवर्तन करते रहना चाहिए।

5 कर्मचारियो की नियुक्ति करना (Staffing)—पर्यवेक्षक का कार्य कर्मचारियों की नियुक्ति करना भी होता है। इस हेतु वह कर्मचारियों का साक्षात्कार करता है, उनका चुनाव करता है तथा उन्हें पद पर नियुक्त करता है। तथा अपने अधीनस्थों को निर्देश देता है। इसके अतिरिक्त, पर्यवेक्षक को अपने प्रत्येक कर्मचारी के कार्य का निर्धारण भी करना पड़ता है।

6 कार्य निर्धारण करना (Allocation of Work)—जब कर्मचारियों की नियुक्ति हो जाती है, तो पर्यवेक्षक को उन्हें कार्य सौपना चाहिए। उन्हें कार्य उनकी योग्यताओं एवं क्षमताओं के अनुसार सौंपा जाना चाहिए। कार्य निर्धारित करते समय कार्य को भली प्रकार समझा देना चाहिए।

7. निर्देशन (Directing)—प्रत्येक पर्यवेक्षक अपने विभाग के कर्मचारियों को पूर्व निर्धारित प्रमापों के अनुसार कार्य करने के लिए निर्देश देता है, ताकि प्रत्येक कर्मचारी संस्था के निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति मे सहयोग दे सकें। इस हेतु वह अपने कर्मचारियों को अभिप्रेरित करता है, यथा समय अपने कर्मचारियों को आवश्यक सूचनाएँ प्रदान करता है तथा उनमे सतत् सम्पर्क बनाए रखता है।

8 नियन्त्रण (Controlling)—पर्यवेक्षक का एक कार्य अपने अधीनस्थो के कार्यों का नियन्त्रण करना भी है। इस हेतु वह अपने अधीनस्थों के कार्यों का निरीक्षण करता है तथा उनकी प्रमापों से तुलना करता है और यदि आवश्यकता हो, तो वह उनके कार्यों मे सुधार करने के लिए प्रयास भी करता है। इसके अतिरिक्त

एक पर्यवेक्षक अपने अधीनस्थों के कार्यों की रिपोर्ट भी तैयार करता है तथा अपने अधिकारियों को आवश्यक सूचना भी भेजता है। टेरी के अनुसार एक पर्यवेक्षक नियन्त्रण स्थापित करने के लिए निम्न कार्य करता है

(i) निश्चित पद्धतियों एवं कार्य विधियों का पालन करता है।

(ii) लागत के सन्दर्भ में किए गए कार्य का मूल्यांकन करता है।

(iii) कार्यों की मात्रा तथा शुद्धता की जाँच करता है।

(iv) अत्यधिक कार्यभार को कम करता है।

9 समन्वय (Coordinating)—पर्यवेक्षक अपने अधीनस्थों में समन्वय स्थापित करने का कार्य तो करता ही है किन्तु वह उच्च प्रबन्धकों की नीतियों उद्देश्यों तथा योजनाओं का अपने विभाग के कार्यों एवं उद्देश्यों में भी समन्वय स्थापित करता है। वह विभाग के कर्मचारियों, कार्यों तथा साधनों में प्रभावशाली समन्वय स्थापित करके, कम से कम लागत तथा परिश्रम में अधिकाधिक कार्य पूरा कराने का कार्य करता है।

10 प्रबन्धकों को प्रगति की जानकारी देना (Reporting Progress to Management)—पर्यवेक्षकों का एक महत्त्वपूर्ण कार्य प्रबन्धकों को कार्य प्रगति के बारे में सूचना देना भी है। पर्यवेक्षकों का कार्य में उत्पन्न होने वाली सामान्य बाधाओं के बारे में भी प्रबन्धकों को सूचना देनी चाहिए। इससे भविष्य में इन बाधाओं को दूर करने के लिए आवश्यक प्रयास किये जा सकेंगे। प्रबन्धकों को उचित रूप में प्रगति की जानकारी देने के लिए कुछ अभिलेख अवश्य तैयार रखने चाहिए। उदाहरणार्थ प्रत्येक व्यक्ति के कार्य का संक्षिप्त विवरण, उसकी उपस्थिति, छुट्टियाँ आदि।

11 संदेशवाहन व्यवस्था (Communication System)—चूँकि पर्यवेक्षक प्रबन्धकों एवं कर्मचारियों के बीच की एक कड़ी है। अतः उसे उचित संदेशवाहन व्यवस्था भी निर्मित करनी चाहिए। उसे कर्मचारियों की कठिनाइयाँ, शिकायतें, सुझावों आदि को प्रबन्धकों तक पहुँचाना चाहिए तथा प्रबन्धकों के आदेश, निर्देश, सूचनाएँ, भावनाएँ आदि कर्मचारियों तक पहुँचानी चाहिए। इससे आपसी सम्बन्धों में दृढ़ता आ सकती है।

पर्यवेक्षक के दायित्व
(Responsibilities of Supervisor)

एक पर्यवेक्षक के कई दायित्व होते हैं क्योंकि उसकी स्थिति ऐसी ही होती है। वह एक ऐसा व्यक्ति होता है जिसके एक ओर उच्च प्रबन्धक होते हैं तो दूसरी ओर उसके अधीनस्थ कर्मचारी। इसके अतिरिक्त उसे कार्यालय में रहकर समान स्तर के अधिकारियों के बीच कार्य करना पड़ता है। अतः उसका कार्यालय तथा समान स्तर के पर्यवेक्षकों के प्रति भी दायित्व होता है। पर्यवेक्षक के स्वयं के प्रति

भी कुछ दायित्व होते हैं। अतः हम पर्यवेक्षक के दायित्वों को निम्नलिखित पाँच भागों में बाँटकर अध्ययन कर सकते हैं :—

(i) **उच्च प्रबन्धकों के प्रति दायित्व** (Towards Top Management)—पर्यवेक्षक के उच्च प्रबन्धकों के प्रति कई दायित्व होते हैं। उच्च प्रबन्धक पर्यवेक्षकों की नियुक्ति कुछ कार्यों को करने तथा करवाने के लिए ही करते हैं। अतः पर्यवेक्षकों का उच्च प्रबन्धकों के प्रति दायित्व होना स्वाभाविक ही है। **न्यूनर तथा कीलिंग** (Nuner and Keeling) के अनुसार पर्यवेक्षकों के उच्च प्रबन्धकों के प्रति निम्नलिखित प्रमुख दायित्व हैं—

1 उच्च प्रबन्धकों की इच्छाओं को ज्ञात करना तथा उन्हें पूरी करना।

2 उच्च प्रबन्धकों को अपने विभाग के कार्यों के बारे में सूचित करना तथा कार्यों में सुधार के लिए सुझाव देना।

3 अपने विभाग के कार्यों के लिए उत्तरदायित्व स्वीकार करना तथा टालमटोली (Buck-Passive) नहीं करना।

4 ऐसे मामलों से उच्च अधिकारियों को अवगत करवाना जिन पर शीघ्र ध्यान देने की आवश्यकता हो।

5 कर्मचारियों की आवश्यकताओं, भावनाओं आदि को प्रबन्धकों के समक्ष प्रस्तुत करना।

उच्च प्रबन्धकों के साथ प्रतिष्ठा के साथ पूर्ण कूटनीतिक सम्पर्क बनाये रखना।

(ii) **समान स्तर के पर्यवेक्षकों के प्रति दायित्व** (Towards Parallel Supervisors)—प्रत्येक पर्यवेक्षक का यह भी दायित्व है, कि वह समान स्तर के पर्यवेक्षकों के साथ पूर्ण सहयोग बनाये रखे। उसे अपने विभाग के कार्यों तथा दूसरे विभाग के कार्यों में समन्वय स्थापित करने का भी प्रयास करना चाहिये, ताकि संस्था के उद्देश्य उचित ढंग से पूरे किये जा सकें। **न्यूनर तथा कीलिंग** (Nuner and Keeling) ने समान स्तर के पर्यवेक्षकों के प्रति निम्नलिखित दायित्व बताये हैं :

1 प्रत्येक पर्यवेक्षक को उसी प्रकार दूसरे पर्यवेक्षकों को सहयोग करना चाहिए, जिस प्रकार के सहयोग की वह दूसरों से स्वयं के प्रति आशा रखता है।

2 अपने विभाग के कार्यों से दूसरे विभाग के कार्यों में समन्वय स्थापित करने में सहायता करनी चाहिये।

3 अच्छे कर्मचारियों की पदोन्नति तथा अन्तर्विभागीय स्थानान्तरणों को स्वीकृति देनी चाहिये।

4 अपने विभाग के कार्यों के लिए पूर्ण उत्तरदायित्व उठाना चाहिए।

5 सहकर्मियों की समस्या को समझना चाहिये।

(iii) **अधीनस्थ कर्मचारियों के प्रति दायित्व** (Towards Subordinates) अधीनस्थ कर्मचारियों के प्रति भी पर्यवेक्षक को उनके कार्य में प्रत्येक स्तर पर

सहायता करनी चाहिए। नये कर्मचारियों को काम के सम्बन्ध में आवश्यक निर्देश बहुत सरल तरीके से देने चाहिए। पर्यवेक्षक को कर्मचारियों के कार्य की सरल विधियाँ सोजनी चाहिये ताकि कम से कम परिश्रम से अधिक से अधिक कार्य हो सके। न्यूनर तथा हेयन्स (Nuner and Haynes) ने अधीनस्थों के प्रति पर्यवेक्षकों के निम्नलिखित दायित्वों का उल्लेख किया है

1 नये कर्मचारियों के चुनाव में सहायता देना।

2 नये कर्मचारियों को काम प्रारम्भ करने में सहायता करना।

3 अधीनस्थों को अधिक दायित्व उठाने के योग्य बनाने के लिए प्रशिक्षण देना।

4 प्रत्येक कर्मचारी को इस सम्बन्ध में जानने के लिए सहायता देना कि उसे क्या करना है किस प्रकार करना है तथा परिणामों का निरीक्षण करना।

5 समय समय पर कर्मचारियों की योग्यताओं का मूल्यांकन करना तथा पदोन्नति स्थानान्तरण सेवा मुक्ति या वेतन समायोजन के लिए सिफारिश करना।

6 अच्छे काम करने वालों की प्रशंसा करना तथा प्रोत्साहन देना।

7 अधिकारों का प्रत्यायोजन करना तथा अपनी समझ बढ़ाना।

8 अधीनस्थों में सहयोग, सहिष्णुता तथा दलीय भावना का विकास करना।

9 कर्मचारियों के मनोबल को बनाना, बढ़ाना तथा उनके परिवादों को शीघ्र निपटाना।

10 अनुशासन बनाये रखना अनुपस्थिति पर नियन्त्रण रखना तथा समय की पाबन्दी को प्रोत्साहन देना।

11 निष्पक्ष भाव से कर्मचारियों में व्यक्तिगत रुचि लेना।

12 कर्मचारियों के साथ नम्रता, कुशल नेतृत्व, क्षमता, चातुर्य आदि का प्रयोग करना तथा उन्हें मनुष्य के रूप में समझना।

(iv) **कार्यालय कार्य के प्रति दायित्व** (Towards Office Work)—प्रत्येक पर्यवेक्षक को अपने विभाग के कार्यों के सम्बन्ध में भी कुछ दायित्व निभाने पड़ते हैं। वह अपने विभाग के सभी कार्यों के भली प्रकार निष्पादन के लिए उत्तरदायी माना जाता है। अतः उसे अपने विभाग के कार्यों का निर्धारण करना पड़ता है। उन *कार्यों को विभिन्न कर्मचारियों में बाँटना भी पर्यवेक्षक का ही दायित्व है।* **न्यूनर तथा हेयन्स** (Nuner and Haynes) के अनुसार एक कार्यालय पर्यवेक्षक के अपने कार्यालय कार्य के सम्बन्ध में निम्नलिखित दायित्व होते हैं —

1 प्रत्येक कार्य की योजना बनाना तथा उसकी विस्तृत पद्धति एवं कार्य विधि निर्धारित करना।

2 सभी कर्मचारियों में उचित रूप से कार्यों का विभाजन करना।

3 यदि आवश्यक हो तो विभिन्न विभागों तथा उपविभागों के कार्यों में समन्वय स्थापित करना।

4 यह ध्यान रखना कि कार्य उचित रूप से कुशलतापूर्वक यथा समय किये जाते है।

5 प्रमाप निर्धारित करके कार्यों की मात्रा तथा किस्म को बनाये रखना।

6 कार्य की कठिनाइयो का अनुमान लगाना।

7 लागतों को कम करने के उद्देश्य से नई विधियों, उपकरणों तथा पद्धतियो का अध्ययन करना, विकास करना तथा उनका प्रयोग करना।

8 अतिरिक्त कर्मचारियो को प्रशिक्षण देना तथा विकास करना ताकि कर्मचारियों के अनुपस्थित रहने, कार्य भार बढ जाने तथा अन्य किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न हो जाने पर भी कार्य-प्रवाह में बना रह सके तथा कार्यों में देरी न हो।

(५) स्वयं के प्रति दायित्व (Towards Himself)—कर्मचारियो का स्वय के प्रति भी दायित्व होता है। न्यूनर तथा कीलिंग (Nuner and Keeling) ने पर्यवेक्षकों के स्वय के प्रति निम्नलिखित दायित्वों का वर्णन किया है :—

1 पर्यवेक्षकों को लगातार अपने व्यक्तित्व को निखारने का प्रयास करना चाहिए। इस हेतु उसे आत्म नियन्त्रण, विश्लेषणात्मक योग्यता, व्यक्तित्व, अधीनस्थो का विश्वास, पहलपन, समय की पाबन्दी, नम्रता, नेतृत्व क्षमता जैसे गुणों का विकास करना चाहिये।

2 उसे अपने विभाग के कार्यों की सभी बारीकियो का अध्ययन करना चाहिए तथा लागत घटाने का प्रयास करना चाहिए।

3 उसे सम्पूर्ण सगठन तथा सस्था के सभी कर्मचारियों का अध्ययन करना चाहिए, जिससे विभागो म अधिकाधिक सहयोग बढ सके। नये कर्मचारियों को प्रशिक्षण देना चाहिए तथा भविष्य मे पदोन्नति के अवसरो को ध्यान मे रखकर, उस पद की आवश्यकताओं का अध्ययन करना चाहिये।

4 पेशेवर सगठनो में सदस्यता प्राप्त करनी चाहिये तथा उनमें रुचि लेनी चाहिये।

5 अन्तिम प्राप्त पुस्तका, पत्रिकाओं, बुलेटिनों, तथा अन्य साहित्य का अध्ययन करना चाहिए। जिससे उसके वर्तमान एव भावी पद के कार्यों मे सुधार हो सके।

6 जहाँ कहीं भी सम्भव हो, पत्राचार या अन्य कोई पाठ्यक्रम द्वारा शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए, जिससे उसे उसके कार्य में सहायता मिलेगी।

इस प्रकार एक पर्यवेक्षक को उपर्युक्त वर्णित सभी दायित्वों को पूरा करना चाहिये।

पर्यवेक्षक की आवश्यक योग्यताएं*
(Essential Qualities of a Supervisor)

पयवक्षक का प्रमुख दायित्व कमचारियो से कम से कम परिश्रम से अधिकाधिक काय करवाना है ताकि संस्था को न्यूनतम लागत पर अधिकाधिक काय पूरा हो सके। इस दायित्व को पूरा करने के लिये एक पयवक्षक को अपने अधिनस्थ व्यक्तियो के कार्यो का नियोजन समन्वय अभिप्रेरण नियन्त्रण करने का कार्य करना है। इन कार्यों को करने के लिये उसमे कई गुणो या योग्यताओं का होना परमावश्यक है। रोश (Roche) के अनुसार एक पयवक्षक मे निम्नलिखित गुण होने चाहिये

( ) उत्तरदायित्व क्षमता (ii) निदशन योग्यता (iii) ईमानदारी (iv) दलीय भावना (v) परणाप्रद, (vi) समन्वय क्षमता (vii) प्रसन्नचित्त (viii) मितव्ययिता (ix) स्वच्छ विचारधारा (x) अच्छा व्यक्तित्व (xi) निष्पक्षता, (xii) उचित प्रतिफल दिलाना (xiii) काय के सम्बन्ध म जानकारी।

इनके अतिरिक्त अमेरिका के श्रम विभाग (Labour Department of U S A) ने भी पयवक्षक मे 14 गुणो का होना आवश्यक बताया है। एक विद्वान ने लिखा है कि 'पयवेक्षक मे गड की सी ध्यान, शेर जैसा साहस, घोडा गाडी किराये देने वाले जसा धय लोमडी जसी चतुराई चमगादड जसा अध्यापन तथा दत्य जैसी शांति होनी चाहिये। सामान्यत एक पयवक्षक मे निम्नलिखित योग्यताएँ होनी ही चाहिये

1 पेशेवर योग्यताएं* (Professional Qualities)

एक पयवेक्षक मे निम्नलिखित पेशेवर योग्यताएँ होनी ही चाहिए। इसके बिना वह अपने पद पर कभी भी कुशलतापूवक काय नही कर सकेगा। पेशेवर योग्यताएँ निम्नलिखित है—

1 काय के बारे मे पूर्ण ज्ञान (Knowledge about the Work)—प्रत्येक पयवेक्षक को अपने काय के बारे मे पूर्ण जानकारी होनी चाहिए। यदि काय की जानकारी नही होगी तो वह अपने अधीन काय कर रहे कमचारियो की गलती का न तो पकड ही सकेगा और न उसका सुधार ही कर सकेगा। अत उसे कार्य के बारे मे सम्पूर्ण जानकारी होनी चाहिए तथा उसमे उस काय को करके दिखाने की क्षमता भी होनी चाहिये।

2 उत्तरदायित्वो का ज्ञान (Knowledge of Responsibilities)—पयवेक्षको को उनके अपने दायित्वो का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। वे किसके प्रति किस सीमा तक उत्तरदायी है। इस बात की जानकारी होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त उन्हे इस बात की भी जानकारी होनी चाहिए कि उनकी बजट बनाने, विवादो को निपटाने, सामूहिक सौदेबाजी, सदेशवाहन जैसे महत्त्वपूर्ण मामलो मे उनका दायित्व किस सीमा तक है।

3. सिखाने की योग्यता (Ability to Teach)—एक पर्यवेक्षक में इस योग्यता का भी होना आवश्यक है। इसका प्रमुख कारण यह है कि जब भी एक पर्यवेक्षक कर्मचारियों को कार्य सौंपता है, तो उसे उस कार्य के सम्बन्ध में कर्मचारियों को कई बातें बतानी पड़ती हैं। इसके अतिरिक्त, उन्हें समय समय पर निर्देश देने पड़ते हैं। ये सब कार्य उसकी सिखाने की योग्यता पर बहुत अधिक निर्भर करते हैं। अतः एक पर्यवेक्षक में सिखाने की योग्यता होनी ही चाहिये। टेरी (Terry) ने उचित ही लिखा है कि सिखाने की योग्यता पर्यवेक्षण को अधिक प्रभावशाली बनाने का मुख्य साधन है। ("A prime means for making supervision more effective".)

4 कार्य प्रणाली में सुधार की योग्यता (Ability to Improve Methods)—प्रत्येक पर्यवेक्षक मशीनों, कार्यों तथा कर्मचारियों में प्रभावपूर्ण समन्वय स्थापित करके सुधार करना चाहता है। इसी प्रकार एक पर्यवेक्षक कार्य प्रणाली में सुधार करके भी कर्मचारियों की कार्य क्षमता में सुधार करना चाहता है। अत. उसमें वर्तमान कार्य प्रणाली में सुधार करने की क्षमता होनी चाहिये।

5 मानवीय सम्बन्धों के निर्माण की योग्यता (Ability to Build Human Relations)—कई पर्यवक्षकों में इस योग्यता का अभाव पाया जाता है किन्तु अच्छे पर्यवेक्षकों में इस योग्यता का पाया जाना आवश्यक है। प्रत्येक पर्यवेक्षक को अपने कर्मचारियों की भावनाओं को समझने का प्रयास करना चाहिये तथा उनका आदर करना चाहिये। उनकी कार्यक्षमता एवं योग्यता को संस्था के लिए महत्त्वपूर्ण समझना चाहिए। प्रत्येक पर्यवेक्षक में अपने कर्मचारियों की प्रशंसा करने की क्षमता होनी चाहिए तथा उनमें संस्था के प्रति अपनत्व की भावना उत्पन्न करने की भी क्षमता होनी चाहिए।

6 प्रशासन योग्यता (Administrative Skill)—पर्यवेक्षक भी एक प्रशासक होता है। उसे भी दूसरों से कार्य करवाना होता है। अत उसमें भी प्रशासन योग्यता का पाया जाना आवश्यक है। उसमें आदेश देने की क्षमता, साक्षात्कार करने की योग्यता, कर्मचारियों को सन्तुष्ट करने की क्षमता समन्वय तथा नियन्त्रण क्षमता होनी चाहिए।

7 कर्मचारियों का विकास करने की क्षमता (Ability to Develop Personnel)—एक पर्यवेक्षक में अपने अधीनस्थ कर्मचारियों का विकास करने की क्षमता होनी चाहिये। इस हेतु उसमें कर्मचारियों को समझने तथा उनकी योग्यताओं को परखने की क्षमता होनी चाहिये। तभी वह अपने कर्मचारियों का उचित प्रकार से पर्यवेक्षण कर सकेगा।

II वैयक्तिक योग्यताएँ (Personal Qualities).

एक पर्यवेक्षक में पेशेवर योग्यताओं के अतिरिक्त कुछ वैयक्तिक योग्यताएँ भी होनी चाहिये। वे निम्नलिखित हैं—

8 सृजनशील मस्तिष्क (Creative mind)—यह एक कुशल पर्यवेक्षक का महत्त्वपूर्ण वैयक्तिक लक्षण है। पर्यवेक्षक में नई विधियों को खोजने, नये नये विचार उत्पन्न करने एवं नये नये प्रकार से व्यक्तियों के साथ व्यवहार करने की क्षमता होनी चाहिये। उसमें किसी भी विषय पर सूक्ष्मतापूर्वक विचार करने तथा सोचने समझने तथा परिस्थितियों के अनुकूल निर्णय करने की क्षमता होनी चाहिये।

9 व्यक्तित्व (Personality)—एक अच्छे पर्यवेक्षक का व्यक्तित्व प्रभावशाली, आकर्षक, संयमी एवं दूसरों के लिये अनुकरणीय होना चाहिये। उसके बातचीत करने का ढंग बहुत ही स्पष्ट होना चाहिये ताकि वह प्रत्येक व्यक्ति को प्रभावित कर सके। चूंकि उसे कर्मचारियों का मार्ग दर्शन करना होता है। अतः उसमें एक अच्छे मार्गदर्शन करने वाले व्यक्ति के समस्त गुण होने चाहिये। संक्षेप में प्रभावशाली व्यक्तित्व में निम्न बातों का होना परमावश्यक है—

(i) पर्यवेक्षक में आत्मसंयम होना चाहिये।
(ii) छोटी छोटी बातों पर आवेश नहीं आना चाहिये।
(iii) समस्या का शीघ्र निराकरण करने की योग्यता होनी चाहिये।
(iv) कथनी एवं करनी में समानता होनी चाहिये।
(v) दूसरे के विचारों एवं सुझावों का आदर देना चाहिये।
(vi) अवसर के अनुकूल कार्य करने की क्षमता होनी चाहिये।
(vii) उसमें समस्या को समझ कर तुरन्त निर्णय करने की क्षमता होनी चाहिये।
(viii) दूसरों को अभिप्रेरित करने की क्षमता होनी चाहिये।
(ix) दूसरों के साथ मिलकर कार्य करने की क्षमता होनी चाहिये।

10 चरित्र (Character)—पर्यवेक्षक में चरित्र का बहुत अधिक महत्त्व है। यदि हम यह कहें कि पर्यवेक्षक के चरित्र पर ही समस्त विभाग का चरित्र निर्भर करता है तो भी कोई अतिशयोक्ति न होगी। अतः पर्यवेक्षक का शुद्ध एवं अच्छा चरित्र होना परमावश्यक है। अच्छे चरित्र से ही वह उत्साह, साहस, महत्त्वकांक्षा से सम्पन्न हो कार्य कर सकेगा, किसी भी गलत बात का दृढ़तापूर्वक विरोध कर सकेगा और दूसरों के समक्ष अपने वस्तु का भली प्रकार प्रस्तुत कर सकेगा।

11 दूरदर्शिता (Foresightedness)—पर्यवेक्षक जो कार्य करता है उसे केवल आज को ध्यान में रखकर ही नहीं करना चाहिये। उसे प्रत्येक कार्य भविष्य को ध्यान में रखकर करना चाहिये। उसे प्रत्येक कार्य के भविष्य के परिणामों से अवगत रहना चाहिये। आधुनिक समय में जबकि किसी भी कर्मचारी को हटाना या उसकी सेवा की शर्तों में परिवर्तन करना कठिन है, पर्यवेक्षक को विशेष रूप से दूरदर्शी होकर कार्य करना चाहिए।

12. निष्पक्षता (Equality)—पर्यवेक्षक को किसी के साथ पक्षपात नहीं करना चाहिए। सब कर्मचारियों को समान समझना चाहिए। सबके लिये समान नियमों एव अपनी भावनाओं का प्रयोग करना चाहिए। पर्यवेक्षक में उस गुण का अभाव होने पर वह कभी भी किसी भी कर्मचारी का विश्वास प्राप्त नहीं कर सकता है। अतः कर्मचारियों का विश्वास प्राप्त करने के लिए उसमे निष्पक्षता का गुण होना ही चाहिए।

13 सम्प्रेषण क्षमता (Communicating Ability)—एक कुशल पर्यवेक्षक मे सम्प्रेषण योग्यता होना बहुत आवश्यक है। अपनी इस योग्यता के द्वारा ही वह अपने कर्मचारियों को आवश्यक सूचनाएँ प्रदान करता है, उन्हें उनके प्रश्नों के उत्तर देता है। कर्मचारियों को उत्प्रेरित करने के लिए समय-समय पर वार्तालाप करता है। अतः एक पर्यवेक्षक को कुशल वक्ता एव मृदुभाषी होना चाहिए।

14 उदार विचारधारा वाला (Open Minded)—पर्यवेक्षक को कभी भी दृढ विचारधारा नहीं रखनी चाहिये। उन्हें सदैव उदार विचारधारा वाला बनना चाहिए। उसे दिन-प्रतिदिन की परिस्थितियों से नई-नई बातें सीखनी चाहिए एव उसके अनुकूल ही अपने आपको ढालने का प्रयास करना चाहिए।

15 आशावादी (Optimist)—प्रत्येक व्यक्ति को सदैव आशावादी दृष्टिकोण ही अपनाना चाहिये। कभी भी निराश होकर नहीं बैठ जाना चाहिये। पर्यवेक्षक भी कभी-कभी अपने कार्यों एव प्रयासों की असफलताओं को देखकर निराश हो सकता है, किन्तु उसे ऐसी प्रकृति नहीं अपनानी चाहिये। उसे भविष्य के लिए सदैव आशान्वित रहना चाहिए। तब ही वह सफलता प्राप्त कर सकेगा।

प्रभावशाली पर्यवेक्षण के सिद्धान्त
(Principles of Effective Supervision)

अथवा

प्रभावशाली पर्यवेक्षण के लिए आवश्यक बातें
(Essentials for Effective Supervision)

प्रभावशाली पर्यवेक्षण के लिए कई बातें ध्यान मे रखनी पडती हैं। कार्यालय पर्यवेक्षण का कार्य आसान कार्य नहीं है। किन्तु, सामान्यतः निम्न बातों पर ध्यान देकर प्रभावशाली पर्यवेक्षण किया जा सकता है —

1. पक्षपात रहित (No Favoratism)—अच्छा तथा प्रभावशाली पर्यवेक्षण के लिये पर्यवेक्षक को पक्षपात रहित व्यवहार करना चाहिये। उसकी इच्छा का पर्यवेक्षण में कोई स्थान नहीं होना चाहिए। सभी कर्मचारियों के साथ समान रूप से व्यवहार करना चाहिये।

2 **भागीदारी देना** (Give Participation)—पर्यवेक्षक सर्वेसर्वा नहीं हो सकता है। उसके अपने विचार एव कार्य के तरीके ही श्रेष्ठ हों यह आवश्यक नहीं है। अत पर्यवेक्षकों को चाहिये कि कार्य करने के तरीकों के सम्बन्ध में कर्मचारियों से सुझाव आमन्त्रित करें तथा उनके सुझावों को उचित महत्व दें। पर्यवेक्षक जब कर्मचारियों के सुझावों को महत्व देगा तो उसका पर्यवेक्षण का कार्य सरल हो जावेगा तथा कर्मचारियों के मन की भावनाओं को भी सन्तुष्टि मिल सकेगी।

3 **सभी नियमों एव उपनियमों को शीघ्र लागू करना चाहिये** (Enforce All Rules and Regulations Promptly) प्रभावशाली पर्यवेक्षण के लिए आवश्यक है कि कर्मचारियों को उनके कार्यों से सम्बन्धित नियमों एव उपनियमों को शीघ्रातिशीघ्र बता देना चाहिये तथा उन पर लागू कर देना चाहिये। ऐसा करने से कर्मचारियों पर अनुशासनिक कार्यवाही करने की आवश्यकता भी नहीं रहती है तथा कार्यालय के कार्य में एकरूपता भी बनी रहती है। यदि नियमों को तत्काल नहीं बताया तथा लागू किया जाता है तो नियमों तथा कार्यों में भी देरी होती है तथा कार्यों में एकरूपता भी नहीं आ पाती है।

4 **सरल निर्देश देना चाहिये** (Issue Simple Instructions)—पर्यवेक्षक को अच्छा पर्यवेक्षण करने के लिये सरल निर्देश देने चाहिये। सरल निर्देशों को कर्मचारी एक ही बार में भली प्रकार समझ जाते हैं। इसके अतिरिक्त नये कर्मचारी निर्देश समझने में कुछ समय लगता है उनको बार बार निर्देश दे देना चाहिये ताकि वे निर्देशों को भली प्रकार समझ सकें। ऐसे कर्मचारियों के साथ बहुत धैर्य एव सहिष्णुता का व्यवहार करना चाहिए।

5 **उचित कार्यभार** (Reasonable Work Load)—कर्मचारियों को उचित कार्यभार सौंपना चाहिए। कार्य भार देते समय उनकी कार्यक्षमता के अनुसार में होना चाहिए। किसी भी कर्मचारी के पास न तो अधिक कार्यभार होना चाहिए और न कार्य कम ही होना चाहिए। प्रत्येक कर्मचारी को उतना ही कार्य सौंपना चाहिए जिसे वह आसानी से पूरा कर सके तभी पर्यवेक्षण किया जा सकेगा अन्यथा पर्यवेक्षण का कोई लाभ नहीं होगा।

6 **अपव्यय को रोकना** (Watch Waste) पर्यवेक्षण करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि कार्यालय में किसी भी प्रकार अपव्यय न हो। पर्यवेक्षक को इस प्रकार व्यवस्था करनी चाहिए कि न तो समय का अपव्यय हो और न स्टेशनरी तथा अन्य वस्तुओं का ही। एक विद्वान ने *उचित ही लिखा है कि* **'सभी प्रकार के अपव्ययों पर ध्यान देने से होने वाले कार्यों की मात्रा महत्वपूर्ण रूप से बढ़ेगा।**

7 **सदेशवाहन व्यवस्था** (Information System)—पर्यवेक्षण की सफलता के लिए आवश्यक है *कि प्रत्येक विभाग में सन्देशवाहन की पर्याप्त व्यवस्था उपलब्ध* हो। यह पर्यवेक्षक का दायित्व है कि वह कर्मचारियों को उनसे सम्बन्धित सभी

सूचनाओ से उन्हे अवगत करवाये। इसके अतिरिक्त, सस्था की नीतियो तथा उनके अर्थो से भी कर्मचारियो को अवगत करवाना पर्यवेक्षको का दायित्व है। कर्मचारियो को यथा समय पर्याप्त सूचनाएँ पहुँचा कर पर्यवेक्षण मे सफलता प्राप्त की जा सकती है।

8 **पर्यवेक्षण के सम्बन्ध मे कर्मचारियो के विचारो को जानना चाहिए** (Secure Employees Opinions Regarding Supervision)—पर्यवेक्षण को प्रभावशाली बनाने के लिए पर्यवेक्षण के सम्बन्ध मे कर्मचारियो के विचारो की भी जानकारी की जानी चाहिए। यह जानकारी प्रवृत्ति जांच (Attitude Survey), साक्षात्कार, विचार विमर्श, बातचीत आदि के द्वारा की जा सकती है। कर्मचारियो की आशाओ एव आकाक्षाओ के अनुसार पर्यवक्षण तकनीक अपनाकर अच्छा पर्यवेक्षण किया जा सकता है।

9 **क्षमतावान सहायको का विकास करना चाहिये** (Develop Capable Assistants)—अच्छा पर्यवेक्षण अच्छे पर्यवेक्षको पर ही निर्भर करता है। अत प्रत्येक पर्यवेक्षक को अपने अच्छे एव क्षमतावान सहायको का विकास करना चाहिए, ताकि वे जब पदोन्नति के कारण दूसरे स्थान या पद पर चले जाये तो वे सहायक उनके स्थान पर एक कार्य कुशल पर्यवेक्षक के रूप मे कार्य कर सकें।

10 **पर्यवेक्षीय क्रियाओ की सूचना** (Information of Supervisory Actions)—पर्यवेक्षण की प्रभावशालीनता के लिए यह भी आवश्यक है कि पर्यवेक्षको द्वारा किए जाने वाले कार्यो तथा लिए गए निर्णयो की जानकारी उच्च प्रबन्धको को भी होनी चाहिए। पर्यवेक्षको द्वारा लिए गए प्रत्येक निर्णय तथा किए गए प्रत्येक कार्य पर उच्च प्रबन्धको की सहमति मिलने से उनका प्रभाव बढ जाता है।

अभ्यास के लिए प्रश्न

1 कार्यालय पर्यवेक्षण से आपके क्या तात्पर्य है? इसके लक्षणो का वर्णन कीजिये।
What do you mean by Office Supervision? Discuss its characteristics

2 प्रभावशाली पर्यवेक्षणो के सिद्धान्तो का वर्णन कीजिये।
Discuss the principle of Effective Supervision.

3 पर्यवेक्षक से आपका क्या तात्पर्य है? एक अच्छे पर्यवेक्षक के गुणो का वर्णन कीजिये।
What do you mean by a Supervisor? Discuss his qualities of a Good Supervisor

4 एक पर्यवेक्षक के कर्त्तव्यों का वर्णन कीजिये ।
Discuss the duties of a Supervisor.

5 प्रभावशाली कार्यालय निरीक्षण से आप क्या समझते हैं ? अपने कार्यालय कर्मचारियों का निरीक्षण करते हुये एक निरीक्षक के समक्ष कौनसी समस्याएँ आती हैं ?
What do you know by effective office supervision ? What problems does an office supervisor face while supervising his office staff

6 एक कार्यालय निरीक्षक या अधीक्षक के कर्त्तव्यों का विवेचन कीजिये ।
Discuss the duties of an office supervisor

4

मानवीय सम्बन्ध तथा कार्यालय सेविवर्गीय नीतियाँ

(Human Relations and Office Personnel Policies)

"We must feed spirit too, not just the body."

— *John D. Rockefeller, III*

आधुनिक व्यावसायिक जगत् मे दो समस्याओ पर विशेष चर्चा हुआ करती है। प्रथम, मानवीय समस्या तथा द्वितीय, तकनीकी समस्या। तकनीकी समस्याएँ प्रबन्धको के समक्ष अब कोई चुनौती नहीं रही हैं। तकनीकी समस्याओं का प्रबन्धको ने हल ढूँढ लिया है। वे चाँद पर चढने की कल्पना को साकार बना चुके हैं। किन्तु मानवीय समस्या आज भी प्रबन्धको के समक्ष ज्यों की त्यो खडी है। यह एक ऐसी समस्या है, जो जटिलतम समस्याओ से भी जटिल समस्या है, क्योकि मनुष्य एक दूसरे से मानसिक योग्यताओ, भावात्मक विचारो, परम्पराओ, दृष्टिकोणो आदि सभी रूपों मे भिन्न होता है। इतना नही उनकी भिन्न-भिन्न मान्यताएँ होती है, आर्थिक आवश्यकताओ के अतिरिक्त सामाजिक एव मानवीय आवश्यकताएँ होती है, असीम मात्रा मे सोचने, समझने वार्तालाप करने की क्षमता भी होती है। अतएव मानवीय साधनो को व्यवसाय मे प्रयुक्त करना प्रबन्धको के समक्ष सबसे बडी समस्या है। मानवीय सम्बन्ध विचारधारा इस समस्या का एक समाधान प्रस्तुत करती है।

परिभाषा एव अर्थ—मानवीय सम्बन्धो की अनेक विद्वानो ने अनेक परिभाषाएँ दी हैं, उनमे से कुछेक निम्न प्रकार हैं—

कीथ डेविस (Keith Davis) के अनुसार, "मानवीय सम्बन्ध मनुष्यो का किसी एक कार्य स्थिति मे इस प्रकार का एकीकरण है, जिससे उन्हे आर्थिक मनोवैज्ञानिक और सामाजिक सन्तोष के साथ-साथ उत्पादकता एव सहयोगात्मक रूप से कार्य करने की अभिप्रेरणा है।"[1]

---

1. "Human relations is the integration of people into a work situation that motivates them to work together productively, and with economic, psychological and social satisfaction —Keith Devis

जोसेफ एल मेसी (Joseph L Massie) के मतानुसार, "मानवीय सम्बन्ध किसी स्थिति विशेष में व्यक्तियों के अभिप्रेरणा की एक प्रक्रिया है, जो उद्देश्यों में सन्तुलन स्थापित करके अधिकाधिक मानवीय सन्तुष्टि प्रदान करेगी तथा संस्था के उद्देश्यों की पूर्ति में सहयोग प्रदान करेगी।[1]

मेकफारलेण्ड (McFarland) के शब्दों में मानवीय सम्बन्ध कार्यरत व्यक्तियों की क्रियाओं प्रवृत्तियों भावनाओं तथा अन्तर्सम्बन्धों के ज्ञान एवं समझ द्वारा मानवीय साधनों के सदुपयोग का अध्ययन एवं व्यवहार है।[2]

रोबर्ट साल्टनस्टाल (Robert Saltonstall) ने एक छोटी सी परिभाषा देते हुए लिखा है कि मानवीय सम्बन्ध कार्यरत व्यक्तियों का अध्ययन है।"[3]

मेयर (Norman Maier) के शब्दों में मानवीय सम्बन्ध व्यक्तियों के साथ व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से व्यवहार करना है।[4]

उपर्युक्त परिभाषाओं का अध्ययन करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मानवीय सम्बन्ध वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा कार्यरत व्यक्तियों की शारीरिक मानसिक एवं सामाजिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि कर, उन्हें अभिप्रेरित किया जाता है और संस्था के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए व्यक्तियों का सहयोग प्राप्त किया जाता है।

इस सम्बन्ध में यह बात ध्यान रखने योग्य है कि मानवीय सम्बन्ध विचारधारा एक दर्शन मात्र है न कि किन्हीं सिद्धान्तों का समूह। यह विचारधारा इस बात पर बल देती है कि मनुष्य मशीन का एक पुर्जा मात्र नहीं है तथा वह केवल आर्थिक लाभ की प्राप्ति के लिए ही कार्य नहीं करता है बल्कि उसकी अपनी आवश्यकताएँ तथा मान्यताएँ हैं। इसीलिए मानवीय सम्बन्ध विचारधारा इस बात पर बल देती है कि प्रबन्धकों को चाहिए कि वे कर्मचारियों को यह महसूस करने का अवसर दें कि वे संस्था के लिए अत्यन्त लाभप्रद एवं महत्त्वपूर्ण हैं।

विशेषताएँ—इन सभी परिभाषाओं का अध्ययन करने से मानवीय सम्बन्ध की निम्न विशेषताएँ प्रकट होती हैं।

(i) मानवीय सम्बन्ध एक प्रक्रिया है।

(ii) यह कार्यरत व्यक्तियों के अध्ययन पर आधारित है।

---

1 'Human relations is process of effective motivation of individuals in a given situation in order to achieve a balance of objectives that will yield greater human satisfaction and help accomplish Company goals."
—Joseph L. Massie

2 Human relation is the study and practice of utilizing human resources' through knowledge and understanding of the activities attitudes sentiments and interrelationship of people at work —Dalton E McFarland

3 'Human relation is the study of people in action
— Robert Saltonstall

4 Human relations is getting along with people either as individuals or a groups '
—Norman Maier

(iii) इस प्रक्रिया में लोगों को अभिप्रेरित किया जाता है अर्थात् लोगो की शारीरिक, मानसिक, सामाजिक आदि आवश्यकताओं को सन्तुष्ट किया जाता है।

(iv) मानवीय सम्बन्ध लोगो से सहयोग स्थापित करने के उद्देश्य से स्थापित किये जाते हैं।

(v) इसके द्वारा मनुष्यो एवं संस्था के उद्देश्यो मे सन्तुलन स्थापित किया जाता है।

(vi) इसका उद्देश्य मनुष्यो को कार्य-सन्तुष्टि प्रदान करना।

(vii) ये मानवीय साधनों के सदुपयोग मे सहयोग पहुँचाते हैं।

(viii) यह व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप से स्थापित किया जा सकता है।

मानवीय सम्बन्ध आन्दोलन का उद्भव एवं विकास
(Origin and Development of Human Relations Movement)

मानवीय सम्बन्ध आन्दोलन के उद्भव की निश्चित तिथि को ढूँढना असम्भव नही, तो कठिन अवश्य है। कुछ विद्वानो का मत है कि मानवीय सम्बन्ध आन्दोलन का जन्म एल्टन मायो (Elton Mayo) तथा उसके सहयोगियों के हॉथोर्न प्रयोगों (Hawthorne Experiments) के समय सन् 1925 और 1930 की अवधि मे ही हुआ। इसके बाद चेस्टर आई० बर्नार्ड (Chester I Barnard) तथा अन्य लेखको की कृतियो ने भी इस आन्दोलन को गति प्रदान की। बर्नार्ड (Barnard) के अनुसार मानवीय सम्बन्ध प्रबन्धक, कर्मचारी, जनता तथा राजनैतिक सम्बन्धों का सारतत्व है और अधिकांश परिस्थितियों मे यह विज्ञान, टेक्नालाजी, कानून तथा वित्त आदि प्रबन्धकीय कार्यो की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।[1] कुछ श्रम सघ आन्दोलन का विकास तथा द्वितीय विश्व युद्ध की सेविवर्गीय समस्याएँ तथा युद्धोत्तर काल के--व्यवसायिक विकास की परिस्थितियो ने इस आन्दोलन को और भी गति प्रदान की।

मानवीय सम्बन्ध विचारधारा का जन्म मूलत सामाजिक विज्ञानों के परिणामस्वरूप हुआ है। समाजशास्त्र, मनोविज्ञान शास्त्र, सामाजिक मनोविज्ञान, मानव शास्त्र आदि सामाजिक विज्ञान की मुख्य-मुख्य शाखाएँ हैं, जिनका इस आन्दोलन मे महान् योगदान रहा है। अनेक मनोवैज्ञानिको, समाजशास्त्रियो, मानव शास्त्रियों न इस सम्बन्ध मे अनेक खोजें की हैं और परिणामस्वरूप यह आन्दोलन इस स्थिति में पहुँच सका है। आज यह आन्दोलन दिन-प्रतिदिन तीव्र होता जा रहा है। इसके कई कारण हैं। आगे वर्तमान समय म इस विचारधारा के महत्त्व को भली प्रकार स्पष्ट किया गया है।

---

1 'Human relations are the essence of managerial, employee public and political relations and in most cases these rather science, technology, law for finance and the central areas of executive functions "

—C. I Barnard

मानवीय सम्बन्धो की आवश्यकता एव महत्व
(Need and Importance of Human Relations)

आज प्रबन्ध मे मानवीय सम्बन्धो का महत्वपूर्ण स्थान है। आधुनिक प्रबधक मानवीय सम्बन्धो की स्थापना करके ही व्यवसाय का सचालन करना चाहता है। यह अच्छे प्रबध की प्राथमिक आवश्यकता है। आधुनिक प्रबन्ध अपने कुल समय का 50 से 75 प्रतिशत तक केवल मानवीय समस्याओ के समाधान मे ही लगता है। अच्छे मानवीय सम्बन्धो वाली सस्था का सदैव निर्बाध गति से विकास होता रहता है। फौलर मेककौमिक (Powle McCormick, Chairman, Board of International Harvester Co) ने तो यहाँ तक कहा है कि **"अमेरिका के उद्योगो का अस्तित्व मानवीय सम्बन्धो की सफलता पर ही निर्भर करता है।"** सक्षेप मे मानवीय सम्बन्धो की आवश्यकता एव महत्व को निम्न शीर्षको के अन्तर्गत अध्ययन किया जा सकता है

1 मानवीय आवश्यकताओ की पूर्ति करने के लिए वर्तमान युग म मानवीय सम्बन्धो के निर्माण का महत्व सर्वाधिक रूप से मानवीय आवश्यकताओ की सतुष्टि करने के दृष्टिकोण से ही है। मनुष्य की शारीरिक, सामाजिक, मानसिक, आदि विभिन्न प्रकार की आवश्यकताए होती है। इन आवश्यकताओ की पूर्ति करना प्रबन्धक का प्रमुख कर्तव्य होता है और प्रबन्धक इन आवश्यकताओ की सतुष्टि अच्छे मानवीय सम्बन्धो का निर्माण करके ही कर सकता है।

2 मनोबल बढाने के लिए—मानवीय सम्बन्धो की आवश्यकता कर्मचारियो के मनोबल के निर्माण के लिए भी होती है। मनोबल को सक्षप म कार्य करने की इच्छा के रूप मे परिभाषित किया जा सकता है। वास्तव म अच्छे मानवीय सम्बन्धो का निर्माण करके कर्मचारियो की कार्य के प्रति रुचि उत्पन्न की जा सकती है।

3 मानवीय साधनो का सदुपयोग—मानवीय सम्बन्ध विचारधारा को स्वीकार करके मानवीय साधनो का पूर्ण रूप से सदुपयोग किया जा सकता है। जब अच्छे मानवीय सम्बन्धो मे सस्था का प्रत्येक व्यक्ति सतुष्ट होता है और उसमे कार्य करने की इच्छा जाग्रत की जाती है तो निश्चित ही मानवीय साधनो का सदुपयोग किया जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति की अधिकतम कार्य कुशलता का लाभ संस्था को मिलता है।

4 ***मितव्ययी एव श्रेष्ठ उत्पादन***—प्रत्येक व्यक्ति की अधिकतम कार्यक्षमता का सदुपयोग करके कम से कम लागत पर अविबाधित एव अच्छा से अच्छा उत्पादन किया जा सकता है। परिणामस्वरूप सस्था की प्रतिस्पर्धात्मक स्थिति सुदृढ होती है।

5 औद्योगिक शांति—अच्छे मानवीय सम्बन्धो का आधुनिक युग मे सर्वाधिक महत्व इसलिए भी है कि इसके द्वारा देश मे औद्योगिक शाति की स्थापना की

जा सकती है। आज प्रबन्धक अपना अधिकांश समय औद्योगिक झगडो को निपटाने एव रोकने मे ही लगा देते है। आये दिन हडताल, तालाबन्दी, दगे फिसाद आदि देखने को मिलते ही हैं। इन सबको रोकने या कम करने के लिए उद्योग मे मानवीय सम्बन्धों की स्थापना बहुत ही आवश्यक है।

6. सामाजिक उत्तरदायित्व—*प्रबन्धकों का यह सामाजिक उत्तरदायित्व भी* है कि वे सस्था मे तथा सस्था के बाहर अच्छे मानवीय सम्बन्धो का निर्माण करें। केवल कर्मचारियो मे ही मानवीय सम्बन्धों की स्थापना करना पर्याप्त नहीं है। प्रबन्धको को अपने ग्राहको, समाज, सरकार, पूर्तिकर्त्ताओ आदि सभी मे मानवीय सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए। ऐसा होने पर ही देश का तीव्र आर्थिक विकास सम्भव है।

7. प्रबन्धकीय कार्यों का निष्पादन—प्रबन्धकीय कार्यों का निर्बाध गति मे निष्पादन करने मे अच्छे मानवीय सम्बन्धो का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रबन्धक अच्छे मानवीय सम्बन्धो के द्वारा कर्मचारियों से नियोजन एव निर्णयन मे पूर्ण सहयोग प्राप्त कर सकते है। परिणामस्वरूप, नियोजन एव निर्णयो को क्रियान्वित करना भी सरल हो जाता है। समन्वय करना भी प्रबन्धको के समक्ष कोई समस्या नही रहती है। स्वत समन्वय को प्रोत्साहन मिलता है।

8 श्रम सघों का विकास—आधुनिक युग मे मानवीय सम्बन्धो का विकास करना अत्यावश्यक इसलिए भी है कि आजकल श्रम सघो का तीव्र विकास हो रहा है और श्रम सम्बन्धो को सुदृढ बनाए रखना कठिन हो गया है। ऐसी परिस्थिति मे प्रबन्धको ने अब यह उचित ही समझा है कि मानवीय सम्बन्धो का समुचित रूप से विकास किया जाए।

9 शिक्षा का प्रसार—शिक्षा का ज्यो-ज्यो विस्तार हो रहा है, त्यो-त्यो सामान्य श्रमिक भी शिक्षित होता जा रहा है। अविकसित राष्ट्रो के श्रमिक भी दिन-प्रतिदिन शिक्षा प्राप्ति मे रुचि ले रहे हैं। शिक्षा ने उनकी समझ एव मानसिक स्थिति मे विकास किया है। परिणामस्वरूप अब वे प्रबन्धको से स्वत ही मानवीय सम्बन्धों की माग करते हैं। वे स्वय सस्था मे हिस्सेदारी की माग करते हैं और सस्था के प्रत्येक पहलू के सम्बन्ध मे जानकारी रखना चाहते हैं।

10 अनुसधान—पिछले लगभग पाच दशको से मानवीय सम्बन्धो के क्षेत्र मे काफी अनुसधान होने लगे हैं। कई समाजशास्त्रियो, मनोवैज्ञानिको, मानवशास्त्रियो आदि ने इस क्षेत्र मे बहुत कुछ लिखा है एव अनुसधान किए हैं। **एल्टन मायो** (Elton Mayo) एव उनके साथियो ने हॉथोर्न प्रयोग करके उस क्षेत्र के विकास मे सर्वाधिक योगदान दिया है और उद्योगो मे मानवीय सम्बन्धो पर अत्यधिक जोर दिया जाने लगा है।

11. नैतिक दायित्व—*उद्योगो मे मानवीय सम्बन्धों* की स्थापना करना प्रबन्धकों का एक नैतिक दायित्व भी है। प्रत्येक प्रबन्धक का यह नैतिक दायित्व है

कि वह अपने कर्मचारियों के प्रति सम्मानजनक भावना रखे, उनके प्रति सहानुभूति रखे तथा उनके साथ मानवोचित व्यवहार करे।

मानवीय सम्बन्ध विचारधारा की मान्यताएँ
(Assumptions of Human Relations Approach)

मानवीय सम्बन्ध विचारधारा की कुछ आधारभूत मान्यताएँ हैं जो निम्न प्रकार की हैं—

1 मनुष्य की आवश्यकताएँ (Human Needs)—मानवीय सम्बन्ध विचारधारा की प्रथम मान्यता यह है कि मनुष्य की केवल भौतिक आवश्यकताएँ ही नहीं हैं तथा मनुष्य केवल अर्थ प्राप्ति के लिए ही कार्य नहीं करता है। मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं के अतिरिक्त सामाजिक एवं मानसिक आवश्यकताएँ भी होती हैं जिनकी सन्तुष्टि केवल धन द्वारा नहीं की जा सकती है। इन आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिए प्रबन्धकों को मानवीय व्यवहार की आवश्यकता पड़ती है।

2 वैयक्तिक भिन्नता (Individual Differences)—इस विचारधारा की द्वितीय महत्त्वपूर्ण मान्यता यह है कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से भिन्न होता होता है। उसकी सामाजिक एवं मानसिक स्थिति में अन्तर होता है। अतएव मनुष्यों से व्यवहार करते समय इन व्यक्तिगत भिन्नताओं को ध्यान में रखना परमावश्यक है।

3 व्यावसायिक सगठन एक सामाजिक सगठन भी है (Business Organisation is also a Social Organisation)—यह विचारधारा इस मान्यता पर भी आधारित है कि एक व्यावसायिक संस्था या सगठन सामाजिक सगठन भी है। अतएव प्रत्येक कर्मचारी का व्यवहार उस सगठन के अन्य कर्मचारियों से प्रभावित होता है।

4 पारस्परिक हित (Mutual Interest)—इस विचारधारा की यह भी मान्यता है कि एक समूह के व्यक्तियों का पारस्परिक हित होता है। प्रबन्धक, श्रमिकों, सेवायोजकों तथा श्रम सघों आदि सभी का पारस्परिक हित होता है और अपने पारस्परिक हितों के कारण ही वे एक साथ कार्य करते हैं।

5 अन्तर विषयक दृष्टिकोण (Inter disciplinary Approach)—मानवीय सम्बन्ध विचारधारा की यह भी मान्यता है कि यह विभिन्न विषयों से सम्बन्धित है, जो मानवीय व्यवहार को समझने तथा मानवीय समस्याओं को सुलझाने में महान् योगदान देते हैं।

6 कर्मचारियों की अनेक आकांक्षाएँ (Variety of Expectations)—यह विचारधारा इस मान्यता पर भी आधारित है कि कर्मचारियों की कई आकांक्षाएँ होती हैं और मनुष्य उन आकांक्षाओं से प्रेरित होकर कार्य करते हैं। अतः उनकी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिये तथा उनका सहयोग प्राप्त करने के

लिए कार्य मूलक भूमिका तथा अनौपचारिक समूह मूलक भूमिका को मान्यता देना आवश्यक है।

7 कर्मचारियों को समूहों में कार्य करने से मानसिक सन्तुष्टि मिलती है।

8 कर्मचारियों को अधिकाधिक मानसिक सन्तुष्टि देने तथा उनकी उत्पादकता बढ़ाने के लिए उन्हें प्रबन्धक में सहभागिता देना आवश्यक है।

9 मानवीय सम्बन्ध विचारधारा कुशल संचार व्यवस्था को अनिवार्य आवश्यकता मानती है।

10 मानवीय सम्बन्ध विचारधारा की यह भी मान्यता है कि प्रबन्धकों को मानवीय सम्बन्ध के व्यवहार का प्रशिक्षण दिया जा सकता है।

11 मनुष्य को विभिन्न साधनों से अभिप्रेरित किया जा सकता है।

12 यह विचारधारा यह भी मानती है कि अच्छे मानवीय सम्बन्धों के विकास के लिए अनौपचारिक समूहों का विकास करना चाहिए।

13 सभी कर्मचारी अच्छा नेतृत्व प्राप्त करना चाहते हैं तथा सभी लोगों की उत्पादन क्षमता नेतृत्व पर निर्भर करती है।

14 सभी कर्मचारी किसी एक सीमा तक अपने कार्य में आत्मनिर्भरता एवं स्वतन्त्रता प्राप्त करना चाहते हैं।

15 व्यक्ति समाज में रहना चाहते हैं, तथा सभी व्यक्ति समाज में प्रतिष्ठा एवं स्तर प्राप्त करना चाहते हैं।

मानवीय सम्बन्धों के सिद्धान्त
(Principle of Human Relations)

अच्छे मानवीय सम्बन्धों के निर्माण के लिए अमरिका के मानव शक्ति आयोग (Man power Commission) ने द्वितीय विश्व युद्ध के समय निम्न सिद्धान्त बताये थे—

1 लोगों के साथ वैयक्तिक रूप से व्यवहार करना चाहिए।

2 प्रत्येक व्यक्ति को यह जानने देना चाहिए कि वे किसके साथ हैं।

3 यथासमय सम्मान देना चाहिए।

4 उन परिवर्तनों के बारे में पहले ही बताना चाहिए जो भविष्य में होने वाले हों।

5 प्रत्येक व्यक्ति की व्यक्तिगत योग्यता का सर्वोत्तम उपयोग करना चाहिए।

इनके सिद्धान्तों के अतिरिक्त कई विद्वानों ने कई अन्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। संक्षेप में हम उन सिद्धान्तों का नीचे सकलन करेंगे—

1 व्यक्ति का महत्त्व (Importance of Individual)—मानवीय सम्बन्ध विचारधारा का पहला सिद्धान्त यह कहता है कि व्यक्ति की भावनाओं को महत्त्व

श्यकता पड़े, सामान्यतः उस स्तर के अधिकारी को निर्णय लेने का अधिकार प्रदान करना चाहिए।

8 दलीय कार्य तथा समूह प्रयत्नों को प्रोत्साहन (Encouragement of Team Work and Group Efforts)—यह सिद्धान्त यह कहता है कि दलीय कार्य एवं सामूहिक प्रयत्नों को प्रोत्साहित करना चाहिए। चूँकि व्यक्तिगत प्रयासों की अपेक्षा सामूहिक प्रयास अच्छे परिणाम उत्पन्न कर सकते हैं। अतएव इस सिद्धान्त का विशेष महत्त्व है। सामूहिक प्रयत्नों के द्वारा ही संस्था में सहयोग की भावना का विकास किया जा सकता है।

9 प्रजातान्त्रिक एवं अनुमोदन वातावरण का विकास (Development of Democratic and Permissive Climate)—मानवीय सम्बन्धों के निर्माण के लिए यह सिद्धान्त इस बात पर बल देता है कि संस्था में प्रजातान्त्रिक वातावरण का निर्माण किया जाए। संस्था में प्रभुत्व एवं आधिपत्य से काम करवाने के बजाए अभिप्रेरणा देकर कार्य करवाया जाना चाहिए।

10 सतत् अभिप्रेरण (Constant Motivation)—मानवीय सम्बन्धों के निर्माण के लिए अभिप्रेरणा की प्रक्रिया सतत् रूप से चलनी चाहिए। आधुनिक युग में व्यक्ति को निदेशित एवं नियन्त्रित करके कार्य नहीं करवाया जा सकता है, बल्कि उसे अभिप्रेरित करके ही काम करवाया जा सकता है।

11. अनुकूल प्रवृत्तियों का विकास(Development of Positive Attitudes)—यह सिद्धान्त यह मत व्यक्त करता है कि कर्मचारियों की प्रवृत्ति या मनोवृत्ति के अनुकूल ही कार्य-वातावरण का विकास करना चाहिए। चूँकि व्यक्ति का व्यवहार वातावरण से प्रभावित होता है। अतएव मानवीय सम्बन्धों के निर्माण में इस बात का ध्यान रखना बहुत ही आवश्यक है।

मानवीय सम्बन्ध विचारधारा की आलोचनाएँ
(Criticism of Human Relations Concept)

अनेक विद्वानों ने मानवीय सम्बन्ध विचारधारा की कटु आलोचना भी की है। प्रो० मैलकोलम पी० मैक्नेयर (Malcolum P McNair) ने इसे एक खतरनाक विचारधारा बताया है और लिखा है कि "मानवीय सम्बन्धों पर अत्यधिक अवलम्बित रहने से यह लोगों को स्वयं के लिए खेद प्रकट करने, उत्तरदायित्वों से बचने, असफलताओं एवं गलतियों के लिए क्षमा मांगने तथा बच्चों की सी हरकतें करने के लिए प्रोत्साहित करती है।"[1]

डेविड रीजमेन (David Riesman) का यह मत है कि "मानवीय सम्बन्धों ने राक्षसपन' (Monstrosity) को जन्म दिया है।' पीटर ड्रकर (Peter Druc-

---

1 Too much emphasis on human relations encourages people to feel sorry for themselves makes it easier for them to slough off responsibility to find excuses for failure, to like children." —Malcolum P. McNair

ker) का भी यह मत है कि "मानवीय सम्बन्ध विचारधारा जिस रूप में विद्यमान है उसने ऋणात्मक योगदान ही दिया है। इसने प्रबन्धकों को दूषित एवं गलत विचारों से मुक्त अवश्य किया है, किन्तु यह नये-नये विचारों के विकास में सफल नहीं हो सकी है।"

हरबर्ट ओ० इबी (Herbert O Eby) ने इस विचारधारा के प्रभावों को स्पष्ट करते हुए 1958 में लिखा है कि "मैं अन्तःकरण से इस बात पर विश्वास करता हूँ कि पिछले एक दशक से मानवीय सम्बन्धों पर अत्यधिक बल दिया जाता रहा है। कर्मचारियों का बहुत पोषण किया जा रहा है। जैसे कि हमारे कारखाने व्यावसायिक सगठन न होकर अर्द्ध सामाजिक सगठन हो। मानवीय सम्बन्ध असभ्य लोगों का ऐसा देवता बन चुका हो जिसे संस्थाएँ सब कुछ ठीक रखने के लिए उसे मानती है।[1] स्पष्ट है इस विचारधारा की अनेकों विद्वानों ने अनेकों प्रकार से आलोचनाएँ की है। संक्षेप में इस विचारधारा की निम्न प्रमुख आलोचनाएँ की जाती है—

1 **समूह पर अत्यधिक बल** (Too much Emphasis on Group)—सबसे पहले यह आलोचना की जाती है कि मानवीय सम्बन्ध विचारधारा समूह पर बहुत अधिक बल देती है तथा वैयक्तिक पहलू की उपेक्षा करती है। विलियम एच. व्हाइटे (William H Whyte) ने इसी आधार पर आलोचना करते हुए लिखा है कि 'यह विचारधारा व्यक्ति की अपेक्षा समूह को अधिक महत्त्वपूर्ण मानती है।" किन्तु अच्छे मानवीय सम्बन्धों के लिए व्यक्तिगत मान्यता को सर्वोपरि माना जाता है। इस प्रकार यह विरोधाभास आलोचनाओं का कारण बना है।

2 **आर्थिक पहलू की उपेक्षा** (Ignores Economic Aspect)—इस विचारधारा की आलोचना का कारण यह भी रहा है कि यह विचारधारा आर्थिक पहलू की उपेक्षा करती है। यद्यपि यह सही है कि मनुष्य की सामाजिक एवं मानवीय आवश्यकताएँ बहुत महत्त्वपूर्ण होती हैं और मनुष्य केवल धनोत्पत्ति के लिए ही कार्य नहीं करता है, किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि प्राणी धनोत्पत्ति पर ध्यान ही नहीं देता है। मनुष्य एक आर्थिक प्राणी है। वह धन की कामना भी करता है, और धन कमाना भी चाहता है और जब उसकी वित्तीय आवश्यकताएँ सतुष्ट हो जाती है, तभी वह गैर वित्तीय आवश्यकताएँ सन्तुष्ट करने की ओर ध्यान देता है।

---

1. "I sincerely believe that over the past decade we have had an overdose of 'human relations'—too much pampering of Employees, as if our factories were quasi-social institutions rather than business organisations Human relations has become a fetish with companies undertake in order to keep up-to-date "
—Herbert O Eby

3 सीमित अनुसंधानों पर आधारित (Based on Limited Researches)—मानवीय सम्बन्ध विचारधारा अभी तक सीमित अनुसन्धानों पर ही आधारित है और इन सीमित अनुसधानों के आधार पर निकाले गए निष्कर्षों को सभी उपक्रमों पर लागू करना अनुचित है। जब तक इस सम्बन्ध में विस्तृत अध्ययन पूरे नहीं हो जाते है, तब तक इस विचारधारा का किसी भी प्रकार से सामान्यीकरण (Generalization) करना असगत ही होगा।

4 सघर्षों पर कुदृष्टि (A Bad view about Conflicts)—यह विचार धारा सदैव सघर्षों को बुरा मानकर उनकी उपेक्षा करने पर जोर देती है। यह विचारधारा सघर्षों को समाप्त करके सामूहिक लगाव, एकता तथा सहयोग स्थापित करने पर बल देती है। किन्तु सघर्षों को सदैव रोकना अनुचित है। जीव स्वय सघर्षमय है। सघर्ष ही जीवन मे नये मोड लाता है और सघर्ष ही वास्तविक जीवन है।

5 प्रशिक्षण असम्भव (Impossible to Train)—कुछ लोग यह मत व्यक्त करते हैं कि मानवीय सम्बन्धो का कभी प्रशिक्षण दिया नहीं जा सकता है। प्रबन्धक मानवीय सम्बन्धो को व्यवहार मे स्वत सीखता है। कुछ लोग तो यह भी मत व्यक्त करते है कि यदि प्रशिक्षण दिया भी गया तो उसका कोई उचित प्रभाव देखने को नही मिलेगा।

6 मानवीय व्यवहार के सम्बन्ध मे उपलब्ध ज्ञान निश्चित नहीं है। अत इस पर विश्वास भी नहीं करना चाहिए।

7 यह विचारधारा श्रम सघ विरोधी है जो श्रम सघो पर ध्यान नही देती है।

8 इस विचारधारा ने प्रबन्ध को किसी नई विचारधारा का जन्म नहीं दिया है।

9 यह विचारधारा कार्य पर कम ध्यान देती है तथा आपसी सम्बन्धों एव अनौपचारिक समूहो पर सर्वाधिक बल देती है।

10 यह विचारधारा अनावश्यक ही मनुष्यो के बारे मे विशेष रूप से सोचने को बाध्य करती है।

11 कुछ लोगो का यह भी कहना है कि यह विचारधारा वैयक्तिक निर्णयो के सामूहिक निर्णयो को अधिक महत्त्व देती है, जो अनुचित है।

मानवीय सम्बन्धो के सुधार के लिए सुझाव
(Suggestions to Improve Human Relations)

मानवीय सम्बन्धों का सुधार केवल मन मे सोचने से ही नहीं हो जाता है, बल्कि सस्था मे अच्छे मानवीय सम्बन्धो के निर्माण करने के प्रयास किये जाते हैं।

क्लेरेन्स फ्रांसिस (C Francis Ex President of the General Food Corporation, U S A) ने नवतन एग्जामिनर आफ मन्युफैक्चरर्स अमरिका के समक्ष भाषण में उचित ही कहा है कि "आप एक व्यक्ति का समय खरीद सकते हैं, आप मनुष्य की शारीरिक उपस्थिति क्रय कर सकते हैं, आप निश्चित संख्या में प्रति घंटा या प्रति मनुष्य की स्नायुगति क्रय कर सकते हैं, लेकिन आप उसका उत्साह नहीं खरीद सकते, आप उसकी स्वामिभक्ति नहीं खरीद सकते, आप उसके दिल, दिमाग एवं आत्मा की निष्ठा या भावना नहीं खरीद सकते। आपको ये बातें उसमें उत्पन्न करनी होंगी"[1] मानवीय सम्बन्धों का निर्माण करना पड़ता है। संक्षेप में मानवीय सम्बन्धों का निर्माण करने के लिए निम्न सुझावों को कार्यान्वित किया जा सकता है।

1. उचित वातावरण (Suitable Environment)—मानवीय सम्बन्धों को उचित रूप से लागू करने के लिए उचित वातावरण की आवश्यकता पड़ती है। अतएव मानवीय सम्बन्धों को संस्था के मूलदर्शन (Basic Philosophy) के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए, जिससे प्रत्येक स्तर के प्रबन्धकों को नये वातावरण में समायोजित होने में कठिनाई अनुभव नहीं होगी।

2 मानवीय आवश्यकताओं की सन्तुष्टि (Satisfaction of Human Needs)—अच्छे मानवीय सम्बन्धों के निर्माण के लिए एक महत्त्वपूर्ण सुझाव यह भी है कि प्रबन्धकों को श्रमिकों की मानवीय आवश्यकताएँ सन्तुष्ट करने का प्रयास करना चाहिए। इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखना चाहिए कि शारीरिक आवश्यकताओं को आसानी से सन्तुष्ट किया जा सकता है किन्तु मानसिक एवं सामाजिक आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करना एक सरल कार्य नहीं है। अतएव उन आवश्यकताओं को सावधानीपूर्वक सन्तुष्ट करने का प्रयास करना चाहिए। उन्हें किसी प्रकार का मानसिक दृष्टि से अनुचित अनुभव न हो, कार्य का वातावरण उचित एवं उपयुक्त हो। प्रबन्धकों को उन सभी वित्तीय तथा अवित्तीय साधनों को प्रयुक्त करना चाहिए, जिन्हें वे अभिप्रेरणा देने के लिए प्रयुक्त करते हैं।

3 मानवीय सम्बन्ध प्रशिक्षण (Human Relations Training)—मानवीय सम्बन्ध विचारधारा को अपनाने से पूर्व प्रबन्धकों को मानवीय सम्बन्धों के निर्माण में दक्ष होना चाहिए। उन्हें इस सम्बन्ध में आवश्यक प्रशिक्षण प्राप्त करना चाहिए। प्रबन्धकों को मानवीय सम्बन्धों पर समय समय पर होने वाले सेमीनारों

---

1 You can buy a man's time, you can buy a man's physical presence at a given place, you can buy a measured number of skilled muscular motions per hour or day, But you cannot buy enthusiasm, you can not buy initiative, you cannot buy loyalty, you cannot buy the devotion of hearts, minds and souls. You have to earn things.
—C Francis
Ex President, General Food Corporation U S A, 'Human Relations', Time, April 14, 195-

एवं प्रशिक्षण कार्यक्रमों में भाग लेना चाहिए ताकि वह बदलते हुए परिवेश में मानवीय सम्बन्धों की बदलती हुई विचारधारा को समझ सके तथा व्यवहार में लागू कर सके।

4 **पुरानी मान्यताओं में परिवर्तन** (Change in Old Assumption)—प्रबन्धकों को श्रमिकों तथा उनके सगठनों के प्रति बनी हुई पुरानी मान्यताओं को समाप्त करने का प्रयास करना चाहिए, तथा उनके प्रति नये दृष्टिकोण से सोचना चाहिये। प्रबन्धकों को यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि कर्मचारी उत्तरदायित्व को स्वीकार कर सकते हैं तथा निभा सकते हैं। इसके अतिरिक्त उन्हें अब यह भी स्वीकार कर लेना चाहिए, कि श्रम संघ एवं श्रमिकों के अन्य समूह मानवीय सम्बन्धों के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं।

5 **शिकायत तथा परिवेदना निवारण की उन्नति व्यवस्था** (Proper Machinery for Removal of Complaints and Grievances)—अच्छे मानवीय सम्बन्धों के निर्माण के लिए कर्मचारियों की शिकायतों तथा परिवेदनाओं के निवारण के लिए उचित व्यवस्था करनी चाहिए। कर्मचारियों की शिकायतों एवं कठिनाइयों को यथासमय उचित रूप से हल कर दिया गया, तो कर्मचारी अपनी सम्पूर्ण क्षमता से कार्य करने लगेंगे तथा संस्था अपने लक्ष्यों को समुचित रूप से प्राप्त कर सकेगी। संस्था में उच्च किस्म का अनुशासन बना रह सकेगा तथा देश में औद्योगिक शान्ति बनी रह सकेगी।

6. **श्रमिकों की आवश्यकताओं के अनुरूप कार्य** (Work to the Needs of Workers)—जहाँ तक सम्भव हो सके। श्रमिकों को उनकी अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप ही कार्य सौंपना चाहिए, जिससे कि वे उचित प्रकार से कार्य कर सकेंगे और जिससे उन्हें कार्य सतुष्टि (Job Satisfaction) प्राप्त होगी।

7 **उचित नेतृत्व** (Proper Leadership)—अच्छा प्रबन्धक सदैव अच्छे मानवीय सम्बन्धों का निर्माण करता है। अतः श्रमिकों के प्रत्येक समूह का नेतृत्व करने वाला व्यक्ति योग्य हो तथा साथ ही साथ वह नेतृत्व करने की कला का ज्ञान भी रखता हो। रेनसिस लिकर्ट (Rensis Likert) ने **कर्मचारी केन्द्रित पर्यवेक्षण** (Employee-centred Supervision) को महत्त्व दिया था। जब प्रबन्धक अपने प्रत्येक निर्णय को लेने से पूर्व कर्मचारियों के दृष्टिकोण से सोचता है, तो वे निर्णय आसानी से क्रियान्वित करवाये जा सकते हैं।

8 **कुशल सचार व्यवस्था** (Effective Communication Process)—**राबर्ट डी० बर्थ** (Robert De Berth) के अनुसार **"बिना सदेशवाहन के मानवीय सम्बन्ध असम्भव हैं।"** (It is impossible to have human relations without Communication.) अतएव संस्था में कुशल सचार व्यवस्था का होना बहुत ही आवश्यक है। प्रबन्धक अपनी नीति एवं विचार श्रमिकों तक पहुँचा कर उन्हें वस्तु

स्थिति से अवगत करवा सकते हैं तथा दूसरी ओर श्रमिक अपने विचार शिकायत सुझाव आदि सभी प्रबन्धकों तक पहुँचा सकते हैं। इससे उन दोनों के बीच की खाई को पाटा जा सकता है। उनमें आपसी विवाद बढ़ नहीं पाते हैं।

9 कर्मचारी परामर्श (Personnel Counselling)—कर्मचारियों की कठिनाई के समय उचित परामर्श देकर भी मानवीय सम्बन्धों को दृढ़ बनवाया जा सकता है। व्यक्तिगत जीवन में कई कठिनाइयाँ आती हैं और कर्मचारी ऐसे समय में भयभीत हो सकता है। प्रबन्धक ऐसे समय में सहायता दे सकता है। यदि आवश्यक हो तो संस्था में एक परामर्शदाता (Counsellor) की नियुक्ति भी की जा सकती है। इस परामर्शदाता को कर्मचारियों की सामाजिक पारिवारिक तथा व्यक्तिगत समस्याओं पर परामर्श देना पड़ता है।

10 सुझाव (Suggestion)—संस्था की दिन प्रतिदिन की अनेकों समस्याओं के निराकरण के लिए कर्मचारियों से सुझाव माँगे जा सकते हैं। सुझाव देने वाले कर्मचारियों को यह आत्म सतोष होता है कि वे संस्था की क्रियाओं में सम्मिलित रूप से भाग ले रहे हैं। कई बार कई संस्थाएँ सुझाव पद्धति को अपनाकर अपने कर्मचारियों के विचारों की जानकारी करती हैं और उपयुक्त एवं अच्छे सुझाव देने वाले कर्मचारियों को पुरस्कार भी देती हैं।

11 कर्मचारियों की प्रबन्ध में सहभागिता (Workers Participation in Management)—अच्छे मानवीय सम्बन्धों के निर्माण के लिये कर्मचारियों का संस्था के प्रबन्ध में हिस्सेदारी भी दी जा सकती है। कई देशों में कर्मचारियों को प्रबन्ध में सहभागिता दी गई है जिसके परिणाम काफी लाभप्रद रहे हैं। भारत में भी सहभागिता का प्रचलन दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। इससे प्रबन्ध व्यवस्था प्रजातान्त्रिक बन जाती है तथा कर्मचारी प्रबन्ध को अपना प्रबन्ध समझते हैं। इससे उनमें संस्था के प्रति अपनेपन की भावना का विकास होने लगता है।

12 विकास के अवसर (Opportunities for Development)—विकास के अवसरों को देखकर कई बार अच्छे से अच्छा व्यक्ति भी छोटे से छोटे पद पर कार्य करने को तैयार हो जाता है। जब संस्था में कर्मचारी को पदोन्नति प्रशिक्षण आदि के उचित अवसर उपलब्ध होते हैं तो वह सन्तुष्ट होता है। इससे उसकी कुछ मानसिक एवं कुछ सामाजिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि होती है और संस्था में मानवीय सम्बन्ध सुदृढ़ होते हैं।

13 कर्मचारियों को मानवोचित सम्मान प्रदान करना चाहिए।

14 प्रबन्धकों को सामाजिक उत्तरदायित्वों को पूरा करके संस्था के बाहर भी मानवीय सम्बन्धों को सुदृढ़ करने का प्रयास करना चाहिए।

15 अच्छी कर्मचारी नीतियों का विकास करना चाहिए।

सेविवर्गीय नीतियाँ
(Personrel Policies)

परिभाषायें एव अर्थ (Definitions and Meaning)

फ्लिप्पो (Flippo) के अनुसार, "नीति एक मानव निर्मित नियम अथवा पूर्व निश्चित कार्य प्रणाली है, जो सगठन के उद्देश्यो की पूर्ति के लिये किये जाने वाले कार्यो का मार्ग दर्शन करती है। यह एक दीर्घकालीन योजना है जो कर्मचारियों को अपना कार्य करने के लिए मार्ग दर्शनी करती है।"[1]

क्यूमिग (Cuming) के मतानुसार, "एक उपक्रम की नीति से तात्पर्य इसके लक्ष्यो एव उद्देश्यो के स्पष्ट, उचित तथा पूर्व घोषणा से है।"[2]

इस प्रकार स्पष्ट है कि नीतियाँ सस्था के पूर्व उद्देश्यो की पूर्ति के लिए मार्ग दर्शन का साधन हैं। यह प्रबन्धको के कार्यो का निर्देशन करती हैं। यह भविष्य का व्यवहार पूर्व निर्धारण है।

विशेषतायें (Characteristics)

1 नीतियाँ मानव निर्मित नियमो का समूह है।

2 नीतियाँ एक निश्चित कार्य प्रणाली प्रदान करती हैं।

3 नीतियाँ कार्यो के करने मे मार्ग दर्शन प्रदान करती हैं।

4 ये नीतियाँ प्रबन्धको एव सस्था के कर्मचारियो के कार्यो को प्रभावित करती है।

5 ये भविष्य के व्यवहार को निश्चित करती हैं।

6 नीतियाँ कार्यो का निर्देशन करती हैं, वे स्वय कार्य नही हैं।

7 नीतियाँ उद्देश्य भी नही है।

8 अधीनस्थ कर्मचारियो के लिए ये नीतियाँ स्थाई आदेश का कार्य करती हैं।

9 ये नीतियाँ औपचारिक एव अनौपचारिक दोनो प्रकार की हो सकती हैं।

10. ये नीतियाँ लिखित हो भी सकती हैं और नही भी।

सेविवर्गीय नीतियो के उद्देश्य
(Objects of Personnel Policies)

सेविवर्गीय नीतियो के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

1 उपलब्ध तथ्यो को ध्यान मे रखते हुये उनका विश्लेषण करना।

---

1 "A policy is a man made rule or pre-determined course of action that is established to guide the preformance of work towards the organisation It is type of standing plan that serve to guide subordinates in the execution of their tasks" —Edwin B. Flippo

2. "The policy of an organisation is a clear-cut statement of its aims and objectives, setting out what is to be achieved." —M W Cuming

2 प्रबन्धकों एवं कर्मचारियों में पारस्परिक विश्वास की परिस्थितियाँ उत्पन्न करना।

3 कर्मचारियों को उचित पारिश्रमिक प्रदान करना जिससे उनका उचित योग प्राप्त किया जा सके।

4 श्रमिकों को काम की सुरक्षा प्रदान करना ताकि उन्हें उनकी भविष्य की कठिनाइयों एवं दुखों से छुटकारा मिल सके।

5 सम्बन्धित पक्षकारों के हितों की रक्षा करना।

6 कुशल एवं योग्य व्यक्तियों को विकास का अवसर प्रदान करना।

7 कर्मचारियों में संस्था के प्रति आत्मीयता का विकास करना।

8 कर्मचारियों को निर्णय पालन में सहायता पहुँचाना।

9 सेवा की उचित शर्तों का निर्धारण करना तथा उसे व्यवहार में लागू करना। जिससे अच्छे श्रम सम्बन्धों का निर्माण किया जा सके।

10 कर्मचारियों के कार्यों को मान्यता प्रदान करना।

11 श्रेष्ठ कर्मचारियों का चुनाव करना तथा संस्था में बनाये रखना।

सेविवर्गीय नीति की आवश्यकता एवं महत्व
(Need and Importance of Personnel Policy)

सेविवर्गीय नीतियों की आवश्यकता प्रत्येक कार्यालय को होती है। किन्तु व्यवहार में कितने ही ऐसे कार्यालय देखने को मिल जायेंगे जिन्होंने कभी भी नीतियों का निर्माण नहीं किया है किन्तु फिर भी वे वर्षों से कुशलतापूर्वक व्यवसाय का सचालन कर रहे हैं। भारत एक ऐसा ही देश है जहाँ पर अधिकांश कार्यालयों में आज तक भी कोई सेविवर्गीय नीति घोषित नहीं की गई है। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि सेविवर्गीय नीतियों का कार्यालय के सचालन में कोई स्थान नहीं है। वास्तव में किसी भी कार्यालय के कुशल सचालन के लिये सेविवर्गीय नीतियों का होना परमावश्यक है। इससे कर्मचारियों का व्यवहार निश्चित हो जाता है। कर्मचारियों के साथ प्रबन्धकों के सम्बन्ध सुदृढ़ हो जाते हैं, कर्मचारियों में संस्था के प्रति अपनापन की भावना का विकास होता है। निश्चित नीतियों के होने पर प्रबन्धकों का व्यवहार निश्चित हो जाता है किसी के साथ भेदभाव की सम्भावना नहीं रहती है तथा निर्णयों में एकरूपता आने लगती है। केल्हून (Calhoon) के अनुसार "सेविवर्गीय नीतियाँ कार्यों के निष्पादन के लिए मार्गदर्शन देती हैं। ये सामान्यतः निर्णय के लिए प्रमाप या आधार प्रस्तुत करती हैं।" सामान्यतः सेविवर्गीय नीतियों की आवश्यकता इनसे प्राप्त होने वाले निम्न लाभों के सदर्भ में है—

1 आधारभूत आवश्यकताओं का चिंतन—बीच (Beach) के अनुसार सेविवर्गीय नीतियों का निर्माण करने में सगठन तथा कर्मचारियों दोनों की आधार

भूत आवश्यकताओं का चिन्तन किया जाता है। अतएव प्रबन्धक को नीतियों के निर्माण करते समय सभी बातों पर विचार करने का अवसर मिल जाता है तथा संस्था की क्रियाओं को परम्परा तथा अन्य संस्थाओं की क्रियाओं के अनुरूप बनाया जा सकता है।

2 पक्षपात की समाप्ति—सेविवर्गीय नीतियों की स्थापना का द्वितीय महत्त्वपूर्ण लाभ यह है, कि पक्षपात की सम्भावना नहीं रहती है। जो नीतियां निर्धारित कर दी गई, वे सभी कर्मचारियों पर समान रूप से लागू की जा सकती है।

3 आपसी मनमुटाव की समाप्ति—नीतियों को सभी कर्मचारियों पर समान रूप से लागू करने से आपसी मन-मुटाव नहीं होता है।

4. स्थानान्तरणों एवं परिवर्तनों का प्रभाव नहीं—नीतियों के निर्धारण करने के बाद यदि किसी अधिकारी या प्रबन्धक का स्थानान्तरण हो जाता है या अन्य किसी प्रकार से प्रबन्धकों या अधिकारियों का परिवर्तन हो जाता है, तो संस्था की क्रिया पर किसी भी प्रकार का विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता है। निश्चित नीतियां सदैव संस्था या विभाग के साथ बनी रहती हैं। किन्तु अनिश्चित नीतियों या निश्चित नीतियों के अभाव की दशा में स्थानान्तरणों एवं परिवर्तनों से संस्था की क्रियाएँ बहुत अधिक प्रभावित होंगी।

5 नियन्त्रण—नीतियाँ एक प्रकार का प्रमाप है, जिनके द्वारा व्यावसायिक क्रियाओं एवं अधिकारियों या कर्मचारियों की क्रियाओं का नियन्त्रण किया जाता है।

6 निश्चित मार्ग दर्शन—नीतियां किसी भी मामले के सम्बन्ध में निर्णय लेने के लिए निश्चित मार्ग दर्शन करती हैं। इससे निर्णय लेना बहुत आसान हो जाता है। इसके अतिरिक्त इससे निर्णयों में एकरूपता भी बनी रहती है। यदि किसी मामले पर विचार हो जाय तो उसका निपटारा भी नीतियों के आधार पर आसानी से किया जा सकता है।

7 उत्साह एवं निष्ठा—सुनिश्चित नीतियों के द्वारा व्यक्तियों में उत्साह एवं निष्ठा की भावना उत्पन्न होने लगती है। सुनिश्चित नीतियों के द्वारा कर्मचारियों को भविष्य के प्रति निश्चित किया जा सकता है, उन्हें सेवा की सुरक्षा प्रदान की जा सकती है। इनसे कर्मचारियों में उत्साह एवं निष्ठा की भावना का विकास किया जा सकता है।

8 विकेन्द्रीकरण में सरलता—निश्चित नीतियों के आधार पर अधिकारों का विकेन्द्रीकरण भी सरलता से किया जा सकता है। कभी-कभी अच्छी नीतियां स्वयं विकेन्द्रीकरण को प्रोत्साहित भी करती हैं।

9 निश्चित नीतियों के द्वारा सामान्य व्यवहार का स्तर निर्धारित हो जाता है।

10 उनकी सहायता से मौद्रिक एवं मानवीय कर्मचारी प्राप्त किया जा सकता है।

सविवर्गीय नीतियों के सिद्धान्त या तत्व
(Principles or Elements of Personnel Policies)

सविवर्गीय नीतियां स्पष्ट होनी चाहिए। इस हेतु सेविवर्गीय नीतियों के निर्माण में निम्न सिद्धान्तों या तत्वों को ध्यान में रखना चाहिए।

1 व्यक्तिगत विकास का सिद्धान्त (Principle of Personal Development)—अमरिका की एक प्रमुख तेल कम्पनी के उपाध्यक्ष का मत है, कि किसी भी संस्था की मानव सम्पत्ति का अत्यधिक महत्त्व है। यदि संस्था को बढ़ाना है तथा समृद्ध होना है, तो उसको सुरक्षित रखना चाहिए तथा उसे विकसित एवं विस्तृत करना चाहिए।[1] यह सिद्धान्त एक ऐसा सिद्धान्त है जिसे सदैव ही दोहराया जाता है किन्तु व्यवहार में लागू बहुत कम किया जाता है। इसीलिए एडम कुर्ले (Adam Curle) ने लिखा है कि कई देश अर्द्ध विकसित हैं क्योंकि उनके व्यक्ति अर्द्ध विकसित हैं। उन्हें अपनी छिपी हुई योग्यताओं को विकसित करने का अवसर नहीं मिलता है।[2] अतः यह सिद्धान्त बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण है। इस सिद्धान्त का पालन करने से संस्था के कर्मचारियों का स्तर बढ़ता है उनका मनोबल बढ़ता है। कर्मचारी एक दूसरे को देखकर निराश नहीं होते हैं। वे अपने व्यवसाय सम्बन्धी सभी बातों के जानकार होते हैं। इन सबका परिणाम यह होता है कि संस्था की समृद्धि होती है।

2 सही व्यक्ति सही स्थान पर का सिद्धान्त (Principle of Right man on Right job)—सेविवर्गीय नीतियों का द्वितीय महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त यह है कि संस्था के कर्मचारियों के चुनाव में वैज्ञानिक पद्धति अपनाई जाय। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि कर्मचारियों का चुनाव पर्याप्त सूझ बूझ के साथ किया जाय तथा सही व्यक्ति सही स्थान पर (Right man on the right job) लगाया जाय। सही व्यक्ति को सही स्थान पर नियुक्त करने से ही संस्था का कार्य कुशलता पूर्वक किया जा सकता है। किन्तु इसके विपरीत परिस्थितियों में संस्था में कार्य सुचारु रूप से नहीं चल सकता तथा वाञ्छित सफलता प्राप्त नहीं की जा सकती है। व्यक्तियों को नियुक्त करने समय उनकी रुचियों एवं योग्यताओं को ध्यान में रखना परमावश्यक है।

---

1 'The human assets of any company are of great economic value they must be conserved cultivated and enhanced if the company is to prosper and grow —Vincent W[illegible]king

2 Countries are underdeveloped because most of their people are underdeveloped having had no opportunity of expanding [illegible] capabilities in the service of society —Adam Curle

3. मानवीय साधनों के प्रभावशाली प्रयोग का सिद्धान्त (Principle of Effective use of Human Resourses)—यह सिद्धान्त यह बताता है कि एक संस्था में मनुष्यों को प्रभावशाली तरीके से प्रयोग किया जाय। इसका तात्पर्य यह है कि व्यक्तियों से उचित प्रकार से कार्य करवाया जाय, कर्मचारियों को मनुष्य के रूप में समझा जाय तथा उनकी मानवीय भावनाओं का आदर किया जाय। यह सिद्धान्त इस बात पर भी बल देता है कि मनुष्यों से कार्य करवाने के लिये, उनको उत्प्रेरणा (Motivation) देने की आवश्यकता पड़ती है।

4 सन्देशवाहन का सिद्धान्त (Principle of Communication)—सेविवर्गीय नीतियों के लिये संदेशवाहन का सिद्धान्त अत्यन्त महत्व का है। सूचनाओं के प्रसारण करने, कर्मचारियों के विवादों एवं मतभेदों को दूर करने, गलतफहमियों एवं भ्रमों के निवारण करने, जैसे अनको महत्वपूर्ण पहलुओं के लिये सन्देशवाहन परमावश्यक है। विलसेन्ट विल्किंग (Wilcent Wilking) के अनुसार "कर्मचारियों को संस्था के सभी क्रियात्मक क्षेत्रों तथा सभी स्तरों की क्रियाओं एवं योजनाओं के सम्बन्ध में सूचनाएँ मिलनी ही चाहिये, ताकि वे मानवीय सम्बन्धों के पहलुओं पर मार्गदर्शन एवं सलाह दे सकें।"[1]

5 सहभागिता का सिद्धान्त (Principle of Co-operativeship)—यह सिद्धान्त इस बात पर बल देता है, कि कर्मचारियों को सहभागिता देने से आपसी सम्बन्ध सुदृढ़ बनते हैं, संस्था के कर्मचारियों का मनोबल बढ़ता है तथा उनको कार्य करने में उत्प्रेरणा मिलती है। सहभागिता होने से कर्मचारी संस्था को अपनत्व की दृष्टि से देखते हैं। इसका अन्ततोगत्वा परिणाम यह होता है कि संस्था की कार्यकुशलता बढ़ती है उत्पादन बढ़ता है और अच्छे श्रम सम्बन्धों का सूत्रपात होता है। विलसेन्ट विल्किंग (Wilcent Wilking) के मतानुसार यदि "सेविवर्गीय प्रशासन को सम्पूर्ण संस्था में अपना सर्वाधिक योगदान देना है, तो इसे नियोजन में भाग लेना चाहिये।" ("If personnel administration is to make greatest contribution to the total enterprise, it must participate in planning ") अतएव कर्मचारियों को विभिन्न निर्णयों में हिस्सेदारी देनी ही चाहिये।

6. न्याय का सिद्धान्त (Principle of Equity)—यह सिद्धान्त इस बात को स्पष्ट करता है, कि संस्था के सभी व्यक्तियों के साथ न्याय या समानता का व्यवहार हो। संस्था की नीतियों, विधियों, नियमों आदि सभी को सभी पर समान

---

1. "The personnel staff should be kept aware of, and, should have access to, information concerning plans and, activities at all levels and in all functional areas of the company, so that it can provide counsel and advice concerning their human relations aspects " —Wilcent Wilking

रूप से लागू किया जाय। दूसरे शब्दों में, यह भी कहा जा सकता है, कि संस्था में सबके साथ पक्षपात रहित व्यवहार हो। कर्मचारियों की भर्ती, पदोन्नति, छुट्टियाँ वेतन एवं उनके सभी अधिकारों में न्याय के सिद्धान्त का पालन करना चाहिये।

7 उचित पारिश्रमिक का सिद्धान्त (Principle of Fair Reward) मनुष्य सदैव धन की लालसा से ही कार्य नहीं करता है और धनोत्पत्ति ही उसका एकमात्र ध्येय नहीं होता है किन्तु एक उद्देश्य अवश्य होता है। मनुष्य की आर्थिक आवश्यकताएँ बहुत भयानक होती है और इनकी सन्तुष्टि न होने पर उसका मस्तिष्क नाना कार्य करने वाला व्यक्ति भी तोड़ फोड़ दंगे फसाद हिंसा आदि पर उतर आता है। अतएव प्रत्येक कर्मचारी को उचित पारिश्रमिक अवश्य मिलना चाहिये। उचित पारिश्रमिक प्रदान करने से हम यह तो नहीं कह सकते हैं कि शत प्रतिशत अशान्ति समाप्त हो जायगी या उचित पारिश्रमिक औद्योगिक शान्ति का मूलमन्त्र है किन्तु हम इतना अवश्य कह सकते हैं कि उचित पारिश्रमिक प्रदान करके उनकी अनेकों आवश्यकताओं की सन्तुष्टि की जा सकती है, मानसिक चिन्ताओं से मुक्ति प्रदान की जा सकती है तथा उनकी कार्यक्षमता में वृद्धि की जा सकती है।

8 श्रम प्रतिष्ठा का सिद्धान्त (Principle of Dignity of Labour) — यह सिद्धान्त यह बताता है कि संस्था के प्रत्येक कार्यकर्ता को समान आदर मिलना चाहिये। छोटे कार्यों जैसे झाड़ू लगाने तथा पानी भरने को तिरस्कृत दृष्टि से नहीं देखना चाहिये। ऐसे कार्य करने वालों के प्रति भी आदर का भाव होना चाहिये। लोगों में यह सिद्ध करने का प्रयास करना चाहिये कि **'कार्य ही पूजा है'** (Work is worship)। इस हेतु श्रेष्ठ कार्यकर्त्ताओं को पुरस्कार एवं प्रमाण पत्र दिये जा सकते हैं।

9 समूह भावना का सिद्धान्त (Principle of Team spirit) — यह सिद्धान्त यह कहता है कि संस्था में सबको समूह में मिल जुल कर कार्य करना चाहिये। समूह में मिल जुल कर कार्य करने से कार्य शीघ्र एवं सुन्दर होता है तथा कार्यों में अनावश्यक देरी एवं दोहराव भी नहीं होता है। इसके विपरीत इसके अभाव में कार्य शीघ्र नहीं किया जा सकता है प्रति व्यक्ति कार्य भी कम ही होता है। समूह भावना से कार्य करने से सेवायोजकों का ही हित नहीं होता है वरन् कर्मचारियों का भी हित होता है। अतः प्रत्येक कर्मचारी को समूह में रहकर समूह के हितों में ही कार्य करना चाहिये तथा समूह के उद्देश्यों को व्यक्तिगत उद्देश्यों की अपेक्षा अधिक महत्त्व देना चाहिये।

10 पृथक अस्तित्व का सिद्धान्त (Principle of Separate Entity) यह सिद्धान्त यह कहता है कि कर्मचारियों को पृथक अस्तित्व वाले व्यक्ति के रूप में भी समझना चाहिये। तभी आप अधिकाधिक श्रमिक की कुशलता का लाभ उठा

सकते हैं। जूसियस (Jucious) के अनुसार, "कर्मचारियों को उनकी आर्थिक उपयोगिता एवं तकनीकी योग्यताओं के कारण नियुक्त किया जा सकता है। लेकिन प्रबन्ध के साथ उनका सहयोग एवं आपसी व्यवहार उनके व्यक्तिगत विचार, सांस्कृतिक एवं सामाजिक व्यवहार तथा नैतिक मूल्यों द्वारा काफी बड़ी सीमा तक प्रभावित होता है।"[1] अतः कर्मचारियों के पृथक् अस्तित्व को स्वीकार करना ही चाहिये।

11. मधुर श्रम सम्बन्धों का सिद्धान्त (Principle of Good Labour Relations)—अच्छे श्रम-सम्बन्ध औद्योगिक शान्ति की कुन्जी हैं। मधुर श्रम-सम्बन्धों के अभाव में औद्योगिक शान्ति की कल्पना करना व्यर्थ है। अतएव श्रमिकों के परिवादों (Grievances) को निपटाने की कुशल व्यवस्था होनी चाहिये एवं श्रमिकों को प्रबन्ध में भागीदारी दी जानी चाहिये।

12. राष्ट्रीय समृद्धि में योगदान का सिद्धान्त (Principle of Contribution to the National Prosperity)—यह सिद्धान्त अन्तिम किन्तु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है। यह सिद्धान्त इस बात का महत्त्व प्रकट करता है कि संस्था के कर्मचारियों को अपने एवं संस्था के लिए ही कार्य नहीं करना चाहिये, बल्कि सम्पूर्ण राष्ट्र के हितों को ध्यान में रखकर कार्य करना चाहिये। प्रत्येक व्यक्ति को यह सोचना चाहिये, कि वह समाज में रहता है, समाज की कई वस्तुओं का प्रयोग करता है, समाज से सीखता है, और समाज में ही मरता है। अतः इस सम्पूर्ण समाज के लिए कार्य करने का उसका दायित्व होता है। इसलिये प्रत्येक कर्मचारी को इस बात का प्रशिक्षण एवं शिक्षा दी जानी चाहिये कि वह राष्ट्रीय समृद्धि का सर्वोपरि ध्यान में रखकर कार्य करे।

सेविवर्गीय नीतियों के स्रोत
(Sources of Personnel Policies)

सेविवर्गीय नीतियों के कई स्रोत हैं। बीच (Beach) ने कुछ प्रमुख स्रोत इस प्रकार गिनाये हैं—

1. संस्थाओं की परम्परा।

2. *समाज में पाई जाने वाली अन्य संस्थाओं या प्रतिस्पर्धी संस्थाओं की* नीतियाँ एवं व्यवहार।

3. उच्च प्रबन्धकों एवं संचालक मण्डल की विचारधारा एवं प्रवृत्ति।

4. निम्न स्तरीय तथा मध्यवर्गीय प्रबन्धकों की विचारधारा एवं प्रवृत्ति।

---

1 "Employees may be hired for their technical capacities and economic usefulness. But their cooperations and interactions with management are largely influenced by their personnel feelings, cultural and social attitudes and ethical norms." —M. J. Jucious

13 इन नीतियो को उच्च प्रबन्धको क सहयोग से निर्धारित किया जाना चाहिए।

14 नीतियां को सर्वोच्च प्रबन्धकों तथा सचालक मण्डल की स्वीकृति मिलनी चाहिए।

15 नीतियाँ देश एव राज्य के नियमा के अनुरूप ही होनी चाहिए।

सेविवर्गीय नीतियो में दी जाने वाली बातें

(Contents or Coverage of Personnel Policies)

नेशनल इन्डस्ट्रियल कान्फ्रेंस बोर्ड, (National Industrial Conferen e Board, U S A) न अनेक अध्ययनो से यह ज्ञात किया है कि सामान्यत सेविवर्गीय नीतियो मे निम्नलिखित बातो को सम्मिलित किया जाता है—

1 प्रबन्धको एव कर्मचारियो के हितो म पारस्परिक सम्बन्ध । 2 प्रबन्धको एव कर्मचारियो के बीच सहयोग की आवश्यकता । 3 सस्था क विकास का इतिहास । 4 कर्मचारियो का इतिहास । 5 सेवा की भौतिक दशाएँ । 6 परिवाद प्रक्रिया । 7 सुरक्षा नियम एव उपनियम । 8 सामान्य नीतियाँ । 9 कर्मचारियो को वित्तीय सहायता । 10 सुझाव प्रणाली । 11 शिक्षा सुविधाएँ । 12 कर्मचारियो के कार्य । 13 सामाजिक सुरक्षा तथा अन्य क्षतिपूर्ति सुविधाएँ । 14 स्वास्थ्य, चिकित्सा, तथा इसी प्रकार की अन्य क्रियाएँ । 15 सवतन अवकाश । 16 बीमारी लाभ या भत्त । 17 प्रबन्धको से किसी रुचि के मद पर विचार विमर्श की स्वतन्त्रता । 18 सस्था के स्टोर्स । 19 सामूहिक सौदेबाजी । 20 सस्था की नीतियो को प्रसारित करने की विधि । 21 अनुशासन । 22 अन्य आवश्यक बातें ।

अभ्यास के लिए प्रश्न

1 मानवीय सम्बन्धो म आप क्या समझते हैं ? कार्यालय म मानवीय सम्बन्धो का क्या महत्त्व है ?
What do you mean by human relations ? What is the importance of human relations in office ?

2 मानवीय सम्बन्धो क सुझाव दीजिए ।
Suggest measures for improvement of human relations ?

3 कार्यालय सेविवर्गीय नीतियो से आप क्या समझते हैं ? इनका क्या महत्त्व है ?
What do you mean by Office Perso nel Policies ? What is the importance of them ?

4 सेविवर्गीय नीति क तत्त्वों का वर्णन कीजिए ।
Decribe the elements of personnel po icies

5

कार्यालय कर्मचारियों का प्रशिक्षण

(Training Office Personnel)

"It is not only unfair but wastefull to have untrained people on any job or position" —*Owens—Illinois Glass Company*

प्रशिक्षण वह कार्य है जिसके द्वारा कर्मचारी की योग्यता, कार्यक्षमता एवं चातुर्य में वृद्धि की जा सकती है। इसीलिये यदि कोई भी संस्था कर्मचारियों के प्रशिक्षण की उपयोगिता पर सन्देह व्यक्त नहीं करती है और प्रत्येक संस्था नये एवं पुराने कर्मचारियों के प्रशिक्षण पर बल देती है। इतना ही नहीं, आधुनिक युग में दिन प्रतिदिन होने वाले तकनीकी परिवर्तनों, वैज्ञानिक प्रबन्ध पद्धतियों के विकास शिक्षा जगत् में होने वाले परिवर्तनों, व्यावसायिक जटिलताओं आदि ने व्यावसाय के प्रत्येक क्षेत्र में प्रशिक्षण को अनिवार्य कर दिया है।

परिभाषाएं एवं अर्थ

(Definitions and Meaning)

फिल्पो (Flippo) के मतानुसार "किसी विशिष्ट कार्य को करने के लिए कर्मचारी के ज्ञान एवं चातुर्य में वृद्धि करने के कार्य को ही प्रशिक्षण कहते हैं।"[1]

प्रोक्टर तथा थोरूटन (Proctor and Thoruton) के शब्दों में "प्रशिक्षण जानबूझ कर किया जाने वाला वह कार्य, जो किसी कार्य को सीखने के लिए साधन प्रदान करता है।"[2]

प्लान्टी कोर्ड तथा इफरसन (Planty, Cord and Efferson) ने एक परिभाषा दी है उसके अनुसार "प्रशिक्षण सभी स्तर के कर्मचारियों के उस ज्ञान, उन चातुर्यों तथा व्यवहारों का सतत् एवं विधिवत् विकास है जो कि उनके (कर्मचारियों के) तथा कम्पनी के कल्याण में योगदान देते हैं।"[3]

---

1 "Training is the act of increasing the knowledge and skill of an employee for doing a particular job" —Flippo

2 "Training is the international act of providing means for learning to take place" —Proctor and Thoruton

3 "Training is the continuous, systematic development among all levels of employees of that knowledge and those skills and attitudes which contribute to their welfare and that of the company" —Planty, Cord, and Efferson

बीच (Beach) ने भी एक संक्षिप्त एवं सारगर्भित परिभाषा दी है। उनके शब्दों में, "प्रशिक्षण वह संगठित प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति किसी निश्चित उद्देश्य के लिए ज्ञान और चातुर्य सीख सकता है।"[2]

उपर्युक्त परिभाषाओं का अध्ययन करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्रशिक्षण एक सतत् प्रक्रिया है, जिसके द्वारा कर्मचारियों के ज्ञान, चातुर्य एवं योग्यता आदि का विकास किया जाता है, जिससे वे अपने कार्य को कुशलता पूर्वक करते रह सकें व संस्था की कुशलता को बनाये रख सकें।" किन्तु इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखने योग्य बात है कि शिक्षा एवं प्रशिक्षण दोनों में पर्याप्त अन्तर होता है। शिक्षा सामान्य ज्ञान की प्राप्ति में सहायक है और शिक्षा प्राप्ति के लिये व्यक्ति स्कूलों, कालेजों, विश्वविद्यालयों आदि में अध्ययन करता है। प्रशिक्षण का आशय किसी क्षेत्र विशेष के सम्बन्ध में तकनीकी एवं विशिष्ट ज्ञान तथा चातुर्य प्राप्त करना है, जो उसे उस विशेष क्षेत्र में कार्य करने में सहायता प्रदान करता है।

लक्षण (Characteristics) प्रशिक्षण की प्रकृति को समझने हेतु ज्ञान विकास के निम्न लक्षणों को ध्यान में रखना परम आवश्यक है—

(i) प्रशिक्षण एक सतत् प्रक्रिया है।

(ii) प्रशिक्षण पूर्ण व्यवस्थित एवं नियोजित प्रक्रिया है।

(iii) प्रशिक्षण वह साधन है जिसके द्वारा व्यक्ति के चातुर्य एवं ज्ञान का विकास करना सम्भव है।

(iv) प्रशिक्षण के द्वारा कर्मचारियों की कार्यक्षमता को बढ़ाया जाता है।

(v) प्रशिक्षण कर्मचारियों एवं संस्था दोनों के हित में होता है।

(vi) प्रशिक्षण एवं शिक्षा में पर्याप्त अन्तर होता है।

प्रशिक्षण के प्रकार
(Types of Training)

विभिन्न व्यावसायिक एवं औद्योगिक संस्थाओं में विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण कार्यक्रम विभिन्न आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर निश्चित किये जाते हैं। प्रमुख प्रकार के प्रशिक्षण निम्नलिखित हैं—

1. प्रवेशात्मक अथवा सिद्धान्त प्रशिक्षण (Induction or Indoctrination Training)—इस प्रकार का प्रशिक्षण नये कर्मचारियों को संस्था तथा कार्य से परिचित करवाने के उद्देश्य से दिया जाता है। इस प्रकार के प्रशिक्षण में कर्मचारियों को सामान्यतः निम्न बातों के सम्बन्ध में बताया जाता है—(i) संस्था का इतिहास, (ii) संस्था की संगठनात्मक स्थिति, (iii) संस्था की सेविवर्गीय नीति, (iv) सेवा

---

2 "Training is the organised procedure by which people learn knowledge and/or skills for a definite purpose" —Dale S. Beach

की शर्तें एवं मान्यताएँ (v) कर्मचारियों के वेतन एवं भत्ते के भुगतान सम्बन्धी नीति, (vi) काम के घण्टे, (vii) परिवाद निवारण प्रक्रिया, (viii) कर्मचारियों के लिए सामाजिक लाभ एवं कल्याण की सुविधा, (ix) कर्मचारियों की पदोन्नति की नीति, (x) सविवगाय विभाग से सम्पर्क विधि।

2 **कार्य प्रशिक्षण** (Job-Training)—कार्य प्रशिक्षण के अन्तर्गत कर्मचारियों को उनके कार्य के सम्बन्ध में प्रशिक्षण दिया जाता है। कार्य की प्रकृति, मशीनें, कार्य की क्रिया विधि, कार्य की विभिन्न छोटी मोटी तकनीकी बातें आदि-आदि इस प्रकार के प्रशिक्षण की मुख्य बातें होती हैं। इस प्रकार के प्रशिक्षणों का प्रमुख उद्देश्य कर्मचारी की कार्य सम्बन्धी योग्यताओं, जानकारी तथा चातुर्य का विकास करना है। इस प्रकार का प्रशिक्षण नये एवं पुराने सभी व्यक्तियों को देना लाभप्रद है।

3 **पदोन्नति प्रशिक्षण** (Training for Promotion)—कर्मचारियों को उत्प्रेरित करने, उनके मनोबल को बनाये रखने आदि कई उद्देश्यों को ध्यान में रखकर कई संस्थाओं का अपने निम्न पदों पर कार्य कर रहे कर्मचारियों को उच्च पदों पर लगाना पड़ता है। निम्न पदों से उच्च पदों पर स्थानान्तरित करने पर कर्मचारियों को प्रशिक्षण देना अनिवार्य हो जाता है क्योंकि नये पदों पर कार्य करने के लिये अधिक योग्यता एवं चातुर्य की आवश्यकता पड़ती है। ऐसे अवसरों पर दिये जाने वाले प्रशिक्षण को पदोन्नति प्रशिक्षण कहते हैं। ऐसे प्रशिक्षणों के द्वारा कर्मचारियों को केवल उनके कार्यों के बारे में ही बताना पड़ता है। चूंकि वे संस्था की विभिन्न नीतियों एवं प्रवृत्तियों के बारे में भली प्रकार जानते हैं। अतः हमें इस सम्बन्ध में प्रशिक्षण देने की आवश्यकता नहीं पड़ती है।

4. **प्रबोधन या पुनर्अभ्यास प्रशिक्षण** (Refresher Training)—जैसा कि हम बता चुके हैं, कि प्रशिक्षण एक निरन्तर रूप से चलने वाला कार्यक्रम है। प्रशिक्षण नये व्यक्तियों को ही नहीं, पुराने व्यक्तियों को भी निरन्तर रूप से देना पड़ता है। पुराने व्यक्तियों को समय-समय पर दिये जाने वाले प्रशिक्षण को ही प्रबोधन या पुनर्अभ्यास प्रशिक्षण कहते हैं। प्रबोधन प्रशिक्षण उद्देश्य कर्मचारियों की कार्यक्षमता को बनाये रखना तथा उनके ज्ञान एवं चातुर्य को परिवर्तनों के अनुसार समायोजित करना होता है। चूंकि आधुनिक युग परिवर्तनशील है, प्रबन्ध विधियां, तकनीकें, कार्य प्रविधियों एवं प्रक्रियाओं में निरन्तर रूप से परिवर्तन हो रहा है। इन परिवर्तनों के अनुसार कर्मचारियों के ज्ञान को समायोजित करने के लिए प्रबोधन प्रशिक्षण बहुत आवश्यक है।

प्रशिक्षण के उद्देश्य
(Objects of Training)

टिफिन एवं मेक्रोमिक (Tiffin and McCromick) ने प्रशिक्षण के उद्देश्यों को निम्न भागों में बाँटा है—

1 ज्ञान एवं चातुर्य का विकास करना (Developing the Knowledge and Skill)—कई प्रशिक्षण कार्यक्रमों का उद्देश्य कर्मचारियों के ज्ञान चातुर्य का विकास करना होता है, जिससे कर्मचारी वर्तमान या भावी कार्यों को सफलता पूर्वक पूरा कर सकें।

2. सूचनाओं को पहुँचाना (Transmitting Information)—कुछ प्रशिक्षण कार्यक्रमों का उद्देश्य कार्य के सम्बन्ध में या सामान्य सूचनाओं को पहुँचाना होता है। सामान्य सूचनाओं में मूलतः संस्था, संस्थाओं की वस्तुओं, संगठन, सेवा की शर्तों आदि की सूचनाएँ सम्मिलित होती हैं।

3 दृष्टिकोण परिवर्तन करना (Modifying Attitudes)—कुछ प्रशिक्षण कार्यक्रमों का उद्देश्य कर्मचारियों के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना होता है। कर्मचारियों में सहयोग की भावना का विकास करना, उत्प्रेरित करना, कर्मचारियों में संस्था के प्रति विश्वासशील भावनाओं को जाग्रत करना आदि इस प्रकार के प्रशिक्षण के कार्यक्रमों का उद्देश्य होता है।

विस्तृत रूप से प्रशिक्षण कार्यक्रमों के निम्न प्रमुख उद्देश्य होते हैं—

1 संस्था की नीतियों एवं क्रियाओं के सम्बन्ध में जानकारी प्रदान करना।

2 प्रबन्ध पद्धति एवं क्रियाओं की जानकारी देना।

3. प्रबन्ध विचारधारा का ज्ञान कराना।

4 विभिन्न संस्थाओं का तुलनात्मक ज्ञान करवाना तथा अन्य संस्थाओं में अपनी संस्था के सम्बन्ध को स्पष्ट करना।

5 सन्देशवाहन का कौशल प्रदान करना।

6 मानव प्रबन्ध का ज्ञान प्रदान करना।

7 किसी विभाग के संचालन का ज्ञान प्रदान करना।

8 बौद्धिक एवं भावनात्मक रूप से व्यक्ति के दूसरों पर पड़ने वाले प्रभाव को स्पष्ट करना।

9 संगठन के सभी स्तरों पर योग्य एवं कुशल व्यक्तियों की निरन्तर पूर्ति बनाये रखना।

10 संस्था में स्थिरता एवं लोचशीलता का गुण उत्पन्न करना।

11 कर्मचारियों के मनोबल को बढ़ाना तथा बनाये रखना।

प्रशिक्षण का महत्त्व
(Importance of Training)

कर्मचारियों के प्रशिक्षण का प्रत्येक संस्था में महत्त्वपूर्ण स्थान है। कर्मचारियों से कुशलतापूर्वक कार्य तभी करवाया जा सकता है, जबकि यथासमय प्रशिक्षण दिया जाता रहे। वाटकिन्स तथा डोड (Watkins and Dodd) इत्यादि लेखकों ने इसके महत्त्व के सम्बन्ध में लिखा है कि "प्रशिक्षण प्रबन्धकीय नियन्त्रण का महत्त्वपूर्ण पक्ष है। दुर्घटनाओं को कम करने, अपव्यय को कम करने तथा किस्म

मे सुधार करने के लिए प्रशिक्षण सफलतम साधनों मे से एक है।" वास्तव मे वर्तमान परिवर्तनशील परिस्थितियो नवीनतम कार्य पद्धतियो को ध्यान मे रखते हुए कर्मचारियो को प्रशिक्षण देना अत्यन्त आवश्यक है। प्रशिक्षण के महत्त्व को निम्न प्रमुख शीर्षको मे समझाने का प्रयास किया गया है।

1 **अधिक उत्पादकता** (Higher Productivity)—प्रशिक्षण के द्वारा कर्मचारियो के चातुर्य एव योग्यता मे वृद्धि होती है। इसका परिणाम प्रत्यक्ष रूप मे श्रमिको की उत्पादन क्षमता पर पडता है। श्रमिक कम लागत पर अधिक एव अच्छा उत्पादन करने मे समर्थ हो जाते है। जूसियस (Jucius) ने उचित लिखा है कि **'प्रशिक्षण कर्मचारी के चातुर्य को बढ़ाता है, जिसके फलस्वरूप उत्पादन की मात्रा एव किस्म बढती है।'**

2 **उचित कार्यक्षमता की शीघ्र प्राप्ति** (Quick Reach to the Acceptable Performance)—प्रशिक्षण के द्वारा कर्मचारियो को कार्य के उचित प्रकार से निष्पादन की विधि दिखाई जाती है। इससे कर्मचारी कुशलतापूर्वक कार्य करने लगते हैं और थोडे समय मे अधिकतम कार्यक्षमता से कार्य करने लग जाते हैं।

3 **कार्य क्षमता मे सुधार** (Improvement in Performance)—प्रशिक्षण के द्वारा नये कर्मचारियो को ही उचित कार्यक्षमता प्राप्त करने में सहायता नही मिलती है, बल्कि पुराने कर्मचारियो को भी अपनी कार्यक्षमता के सुधार करने मे बडी सहायता मिलती है। बीच (Beach) के अनुसार **"प्रशिक्षण कर्मचारियों की कार्यक्षमता के स्तर को बढाने मे सक्षम है।"**

4 **कर्मचारियो मे मनोबल का निर्माण** (Building Morale of Employees)—प्रशिक्षण का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य कर्मचारियों के मनोबल का निर्माण करना भी है। प्रशिक्षण के द्वारा कर्मचारियो मे आपसी सहयोग एव स्वामिभक्ति की भावना का विकास किया जा सकता है।

5. **सचालकीय समस्याओ का समाधान** (Solving Operating Problems)—प्रशिक्षण के द्वारा सस्था की दिन प्रतिदिन की सचालकीय समस्याओ का समाधान करना सरल हो जाता है। ये समस्याएँ कर्मचारियो के आवागमन, अनुपस्थिति दुर्घटना आदि से सम्बन्धित होती है। प्रशिक्षण के द्वारा इन सभी समस्याओ का समाधान सम्भव है। इसके अतिरिक्त, ग्राहक सेवा, अपव्यय, दूषित कार्य प्रणाली की समस्याओं का समाधान भी प्रशिक्षण के द्वारा सम्भव है।

6 **मानव शक्ति की आवश्यकता की पूर्ति** (To Fulfill Manpower Needs)—एक सस्था मे कई प्रकार की योग्यताओ, ज्ञान एव कुशलता वाले व्यक्तियो की आवश्यकता पडती है, जबकि आजकल की स्कूल एव कॉलेजो की शिक्षा पद्धति व्यावसायिक सस्थाओ की आवश्यकतानुसार प्रशिक्षित कर्मचारी उपलब्ध करने में सर्वथा अनुपयुक्त है। अत सस्था के लिए आवश्यक योग्यता वाले प्रशिक्षित कर्मचारियो की पूर्ति के लिए प्रशिक्षण बहुत आवश्यक है।

7. तकनीकी परिवर्तनों से समता बनाये रखना (To Keep Pace with Technical Changes)—आधुनिक युग को परिवर्तनों का युग कहा जाय, तो भी कोई अतिशयोक्ति न होगी। दिन-प्रतिदिन कार्य तथा उत्पादन की विधियों मे परिवर्तन हो रहा है, नये-नये यन्त्रो का आविष्कार हो रहा है, मनुष्य का स्थान यन्त्र ले रहे हैं ऐसी स्थिति मे निरन्तर रूप से कर्मचारियो को आवश्यक प्रशिक्षण देना महत्त्वपूर्ण कार्य है।

8 सगठनात्मक स्थिरता एव लोचशीलता (Organisational Stability and Flexibility)—सस्था मे निरन्तर प्रशिक्षण व्यवस्था करने से सगठन मे स्थिरता तथा लोचशीलता बनी रहती है। जब सस्था मे से कोई कर्मचारी छोड़कर चला जाता है, तो प्रशिक्षित व्यक्तियों को तत्काल कार्य पर लगाया जा सकता है और सस्था मे अस्थिरता की स्थिति नहीं आ पाती है। इसी प्रकार कुशल प्रशिक्षित कर्मचारी सस्था में होने वाले परिवर्तनो के अनुसार अपने आप को सन्तुलित कर लेते हैं और परिणामस्वरूप सस्था मे लोच बनी रहती है।

9. कम निरीक्षण (Reduced Supervision)—प्रशिक्षित कर्मचारियों क अधिक निरीक्षण की आवश्यकता नही पडती है। कर्मचारी स्वत. कार्य करने लगता है। फिलप्पो (Flippo) के अनुसार "कर्मचारी की अधिकाधिक आत्मनिर्भरता तब तक सम्भव नहीं है, जब तक कर्मचारी को पर्याप्त प्रशिक्षण न दिया जाय।"

10 कर्मचारियों का हित (Benefit to Employees)—प्रशिक्षण प्राप्त कर लेने से श्रमिकों का भी हित होता है। कर्मचारियो को प्रशिक्षण देने से उनकी योग्यता, ज्ञान, क्षमता आदि मे वृद्धि होती है। इसके परिणामस्वरूप, उनकी बाजार मे माग बढती है, जिसका अन्ततोगत्वा प्रभाव यह होता है कि उनको अधिक वेतन, अधिक अच्छी कार्य दशाएँ, उपलब्ध होती हैं।

प्रशिक्षण के सिद्धान्त
(Principles of Training)

प्रशिक्षण के कार्यक्रम की सफलता के लिए प्रशिक्षण के कुछ सिद्धान्त अवश्य ही होने चाहिये। मनोवैज्ञानिको ने विभिन्न सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया है। प्रो फिलप्पो ने प्रशिक्षण के निम्न प्रमुख सिद्धान्तो का वर्णन किया है :—

1 अभिप्रेरण (Motivation)—फिलप्पो (Flippo) के मतानुसार "जितनी अधिक कर्मचारी को अभिप्रेरणा दी जायेगी, उतना ही शीघ्र एव अच्छी तरह से वह नये चातुर्य एव ज्ञान को प्राप्त कर सकेगा।" इसीलिए अभिप्रेरण को प्रशिक्षण का प्रथम सिद्धान्त माना जाता है। जब तक कर्मचारी को प्रशिक्षण के लिए अभिप्रेरित नही किया जा सकेगा, तब तक उसे समुचित प्रकार मे प्रशिक्षण देना असम्भव भले ही न हो, किन्तु कठिन अवश्य ही होगा। टिफिन एव मेककोर्मिक (Tiffin and Mc Cormick) का भी मत है कि "लोग किसी भी बात के सम्बन्ध में बहुत अधिक तब

तक नही सीखेंगे जब तक कि उन्हे सीखने के लिए अभिप्रेरित न किया जाए।" कर्मचारियों को अभिप्रेरणा वित्तीय एवं अवित्तीय दोनों ही तरीकों से दी जा सकती है। प्रबन्धकों को दोनों ही तरीकों का यथोचित प्रयोग करना चाहिये।

2 प्रगति प्रतिवेदन (Progress Report)—प्रशिक्षण का द्वितीय महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त यह बताता है कि समय समय पर यह ज्ञात करना चाहिये, कि कर्मचारी को किस सीमा तक प्रशिक्षण मिल पाया है। दूसरे शब्दों में, थोडे-थोडे समय के पश्चात् इस बात को ज्ञात करते रहना चाहिये कि कर्मचारी ने किस सीमा तक प्रशिक्षण प्राप्त करने में प्रगति की है। इस बात को प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले कर्मचारी को भी बताया जाना चाहिए जिससे कि उसमें अधिक सीखने की जिज्ञासा उत्पन्न हो सके।

3 सम्बलन (Reinforcement)—यह सिद्धान्त यह बताता है कि कर्मचारी के प्रशिक्षण का कार्यक्रम समाप्त हो जाने के बाद कर्मचारी को अच्छे परिणामों के लिए पुरस्कृत किया जाना चाहिये। उसे पदोन्नति या वेतन वृद्धि या अन्य किसी प्रकार की वृद्धि दी जानी चाहिये। यदि प्रशिक्षण का परिणाम सन्तोषप्रद नहीं रहता है तो उसे आवश्यक दण्ड भी दिया जाना चाहिये। ऐसा करने से नये कर्मचारियों को विशेष उत्प्रेरणा मिल सकेगी तथा साथ ही पुराने कर्मचारियों को भी इससे प्रेरणा मिलेगी।

4 अभ्यास (Practice)—फिलप्पो (Flippo) का मत है कि "प्रभावशाली प्रशिक्षण के लिए समय समय पर अभ्यास बहुत आवश्यक है।" प्रभावपूर्ण तरीके से प्रशिक्षणार्थी को चातुर्य एवं ज्ञान सिखाने के लिए अभ्यास परमावश्यक है। मनोवैज्ञानिकों की यह धारणा है कि किसी भी कार्य को करने की विधि को सुनाने की अपेक्षा उस विधि का अभ्यास करने में वह कार्य शीघ्र ही सीखा जा सकता है। अतः प्रशिक्षण कार्यक्रमों में अभ्यास करना एक आवश्यक सिद्धान्त माना जाता है।

5 पूर्ण बनाम आंशिक सिद्धान्त (Whole Versus Part)—प्रशिक्षण कार्यक्रम तैयार करते समय इस सिद्धान्त का भी पूरा पूरा ध्यान रखना चाहिये कि सम्पूर्ण प्रशिक्षण एक ही साथ दिया जाय या आंशिक रूप में दिया जाए। यदि प्रशिक्षण कार्यक्रम अधिक विस्तृत है, तो प्रशिक्षण आंशिक रूप से देना चाहिये तथा यदि प्रशिक्षण कार्यक्रम छोटा ही है तो एक ही बार में पूरा कर लेना चाहिये।

6 व्यक्तिगत भिन्नताएँ (Individual Differences)—यह सर्वसामान्य सत्य है कि व्यक्ति-व्यक्ति से अनेक मामलों में भिन्न होता है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से बुद्धि, व्यवहार, चातुर्य, आदतों आदि में पर्याप्त रूप से भिन्न होता है। किन्तु यह सिद्धान्त यह बताता है कि अच्छे प्रशिक्षण कार्यक्रम के द्वारा व्यक्तिगत भिन्नताओं में भी समानता स्थापित करनी चाहिये। फिलप्पो (Flippo) का मत है कि "सर्वाधिक प्रभावशाली प्रशिक्षण वह है, जिसके द्वारा व्यक्तिगत योग्यताओं की जटिलताओं एवं असमानताओं को समायोजित किया जा सके।"

उपर्युक्त वर्णित छः सिद्धान्त प्रो फिलप्पो द्वारा दिये गये हैं। इनके अतिरिक्त भी अनेकों विद्वानों ने प्रशिक्षण के विभिन्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। वे निम्नानुसार हैं :—

7 सहयोग (Co-operation)—प्रशिक्षण को प्रभावशाली, मितव्ययी एवं अल्पकालीन बनाने के उद्देश्य से प्रशिक्षणार्थी का सहयोग प्राप्त करना परमावश्यक होता है। अतः यह सिद्धान्त यह बताता है कि प्रशिक्षणार्थी से सम्पूर्ण प्रशिक्षण कार्यक्रम में सहयोग प्राप्त करना चाहिये। इस हेतु प्रशिक्षणार्थी को समय-समय पर उत्प्रेरित करना चाहिये। उसकी प्रगति की समस्याओं के बारे में पूछताछ करनी चाहिये तथा उसके समक्ष उसकी वास्तविक स्थिति को प्रकट कर देना चाहिये।

8. प्रशिक्षण के उद्देश्य (Objects of Training)—प्रशिक्षण का यह भी एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है कि प्रशिक्षण के उद्देश्यों का निर्धारण पहले से ही कर लेना चाहिये। उद्देश्यों का निर्धारण कर लेने से प्रशिक्षण कार्यक्रम के मूल्यांकन में बहुत सुविधा मिलती है। यदि प्रशिक्षण कार्यक्रम में पूर्व निश्चित उद्देश्य पूरे नहीं हो रहे होते हैं, तो प्रशिक्षण कार्यक्रम में आवश्यकतानुसार परिवर्तन भी करना चाहिये।

9. प्रशिक्षणार्थी की योग्यताएँ (Abilities of Trainee)—प्रशिक्षण देने से पूर्व प्रशिक्षणार्थी की योग्यताओं को भी ध्यान में रखना चाहिये। कुछ व्यक्ति शीघ्र ही सभी बातों को समझ लेते हैं और कुछ व्यक्ति देर से समझ पाते हैं। अतएव प्रशिक्षण कार्यक्रम में इस सिद्धान्त को सर्वाधिक महत्त्व देना चाहिये।

अच्छे प्रशिक्षण कार्यक्रम की आवश्यक बातें
(Essentials of a Good Training Programme)

प्रशिक्षण कार्यक्रम की सफलता कई बातों पर निर्भर करती है। निम्न कुछ बातों को प्रशिक्षण कार्यक्रम को निर्धारित करते समय ध्यान में रखना चाहिये :—

1. संस्था में प्रशिक्षण कार्यक्रम सतत् रूप से चलते रखना चाहिये।
2. प्रशिक्षण कार्यक्रम पूर्ण रूप से नियोजित एवं व्यवस्थित होना चाहिये।
3. प्रशिक्षण कार्यक्रम में सभी कर्मचारियों को सम्मिलित करना चाहिये।
4. प्रशिक्षण कार्यक्रम संस्था एवं कर्मचारियों दोनों के सामूहिक हित एवं सुविधा को ध्यान में रख कर निर्धारित करना चाहिये।
5. प्रशिक्षण कार्यक्रम कर्मचारियों को स्वीकार होना चाहिये।
6. प्रशिक्षण कार्यक्रम में व्यक्तिगत मान्यताओं को भी ध्यान में रखना चाहिये।
7. प्रशिक्षण पर्याप्त होना चाहिये।
8. प्रशिक्षण कार्यक्रम व्यावहारिक होना चाहिये।
9. प्रशिक्षण कार्यक्रम संस्था की वित्तीय स्थिति को ध्यान में रखकर निर्धारित करना चाहिये।

10 प्रशिक्षण कार्यक्रम मे अनुवर्तन की पूर्ण व्यवस्था होनी चाहिये।

छात्रो को इन सभी का विस्तृत वर्णन प्रशिक्षण के सिद्धान्तो के आधार पर करना चाहिये।

प्रशिक्षण की विधियाँ
(Methods of Training)

आजकल कर्मचारियो को प्रशिक्षण देने की कई विधियाँ प्रयोग म लाई जाती हैं। प्रशिक्षण की प्रमुख विधियाँ निम्न प्रकार हैं —

1 कार्य पर प्रशिक्षण विधि	4 भूमिका निर्वाह विधि
2 प्रवचन विधि	5 कार्य परिवर्तन
3 सम्मेलन विधि	6 विशेष पाठ विधि

इन सबका सक्षिप्त विवेचन नीचे क्रमश किया गया है—

1 कार्य पर प्रशिक्षण (On the job Training)—कार्य पर प्रशिक्षण को ही उद्योग के अन्तर्गत प्रशिक्षण (Training within Industry or T W I भी कहते है। यह औद्योगिक प्रशिक्षण की अत्यधिक महत्त्वपूर्ण पद्धति है। **स्प्रिगल तथा जेम्स** (Spriegel and James) **के मतानुसार "यह सर्वाधिक रूप से प्रयुक्त की जाने वाली प्रशिक्षण विधि है।"** अनेको वैज्ञानिकों ने यह मत व्यक्त किया है कि किसी भी कार्य को करके ही उचित प्रकार से एव सरलता से सीखा जा सकता है। सोफोक्लेस (Sophocles) के अनुसार, **'प्रत्येक व्यक्ति को किसी कार्य को करते हुए उसे सीखना चाहिये क्योंकि यद्यपि आप यह सोचते हैं कि आप उसे जानते हे, फिर भी जब तक आप प्रयास नहीं कर लेते तब तक आप विश्वस्त नहीं हो सकते।"** प्रशिक्षण की इस विधि म नये आने वाले कर्मचारियो को उनके निकटस्थ अधिकारी के पास रखा जाता है और निकटस्थ अधिकारी उनको उनके कार्य सम्बन्ध मे आवश्यक बातो की जानकारी देता है और उनसे कार्य करवाता है। नये कर्मचारी निकटस्थ अधिकारी की देखरेख म कुछ दिनो तक कार्य करते है और जब उस अधिकारी को यह विश्वास हो जाता है कि वे सतोषप्रद रूप से कार्य करने लग गये हैं तब कर्मचारी को अपने काम म लगा दिया जाता है। प्रशिक्षण की इस विधि मे प्रशिक्षण देने के लिए प्रक्रिया चार्ट चित्र, मेन्युअल (Manuals), टेप-रिकार्ड आदि का प्रयोग किया जाता है।

लाभ (Advantages)

प्रशिक्षण की इस विधि के प्रमुख निम्न लाभ है—

(i) यह विधि अत्यन्त सरल है।

(ii) यह विधि पर्याप्त मितव्ययी है।

(iii) प्रशिक्षणार्थी को कार्य मे प्रत्यक्ष रूप से उत्प्रेरणा मिलती है।

(iv) प्रशिक्षण मे प्रगति का मूल्याकन हाथो-हाथ हो जाता है।

(v) प्रशिक्षण के लिये कृत्रिम वातावरण बनाने की आवश्यकता नही पड़ती है।

(vi) अलग से प्रशिक्षको एव यन्त्रो की व्यवस्था नही करनी पड़ती।

दोष (Disadvantages) .

यद्यपि 'कार्य पर प्रशिक्षण' की विधि को सर्वाधिक उपयुक्त समझा जाता है किन्तु इसके भी कुछ प्रमुख दोष है, वे निम्न प्रकार हैं—

(i) नये कर्मचारी को कार्य पर लगा देने से हानि की सम्भावना बनी रहती है।

(ii) प्रशिक्षणार्थी को प्रशिक्षण सम्बन्धी आदेश एव निर्देश क्रमवार नही मिल पाते हैं। दूसरे शब्दों मे यह विधि अव्यवस्थित विधि है।

(iii) इस विधि से प्रशिक्षण देने मे प्रशिक्षण के सिद्धान्तो का पूर्णत पालन नहीं किया जा सकता है।

(iv) कई निकटस्थ अधिकारी प्रशिक्षण देने की उचित विधि से परिचित नहीं होते है।

(v) बहुत अधिक प्रशिक्षणार्थी होने पर यह विधि अनुपयुक्त रहती है।

उपयुक्तता (Suitability)—प्रशिक्षण की यह विधि वहीं उपयुक्त रहती है, जहाँ,

(i) कार्य बहुत ही सरल प्रकृति का हो,

(ii) प्रशिक्षणार्थियों की सख्या बहुत ही कम हो,

(iii) कार्य मे जोखिम कम हो,

(iv) कार्य को कृत्रिम परिस्थितियाँ उत्पन्न करना अत्यन्त कठिन हो, आदि।

2 प्रवचन विधि (by Lectures)—प्रवचन एक औपचारिक एव सगठित वार्ता है जो एक समूह के सम्मुख की जाती है। प्रवचनकर्ता को वार्ता के विषय के सम्बन्ध मे बहुत अधिक ज्ञान होता है और वह वार्ता के सम्बन्ध मे श्रोताओं के सभी प्रश्नो का उत्तर देने की स्थिति मे होता है।

लाभ (Advantages)

(i) बहुत अधिक प्रशिक्षणार्थियो को एक ही साथ प्रशिक्षण दिया जा सकता है।

(ii) प्रति प्रशिक्षणार्थी प्रशिक्षण लागत कम रहती है।

(iii) प्रशिक्षणार्थियो को पूर्ण सैद्धान्तिक ज्ञान आसानी से करवाया जा सकता है।

(iv) अपने सदेहो का निवारण प्रशिक्षणार्थी आसानी से कर सकते हैं।

दोष (Disadvantages) .

(i) प्रशिक्षणार्थी सम्पूर्ण प्रवचन मे एकाग्रचित्त नहीं हो पाते हैं।

(ii) इस विधि मे केवल सीखा ही जा सकता है किया नहीं जा सकता है।

(iii) सामान्यत प्रवक्तकर्ता अपनी बात कहने म ही अधिक समय लगाता है प्रशिक्षणार्थियो के सदहा के निवारण पर बहुत कम समय व्यय करता है।

(iv) प्रशिक्षणार्थियो की प्रगति को आकना बहुत कठिन है।

उपयुक्तता (Suitability)—प्रवचन विधि का प्रयोग नही करना चाहिए। जहा पर प्रशिक्षणार्थियो की संख्या अधिक हो तथा प्रशिक्षण बहुत अधिक तकनीकी प्रकृति का न हो।

3 सम्मेलन विधि (Conference)—यह प्रशिक्षण की एक विधि है जिसका मूल उद्देश्य एक समूह के ज्ञान एव अनुभव को सबके लिए उपलब्ध कराना है। सम्मेलन म भाग लेने वाले प्रशिक्षणार्थी अपने विचार एव अनुभव को सम्मेलन मे प्रकट करने को स्वतन्त्र होते है। इस प्रकार आपसी विचार विमर्श एव अनुभवो के आदान प्रदान द्वारा प्रशिक्षणार्थी बहुत कुछ आसानी से ही सीख जाते है। सम्मेलनो मे प्राय विचारो का आदान प्रदान अनौपचारिक रूप से ही होता है। किन्तु इस सम्बन्ध मे यह बात ध्यान म रखनी चाहिए कि सम्मेलनो की सफलता सम्मेलन मे भाग लेने वालो की इच्छा पर बहुत अधिक निर्भर रहती है।

(i) प्रशिक्षणार्थी की रुचि बनी रहती है।

(ii) प्रशिक्षणार्थी का बौद्धिक विकास होता है।

(iii) प्रशिक्षणार्थी को व्यावहारिक अनुभव भी प्राप्त हो सकता है।

(iv) प्रशिक्षणार्थी को स्वतन्त्र रूप से विचार व्यक्त करने का अवसर मिलता है।

दोष (Disadvantage)

(i) सम्मेलन म बहुत अधिक प्रशिक्षणार्थी भाग नही ले सकते है।

(ii) प्रशिक्षण की इस विधि म काफी समय लगता है।

(iii) कभी कभी असगत मामलो पर वार्तालाप चलती रहती है। इससे अनावश्यक ही समय की बरबादी होती है।

उपयुक्तता (Suitability)—सम्मेलन पद्धति वही अधिक उपयोगी रहती है जहाँ पर समान योग्यता एव स्तर वाले व्यक्तियों को प्रशिक्षण देना हो तथा उन व्यक्तियों को सम्मेलन मे विचार विमर्श किये जाने वाले विषय के सम्बन्ध मे कुछ सामान्य ज्ञान हो।

4 भूमिका निर्वाह विधि (Role playing Method)—प्रशिक्षण की यह विधि बहुत ही आधुनिक मानी जाती है। इस विधि मे प्रशिक्षणार्थी को स्वय को अपने पद की भूमिका या निर्वाह करने का अवसर दिया जाता है। यह केवल नाटकीय तौर पर किया जाता है। इसके आधार पर यह ज्ञात किया जाता है कि कोई व्यक्ति अपने पद पर भली प्रकार कार्य कर सकेगा या नही।

कार्य करने मे होने वाली त्रुटियो के सुधार के लिए प्रशिक्षणार्थी को आवश्यक निर्देश दिये जाते है।

इस विधि से प्रशिक्षण देने के लिए प्रशिक्षणार्थी को मानवीय सम्बन्धो की व्यावहारिक जानकारी प्रदान की जाती है और व्यवहार मे सुधार करने का उचित अवसर प्रदान किया जाता है।

लाभ (Advantages).

(i) प्रशिक्षण की यह विधि अच्छे मानवीय सम्बन्धो के निर्माण मे योगदान देती है।

(ii) इसके द्वारा कार्य का सैद्धान्तिक एव व्यावहारिक दोनो ही प्रकार के प्रशिक्षण प्राप्त होते हैं।

(iii) विभिन्न क्रियाओ के परिणामो को शीघ्र स्पष्ट किया जा सकता है।

(iv) प्रशिक्षणार्थी मे आत्म विश्वास पैदा हो जाता है।

(v) कार्य की छोटी छोटी बातो के सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त हो जाती है।

(vi) प्रशिक्षणार्थी की प्रगति का ज्ञान हो जाता है।

(vii) एक प्रशिक्षणार्थी को अन्य प्रशिक्षणार्थी की प्रशसा मिल सकती है।

(viii) प्रशिक्षणार्थी भावनात्मक रूप से विषय वस्तु समझ सकता है।

(ix) बदलते परिवेश मे प्रशिक्षण देना सरल हो जाता है।

(x) इस विधि से सम्पूर्ण समूह का ध्यान महत्त्वपूर्ण तथ्यो की ओर आकर्षित करना सरल होता है।

दोष (Disadvatages)

(i) यह पद्धति खर्चीली रहती है।

(ii) प्रशिक्षण मे समय भी अधिक लगता है।

(iii) इस पद्धति को केवल अकेले ही प्रयुक्त नही की जा सकती है। इस पद्धति को तभी प्रभावशाली बनाया जा सकता, जबकि अन्य पद्धति इसके साथ प्रयुक्त की जाय।

उपयुक्तता (Suitability)—यह विधि सामान्यत उच्च पदो पर कार्य करने वाले व्यक्तियो के प्रशिक्षण के लिए उपयुक्त मानी जाती है।

5 कार्य परिवर्तन (Job Rotation)—इस पद्धति मे कर्मचारियो को सस्था के विभिन्न विभागो मे थोड-थोडे समय के लिए लगाया जाता है और उन्हे सम्पूर्ण व्यवसाय के बारे मे जानकारी प्रदान की जाती है। इस प्रशिक्षण का उद्देश्य कर्मचारियो को अल्पकाल मे सस्था के सम्बन्ध मे विभिन्न कार्यो को समझाना है। इस प्रकार का प्रशिक्षण देने से कर्मचारियो के ज्ञान का विस्तार होता है।

लाभ (Advantages)

(i) प्रशिक्षणार्थी को सस्था के सम्बन्ध मे पूरा पूरा ज्ञान हो जाता है।

(ii) संस्था में आन्तरिक संदेशवाहन की कई बाधाएँ दूर हो जाती हैं।

(iii) यह विधि सहयोग एवं समन्वय के महत्त्व को बल देती है।

(iv) इससे विभिन्न विभागों में विरोधाभास उत्पन्न हो जाता है।

(v) इसमें व्यावहारिक प्रशिक्षण पैदा होता है।

(vi) इस विधि में कुछ प्रतिस्पर्धा होने से व्यक्तिगत विकास का अवसर मिलता है।

(vii) यह वैयक्तिक जाँच करता है।

(viii) इसमें संगठन में नई नई विचारधाराओं का विकास होता है।

(ix) प्रशिक्षणार्थी के जान पहचान का क्षेत्र बढ़ाता है।

दोष (Disadvantages)

(i) प्रशिक्षण स्थिति निश्चित करना बहुत कठिन होता है।

(ii) इसमें प्रशिक्षणार्थी की योग्यता की हानि होती है।

(iii) एक विभाग से दूसरे विभाग में जाने से कार्य में अवरोध उत्पन्न हो जाता है।

(iv) अल्पकाल में अच्छा प्रशिक्षण नहीं दिया जा सकता है।

(v) अधीनस्थ कर्मचारी इस विधि को उचित नहीं समझते हैं। क्योंकि सामान्यतः उच्च पद प्रशिक्षणार्थियों को ही मिल जाते हैं।

(vi) इस विधि से कभी कभी छोटे छोटे वर्ग विभेद उत्पन्न हो जाते हैं।

(vii) इस विधि से अधिकारी प्राय असन्तुष्ट रहते हैं।

(viii) यह विधि शीघ्र ही अत्यधिक रूप से केन्द्रित एवं लोचहीन बन जाती है।

(ix) इस विधि में प्रशिक्षणार्थी को प्रशिक्षण में काफी समय व्यय करना पड़ता है।

6 विशेष पाठन विधि (Special Reading Method)—कुछ संस्थाएँ अपने प्रशिक्षणार्थियों के लिए विशेष पाठन कार्यक्रम आयोजित करती हैं। इस पाठन कार्यक्रम में कोई एक व्यक्ति किसी विषय के सम्बन्ध में अपना भाषण पढ़ता है और अन्य प्रशिक्षणार्थी उसे सुनते हैं और विचार विमर्श करते हैं।

लाभ दोष (Advantages disadvantages)

इस विधि का एक लाभ यह है कि सबके ज्ञान का सामान्य स्तर बढ़ता है। किन्तु सबसे बड़ा दोष यह है कि कई प्रशिक्षणार्थी पाठन कार्यक्रमों में रुचि नहीं लेते हैं और कार्यक्रम का उद्देश्य पूरा नहीं हो पाता है।

प्रशिक्षण पाठ्यक्रम की विषय-वस्तु

(Subject matter of Training Programme)

कार्यालय के अलग अलग विभागों में कार्य करने वाले कर्मचारियों को भिन्न भिन्न कार्यों के सम्बन्ध में प्रशिक्षण दिया जाता है। उनकी कार्य परिस्थितियों को

ध्यान मे रखकर ही प्रशिक्षण पाठ्यक्रम की विषय वस्तु को निश्चित किया जाता है। किन्तु, सामान्यत कार्यालय कर्मचारियों के प्रशिक्षण पाठ्यक्रम म निम्नलिखित विषयों को सम्मिलित किया जाता है—

1 **सस्था के सम्बन्ध मे जानकारी** (Knowledge about the Institution)—सर्वप्रथम कार्यालय कर्मचारियों को सस्था के सम्बन्ध म विस्तार से जानकारी देनी चाहिये, जिससे वह सस्था तथा कार्यालय मे अपनी स्थिति को समझ सके। किसी भी कर्मचारी का कार्य प्रशिक्षण तब तक प्रारम्भ नही करना चाहिए, जब तक उसे सस्था के बारे म पर्याप्त जानकारी नही हो जाती है। सस्था के सम्बन्ध मे जानकारी देते समय सस्था का इतिहास, सस्था के उत्पादन, सस्था क उत्पादन, सस्था का सगठन, सस्था की उद्योग म स्थिति, सस्था के प्रबन्धकों की नीतियाँ सस्था की शाखाएँ, कार्यालय की स्थिति, कार्यरत कर्मचारियों की सख्या, सस्था की कर्मचारी नीतियाँ आदि बातो के सम्बन्ध मे कार्यालय कर्मचारियों को अवश्य बताया जाना चाहिये।

2 **कार्यों के सम्बन्ध मे जानकारी** (Knowledge about the Work)—सस्था की जानकारी देने के साथ ही नये कर्मचारी को उसके कार्य के सम्बन्ध मे जानकारी दी जाती है। उसे यह बताया जाता है कि उसे कौन-कौन से कार्य करने पडेंगे, उसके कार्यों का मूल्याकन कैसे होगा तथा उसे कहाँ से कार्य मे मदद मिल सकेगी, उसे किसके नियन्त्रण म कार्य करना पडेगा। उसे उसके सहकर्मियों के सम्बन्ध म भी इसी स्तर पर बता दिया जाता है।

3 **कार्य ज्ञान तथा चातुर्य** (Work knowledge and Skill)—कार्यालय कर्मचारी को प्रशिक्षण देने के लिए उस कार्य के सम्बन्ध मे आवश्यक ज्ञान एव चातुर्य भी प्रदान किया जाता है। इस ज्ञान एव चातुर्य के अभाव म अपने कार्य को पूर्ण कुशलता से कभी भी पूरा नहीं कर सकेगा। कई कार्यालयों मे तो कर्मचारियों का कार्य के सम्बन्ध म ज्ञान एव चातुर्य बढाने के लिए निरन्तर रूप मे प्रयास किये जाते हैं। ऐसा करने से वे कार्य के उत्तरदायित्व को भली प्रकार निभा सकते हैं। व कार्यालय के कार्यों को पूर्ण कुशलता के साथ पूरा करते हैं।

4 ***कार्यविधियों एव प्रणालियों की जानकारी*** (Knowledge about work Procedures and Methods)—नये कार्यालय कर्मचारियों को कार्यालय की कार्यविधियों एव प्रणालियों की भी जानकारी दी जाती है। उन्हे यह बताया जाता है कि कौन सा कार्य किस विधि से पूरा होगा तथा उसमे किस प्रकार के यन्त्रीकृत एव मानवीय साधन की आवश्यकता पडेगी।

5 **सेवा की शर्तें एव पारिश्रमिक** (Service Conditions and Remuneration)—प्रशिक्षण देते समय कर्मचारियों को सेवा की शर्तों एव पारिश्रमिक आदि के बारे मे भी विस्तार से बताया जाना चाहिये। कार्य का समय, कार्य की प्रकृति, छुट्टियाँ, अनुशासनिक कार्यवाही, नौकरी से हटाना, आदि के सम्बन्ध म बता

दना चाहिये। इसके अतिरिक्त पारिश्रमिक कितनी अवधि—साप्ताहिक, मासिक पाक्षिक—से मिलेगा। पारिश्रमिक में कोई प्रेरणात्मक पद्धति लागू की जाती है तो उसकी भी पर्याप्त जानकारी प्रदान करनी चाहिये।

6 पदोन्नति, पदावनति आदि नियमों की जानकारी—प्रशिक्षण के समय यह भी उपयुक्त होगा कि कर्मचारियों के पदोन्नति पदावनति आदि के नियमों को भी कर्मचारियों को भी कर्मचारियों को बता दिया जाय। पदोन्नति के विभिन्न आधारों एवं सिद्धान्तों को कर्मचारियों को स्पष्ट कर देना चाहिये। उन परिस्थितियों का भी संकेत दे देना चाहिये जिनके कारण किसी भी कर्मचारी को पदावनत किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त कर्मचारियों के स्थानान्तरण के नियमों को भी स्पष्ट रूप से समझा देना चाहिये।

अभ्यास के लिए प्रश्न

1 प्रशिक्षण क्या है? इसके उद्देश्यों तथा महत्त्व का वर्णन कीजिये।
What is training? Discuss its objects and importance

2 प्रशिक्षण कितने प्रकार के होते हैं?
What are the types Training?

3 विभिन्न प्रशिक्षण पद्धतियों का संक्षिप्त वर्णन कीजिये।
Discuss in brief the various training methods

4 कार्यालय के नये कर्मचारियों के प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में किन किन विषयों का समावेश किया जाता है? समझाकर बतलाइये।
What topics are usually covered in the training programme of new office employees

6

कार्यालय कर्मचारियों की पदोन्नति
(Promoting Office Personnel)

"The best policy is in which promotion is based on ability and seniority, that is, on experience, as well as on academic ability." —J. C. Denyer

---

जब कोई व्यक्ति किसी संस्था में नियुक्ति प्राप्त करता है, तो वह केवल अपनी वर्तमान स्थिति एवं वेतन को देखकर ही नियुक्ति को स्वीकार नहीं करता है। वह भविष्य को भी देखता है। वह संस्था मे कार्यभार लेने से पूर्व अपनी भावी स्थिति को भी ध्यान मे रखता है। वह जीवन भर किसी एक ही पद पर कार्य करना पसन्द नहीं करता है। वह आगे बढ़ना चाहता है अर्थात् पदोन्नति चाहता है। अत प्रत्येक कार्यालय म पदोन्नति के निश्चित आधार, सिद्धान्त एवं प्रक्रिया होनी चाहिये।

पदोन्नति की परिभाषाएं एवं अर्थ
(Definitions and Meaning of Promotion)

पदोन्नति को सामान्यत एक ही दृष्टिकोण से परिभाषित किया जाता रहा है। पदोन्नति की प्रमुख परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं—

पिगर्स एवं मायर्स (Pigors and Myers) के अनुसार "पदोन्नति का आशय एक कर्मचारी को अधिक अच्छे कार्य पर होने वाली ऐसी उन्नति से है, जिसमें अधिक उत्तरदायित्व हो, अधिक सम्मान हो, जिसे करने के लिए अधिक चातुर्य की आवश्यकता हो और विशेष रूप से अधिक वेतन भी मिलता हो।"[1]

फिलप्पो (Flippo) ने बहुत ही संक्षिप्त परिभाषा दी है। उनके मतानुसार, "पदोन्नति एक कार्य से दूसरे कार्य पर होने वाला ऐसा परिवर्तन है, जिसमें अधिक सम्मान एवं उत्तरदायित्व होता है।"[2]

स्कॉट क्लोथियर, एवं स्प्रिगल (Scott, Clothier and Spriegel) के

---

1. "Promotion is the advancement of an employee to a better job—better in terms of greater responsibilities, more prestige or status, greater skill, and specially increased rate of pay or salary." —Pigors and Myers
2. "Promotion involves a change from one job to another that is better in terms of status and responsibilities" —E. B. Flippo

अनुसार "पदोन्नति किसी कर्मचारी का ऐसे कार्य पर स्थानान्तरण है, जोकि अधिक मुद्रा प्रदान करता है अथवा जो अच्छी स्थिति प्रदान करता है।"[1]

उपर्युक्त परिभाषाओं के अध्ययन के बाद हम यह कह सकते हैं कि पदोन्नति एक निम्न पद से उच्च पद पर किसी कर्मचारी का स्थानान्तरण है जिसके परिणाम-स्वरूप कर्मचारी को अधिक अधिकार, अधिक वेतन, अधिक अच्छी स्थिति उपलब्ध होती है तथा उसके परिणामस्वरूप अधिक दायित्व भी निभाने पड़ते हैं।

लक्षण (Characteristics) पदोन्नति के प्रमुख लक्षणों का विवेचन निम्नानुसार है—

1 अधिक अच्छा कार्य (Better Job)—यहाँ अधिक अच्छे कार्य से आशय उस कार्य से है, जिसमें पहले कार्य की अपेक्षा कम समय कार्य करना पड़ता हो कार्य की अच्छी दशाएँ हों तथा जिसे करने के लिए पहले की अपेक्षा अधिक योग्यता एवं चातुर्य की आवश्यकता हो।

2 अधिक उत्तरदायित्व (Greater Responsibility)—पदोन्नति का द्वितीय महत्त्वपूर्ण लक्षण यह है कि जब पदोन्नति होती है, तब उस पदोन्नति प्राप्त करने वाले कर्मचारी को दायित्व भी अधिक उठाने पड़ते हैं। उदाहरणार्थ, एक व्यक्ति की क्लर्क से कार्यालय अधीक्षक के पद पर पदोन्नति की जाती है, तो निश्चित ही उसका दायित्व बढ़ जाता है।

3 अधिक वेतन (Higher Salary)—पदोन्नति का तृतीय महत्त्वपूर्ण लक्षण यह है कि पदोन्नति प्राप्त करने से सामान्य वेतन में भी वृद्धि होती है, किन्तु पदोन्नति के साथ-साथ वेतन-वृद्धि अनिवार्य नहीं है। परन्तु यह एक सामान्य नियम है कि ज्यों-ज्यों उत्तरदायित्व बढ़ते हैं त्यों त्यों वेतन भी बढ़ता है। अतएव पदोन्नति के साथ सामान्यतः अधिकांश परिस्थितियों में वेतन वृद्धि भी होती है।

पदोन्नति के प्रकार
(Types of Promotion)

परिभाषाओं के अध्ययन से यह स्पष्ट हो चुका है, कि पदोन्नति के परिणाम-स्वरूप एक व्यक्ति नीचे के पद से ऊपर के पद पर जाता है जिससे उसके पद अधिकार तथा सामान्यतः वेतन में भी वृद्धि होती है। इस प्रकार पद एवं अधिकार में वृद्धि अर्थात् पदोन्नति दो प्रकार से हो सकती है—

1 समतल या क्षैतिज पदोन्नति (Horizontal Promotion)—ऐसी पदोन्नति, जिसमें व्यक्ति का कार्य वर्गीकरण (Job Classification) पूर्ववत् बना रहा है और उसी कार्य वर्गीकरण में पदोन्नति होती है, उसे समतल या क्षैतिज पदोन्नति कहते हैं। उदाहरणार्थ, एक कनिष्ठ क्लर्क को वरिष्ठ क्लर्क के पद पर

---

1 "A promotion is the transfer of an employee to a job that pays more money or that enjoys some preferred status
—Scott, Clothier and Spriegel

पदोन्नति किया जाता है, तो वह समतल पदोन्नति कहलायेगी। इस प्रकार की पदोन्नति में सामान्यतः मौद्रिक लाभ हो जाता है, किन्तु अधिकारों में विशेष अन्तर नहीं आता है।

2 लम्बवत या उदग्र पदोन्नति (Vertical Promotions)—जब पदोन्नति वर्तमान कार्य-वर्गीकरण के बाहर होती है, तो उसे लम्बवत पदोन्नति कहा जाता है। उदाहरणार्थ, एक क्लर्क को कार्यालय अधीक्षक बना देना लम्बवत पदोन्नति है। ऐसी पदोन्नति के परिणामस्वरूप पद ही नहीं बढ़ता है बल्कि अधिकारों का क्षेत्र भी बढ़ता है। इस प्रकार की पदोन्नति में मौद्रिक लाभ हो, यह आवश्यक नहीं है, किन्तु सामान्यतः मौद्रिक लाभ भी होता है।

पदोन्नति के उद्देश्य
(Objects of Training)

पदोन्नतियों के कई उद्देश्य होते हैं। **वाटकिन्स, डोड मैक्नाटन तथा प्रासो** (Watkins, Dodd, McNaughton and Prasso) ने पदोन्नतियों के निम्न पाँच प्रमुख उद्देश्य बताये हैं—

1 कर्मचारियों में पहल शक्ति, साहस, एवं उच्च आदर्शों को प्रेरित करना।
2 अच्छे चातुर्य, प्रशिक्षण तथा योग्यता का विकास करना।
3 व्यक्ति में नैराश्य एवं अस्थिरता को समाप्त करना।
4 अच्छे एवं कर्मठ कार्यकर्त्ताओं को संस्था के प्रति आकर्षित करना।
5 कर्मचारियों के विकास का मार्ग प्रशस्त करना।

इन उद्देश्यों के अतिरिक्त पदोन्नतियों के निम्न प्रमुख उद्देश्य और भी हैं—

6 कर्मचारियों को अधिक कार्य करने के लिये प्रेरित करना।
7 श्रम आवागमन (Labour Turn-over) को कम करना।
8 कर्मचारियों में आत्म-विश्वास की भावना का संचार करना।
9 कर्मचारियों में स्वामिभक्ति, मनोबल तथा अपनत्व की भावना का विकास करना।
10 कर्मचारियों को कार्य सन्तुष्टि प्रदान करना।
11 कर्मचारियों एवं संगठन की कार्य-कुशलता में वृद्धि करना।
12 कर्मचारियों के कार्यों को मान्यता प्रदान करना।
13 संस्था में भर्ती के आन्तरिक स्रोत को विकसित करना।

पदोन्नति की आवश्यकता एवं महत्व
(Need and Importance of Promotion)

पदोन्नति योजना का होना प्रत्येक संस्था के लिए बहुत आवश्यक है। यह सर्वसिद्ध सत्य है कि मानव सदैव उन्नति की आकांक्षा करता रहा है और करता ही रहेगा। अत. एक कर्मचारी जो एक पद पर नियुक्त किया जाता है, तो वह ऊपर के

पदो पर पहुँचने की आकांक्षा रखता ही है। उसकी यह आकांक्षा उसे परिश्रम एवं लगन से कार्य करने को बहुत बड़ी सीमा तक प्रभावित करती है। पदोन्नतियों के द्वारा कर्मचारियों को प्रत्यक्ष रूप से अभिप्रेरित किया जा सकता है। पदोन्नति कर्मचारियों के लिए अतिरिक्त पुरस्कार का कार्य करती है, जिसके परिणामस्वरूप कर्मचारियों की कार्य-क्षमता में वृद्धि होती है। स्कॉट, क्लोथियर तथा स्प्रिगल (Scott, Clothier, and Spriegel) के अनुसार "पदोन्नतियाँ मनोबल को बढ़ाती हैं, कार्य-क्षमता में वृद्धि करती हैं तथा स्वामिभक्त कर्मचारियों के लिए अवसर प्रदान करती हैं" इसके अभाव में व्यक्तिगत एवं संस्था की कार्य कुशलता पर भी विपरीत प्रभाव पड़ सकता है। अतः प्रत्येक संस्था में पदोन्नतियाँ परमावश्यक एवं अपरिहार्य हैं। संक्षेप में पदोन्नतियों के महत्त्व को पदोन्नतियों से होने वाले निम्न लाभों के संदर्भ में अध्ययन किया जा सकता है

1 कर्मचारियों को पर्याप्त अभिप्रेरणा मिलती है और वे अधिक लगन एवं उत्साह से कार्य करते हैं।

2 पदोन्नति की आशा से कई अच्छे व्यक्ति प्रारम्भ में छोटे पदों को भी स्वीकार कर लेते हैं।

3 कर्मचारियों को अपने काम से सन्तुष्टि मिलती है।

4 यह कर्मचारियों की कार्यक्षमता को बनाये रखती है।

5. पदोन्नति के द्वारा उच्च पदों पर अनुभवी एवं विश्वासपात्र लोगों को नियुक्त करना सरल हो जाता है।

6 भर्ती के बाह्य स्रोतों के दोषों से मुक्ति मिल जाती है।

7 कुछ व्यक्तियों की पदोन्नति को रोक कर उन्हें अनुशासन में लाया जा सकता है।

8 कर्मचारियों में पहल शक्ति का विकास करती है।

9 देश में औद्योगिक शान्ति का सूत्रपात होता है।

10 संस्था में कुशलता एवं प्रभावशाली कर्मचारी सदैव के लिए बने रहते हैं, जिससे संस्था को स्थायित्वता मिलती है।

पदोन्नति के सिद्धान्त
(Principles of Promotion)

पदोन्नति में कुछ निश्चित सिद्धान्तों का पालन करना चाहिये। पदोन्नति करते समय निम्न सिद्धान्तों का पालन करना चाहिये—

1 उच्च पदों के कर्मचारियों की भर्ती जहाँ तक सम्भव हो सके संस्था के कर्मचारियों की पदोन्नति द्वारा ही की जाय।

2 योग्यता एवं वरिष्ठता दोनों को ही समान महत्त्व देना चाहिये।

3 पदोन्नति के क्रम को तय कर लेना चाहिये तथा संगठन चार्ट पर पदोन्नति क्रम भी दिखा देना चाहिये।

4. पदोन्नति की सूचना तो निकटतम अधिकारी दे सकता है, किन्तु पदोन्नति करने का अधिकार अन्तिम रूप से उच्च प्रबन्धकों को ही होना चाहिये।

5. सभी पदोन्नतियाँ सर्वप्रथम परीक्षण तौर पर करनी चाहिये। जब तक कर्मचारी अपने उच्च पद पर कुशलतापूर्वक कार्य नहीं करने लग जाता है, तब तक उसे स्थाई नहीं करना चाहिये।

6 पदोन्नति के लिए कर्मचारी का उसके वर्तमान कार्य के सन्दर्भ में मूल्यांकन करना चाहिये।

7. पदोन्नति के लिए मूल्यांकन में व्यक्तिगत पक्षपात नहीं होना चाहिये।

8. पदोन्नति के निर्णय सम्पूर्ण पिछले कार्यों को ध्यान में रखकर करना चाहिये, न कि किसी एक कार्य को ध्यान में रखकर।

9 प्रत्येक तत्व को अलग से ध्यान में रखकर मूल्यांकन करना चाहिये।

10. पदोन्नति के सम्बन्ध में यदि कर्मचारियों के कुछ दावे (Claims) हों तो उन पर पहले विचार कर लेना चाहिये।

11 कर्मचारियों की पदोन्नति में उनका पूर्व विवरण अवश्य देख लेना चाहिये, क्योंकि इससे तथ्यों की पूर्ण जानकारी हो जाती है।

12 कर्मचारियों की पदोन्नति करते समय कर्मचारी प्रबन्ध विभाग से भी विचार विनिमय कर लेना चाहिये।

पदोन्नति नीति में दी जाने वाली बातें
(Contents of Promotion Policy)

सामान्यतः एक अच्छी पदोन्नति नीति में निम्नलिखित बातों को सम्मिलित करना चाहिये—

1 **भर्ती में पदोन्नति का प्रतिशत**—जिन पदों पर पदोन्नतियों द्वारा भर्ती की जाती है, उनकी संख्या प्रतिशत के रूप में पदोन्नति नीति में सम्मिलित कर लेनी चाहिये। भर्ती करते समय इस बात का भी पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिये कि वास्तव में उस निश्चित प्रतिशत के बराबर पदोन्नतियाँ की जाती हैं अथवा नहीं।

2. **पदोन्नति का आधार**—पदोन्नति नीति में पदोन्नति के आधार की स्पष्ट व्याख्या कर लेनी चाहिये। यदि एक से अधिक आधारों पर पदोन्नतियाँ की जानी हैं तो इस सम्बन्ध में बहुत अधिक स्पष्टता से नीति निर्धारित कर लेनी चाहिये।

3. **योग्यता का निर्धारण**—पदोन्नति के लिये आवश्यक योग्यता का निर्धारण कर लेना चाहिये और उसका नीति विवरण में उल्लेख कर देना चाहिये।

4. **पदोन्नति क्रम**—पदोन्नति नीति में पदोन्नति के क्रम को भी निर्धारण कर लेना चाहिए।

5. **योग्यता आंकन**—पदोन्नति के लिये योग्यताओं को आँकने की विधि का वर्णन भी पदोन्नति नीति में करना चाहिये।

6 पदोन्नति का आदेश—पदोन्नति का आदेश किस अधिकारी द्वारा जारी किया जायेगा इस बात का स्पष्ट वर्णन होना चाहिए।

7. पदोन्नति के अवसरों की सूचना—अच्छी पदोन्नति नीति में यह भी व्यवस्था रहती है कि पदोन्नति के अवसरों की सम्बन्धित व्यक्तियों को सूचना दी जाय। नीति में सूचना तथा सूचना देने वाले आदि के सम्बन्ध में पूरा विवरण होना चाहिए।

8 पदोन्नति प्रशिक्षण—पदोन्नति के समय प्रशिक्षण की आवश्यकताओं का वर्णन पदोन्नति नीति में होना चाहिये।

9 पदोन्नति जाँच—पदोन्नति नीति में यह भी स्पष्ट रूप से लिखना चाहिए कि पदोन्नति के लिए कोई जाँच करनी है अथवा नहीं। यदि कोई जाँच करनी है तो उसका स्वरूप क्या होगा।

10 अन्य बातें—पदोन्नति नीति में अन्य कई बातों को सम्मिलित किया जा सकता है जैसे श्रमसंघ को हस्तक्षेप करने का अधिकार होगा या नहीं।

पदोन्नति के आधार
(Basis of Promotion)

पदोन्नति के दो प्रमुख आधार हैं। जिन्हें क्रमशः (i) वरिष्ठता आधार तथा (ii) योग्यता आधार के नाम से जाना जाता है।

वरिष्ठता आधार
(Seniority Basis)

वरिष्ठता कर्मचारियों की सेवा की अवधि से सम्बन्धित है। पदोन्नति का यह सिद्धान्त उतना ही पुराना है जितनी मानव सभ्यता। भारत में पिता का सबसे बड़ा पुत्र उनका उत्तराधिकारी हुआ करता है। इसी प्रकार राजा का ज्येष्ठ पुत्र ही राजा हुआ करता था। इस प्रकार स्पष्ट है कि वरिष्ठ पदोन्नति का प्राचीनतम आधार है। ऐतिहासिक दृष्टि से पदोन्नति के आधार को सब श्रेष्ठ आधार माना गया है।

पदोन्नति की इस पद्धति में ज्यों ज्यों उच्च पद रिक्त होते जाते हैं त्यों-त्यों क्रमशः वरिष्ठ व्यक्तियों को उन रिक्त पदों पर लगाया जाता है। दूसरे शब्दों में इसमें जिस व्यक्ति की सबसे अधिक सेवा की अवधि होती है उसे सर्व प्रथम उच्च पद पर पदोन्नत किया जाता है। इस प्रकार की पदोन्नति में कर्मचारी को कुछ करना नहीं पड़ता है। ऐसी पदोन्नति उच्च पद पर रिक्त स्थान होने पर स्वतः होती रहती है।

लाभ (Advantages)—डॉ० फाइनर (Finer) के अनुसार, 'यह स्वचालित है और एक व्यक्ति व दूसरे व्यक्ति के मध्य पक्षपात पूर्ण विभेद करने की, उच्च पर युवा की नियुक्ति, पदोन्नति के परिणाम के लिए उत्तरदायित्व के भाप की आवश्यकता

मे बचाती है।" संक्षेप मे, वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नति करने के निम्न प्रमुख लाभ हैं—

(i) पदोन्नति के लिए निश्चित माप-दण्ड रहता है
(ii) पक्षपात का भय नही रहता है
(iii) अच्छे पदोन्नति को तय करना सरल है।
(iv) अच्छे मानवीय सम्बन्धों का निर्माण हो जाता है।
(v) सभी लोग इसे स्वीकार करते हैं और चाहते हैं।
(vi) औद्योगिक शान्ति बनी रहती है।
(vii) कर्मचारियो की पदोन्नति की सुरक्षा बनी रहती है।
(viii) यह अधिक श्रम आवर्तन (Labour Turn-over) को रोकता है।
(ix) यह आधार स्वचालित पदोन्नति प्रणाली का सूत्रपात करता है।
(x) यह आधार व्यक्ति निरपेक्ष है।
(xi) अनुभव को पर्याप्त महत्व मिलता है।
(xii) वृद्ध व्यक्ति से पहले युवा व्यक्ति पदोन्नत नही किया जा सकता है, जिससे उनके आत्म स्वाभिमान को ठेस नही पहुँचती है।

दोष (Disadvantage)—फिफनर (Pfiffner) के मतानुसार "पदोन्नति का का आधार केवल वरिष्ठता को ही बनाया जाता है, तो परिणाम यह होगा कि उच्च पद अयोग्य तथा अदक्ष व्यक्तियो से भरने लगेंगे। इससे कर्मचारियो की महत्वाकांक्षा नष्ट हो जायेगी और वे अभिप्रेरणायें समाप्त हो जायेंगी, जिनके द्वारा कर्मचारी मे व्यक्तित्व, साहस, आत्म निर्भरता तथा उन्नतिशील दृष्टिकोण का विकास होता है।"[1] संक्षेप में, वरिष्ठता आधार पर पदोन्नति करने प्रमुख दोष निम्नानुसार हैं—

(i) योग्यता एवं वरिष्ठता दोनो एक साथ उपलब्ध हो, यह आवश्यक नहीं है।

(ii) व्यक्ति को अपनी कार्यक्षमता मे सुधार करने की प्रेरणा नहीं रहती है।

(iii) संस्था में कुशल व्यक्ति को आकर्षक नही लगता है।
(iv) कम उम्र के कुशल कर्मचारी संस्था में नही रुक पाते हैं।
(v) भर्ती करते समय बहुत ध्यान रखना पड़ता है।
(vi) यह आधार अनुभव को अनावश्यक महत्व प्रदान करता है।
(vii) यह आधार कर्मचारियो मे प्रतियोगिता की भावना को समाप्त कर देता है।

ग्लेडन (Gladden) ने इस आधार की आलोचना करते हुए कहा है, कि यह आधार निम्न गलत मान्यताओं पर आधारित है :—

(i) इसके अन्तर्गत यह मान लिया जाता है कि एक श्रेणी के सभी सदस्य पदोन्नति के योग्य होते हैं।

(ii) यह आधार यह मान्यता रखता है कि वरिष्ठता सूची प्रत्येक **कर्मचारी** को उच्च पद पर सेवा करने का अवसर देगी।

(iii) वरिष्ठता का सिद्धान्त यह मानता है, निम्न पदों का प्रतिशत उच्च पदों की अपेक्षा ऊँचा होता है।

(iv) इस आधार की यह भी मान्यता है, कि रिक्त होने वाले पदों की संख्या पर्याप्त होती है।

इन दोषों के उपरान्त भी हम यह नहीं कह सकते हैं, कि वरिष्ठता आधार पदोन्नति के लिए अनुपयुक्त है। प्रत्येक कर्मचारी के लिए अनुभव एक बहुत बड़ी सम्पत्ति है। यह प्रत्येक कर्मचारी के लिए बहुत आवश्यक है। किन्तु इसका तात्पर्य यह भी नहीं है कि वरिष्ठता ही पदोन्नति का आधार हो। इस सन्दर्भ में एक विद्वान का कथन है कि "यदि सबसे पुराने सदैव सबसे अधिक योग्य हैं तो संस्था तथा **कर्मचारियों की कार्य क्षमता को मापने की समस्या बहुत अधिक सरल हो जायेगी।"** अतः वरिष्ठता के आधार को सर्वश्रेष्ठ मानना उचित नहीं है।

योग्यता आधार
(Merit Basis)

सिद्धान्त रूप से यह सभी स्वीकार करते हैं, कि पदोन्नति में इस आधार को अपनाया जाना चाहिये। लेकिन व्यवहार में योग्यता आधार को कोई भी स्वीकार नहीं करता है। जब भी कभी योग्यता के आधार पर पदोन्नति की जाती है, तो लोग इसे पक्षपातपूर्ण पदोन्नति ही समझते हैं।

पदोन्नति की इस पद्धति में कर्मचारियों की योग्यताओं का मूल्यांकन (Merit rating) किया जाता है। इस हेतु विभिन्न परीक्षाएँ भी आयोजित की जा सकती हैं। जो व्यक्ति इस मूल्यांकन में सर्वाधिक उपयुक्त प्रतीत होता है उसे ही पदोन्नत किया जाता है।

लाभ (Advantages)

योग्यता के आधार पर पदोन्नति करने के निम्न लाभ हैं —

(i) कुशल कर्मचारी संस्था में आकृष्ट किये जा सकते हैं।

(ii) व्यक्ति सदैव अपनी कार्यक्षमता में सुधार करने का प्रयास करता है।

(iii) अच्छे कर्मचारियों को संस्था में रोका जा सकता है।

(iv) यह आधार अनुभव को अनावश्यक महत्त्व प्रदान नहीं करता है।

दोष (Disadvantages)

योग्यताओं के लाभों के होते हुए भी इसमें कुछ दोष भी हैं, वे निम्न लिखित हैं —

(i) संस्था के कर्मचारियों के मनोबल को ठेस पहुँचती है।

(ii) औद्योगिक अशान्ति उत्पन्न हो सकती है।

(iii) संस्था में अत्यधिक श्रम आवर्तन होता है।

(iv) पक्षपात का भय बना रहता है ।
(v) योग्यताओं का मूल्यांकन एक कठिन कार्य है ।
(vi) पदोन्नति की कोई गारन्टी नहीं रहती है ।
(vii) सभी व्यक्तियों का मूल्यांकन करना सम्भव भी नहीं है ।

वरिष्ठता बनाम योग्यता
(Seniority v s Merit)

पदोन्नति के दोनों आधारों का अध्ययन करने के बाद अब समस्या यह है कि वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नति की जाय या योग्यता के आधार पर । श्रम संघ तथा कर्मचारी इस बात पर बल देते हैं, कि वरिष्ठता को पदोन्नति का आधार माना जाना चाहिये, जबकि प्रबन्धक इस बात के विरुद्ध यह कहते हैं, कि वरिष्ठता को पदोन्नति का अकेला आधार नहीं माना जा सकता है। उनका कहना है कि एक कर्मचारी जिसने एक लम्बे समय तक कार्य किया है, उसे कुछ विशेष पुरस्कार या प्रतिफल मिलना ही चाहिये, किन्तु सेवा की अवधि को ही ध्यान में रखकर पदोन्नति करना उचित नहीं है । अतः प्रबन्धकों का मत है कि पदोन्नति में वरिष्ठता के साथ साथ योग्यताओं एवं क्षमताओं को भी ध्यान में रखना चाहिये ।

फिलप्पो (Flippo) का सुझाव है कि यह उचित नहीं कि वरिष्ठता को बिल्कुल ही ध्यान में नहीं रखा जाय । वरिष्ठता का अपना महत्त्व है । कई संस्थाओं ने वरिष्ठता एवं योग्यता दोनों आधारों को पदोन्नति हेतु प्रयुक्त किया है । उन्होंने कहा है कि "जबकि योग्यता करीब करीब समान हो, तब वरिष्ठता के आधार पर ही पदोन्नति की जानी चाहिये ।

अतएव एक मध्यम मार्ग की आवश्यकता है । वरिष्ठता एवं योग्यता दोनों को ही पदोन्नति का आधार माना जाना चाहिए । जब भी दो कर्मचारी समान वरिष्ठता के उपलब्ध हों, तो उनमें अधिक योग्य व्यक्ति की पदोन्नति करना ही उचित होगा । यदि दो कर्मचारी समान योग्यता के उपलब्ध हों तो वरिष्ठता को पदोन्नति का अवसर मानना उचित होगा । पिगर्स तथा मायर्स (Pigors and Myre) के अनुसार प्रबन्धकों को पदोन्नति में योग्यता को वरिष्ठता से अधिक बल देना चाहिये । उन्होंने आगे लिखा है कि वरिष्ठता को पदोन्नति में तभी स्वीकार करना चाहिये, जब कि दोनों व्यक्तियों की योग्यता भावी उच्च पदों के कार्यों को करने में समान रूप से सक्षम हो ।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि पदोन्नति में किसी एक आधार पर बल देना अनुपयुक्त होगा । प्रत्येक आधार का अपना महत्त्व है, जिसे आवश्यकतानुसार प्रयुक्त करना चाहिये ।

अभ्यास के लिए प्रश्न

1. पदोन्नति से क्या आशय है ? इसकी आवश्यकता तथा उद्देश्यों का वर्णन कीजिये।

   What is Promotion ? Describe its need and objects.

2. पदोन्नति के विभिन्न आधारों का तुलनात्मक महत्त्व बताइये।

   Discuss the comparative importance of different basis of Promotion.

3. एक सफल पदोन्नति की योजना की क्या विशेषतायें होती हैं।

   What are the characteristics of a successful promotion plan ?

7

कार्यालय वेतन प्रशासन

(Office Salary Administration)

"That man is truly free who desires what he is able to perform, and does what he desires." —*Rousseau*

यद्यपि मनुष्य केवल धन कमाने के लिए ही कार्य नही करता है, किन्तु धन एक महत्वपूर्ण प्रेरक तत्व है, जिससे प्रभावित होकर वह कार्य करता है। अत: प्रत्येक व्यक्ति को उचित पारिश्रमिक दिया जाना परमावश्यक होता है। एक संस्था मे जहाँ पर कई हजार लोग कार्य करते हैं, वहाँ प्रत्येक के वेतन के पहलू पर सोचना प्रबन्धको का कर्तव्य है। उन्हे उनके लिए उचित वेतन शृंखला निर्धारित करनी पड़ती है, उन्हे अधिकाधिक कार्य हेतु प्रोत्साहित करने के लिए प्रेरणात्मक वेतन की व्यवस्था करनी पड़ती है। इनके अतिरिक्त, वेतन से सम्बन्धित अन्य कई पहलुओं पर पर्याप्त ध्यान देने के लिए कार्यालय मे भी कुशल वेतन प्रशासन की आवश्यकता पड़ती है।

कार्यालय वेतन को प्रभावित करने वाले तत्व
(Factors Affecting Office Salaries)

कार्यालय के कार्यों के लिए दिये जाने वाले वेतन को कई बातें प्रभावित करती हैं। उनमे से कुछेक बातें इस प्रकार हैं—

1. प्रचलित वेतन दर (Prevailing Salaries)—कार्यालय कार्यों के लिए दिये जाने वाले वेतन को सर्वाधिक रूप से प्रभावित करने वाला तत्व प्रचलित वेतन दर है। ब्लेचर (Blecher) के शब्दो मे, **"सम्भवतः दूसरे उद्योगो में समान कार्य के लिए दिए जाने वाले वेतन तथा मजदूरी का स्तर संस्था में वेतन निर्धारण में सर्वाधिक प्रभावशाली तत्व है।"** व्यवहार मे प्रायः अन्य संस्थाओं द्वारा दिये जाने वाले वेतन को सर्वाधिक महत्व दिया जाता है। यह सही भी है, कि अल्पकाल मे विभिन्न संस्थाओ के कार्यालयो के कर्मचारियों का वेतन भिन्न-भिन्न हो सकता है किन्तु दीर्घकाल मे सभी संस्थाओं मे वेतन लगभग समान हो जाता है।

वेतन निर्धारित करते समय प्रचलित वेतन दर को ध्यान में रखना बहुत ही महत्वपूर्ण है। यदि प्रचलित वेतन दर को ध्यान में रखकर वेतन निर्धारित नही

किया जाता है, तो सस्था मे अच्छे कर्मचारी कभी भी आना पसन्द नहीं करेंगे। यदि कर्मचारी सस्था मे आ भी जाते है, तो वे लम्बे समय तक सस्था मे नही रुकेंगे। अत प्रचलित वतन दर को ध्यान मे रखकर वतन का निर्धारण करना चाहिए।

2 कर्मचारियो की माँग एव पूर्ति (Supply and Demand)—वेतन निर्धारण मे कमचारियो की माग एव पूर्ति का भी प्रभाव पडता है। यदि कार्यालय का काय किसी विशिष्ट प्रकृति का है और उसे करने के लिए विशिष्ट ज्ञान वाले व्यक्ति की आवश्यकता है तथा उस कार्य के लिए योग्य व्यक्ति बहुत ही सीमित मात्रा मे हैं तो ऐसे कर्मचारियो का वतन बहुत ही अधिक रखना पडेगा। इसके विपरीत सामान्य लिपिका का वेतन कम रखा जा सकता है, क्योकि ऐसे कई लिपिक आसानी से उपलब्ध हो सकते हैं।

3 सस्था की भुगतान क्षमता (Capacity to Pay)—केवल माँग एव पूर्ति के आधार पर कोई सस्था लम्बे समय तक वतन का भुगतान नही कर सकती है। सस्था की वेतन भुगतान करने की क्षमता भी वतन को निधारित करती है। जिन सस्थाओ म प्रतिस्पर्द्धा कम होती है या अन्य किसी प्रकार से लाभांश अच्छे होते हैं तो वह सस्था बहुत ऊची दर से भी वेतन दे सकती है, जबकि दूसरी सस्था जिसमें लाभांश कम हो, वतन ऊची दर से भुगतान करने मे असमर्थ रहती है। अत सस्था की भुगतान क्षमता भी वतन को महत्त्वपूर्ण रूप से प्रभावित करती हैं।

4 अन्य विभागो मे वेतन (Salary in other Departments)—कार्यालय कर्मचारियो को वेतन दूसरे विभागो तथा सस्था के अन्य कार्यों मे लगे हुए व्यक्तियो के वतन से भी प्रभावित होता है। अत कार्यालय कर्मचारियो का वेतन निर्धारित करते समय अन्य विभागो के कर्मचारियो के वेतन को भी ध्यान मे रखना चाहिए।

5 जीवन निर्वाह व्यय (Cost of Living)—वेतन निर्धारित करने मे जीवन निर्वाह व्यय का भी प्रभाव पडता है। प्रत्येक कर्मचारी को उतना वेतन अवश्य मिलना चाहिए ताकि वह अपने तथा अपने परिवार का भरण-पोषण आसानी से कर सके। यदि कर्मचारी को इतना वतन भी नही मिलता है, तो कर्मचारी की कार्यकुशलता की आशा करना व्यथ है। अत वतन निर्धारित करते समय इस तथ्य को भी ध्यान रखना चाहिए। यह तथ्य चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियो के वेतन निर्धारण म विशेष रूप से ध्यान मे रखना चाहिए क्योकि उनका वेतन स्तर ही बहुत ही नीचा होता है।

6 राजकीय नियम तथा नीतियाँ (Government Rules and Policies)—कर्मचारियों के वेतन निर्धारण में राजकीय नियमो की कभी भी अवहेलना नहीं करनी चाहिये। भारत मे न्यूनतम मजदूरी अधिनियम लागू है, जिनको ध्यान मे रखकर कर्मचारियो का वेतन निर्धारित करना चाहिए। इसी प्रकार सरकार की नीतियो पर भी पर्याप्त ध्यान देना चाहिए। सरकार की नीति समाजवादी समाज

की सरचना करने की है, गरीबो को ऊपर उठाने की है। अत वेतन निर्धारित करते समय इन बातो को भी ध्यान मे रखना चाहिए।

7 कार्य की प्रकृति (Nature of the work)—कार्य प्रकृति भी वेतन को प्रभावित करती है। तकनीकी प्रकृति के कार्यों को करने वाले कर्मचारियो को सामान्य कार्य करने वाले कर्मचारियो से अधिक वेतन मिलता है। उदाहरणार्थ, एक कम्प्यूटर ऑपरेटर को टेलीफोन आपरेटर से अधिक वेतन मिलता है। अत. वेतन निर्धारण में इस तथ्य पर भी ध्यान देना चाहिए

8 श्रम सघो का प्रभाव (Influence of Trade Unions)—श्रम सघ भी वेतन को बढवा सकते हैं, ऐसा पिछले कुछ समय मे हुआ है। श्रम सघ जितने अधिक शक्तिशाली होते हैं, वेतन उतना ही अधिक मिल सकता है।

इस प्रकार इन विभिन्न तत्त्वो का वेतन पर प्रभाव पडता है। अत इनका वेतन निर्धारित करते समय ध्यान मे रखना चाहिए।

वेतन निर्धारित करते समय ध्यान रखने योग्य बातें

(Factors to be Considered while determining Salaries)

अथवा

वेतन प्रशासक के सिद्धान्त

(Principles of Salary Administration)

कार्यालय मे विभिन्न कार्यों के लिए वेतन शृंखला निर्धारित करते समय निम्नलिखित सिद्धान्तों का पालन करना चाहिये —

1. प्रत्येक कार्य के लिये अलग वेतन शृंखला—वेतन शृखला बनाते समय कार्यालय के प्रत्येक कार्य के लिए अलग-अलग वेतन शृखला निर्धारित करनी चाहिए। इससे कार्यों मे विशिष्टीकरण करना भी सरल हो जाता है।

2 उचित वेतन—किसी भी पद के लिए कम से कम उतना वेतन अवश्य रखना चाहिये, जिसमे कर्मचारियो को सस्था के कार्यालय मे कार्य करने के लिए आकर्षित किया जा सके तथा सस्था मे पर्याप्त लम्बे समय तक बने रहने को बाध्य किया जा सके।

3. मितव्ययी—कार्यालय के कर्मचारियो की वेतन शृखला निर्धारित करते समय मितव्ययता का भी पर्याप्त ध्यान रखना चाहिए। वेतन पद्धति मे कर्मचारियो को तो पर्याप्त वेतन मिलना ही चाहिए, किन्तु सस्था को भी कोई हानि नहीं होनी चाहिए।

4 नीचे पद से ऊचे पद का वेतन अधिक होना चाहिये—कार्यालय कर्मचारियो का वेतन निर्धारित करते समय इस बात को भी ध्यान मे रखना चाहिए कि कार्यालय मे ऊचे पद वाले को नीचे पद वाले से अधिक वेतन मिले। व्यावहारिक रूप से उस स्थिति को कभी भी अच्छा नही माना जाता है जिसमे अधिकारी से अधीनस्थ को अधिक वेतन मिलता है।

लाभ (Advantagtes)

केवल वेतन पद्धति से पारिश्रमिक का भुगतान करने से कई लाभ होते हैं, वे निम्न प्रकार हैं —

(अ) नियोक्ताओं को लाभ

1 गणना में सरलता—पारिश्रमिक भुगतान की इस पद्धति का सबसे बड़ा लाभ यह है कि यह पद्धति अत्यन्त सरल है। इस पद्धति से पारिश्रमिक की गणना करना सर्वाधिक रूप से आसान है।

2 मितव्ययता—गणना में सरलता होने के कारण इसमें न तो अधिक समय ही लगता है और न ही किसी प्रकार के गणना यन्त्र (Calculating Machine) में धन विनियोग करने की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार यह विधि मितव्ययी मानी जाती है।

3 भुगतान की जाने वाली राशि का अनुमान—इस विधि का एक बहुत बड़ा लाभ यह है कि संस्था पहले से ही यह आसानी से अनुमान लगा सकती है कि उसे कब-कब कितनी राशि का कर्मचारियों को भुगतान करना पड़ेगा। इस प्रकार कार्यालय व्यय बजट (Office expense budget) बनाना बहुत सरल हो जाता है।

4. कर्मचारियों की क्रियाओं पर अधिक नियन्त्रण—जब वेतन के आधार पर पारिश्रमिक का भुगतान किया जाता है, तो कार्यालय प्रबन्धक कर्मचारियों की क्रियाओं पर अधिक नियन्त्रण स्थापित कर सकते हैं एवं कर्मचारियों से उचित प्रकार से कार्य करवा सकते हैं।

(ब) कर्मचारियों के दृष्टिकोण से लाभ

1. निश्चित आय—इस विधि से पारिश्रमिक प्राप्त करने से कर्मचारियों को सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि उन्हें निरन्तर स्थाई आय प्राप्त होती रहती है। चाहे कार्यालय में कार्य की मात्रा घटे अथवा बढ़े, उनके वेतन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

2 भविष्य की चिन्ताओं से मुक्ति—चूंकि कर्मचारियों को वेतन की एक निश्चित राशि एवं निश्चित समय के पश्चात मिलती रहती है। अतः उन्हें भविष्य की चिन्ता नहीं रहती है, यदि वे लगातार सतर्कता पूर्वक कार्य करते रहें।

3 स्वतः वेतन वृद्धि—प्राय वेतन की एक निश्चित शृंखला (Pay scale) होती है। अत सामान्यत प्रत्येक कर्मचारी को एक निश्चित अवधि के बाद स्वत वृद्धि प्राप्त हो जाती है। उसे वेतन वृद्धि के लिये भी चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं रहती है।

4 नये कर्मचारियों को अच्छा पारिश्रमिक—इस विधि से वेतन मिलने के कारण नये कर्मचारियों को जिनकी प्रारम्भिक कार्य क्षमता अपेक्षाकृत कम होती है, को भी अच्छा वेतन प्राप्त हो जाता है।

ग्राहक के दृष्टिकोण से सोचना प्रारम्भ करता है और वह उन वही सब सोचने के लिये प्रेरित करता है, जो वह स्वयं सोचता है।'[1]

नॉक्स (Knox) के अनुसार "विक्रयकला मानवीय इच्छाओं को मानवीय आवश्यकताओं म परिवर्तित करने की योग्यता है। [2]

नाइस्ट्रोम (Nystrom) द्वारा दी गई परिभाषा भी नाक्स की परिभाषा से मिलती-जुलती ही है। परन्तु नाइस्ट्रोम ने कुछ विशेष शब्दों का प्रयोग कर अधिक स्पष्ट कर दिया है। उनके अनुसार "विक्रयकला माल प्रस्तुत करने की वह कला अथवा चातुर्य है, जो माल के प्रति तटस्थ एव विपक्षी विचारों को माग अथवा इच्छा म परिणित कर देती है। [3]

हास तथा अर्नेस्ट (Hass and Ernest) के अनुसार 'विक्रयकला वस्तुओं एव सेवाओं के स्वरूप को क्रेता की सुविधा एव लाभ के सन्दर्भ म व्याख्या करने तथा उसे सही प्रकार एव किस्म की वस्तु अथवा सेवा के क्रय के लिये उकसाने व प्रोत्साहित करने की योग्यता है।'[4]

विक्रयकला क्षेत्र के विश्व प्रसिद्ध विद्वान् हरबर्ट एन. केसन (Herbert N Casson) के अनुसार "विक्रयकला पारस्परिक हित के लिये दूसरे व्यक्तियों को समझना, अनुकरण करना तथा प्रभावित करने की कला है। [5]

ग्रीफ (Grief) के अनुसार "विक्रयकला वास्तव म, मौखिक प्रोत्साहन है तथा दूसरे की सेवा करने की वास्तविक रुचि है, जो ग्राहकों को उनके क्रय की समस्याओं का सर्वोत्तम हल प्रदान करती है। [6]

कौच (Couch) के अनुसार "विक्रय कला वह विज्ञान है जिससे सम्भावित

---

1 The act of Salesmanship consists of one human mind influencing another human mind A salesman also sell his point of view to his prospective customer and leads his mind to the point where he will accept the salesman s theory." —Henry Ford

2 Salesmanship is the ability to change human need into human want —J. S Knox

3 "Salesmanship is the skill or art of presentation of goods so as to conve t nautral or even negative attitudes towards them into positive wants or demands" —Paul H Nystrom

4 Salesmanship is the ability to interpret product and service features in terms of benefits and advantages to the buyer and to persuade and to motivate him to buy the right kind, quality of product or service" —Kenneth B. Hass & John W Ernest

5 "Salesmanship is the art of understanding, approaching and influencing other people for mutual benefit." —Herbert N Casson

6 Salesmanship is sincere oral persuation and a genuine interest in serving others, harnessed to provide customers with the best solutions to their buying problems," —Edwin Charles Grief

कार्य करता है। ऐसी स्थिति मे प्रबन्धकों को उनकी क्रियाओं पर अधिक नियन्त्रण रखना होता है, ताकि उनसे पूरा कार्य करवाया जा सके।

7 प्रशिक्षण पर व्यय—जब अकुशल कर्मचारी पर्याप्त नियन्त्रण के बावजूद भी अपनी कार्य कुशलता नहीं बढा पाते हैं, तो उनको पुन प्रशिक्षण देना पडता है। अत. प्रशिक्षण का अतिरिक्त वित्तीय भार भी कार्यालय को उठाना पड़ता है।

8 लोचहीन—पारिश्रमिक भुगतान की यह पद्धति लोचहीन है। इनमें परिस्थितियो के अनुसार तथा आवश्यकताओं के अनुसार परिवर्तन सम्भव नहीं होते हैं।

9 कर्मचारियो के आवर्तन मे वृद्धि—इस पारिश्रमिक पद्धति का एक दोष यह भी है, कि इसमे कर्मचारियो के आवर्तन मे वृद्धि होती है। कुशल कर्मचारियो को ज्योही दूसरी सस्था मे अच्छे पारिश्रमिक मिलने के अवसर दिखाई देते हैं, वे इस सस्था को छोडकर चले जाते हैं।

(ब) कर्मचारियो की दृष्टि से दोष

1 अभिप्रेरणा का अभाव—इस विधि से सभी प्रकार के कुशल एव अकुशल कर्मचारियो को लगभग समान वेतन मिलता है। इसके परिणामस्वरूप कर्मचारियो को अधिक कार्य करने की प्रेरणा नहीं मिल पाती है। वे यह अच्छी तरह जानते हैं कि अतिरिक्त कार्य से उन्हे अतिरिक्त लाभ नहीं मिलेगा। अत: वे उतना ही कार्य करते हैं, जितना कार्य करना आवश्यक होता है।

2. दक्षता का अभाव—अभिप्रेरणा का अभाव मे जब कर्मचारी लगन रुचि एव परिश्रम से पर्याप्त कार्य नहीं करते हैं, तो वे दक्ष नहीं बन पाते हैं। अत सस्था मे अदक्ष व्यक्ति बढते हैं।

3 जीवन-स्तर एव कीमत-स्तर का सम्बन्ध नहीं—पारिश्रमिक की इस पद्धति का कर्मचारियो की दृष्टि से यह भी एक महत्त्वपूर्ण दोष है, कि इस पद्धति का जीवन-स्तर एव बाजार-मूल्यो से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। अत इस पद्धति मे विक्रयकर्ताओं का कीमतो के बढने के साथ साथ वेतन नहीं बढ पाता है, जिससे उनके जीवन स्तर मे गिरावट आने लगती है।

4 वेतन शृ खला पार करने पर आय स्थिर—यदि कर्मचारी अपनी सम्पूर्ण वेतन शृखला पार कर लेता है, तो इसके बाद उसे सदैव ही उसी वेतन पर कार्य करना पडता है। स्वत: वेतन वृद्धि सम्भव नहीं हो पाती है। इस कारण भी कर्मचारियो की कार्य मे अधिक रुचि नहीं रहती है।

इस प्रकार इन उपर्युक्त दोषो के कारण ही पारिश्रमिक की इस विधि को अपर्याप्त एव असतोषप्रद माना जाता है।

II. प्रेरणात्मक वेतन पद्धति
(Incentive Salary Plan)

प्रेरणात्मक वेतन पद्धति वेतन भुगतान की वह पद्धति है, जिसके द्वारा कर्मचारियो को अपनी कार्यक्षमता तथा कार्यकुशलता बढाने के लिए प्रोत्साहन दिया जाता है। इस पद्धति के अनुसार जो कर्मचारी, जितना अधिक कार्य करता है, उसे उतना ही अधिक पारिश्रमिक भी दिया जाता हैं। अर्थात् एक निश्चित प्रमाप से अधिक काय करने वाले कर्मचारी को एक निश्चित वेतन के अतिरिक्त राशि प्रदान की जाती है। ऐसी पद्धति लागू करने का उद्देश्य कम से कम खर्च पर अधिकाधिक काय करवाना होता है, किन्तु प्रेरणात्मक वेतन पद्धति कार्यालय कर्मचारियों को वेतन चुकाने के लिए बहुत ही कम प्रयोग की जाती है। नेशनल ऑफिस मेनेजमेन्ट एसोसिएशन अमेरिका (National Office Management Association U S A) द्वारा किये गये, एक अनुसधान से यह ज्ञात हुआ है, कि 99 सस्थाओ के कार्यालयो मे से 10 कार्यालयो मे ही प्रेरणात्मक वेतन पद्धति अपनाई जाती है।

लाभ (Advantages)

प्रेरणात्मक पद्धति के निम्नलिखित प्रमुख लाभ है

(अ) नियोक्ताओ के दृष्टिकोण से :

1 *कर्मचारियो के कार्य का मूल्याकन*—इसमे कर्मचारियो को उनके कार्य के अनुसार पारिश्रमिक दिया जाता है। अत उनके कार्य का समय समय पर स्वत मूल्याकन होता रहता है। जब भी पारिश्रमिक दिया जाता है, कार्य प्रगति की जानकारी हो जाती है।

2. नियन्त्रण की कम समस्या—इस पद्धति मे पारिश्रमिक का भुगतान करने का एक महत्त्वपूर्ण लाभ यह होता है, कि कर्मचारियो पर नियत्रण की समस्या नही रहती है। कर्मचारी स्वय अधिकाधिक कार्य करने मे लगे रहते है क्योंकि उन्हे अधिक कार्य करने पर अधिक पारिश्रमिक भी मिलता है। इस प्रकार कर्मचारियो के नियत्रण की समस्या कम हो जाती है।

3 अकुशल कर्मचारियो से हानि नही—कवल वेतन विधि म 'घोडे और गधे एक समान' समझे जाते हैं। सभी को समान वतन दिया जाता है। इसमे कार्यालय को हानि होती है किन्तु प्रेरणात्मक वेतन पद्धति का यह लाभ है कि कुशल कर्मचारियो को अधिक तथा अकुशल कर्मचारियो को कम पारिश्रमिक मिलता है। अत. कार्यालय को अकुशल कर्मचारियो से हानि नही उठानी पडती है।

4. कार्यालय मे हानि की सम्भावना कम—चूकि प्रत्येक कर्मचारी को उसके काय के अनुसार वेतन मिलता है। अत सामान्यत कार्यालयो मे हानि की सम्भावनाएँ कम हो जाती है।

5 समय पर कार्य करना सरल—प्रेरणात्मक पद्धति से पारिश्रमिक का भुगतान करने मे समय पर कार्य करने के लक्ष्य को पूरा करना आसान हो जाता है।

जब कभी भी कार्यालय कार्य पूर्व निर्धारित लक्ष्यो के अनुरूप नही हो रहे हो, तो प्रेरणात्मक वतन बढा कर कार्य पूरे करवाये जा सकते हैं।

6 **कार्यालयो को अच्छे कर्मचारियो की प्राप्ति**—पारिश्रमिक भुगतान की इस पद्धति का एक प्रभाव यह भी पडता है, कि कार्यालय मे अच्छे एव कार्य कुशल कर्मचारी आने लगते हैं। इसका कारण स्पष्ट है कि उन्हे कार्य के अनुसार पारिश्रमिक मिलता है।

7 **मितव्ययता**—इस पद्धति के अपनाने से सस्थान म कार्यालय खर्च म कमी आने लगती है, कर्मचारियों पर नियत्रण की आवश्यकता नही रहती है, वेतन कार्य के आधार पर दिया जाता है तथा सस्थान मे कुशल कर्मचारियो के आने पर प्रशिक्षण आदि की भी जरूरत कम पडती है। परिणामस्वरूप इन मदों पर होने वाले व्यय मे कमी होने लगती है तथा सस्था को मितव्ययता प्राप्त हो जाती है।

8. **पारिश्रमिक बढाने की समस्या नहीं**—प्रेरणात्मक वेतन पद्धति के आधार पर पारिश्रमिक देने की स्थिति मे सामान्यत कर्मचारियो को, अपने पारिश्रमिक का बढवाने के लिये, आन्दोलनात्मक तरीका नही अपनाते हैं। वे स्वय अधिक कार्य करके अधिक पारिश्रमिक प्राप्त कर लेते हैं।

9 **सीमित आवर्तन**—कर्मचारियो को पर्याप्त पारिश्रमिक मिलने से कर्मचारी सस्था मे ही बने रहना पसन्द करते हैं। इससे कार्यालय मे कर्मचारियो का आवर्तन (Turn over) घटने लगता है।

(ब) कर्मचारियो के दृष्टिकोण से:

1 **कार्यानुसार पारिश्रमिक**—इस पद्धति मे कार्यानुसार पारिश्रमिक मिलता है। अत सामान्यत. सभी कुशल कर्मचारी वर्ग इसे पसन्द करते हैं।

2. **कार्य-क्षमता मे सुधार का अवसर**—पारिश्रमिक भुगतान की यह पद्धति कर्मचारियो को अपनी कार्य क्षमता मे सुधार करने का अवसर एव प्रेरणा देती है। इसका प्रमुख कारण यह है कि इस पद्धति मे जो जितना अधिक कार्य करता है, उतना ही उसे पारिश्रमिक अधिक मिलता है। इसके परिणामस्वरूप ही कई बार व्यक्ति अधिक कार्य करने लग जाते हैं और अपनी कार्य-क्षमता मे सुधार कर लेते हैं।

3. **स्वतन्त्र रूप से कार्य करने का अवसर**—जब इस पद्धति से पारिश्रमिक मिलता है, तो प्राय. कर्मचारियो को अधिक नियत्रण मे रखने की आवश्यकता नही पडती है।

4 **कुशल कर्मचारियो को सुविधा**—कुशल कर्मचारियो का प्रबन्धको की कृपा पर रहने की आवश्यकता नही पडती है, क्योकि वे अधिकाधिक कार्य करके अधिकाधिक पारिश्रमिक प्राप्त कर लेते हैं।

दोष (Disadvantages)

प्रेरणात्मक वेतन पद्धति के प्रमुख दोषों का निम्नलिखित शीर्षकों में अध्ययन किया जा सकता है

(अ) नियोक्ताओं के दृष्टिकोण से

1 कार्य प्रमाप करना कठिन —कार्यालय के कार्यों की प्रकृति ही ऐसी होती है कि उनके लिए प्रमाप निश्चित करना ही कठिन होता है। अत प्रेरणात्मक वेतन पद्धतियां के लागू करने में भी कठिनाइ उत्पन्न होती है।

2 मान्यताओं पर प्रमाप आधारित—प्रेरणात्मक वेतन लागू करने के लिए जो प्रमाप निश्चित किए जाते हैं वे प्रमाप पूर्णत मान्यताओं और अनुमानों पर आधारित होते हैं। अत पारिश्रमिक का सन्तोषप्रद आधार निश्चित करने में कठिनाई आती है।

3 समान वेतन पद्धति का अभाव—चूंकि कार्यालय के सभी कार्यों के लिए प्रमाप निश्चित करना सम्भव नहीं होता है इसलिए जिन कार्यों के लिए प्रमाप निश्चित हो जाते हैं उनके लिए प्रेरणात्मक वेतन पद्धति अपनाई जाती है। जिन कार्यों में प्रमाप निश्चित नहीं हो पाते हैं उनके लिए केवल वेतन पद्धति अपनाई जाती है। इस प्रकार एक ही कार्यालय में भिन्न भिन्न वेतन पद्धति का प्रयोग करना पड़ता है।

4 गणना में कठिनाई—प्रेरणात्मक वेतन पद्धति से वेतन की गणना करने में कुछ कठिनाइयां आती हैं जबकि केवल वेतन पद्धति में उतनी कठिनाइयां नहीं आती है।

5 गलती की सम्भावना—प्रेरणात्मक वेतन पद्धति में अधिक कार्य करने से अधिक वेतन मिलता है। परिणामस्वरूप कर्मचारी अधिक कार्य करने पर ध्यान देने लगते है और जिससे कार्य में गलतियों की सम्भावना बढ़ जाती है।

6 अनुपस्थिति बढ़ाना—कर्मचारी थोड़े ही समय में बहुत कार्य पूरा कर लेते हैं और अधिक धन कमा लेते हैं। वे बाद में निश्चित होकर छुट्टियां मनाते हैं तथा कार्य से अनुपस्थित रहते हैं। इससे संस्था के कार्यों में अनियमितता आने लगती है।

(ब) कर्मचारियों के दृष्टिकोण से

1 ऊंचे प्रमाप—प्रेरणात्मक वेतन पद्धति का कर्मचारी इसलिए विरोध करते है कि प्रबन्धक उनके कार्यों के लिए बहुत ऊंचे प्रमाप निर्धारित करता है जिन्हें पूरा करना आसान कार्य नहीं होता है।

2 प्रेरणात्मक वेतन कम—उच्च प्रमापों के अतिरिक्त प्रेरणात्मक रूप में दिया जाने वाला वेतन भी बहुत कम होता है। इस प्रकार उनका शोषण होता है।

3 भौतिक कल्याण पर कम ध्यान—प्रेरणात्मक वेतन पद्धति में कोई भी संगठन अपने कर्मचारियों के भौतिक कल्याण पर अधिक ध्यान नहीं देता है। वे

केवल कुछ धन अधिक देकर तात्कालिक सतुष्टि प्रदान कर अत्यधिक कार्य करवा लेते हैं। वे उनके भावी जीवन के बारे में कुछ भी ध्यान नही देते हैं।

4. आपसी द्वेष—जिन कार्यों के प्रभाव निश्चित होते हैं, उनमे ही प्रेरणात्मक वेतन पद्धति लागू की जा सकती है। अतः जिन कार्यों में प्रमाप निश्चित करना सम्भव नही होगा, यह पद्धति लागू नही की जा सकेगी। परिणामस्वरूप, कर्मचारियो मे आपसी द्वेष उत्पन्न होना स्वाभाविक है।

5. कर्मचारियो की छंटनी तथा ले ऑफ—प्रेरणात्मक वेतन पद्धति से वेतन देकर कुछ ही समय में सभी या अधिकाश कार्य पूरे करवाये जाते हैं। परिणामस्वरूप, बाद मे कार्य में कमी हो जाने पर कर्मचारियो को हटाया जा सकता है।

प्रेरणात्मक वेतन पद्धति की उपयोगिता
(Office of Incentive Salary Plan)

कार्यालय मे प्रेरणात्मक वेतन पद्धति की उपयोगिता निम्नलिखित परिस्थितियो मे हो सकती है—

1 जब कार्य प्रभावित (Standardised) हो।
2. जब कार्य की दरो को निश्चित किया जा सकता हो।
3 जब कार्य मे पर्यवेक्षण या निरीक्षण करना कठिन हो।
4 जहाँ कार्यालय मे कार्य अत्यधिक हो।
5 जहाँ कार्य मे लोगो को अरुचि पैदा हो सकती हो।
6 कर्मचारियो एव सेवायोजको मे आपसी सहमति हो गई हो।
7 जब अच्छे कर्मचारियो को आकर्षित करने की आवश्यकता हो।
8 जब अच्छे कर्मचारियो को सस्था के बाहर जाने से रोकना हो।
9 जब कर्मचारी स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करना पसन्द करते हो।
10 जब कर्मचारियो की कार्यक्षमता मे सुधार करने की आवश्यकता हो।
11 उच्च प्रबधको को प्रेरणात्मक वेतन पद्धति उपयुक्त प्रतीत हो।
12. जब प्रेरणात्मक वेतन पद्धति लागू करना सरल हो।
13 जब वेतन बढने से कार्य की मात्रा तथा गुण भी बढ सकते हो।

अभ्यास के लिए प्रश्न

1 कार्यालय कर्मचारियों के वेतन को प्रभावित करने वाले तत्वो का वर्णन कीजिये।

Discuss the factor effecting salary of office personnel.

2 कार्यालय कर्मचारियों को वेतन भुगतान करने की पद्धतियों का वर्णन कीजिये।
Discuss the methods of payment of salaries to the office personnel

3 कार्यालय कर्मचारियों का वेतन निर्धारित करते समय कौन कौन सी बातें ध्यान में रखनी चाहिये ?
What factors should be considered while determining salaries for office personnel ?

4 किन परिस्थितियों में कार्यालय में प्रेरणात्मक भृति पद्धति लागू की जा सकती है ?
Under what circumstances can incentive wage system be used in the office ?

इकाई-4
(UNIT-4)

1. विक्रयकला : एक परिचयात्मक विश्लेषण
2. एक सफल विक्रयकर्त्ता के गुण
3. विक्रयकर्त्ताओं के प्रकार
4. विक्रयकर्त्ताओं का चुनाव
5. विक्रयकर्त्ताओं का प्रशिक्षण
6. विक्रयकर्त्ताओं का पारिश्रमिक
7. विक्रयकर्त्ताओं को अभिप्रेरणा

I

विक्रयकला : एक परिचयात्मक विश्लेषण

(Salesmanship An Introductory Analysis)

Nothing has value until it has been demonstrated that it can be sold

—*Charles H Schwab*

अमरिका के प्रसिद्ध विक्रयकर्त्ता रड मोटले (Red Motley) ने एकबार कहा है "विक्रय के बिना कुछ भी सम्भव नहीं है।" (Nothing happens till somebody sells something) इस कथन मे तनिक भी असत्यता नही लगती है। विक्रय ही प्रत्येक उत्पादन का आदि एव अन्त है। विक्रय पर ही प्रत्येक व्यावसायिक सस्था की समृद्धि निर्भर करती है। सम्भवत विक्रय से ही प्रत्येक व्यावसायिक सस्था को अधिकांश आय प्राप्त होती है। अत विक्रय को किसी व्यावसायिक सस्था की रीढ की हड्डी कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। परन्तु वर्तमान प्रतिस्पर्धात्मक युग मे विक्रय करना एक सरल काय नही है।

आज का बाजार 'क्रेता का बाजार" कहलाता है। जहा क्रेता को "बाजार का राजा' (Customer is a king of the market) समझा जाता है। क्रेता की सन्तुष्टि एव लाभ को प्राथमिकता दी जाती है। विक्रयकर्त्ता क्रेता के क्रय की समस्या का निवारण करना अपना कर्त्तव्य समझता है। ऐसी स्थिति म विक्रयकला का अपना विशेष महत्त्व है। विक्रय कला द्वारा क्रेता की इच्छाएँ जाग्रत कर, उनकी सन्तुष्टि की जाती है। इच्छाएँ जागृत करने एव उनकी सन्तुष्टि करने तक की प्रक्रिया म उत्पादन बढता है, वस्तुओ की लागत घटती है, विक्रय वृद्धि होती है, लाभ बढता है, विनियोजन बढता है और क्रेता की सन्तुष्टि हो जाती है। इसके परिणामस्वरूप सामाजिक जीवन-स्तर म वृद्धि होती है एव देश का आर्थिक विकास होता है। स्पष्ट है कि विक्रयकला से न केवल व्यावसायिक उन्नति ही होती है बल्कि समाज एव राष्ट्र की भी चहुँमुखी प्रगति होती है। आधुनिक युग मे 'अच्छे पिजरे का सिद्धान्त (Better Mousetrap Theory) का महत्त्व समाप्त हो चुका है। अर्थात् वह युग समाप्त हो चुका है जबकि अच्छी वस्तुएँ स्वयमेव बिक जाया करती थी। आज

अच्छी मे अच्छी एव न्यूनतम कीमत वाली वस्तुओं के विक्रय के लिए भी विक्रयकला अपरिहार्य है।

विक्रयकला का अर्थ एव परिभाषा
(Meaning and Definition of Salesmanship)

विक्रयकला' शब्द दो शब्दो—विक्रय एव कला के योग से बना है। विक्रय से आशय वस्तुओं एव सेवाओं के स्वामित्व का एक पक्षकार से दूसरे पक्षकार को हस्तान्तरण होता है। विस्तृत रूप मे विक्रय किसी निश्चित प्रतिफल (मूल्य) के बदले किसी वस्तु के स्वामित्व का एक पक्षकार से दूसरे पक्षकार को हस्तान्तरण है।[1] कला शब्द से आशय किसी निश्चित युक्ति द्वारा किसी निश्चित उद्देश्य को प्राप्त करना है। अत साधारण शब्दो मे कहा जा सकता है कि विक्रयकला एक ऐसी कला है, जिसके माध्यम से विक्रयकर्ता एक निश्चित युक्ति से अपने माल का विक्रय करता है। परन्तु आधुनिक युग मे विक्रयकला को इस सीमित अर्थ मे समझना अनुपयुक्त होगा। वर्तमान युग मे विक्रयकला केवल लोगो को माल बेचने की कला मात्र ही नहीं है, बल्कि वस्तुओं को इस प्रकार प्रस्तुत करने की कला है जिससे कि ग्राहक उन वस्तुओं की आवश्यकता को अनुभव करे और उसे उनके प्रयोग से अधिकाधिक लाभ एव सन्तुष्टि मिले। इस प्रकार आज के विक्रयकर्ता का मूल उद्देश्य अपने ग्राहको की विक्रय समस्याओं को दूर कर उनको सन्तुष्टि प्रदान करना है। अत विक्रयकला को आधुनिक अर्थों मे समझना आवश्यक है। विद्वानो द्वारा दी गई कुछ परिभाषाये नीचे उद्धृत की गई है —

विलियम जी कार्टर (William G Carter) के अनुसार विक्रयकला लोगो को माल क्रय करने के लिए फुसलाने का प्रयास है।[2]

रिपले (Ripley) के अनुसार विक्रयकला एक शक्ति है जिसके द्वारा वस्तुओं का लाभ पर प्रसन्नतापूर्वक एव स्थाई रूप से खरीदने के लिए अनेक व्यक्तियों को उकसाया जाता है।[3]

अमेरिका के प्रसिद्ध उद्योगपति हेनरी फोर्ड (Henry Ford) के अनुसार विक्रयकला एक मानवीय मस्तिष्क के दूसरे मानवीय मस्तिष्क को प्रभावित करने मे अन्तर्निहित है। विक्रयकर्ता अपने विचारो को बेचता है। लेकिन वह अपने भावी

---

1 "A Sale according to a dictionary is the transfer of title in goods property or a service from one person to another for consideration Kenneth B Hass and Johan W Ernest Creative Salesmanship Understanding Essentials p 4

2 'Salesmanship, is an attempt to induce people to buy goods '
—William G Carter

3 'Salesmanship is the power to persuade plenty of people pleasurably and permanently to purchase your product at a profit —Ripley

ग्राहक के दृष्टिकोण से सोचना प्रारम्भ करता है और वह उसे वही सब सोचने के लिये प्रेरित करता है, जो वह स्वय सोचता है।'[1]

नॉक्स (Knox) के अनुसार "विक्रयकला मानवीय इच्छाओं को मानवीय आवश्यकताओं मे परिवर्तित करने की योग्यता है।[2]

नाइस्ट्रोम (Nystrom) द्वारा दी गई परिभाषा भी नाक्स की परिभाषा से मिलती-जुलती ही है। परन्तु नाइस्ट्रोम ने कुछ विशेष शब्दो का प्रयोग कर अधिक स्पष्ट कर दिया है। उनके अनुसार "विक्रयकला माल प्रस्तुत करने की वह कला अथवा चातुर्य है, जो माल के प्रति तटस्थ एव विपक्षी विचारो को माग अथवा इच्छा म परिणित कर देती है।[3]

हास तथा अर्नेस्ट (Hass and Ernest) के अनुसार विक्रयकला वस्तुओ एव सेवाओ के स्वरूप को क्रेता की सुविधा एव लाभ के सन्दर्भ म व्याख्या करने तथा उसे सही प्रकार एव किस्म की वस्तु अथवा सेवा के क्रय के लिये उकसाने व प्रोत्साहित करने की योग्यता है।'[4]

विक्रयकला क्षेत्र के विश्व प्रसिद्ध विद्वान् हरबर्ट एन. केसन (Herbert N Casson) के अनुसार "विक्रयकला पारस्परिक हित के लिये दूसरे व्यक्तियो का समझना, अनुकरण करना तथा प्रभावित करने की कला है।[5]

ग्रीफ (Grief) के अनुसार "विक्रयकला वास्तव म, मौखिक प्रोत्साहन है तथा दूसरे की सेवा करने की वास्तविक रुचि है, जो ग्राहकों को उनके क्रय की समस्याओ का सर्वोत्तम हल प्रदान करती है।[6]

कौच (Couch) के अनुसार "विक्रय कला वह विज्ञान है जिसमे सम्भावित

---

1 The act of Salesmanship consists of one human mind influencing another human mind A salesman also sell his point of view to his prospective customer and leads his mind to the point where he will accept the salesman s theory." —Henry Ford

2 Salesmanship is the ability to change human need into human want —J S Knox

3 "Salesmanship is the skill or art of presentation of goods so as to convert nautral or even negative attitudes towards them into positive wants or demands " —Paul H Nystrom

4 Salesmanship is the ability to interpret product and service features in terms of benefits and advantages to the buyer and to persuade and to motivate him to buy the right kind, quality of product or service ' —Kenneth B. Hass & John W Ernest

5 "Salesmanship is the art of understanding, approaching and influencing other people for mutual benefit." —Herbert N Casson

6 Salesmanship is sincere oral persuation and a genuine interest in serving others, harnessed to provide customers with the best solutions to their buying problems," —Edwin Charles Grief

ग्राहक के मस्तिष्क में यह भावना भरना कि आपकी वस्तु खरीदने मात्र से ही उसे सन्तुष्टि प्राप्त होगी। [1]

हैरोल्ड व्हाइट हेड (Harold White head) के शब्दों में, 'विक्रयकला वस्तुओं को इस प्रकार प्रस्तुत करने तथा भेंट करने की एक कला है, जिसमें सम्भावित ग्राहक वस्तु की आवश्यकता अनुभव करने लगता है एवं पारस्परिक सन्तोषजनक विक्रय हो जाता है। [2]

हेनसेन (Hansen) के अनुसार विक्रयकला वह कार्य है जिसमें लोगों को किसी विचार को स्वीकार करने के लिये प्रोत्साहित किया जाता है। [3]

स्पष्ट है कि विक्रयकला वह व्यक्तिगत सेवा तथा चातुर्य है जिसके द्वारा विक्रयकर्ता सम्भावित ग्राहकों (Prospective customers) में माल के प्रति इच्छा जागृत कर परस्पर लाभ एवं सन्तोष के लिए विक्रय करता है।

विक्रयकला के लक्षण (Characteristics of Salesmanship)

उपरोक्त परिभाषाओं से विक्रयकला के निम्न प्रमुख लक्षण प्रकट होते है—

1 यह एक व्यक्तिगत सेवा है—विक्रयकला का सर्वप्रमुख लक्षण यह है कि यह एक व्यक्तिगत सेवा है। विक्रयकर्त्ता अपनी विक्रयकला का प्रयोग व्यक्तिगत रूप से ही करता है। यद्यपि यह कहा जाता है कि विक्रयकला दो प्रकार की होती है—(i) व्यक्तिगत विक्रयकला (Personal salesmanship) तथा (ii) मुद्रित विक्रयकला (Salesmanship in print)। किन्तु हम विक्रयकला से आशय व्यक्तिगत विक्रयकला से ही लगाते हैं मुद्रित से नहीं। मुद्रित विक्रयकला को हम विज्ञापन कहते हैं। विक्रयकला में विक्रयकर्त्ता ग्राहक को व्यक्तिगत रूप से माल के क्रय में सहायता पहुँचाता है।

2 विक्रयकला एक व्यक्ति में माल के क्रय की इच्छा जागृत करने की कला है—आधुनिक विक्रयकला का यह एक महत्त्वपूर्ण लक्षण है। विक्रयकला की सहायता से विक्रयकर्त्ता ग्राहक को यह महसूस करवा देता है कि वह वस्तु जो उसने कभी प्रयोग नहीं की है उसके लिए लाभप्रद है। यही बात उस ग्राहक में उस वस्तु विशेष के क्रय की इच्छा जागृत कर देती है।

---

1 Salesmanship is the science of creating in the mind of your prospect a desire that only possession of your product will satisfy —D D Couch Vice President, American Raditor and Standard Sanitary Corporation

2 *The art of so presenting and offering that the prospect appreciates the need for it that a mutually satisfactory sales follows'*

—Harold White head

3 "Salesmanship is the act of persuading people to accept an idea '

—Harry L Hansen

3 यह इच्छा को आवश्यकता मे परिणित करने की कला है—जब यह ग्राहक मे माल के क्रय की इच्छा जाग्रत करती है तो वह क्रय करता है चूं कि यह क्रय उसको सन्तुष्टि प्रदान करता है। इसलिए वह इस वस्तु को पुन क्रय करता है। परिणामस्वरूप, धीरे-धीरे वह वस्तु उनकी आवश्यकता बन जाती है।

4 यह एक मानवीय मस्तिष्क से दूसरे मानवीय मस्तिष्क को प्रभावित करने की कला है—आधुनिक विक्रयकला की महत्त्वपूर्ण विशेषता यह भी है, कि इससे एक मानवीय मस्तिष्क से दूसरे मानवीय मस्तिष्क को प्रभावित किया जाता है। विक्रयकर्त्ता अपनी विक्रयकला के द्वारा किसी वस्तु विशेष से सम्बन्धित अपनी विचार धारा को अपने ग्राहक के मस्तिष्क म डाल देता है। विक्रयकर्त्ता इसके द्वारा किसी वस्तु विशेष के प्रति ग्राहक की भी वैसे ही मनोवृत्ति उत्पन्न कर देता है जैसी मनोवृत्ति वह स्वय उस वस्तु विशेष के लिए रखता है।

5. यह व्यक्तियों को प्रसन्नतापूर्वक माल क्रय करने का अनुग्रह करने की कला है—विक्रयकला के द्वारा ग्राहकों को माल के क्रय का अनुग्रह किया जाता है न कि जबर्दस्ती से विक्रय। विक्रयकर्त्ता अपनी विक्रयकला की सहायता से अपनी वस्तु से प्राप्त होने वाले सम्भावित लाभों को बढाकर सन्तुष्ट करता है। वह उनको प्रसन्नता पूर्वक माल के क्रय के लिये उकसाता है।

6 यह ग्राहकों की समस्या का निवारण करने की कला है—आधुनिक युग मे विक्रयकला को ग्राहकों की समस्याओ के निवारण करने की कला भी कहते है। वास्तव मे, आजकल विक्रयकर्त्ता अपनी विक्रयकला के माध्यम से ग्राहकों की क्रय की समस्याओं को ज्ञात करते हैं अर्थात् आजकल विक्रयकर्त्ता, ग्राहकों के क्रय के उद्देश्य रुचियाँ आदि का ज्ञान कर उनको उसी प्रकार की वस्तु प्राप्त करने म सहायता प्रदान करते हैं। इसीलिए किसी ने ठीक ही कहा है कि **"आधुनिक विक्रय-कर्त्ता ग्राहकों की समस्या के निवारण मे ही लगा रहता है न कि विक्रय बाधाओं को दूर करने मे।"**

7 यह विक्रयकर्त्ता एव ग्राहकों दोनों को क्रय-विक्रय मे परस्पर लाभ व सतोष प्रदान करती है—विक्रयकला धोखा देकर यन केन प्रकारेण विक्रयकर्त्ता की जेब भरने की कला न होकर, यह विक्रयकर्त्ता एव ग्राहक दोनो को क्रय विक्रय मे परस्पर लाभ एव सन्तोष प्रदान करने की कला है। विक्रयकला से ग्राहक सही मूल्य पर सही वस्तु, सही समय पर प्राप्त करता है। उसे इससे अधिकाधिक सतुष्टि प्राप्त होती है। यही उसका सबसे बडा लाभ है। जबकि दूसरी ओर विक्रयकर्त्ता अपने माल का विक्रय कर उचित लाभ प्राप्त कर लेता है। इससे उसे सतोष भी प्राप्त होता है। इस प्रकार यह दोनो मे परस्पर सतोष एव लाभ के लिए है।

8 यह ग्राहक एव विक्रयकर्त्ता मे घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करती है—चूं कि विक्रयकला ग्राहक एव विक्रयकर्त्ता के परस्पर हित एव लाभ के लिए है, इसका

उद्देश्य किसी भी प्रकार को धोखा देना नहीं, बल्कि इसके विपरीत इसमें ग्राहक को सही वस्तु सही समय पर क्रय करने में सहायता प्रदान की जाती है तथा उसके धन के सदुपयोग का प्रयास किया जाता है। अतः निश्चय ही यह ग्राहक व विक्रयकर्त्ता के मध्य घनिष्ठ सम्बन्धों का सूत्रपात करती है।

अच्छी विक्रयकला एवं विक्रयकला के उपर्युक्त मूल लक्षणों के अतिरिक्त और कुछ लक्षण होते हैं। वे लक्षण निम्न प्रकार हैं —

9 मोल-भाव की प्रवृत्ति में कमी (Decreases haggling tendency)—सामान्यतः ग्राहकों में बाजार में वस्तुओं का क्रय करते समय विक्रयकर्त्ता द्वारा बताये गये मूल्यों को कम करवाने की प्रवृत्ति पाई जाती है। किन्तु, अच्छे विक्रयकर्त्ता एक ही मूल्य बताते हैं और ग्राहक उसी मूल्य पर वस्तु क्रय करने को तत्पर हो जाते हैं। वे अपनी विक्रयकला से ग्राहकों में यह विश्वास जमा देते हैं कि उनके द्वारा लिया जाने वाला मूल्य उचित है। ऐसा होने से क्रेता एवं विक्रयकर्त्ता के समय की ही बचत नहीं होती है बल्कि ग्राहक सदैव के लिए उसी विशिष्ट दुकान से ही माल क्रय करने लग जाता है।

10 'ग्राहक सदैव सही' की उक्ति का पालन (Follows the saying customer is always correct) —अच्छी विक्रयकला जानने एवं अभ्यास करने वाले विक्रयकर्त्ता सामान्यतः 'ग्राहक सदैव सही' की उक्ति का ही पालन करते हैं। वे ग्राहकों की उचित शिकायतों एवं समस्याओं पर तत्परता से ध्यान देते हैं। यदि शिकायतों में विक्रयकर्त्ता का अपना दोष नहीं होता है तो ग्राहकों को वास्तविक स्थिति से अवगत करा देते हैं और उनके मन में बैठी गलत भावना बाहर निकाल देते हैं।

11 विक्रयकला तथा विज्ञापन में अन्तर होता है (There is a distinction between Salesmanship and Advertising)—विक्रयकला तथा विज्ञापन में पर्याप्त अन्तर विद्यमान है। यह व्यक्तिगत होती है जबकि विज्ञापन अव्यक्तिगत। इनमें पाये जाने वाले अन्तर को विस्तार में नीचे बताया जा रहा है।

विक्रयकला तथा विज्ञापन में अन्तर
(Distinction between Salesmanship and Advertising)

विक्रयकला तथा विज्ञापन में पर्याप्त अन्तर होता है जो निम्न तालिका द्वारा दर्शाया गया है

अन्तर का आधार	विक्रयकला	विज्ञापन
1 कार्य	विक्रयकला का कार्य दुकान पर आये हुए ग्राहक का माल का विक्रय करना है। अतएव जब	विज्ञापन का कार्य ग्राहक को विक्रेता की दुकान तक लाना है। अतएव विज्ञापन विक्रय

1	2	3
	विज्ञापन का कार्य समाप्त होता है, तब विक्रयकला का कार्य प्रारम्भ होता है।	वस्तु के कार्य को प्रारम्भ करने की भूमिका निभाता है।
2 प्रयोग	विक्रयकला अलग-अलग रुचि वाले ग्राहकों का उनकी इच्छानुसार सन्तुष्टि प्रदान करने मे सहायता करती है।	विज्ञापन समाज के एक बहुत बडे समुदाय को आकर्षित करने के लिये किया जाता है।
3 प्रभाव	विक्रयकला व्यक्तिगत ग्राहक की आवश्यकतानुसार उस वस्तु की श्रेष्ठता एव उपयोगिता पर प्रकाश डालती है।	विज्ञापन किसी भी वस्तु के गुणों व उसकी उपयोगिता पर प्रकाश डालता है।
4 ग्राहक से सम्बन्ध	विक्रयकला विज्ञापन द्वारा आकर्षित ग्राहकों को माल का क्रय करने के लिये प्रेरित करती है।	विज्ञापन के माध्यम से ग्राहकों से सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं।
5 प्रभावोत्पादक	विक्रयकला प्रत्येक ग्राहक के प्रश्नों का उत्तर देने व उसकी जिज्ञासा को शान्त करने मे पूर्ण समर्थ है।	विज्ञापन प्रत्येक ग्राहक के प्रश्नों का उत्तर देने तथा उसकी जिज्ञासा को शान्त करने म असमर्थ है।
6 भावी ग्राहक के साथ व्यवहार	विक्रयकला के लिये भावी ग्राहक से व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित करना अनिवार्य है।	विज्ञापन के लिये भावी ग्राहक से व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित करना अनिवार्य नहीं है।
7 व्यक्तिगत उपस्थिति	विक्रयकला के लिए विक्रयकर्ता की व्यक्तिगत उपस्थिति आवश्यक है।	इसमे व्यक्तिगत उपस्थिति आवश्यक नहीं है।
8 माध्यम	यह मौखिक होती है।	यह लिखित, मुद्रित या चित्रमय हो सकता है।

विक्रयकला के प्रकार
(Types of Salesmanship)

विक्रय कला अपनी प्रकृति के अनुसार कई भागों में बांटा जा सकता है। प्रमुख प्रकार की विक्रयकला निम्नलिखित है—

1 आवश्यक पूर्ति सम्बन्धी विक्रय कला (D n d Filli o Sale m)—आवश्यकता पूर्ति सम्बन्धी विक्रय कला उन विक्रय कला को कहते है जिसमे क्रेता को माल क्रय के लिये फुसलाना नही पडता है बल्कि क्रेता स्वय वस्तु को माग करता है। विक्रेता को केवल उसकी वाछित वस्तु निकाल कर देनी होती है। इस प्रकार की विक्रय कला का प्रयोग वहा किया जाता है जहा वस्तुएँ बहुत ही सस्ती हो या जिनकी निर्माणिक (S l e वस्तुए उपलब्ध न हो या जहाँ एकाधिकार M) हो। इसके अतिरिक्त जब ग्राहक अपनी आवश्यकता को भली प्रकार समझता हो वस्तु विशेष का प्रयोग उसकी आदत बन गयी हो वस्तु व गुण आदि से भली प्रकार परिचित हो तब भी इसी प्रकार की विक्रय कला की आवश्यकता पड़ती है

2 सृजनात्मक विक्रय कला (S n l)—सृजनात्मक विक्रय कला जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि यह सृजन करने वाली विक्रय कला है अर्थात् वह विक्रयकला जो ग्राहकों में माग का निर्माण करे नये-नये ग्राहकों को माल के क्रय के लिये प्रोत्साहित करे सृजनात्मक विक्रय कला कहलाती है। कैनफील्ड के अनुसार सृजनात्मक विक्रय कला में ऐसे सम्भावित ग्राहकों का पता लगाया जाता है जो किसी वस्तु अथवा सेवा को अपनी आवश्यकता को नहा समझते। उस वस्तु अथवा सेवा के लिये माग का सृजन करना और ग्राहक का यह विश्वास दिलाना है कि वह वस्तु उनकी आवश्यकता की पूर्ति के लिए सर्वोत्तम है।[1]

स्पष्ट है कि सृजनात्मक विक्रयकला में विक्रेता सर्वप्रथम ग्राहक के मस्तिष्क में अपनी वस्तु के क्रय की इच्छा जाग्रत करता है। तत्पश्चात् विक्रयकर्ता अपनी इसी कला से ऐसे यह विश्वास करने का आधार प्रस्तुत करता है कि उसकी वस्तु ही उन्हें सर्वाधिक सन्तुष्टि प्रदान करेगी। इस प्रकार की विक्रय कला का प्रयोग वहाँ किया जाता है जहा बाजार में नये ग्राहकों में माल का विक्रय करना हो। मूल्यवान आरामदेह वस्तुओं आदि के विक्रय में इस प्रकार की विक्रय कला का ही प्रयोग किया जाता है। जीवन बीमा पत्रों के विक्रयकर्ता इसी प्रकार की विक्रय कला का प्रयोग करते है। सद्धान्तिक रूप से हम सृजनात्मक विक्रय कला के बारे में अध्ययन करते है।

---

1 Creat e el ng n oles tak ng the n t e n seek g out pos l le buyers who do not re o n e t le r n eds f r a prod ct or ser ce creat ng a need and conv n ng l e buyer hat the product w ll best s t f the need B R Canfield Prof s onal Salem n l p

3 प्रतिस्पर्द्धी विक्रय कला (Competitive Salesmansip)—प्रतिस्पर्द्धी विक्रय कला वह विक्रय कला है, जिसका प्रयोग प्रतिस्पर्द्धा मे विजय प्राप्त करने के लिए किया जाता है। जब वस्तुओ के विक्रय मे घोर प्रतिस्पर्द्धा होती है, तो इस विक्रयकला के द्वारा ग्राहको को अपने माल के गुणो से प्रभावित करके माल का विक्रय किया जाता है। वास्तव मे, रचनात्मक या सृजनात्मक विक्रयकला के समाप्त होने पर ही प्रतिस्पर्द्धी विक्रयकला का जन्म होता है। उदाहरण के लिए, कई वर्षो पूर्व जब 'टूथ पेस्ट' का कोई नाम नही जानता था, 'टूथ पेस्ट' निर्माता कम्पनी के विक्रयकर्ता को सृजनात्मक विक्रयकला का सहारा लेना पडा होगा। इसका कारण है कि उस समय लोगो की माग को उत्पन्न करना था। किन्तु अब टूथ पेस्ट की माग तो उत्पन्न हो चुकी है। इसके अतिरिक्त आज बाजार मे अनेको निर्माताओ द्वारा 'टूथ पेस्ट' उपलब्ध हैं। अत बाजार मे प्रतिस्पर्द्धा है। इस हेतु अब इनके विक्रय के लिए प्रतिस्पर्द्धी विक्रयकला की आवश्यकता पडती है।

रचनात्मक एव प्रतिस्पर्द्धी विक्रयकला मे अन्तर

(Distinction between Creative and Competitive Salesmanship)

रचनात्मक एव प्रतिस्पर्द्धी विक्रयकला के बीच बताये जाने वाले अन्तर को निम्नलिखित तालिका मे स्पष्ट किया गया है—

अन्तर का आधार	रचनात्मक विक्रयकला	प्रतिस्पर्द्धी विक्रयकला
1 परिभाषा	रचनात्मक विक्रयकला एक ऐसी विक्रयकला है जो नय ग्राहको का निर्माण करती है और उन्हे वस्तु की उपयोगिता एव आवश्यकता के सम्बन्ध मे विश्वास दिलाती है।	विद्यमान प्रतिस्पर्द्धा मे माल के विक्रय के लिये प्रयोग की जाने वाली विक्रयकला प्रतिस्पर्द्धी विक्रयकला कहलाती है।
2 उपयुक्तता	जब किसी नई वस्तु का निर्माण किया जाता है और बाजार मे पहले ऐसी वस्तु की माग विद्यमान होती है, तब उपयोग की जाती है।	जब एक ही वस्तु की कई स्थानापन्न वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं तथा बाजार मे उस वस्तु के लिए प्रतिस्पर्द्धा होती है, तब प्रतिस्पर्द्धी विक्रयकला का उपयोग किया जाता है।
3 उद्देश्य	इसका उद्देश्य नये ग्राहको का निर्माण करना है।	इसका उद्देश्य प्रतिस्पर्द्धा मे विजय पाना तथा पुराने ग्राहको को बनाये रखना है।

1	2	3
4 विक्रयकर्त्ता के कार्य	रचनात्मक विक्रयकला में विक्रयकर्त्ता को ग्राहकों में अपने माल के लिए रुचि उत्पन्न करनी पड़ती है। वह उनकी मनोवृत्ति का अध्ययन भी करता है तथा उन्हें यह विश्वास दिलाता है कि उसकी वस्तु उनकी आवश्यकता है।	प्रतिस्पर्द्धी विक्रयकला में विक्रयकर्त्ता अपने माल की अच्छाइयों से ग्राहकों को विश्वास दिलाता है कि उसकी वस्तु ही ग्राहक की आवश्यकता पूरी कर सकती है। वह मूल्य, गुण आदि के आधार पर विश्वास दिलाता है। वह विभिन्न प्रकार के प्रलोभन देकर भी अपने माल का विक्रय करता है।
5. उपयोग करने वाले व्यक्ति	विक्रयकला का उपयोग सामान्यत उत्पादक के विक्रयकर्त्ता या फुटकर व्यापारियों के विक्रयकर्त्ता करते है।	इस विक्रयकला का उपयोग प्राय थोक व्यापारी तथा कभी-कभी फुटकर व्यापारी भी करते हैं।
6 वस्तुएँ	इस प्रकार की विक्रयकला का उपयोग प्राय नई वस्तुओं के विक्रय में किया जाता है।	इस प्रकार की विक्रयकला का उपयोग सामान्यत विद्यमान वस्तुओं की स्थानापन्न वस्तुओं के लिए किया जाता है।
7 प्रकृति	रचनात्मक विक्रयकला सापेक्षित है। इसमें विक्रयकला की योग्यता तथा ग्राहक की स्थिति का पर्याप्त प्रभाव पड़ता है।	प्रतिस्पर्द्धी विक्रयकला अपेक्षाकृत निश्चित होती है। इसमें वस्तु व गुण, मूल्य आदि का प्रभाव पड़ता है।
8 प्रारम्भ	इस प्रकार की विक्रयकला का प्रारम्भ नई वस्तु के निर्माण से होता है।	इस प्रकार की विक्रयकला का जन्म प्राय रचनात्मक विक्रयकला की समाप्ति के साथ ही होता है।

पेशाकारी विक्रय कला (Professional Salesmanship)—कैन्फील्ड (Canfield) के अनुसार "पेशाकारी विक्रयकला वह प्रविधि है, जिसमे क्रेता की आवश्यकता की वस्तु व सेवा की व्याख्या की जाती है। उसकी आवश्यकता की श्रेष्ठ वस्तु के क्रय के लिये सिफारिश की जाती है और यह विश्वास दिलाया जाता है कि उस

वस्तु का मूल्य उचित है, माल देने वाला सन्तोषजनक है तथा क्रय करने का सही समय है।"[1]

इस प्रकार स्पष्ट है कि पेशाकारी विक्रयकला में विक्रयकर्ता सर्वप्रथम अपने मनोवैज्ञानिक ज्ञान से ग्राहकों की इच्छा और आवश्यकताओं का ज्ञान करता है और उनका विश्लेषण करता है। तत्पश्चात् ग्राहक को उसकी आवश्यकता की वस्तु के क्रय की सिफारिश करता है। वह अपने ग्राहकों की आराम, सुविधा, सुरक्षा, लाभ को ही अधिक महत्त्व देता है। पेशाकारी विक्रयकला पूर्णतः ईमानदारी पर आधारित होती है। झूठ बोलकर ग्राहकों को पटाना इस विक्रयकला में सम्मिलित नहीं है। इस प्रकार की विक्रयकला के प्रयोग करने वाले विक्रयकर्ताओं को कुछ सिद्धान्त एवं विचार संहिता का पालन करना पड़ता है। आधुनिक युग में जहाँ उच्च स्तर का विक्रय कार्य होता है, पेशाकारी विक्रयकला को ही अपनाते हैं।

विक्रयकला का प्रादुर्भाव एवं विकास

(Origin and Development of Salesmanship)

विक्रयकला के प्रादुर्भाव एवं विकास का तिथि-वार ब्योरा देना बहुत ही कठिन है, परन्तु इसके क्रमबद्ध विकास का अध्ययन किया जा सकता है। विक्रयकला के प्रादुर्भाव एवं विकास को निम्न शीर्षकों में स्पष्ट किया है :—[2]

1. प्राचीन काल में प्रादुर्भाव (Ancient Origin)—इतिहास इस बात का साक्षी है कि विक्रय-कला का प्रादुर्भाव बहुत ही प्राचीन काल में हो चुका था। विभिन्न युगों के इतिहास में विक्रयकर्ताओं को विभिन्न नामों से पुकारा जाता रहा है जैसे व्यापारी (Traders), खोज करने वाले (Explorers or Pioneers), विश्वयात्री (World travellers), इत्यादि-इत्यादि। इतिहासकारों के अनुसार मारकोपोलो (Marco polo), कोलम्बस (Columbus) मेगेलन (Magellan), सर फ्रांसिस डार्क (Sir Frances Darke) आदि विभिन्न खोज करने वालों के, खोज करने के विभिन्न उद्देश्य होते हुए भी इनका विक्रय-इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन विभिन्न व्यक्तियों ने सभ्यता के क्षेत्र के विस्तार एवं जीवन-स्तर में वृद्धि के लिये विभिन्न संस्कृतियों के विचार एवं वस्तुओं को एक-दूसरे में मिलाया, जैसा कि आज के विक्रयकर्त्ता करते हैं।

2. बाजारों का प्रादुर्भाव (Origin of Markets)—मुद्रा के विकास से वस्तुओं का क्रय-विक्रय वस्तु विनिमय (Barter) के आधार पर होता था। प्रारम्भिक

---

1. "Professional salesmanship may be defined as a process of analysing a buyer's need for a product or service, recommending the pr duct or service that best satisfies the need and persuading the buyer that the price is fa r, the source of supply is satisfactory, and now is the time to buy" B R Canfield : Professional Salesmanship.

2. K. S. Daver, Salesmanship and Publicity, p.p. 1-9

इन विक्रयकर्त्ताओं का उस युग में माल के वितरण में बहुत महत्त्व था। इन विक्रयकर्त्ताओं के दो मुख्य कार्य थे। प्रथम, वे लोगों को उनकी आवश्यकता के अनुसार माल का विक्रय करते थे तथा द्वितीय उन लोगों के पास उनके द्वारा उत्पादित, उनकी आवश्यकता से अधिक, माल का क्रय कर लिया करते थे। स्पष्ट है कि इस समय विक्रय कला का विकास हुआ। 'फेरीवाले' विक्रयकर्त्ताओं का विक्रय कार्य कुशल विक्रय-कला पर ही निर्भर था। ये लोगों की आवश्यकता विक्रय-कला द्वारा जागृत कर माल का विक्रय करते थे।

4 दुकानों का प्रादुर्भाव (Emergence of Shops)—प्राचीनकाल में मनुष्य प्रायः आत्म निर्भर था। केवल कुछ ही वस्तुओं के लिये उसे बाजारों पर निर्भर रहना पड़ता था। बाजार सप्ताह में एक या दो बार लगता था। तब लोग क्रय करके अपनी आवश्यकता-पूर्ति कर लिया करते थे। परन्तु समय के व्यतीत होने के साथ-साथ सभ्यता का विकास हुआ और मानवी आवश्यकतायें बढ़ने लगी। परिणामस्वरूप, बाजारों की अनियमितता खलने लगी। यहाँ तक कि दैनिक उपभोग की वस्तुओं को प्राप्त करने में भी कठिनाई अनुभव की जाने लगी। फलस्वरूप दुकानों का प्रादुर्भाव हुआ।

इन दुकानों पर उपलब्ध माल गृह-उद्योगों में निर्मित हुआ करता था एवं इन दुकानों का स्वामित्व एकाकी हुआ करता था। इन दुकानों का मालिक अपने यहाँ नौकर रखकर माल का निर्माण करवाते थे। ये नौकर प्राय अपने घरों पर ही माल का निर्माण करते थे। इन दुकानदारों का नाम ही इनके व्यवसाय को प्रकट करता था, जैसे—स्वर्णकार, कारीगर, माली, रेशमवाला, मिठाईवाला आदि। ये दुकानदार प्राय पीढ़ी दर पीढ़ी चला करते थे। उदाहरणार्थ, स्वर्णकार का पुत्र, पौत्र एवं क्रमशः सभी पीढ़ियाँ स्वर्णकार ही होती थी। इस प्रकार पीढ़ी दर पीढ़ी चलने वाले व्यवसाय में विक्रयकर्त्ता स्वयं दुकानदार या उसके पुत्र एवं पौत्र इत्यादि हुआ करते थे। ये अपनी विक्रय-कला में दक्ष हुआ करते थे। परन्तु इन विक्रय कर्त्ताओं में ईमानदारी का प्राय अभाव पाया जाता था। ये वस्तुओं में प्राय मिलावट कर दिया करते थे। अतः उस समय की विक्रयकला को उच्च श्रेणी की विक्रयकला नहीं कहा जा सकता है।

5. व्यापारिक संघों का प्रभाव (Influence of Merchant Guilds)—मध्यकालीन युग में माल का उत्पादन प्राय आदेश प्राप्ति पर ही किया जाता था और आदेश प्राप्ति की आशा से उत्पादन प्राय नगण्य था। व्यापारी भी विक्रय संवर्द्धन के लिये प्रायः प्रयास नहीं करते थे क्योंकि उस समय व्यापारिक संघों (Merchant guilds) के नियम कठोर थे। इन नियमों के अनुसार कोई भी व्यापारी प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकता था। केवल वस्तु की अच्छी किस्म द्वारा ही क्रेता को सन्तुष्ट किया जा सकता था। इस प्रकार इस युग में विक्रय-कला का कोई विशेष विकास न हुआ।

6. वाणिज्यिक साहसियों का प्रादुर्भाव (The Commercial Adventurers)—विक्रयकला के इतिहास में वाणिज्यिक साहसियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। विक्रयकला के विकास में जितना महत्व सेल्समेन एवं दुकानदारों का रहा है, उससे कई गुना अधिक महत्त्व वाणिज्यिक साहसियों का है।

ये वाणिज्यिक साहसी छोटी छोटी नावों द्वारा समुद्री मार्गों से दूर-दूर के देशों में जाते थे और वहाँ से विशिष्ट प्रकार का माल क्रय कर लाते थे। वे इस माल को बन्दरगाहों के निकट के बाजारों में थोक रूप में विक्रय करते थे, जहाँ से सेल्समेन माल का क्रय कर देश में दूर दूर जाकर पुनः विक्रय करते थे। वाणिज्यिक साहसियों के मुख्य रूप से फिनिसियन्स (Phoenicians), परसियन्स (Persians) तथा भारतीय पारसी (Parsis) हुआ करते थे। इन सबका विक्रयकला के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

7. विक्रय में ईमानदारी का प्रादुर्भाव (Emergence of Honesty in Selling)—एक लम्बे समय तक विक्रय का अर्थ 'धोखा' तथा 'बेईमानी' से लगाया जाता रहा था। ग्रीक साहित्य में व्यापारी को झूठ बोलने वाला (Falsifier) कहा जाता था। इसी प्रकार रोमन भाषा में विक्रयकर्ता को धोखा देने वाला (Cheater) कहा जाता था। बहुत से व्यापारियों को उनके लालचीपन एवं बेईमानी के कारण उनको लुटेरे एवं चोर (Robbers and Thieves) कह कर पुकारा जाता था। इसका प्रमुख कारण यह था कि उन दिनों वस्तुओं की कोई कीमतें निश्चित नहीं थी। विक्रयकर्त्ता प्रायः मनमानी कीमतें वसूल कर लिया करते थे। यह स्थिति बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक बनी रही जब तक कि विक्रयकर्ताओं की मनोवृत्ति यह नहीं बन गई कि, ईमानदारी व्यवसाय की सर्वोत्तम नीति है। अब विक्रयकला झूठ एवं धोखे से माल के विक्रय की कला नहीं बल्कि क्रेता एवं विक्रेता दोनों के लाभ एवं हित के लिये विक्रय की कला है।

8. क्रेता की सावधानी के नियम का परित्याग (The Dropping of 'Buyer beware Philosophy')—एक युग था जब विक्रयकर्ता क्रेता को धोखा देकर येन केन प्रकारेण फुसलाकर माल का विक्रय कर देना अपना उद्देश्य समझते थे। घटिया से घटिया माल बेचकर अधिकतम कीमत लेना विक्रयकर्त्ता अपना अधिकार समझते थे। अतः क्रेता को माल क्रय करते समय पग पग पर सावधान रहना पड़ता था कि कहीं माल खराब नहीं खरीद लिया जाए। इतना ही नहीं उसे मूल्य में भी काफी मोल भाव (Haggling) करना पड़ता था। माल में गिरावट के प्रति सजग रहना पड़ता था। विक्रेता की माल के प्रति कोई जिम्मेदारी नहीं होती थी। परिणामस्वरूप, कुशल से कुशल क्रेता भी हानि उठाता था।

परन्तु आज क्रेता की सावधानी के नियम का परित्याग किया जा रहा है। विक्रयकर्त्ता स्वयं ग्राहकों को उनकी आवश्यकतानुसार माल के क्रय के लिये सुझाव देता है। वह माल के लिये गारन्टी दे देता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि

आधुनिक विक्रयकर्ता का उद्देश्य प्रत्येक ग्राहक को सन्तुष्ट करना है। यह सन्तुष्टि माल की किस्म एवं मूल्य दोनों द्वारा के प्रदान की जाती है। यद्यपि भारतीय माल विक्रय के अधिनियम, 1930 की धारा 16 में इस नियम का मान्यता प्राप्त है, फिर भी व्यावहारिक तौर पर विक्रेता अब इसे लागू करना उचित नहीं समझते हैं।

उपर्युक्त क्रमबद्ध विकास के वर्णन से स्पष्ट है कि अब विक्रय ऐसा एक ऐसी कला है, जिसमें ग्राहकों को सन्तुष्ट किया जाता है। क्रेताओं की इच्छाओं के अनुरूप माल उपलब्ध कर उनकी सन्तुष्टि में वृद्धि की जाती है।

विक्रय प्रक्रिया में मनोविज्ञान का प्रयोग

(Psychology in Sequence of Selling)

विक्रय प्रक्रिया में पूर्णत मनोविज्ञान का ही प्रयोग होता है। विक्रय प्रक्रिया में क्रमश मनोविज्ञान का निम्न प्रकार प्रयोग हो सकता है —

1 ग्राहक का स्वागत करने में—ग्राहक ज्यों ही दुकान पर पहुँचता है, विक्रयकर्त्ता उसे स्वागतपूर्वक दुकान के अन्दर प्रवेश के लिए निवेदन करता है। वह ऐसा इसलिये करता है, क्योंकि ग्राहक स्वाभिमानी होता है। वह दूसरों से इज्जत प्राप्त करना अपना अधिकार भी समझता है। इस बात को विक्रयकर्त्ता केवल मनोविज्ञान के सामान्य ज्ञान के आधार पर ही जान सकता है।

2 पूछताछ करने में मनोविज्ञान—विक्रयकर्त्ता स्वागत कर चुकने के बाद उस ग्राहक से उसकी आवश्यकता के बारे में भी पूछताछ करता है। तब ग्राहक या तो स्पष्ट रूप से वस्तु का नाम बताता है या वह उस वस्तु के बारे में सकेत दे देता है, जिसकी उसे आवश्यकता है। जब ग्राहक स्पष्ट रूप से वस्तु के बारे में बता देता है तब विक्रयकर्त्ता ग्राहक का वह वस्तु निकालकर दे देता है, किन्तु यहाँ पर भी उसको सामान्य मनोविज्ञान का प्रयोग करना पड़ता है। उसे अनुमान लगाना पड़ता है कि ग्राहक का स्तर कैसा है उस वस्तु की कौनसी किस्म अर्थात् सबसे बढ़िया, मध्यम या निम्नस्तर की उस ग्राहक के योग्य है। जब ग्राहक सकेत के सहारे ही वस्तु बताता है, वस्तु का स्पष्ट नाम, लक्षण नहीं बता पाता है, तो ऐसी दशा म विक्रयकर्त्ता को बहुत ही अधिक मनोविज्ञान का सहारा लेना पड़ता है। इस प्रकार की स्थिति एक विक्रयकर्ता के समक्ष बहुत बार उपस्थित होती है, ऐसी स्थिति म मनोविज्ञान ही उसको सही वस्तु सही ग्राहक के समक्ष प्रस्तुत करने में सहायता प्रदान करता है।

3 ग्राहकों को समझाने में मनोविज्ञान—दुकान पर पहुँचने वाले विभिन्न प्रकार के ग्राहक जैसे शर्मीले, चालाक, उत्तेजित, आलोचक आदि आते हैं। विक्रयकर्त्ता इन ग्राहकों की प्रकृति मनोविज्ञान ज्ञान के आधार पर ही जाता है। विक्रयकर्त्ता जब तक इनकी प्रकृति को नहीं समझ लेता है, इन ग्राहकों को कभी सन्तुष्टि प्रदान नहीं कर सकता है। अत मनोविज्ञान का सहारा लेना ही पड़ता है।

4 क्रय उद्देश्य ज्ञात करने मे मनोविज्ञान—विभिन्न प्रकृति के ग्राहक विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ विभिन्न उद्देश्य से क्रय करते है। विक्रयकर्त्ता को अपने विक्रय कार्य मे सफलता प्राप्त करने के लिए ग्राहकों को क्रय के उद्देश्यों (buying motives) को भी जानना पड़ता है। विक्रयकर्त्ता ग्राहक के क्रय के उद्देश्य का ज्ञान किसी मंत्र तंत्र के आधार पर नही करता है वरन् वह अपने मनोवैज्ञानिक ज्ञान के आधार पर ही ज्ञान करता है और उनके क्रय के उद्देश्य को पूरा करने का यथा सम्भव प्रयत्न कर ग्राहक को सन्तुष्ट करता है।

5 इच्छाओ एव रुचियो को ज्ञात करने मे मनोविज्ञान—ग्राहकों की अपनी इच्छाएं एव रुचियां होती है। ये इच्छाएं एव रुचियां एक ग्राहक से दूसरे ग्राहक म भिन्न भिन्न होती है। इनका ज्ञान विक्रयकर्त्ता की कुशलता म चार चाद लगा देता है परन्तु इन इच्छाओ व रुचियो का ज्ञान भी तभी सम्भव है जब उसे मनोविज्ञान का ज्ञान हो।

6 वस्तुओ के प्रदर्शन मे मनोविज्ञान—ग्राहक जब दुकान पर आता है तो विक्रयकर्त्ता अपनी वस्तुए सम्भावित ग्राहकों को दिखाता है। वस्तुए दिखाते समय भी मनोविज्ञान का सहारा लेना चाहिये। ग्राहक के स्तर, आय खरीदने की क्षमता आदि बातो को मनोविज्ञान के ज्ञान की तराजू मे रख कर तोल लेना चाहिये तथा उसी अनुसार मे वस्तुएँ दिखानी चाहिये। इसी प्रकार कुछ ग्राहक अनेको वस्तुओ को देखकर ही क्रय करने का निश्चय करते है किन्तु कुछ अन्य ग्राहक कुछ ही वस्तुओ को देखकर क्रय की जाने वाली वस्तु का चुनाव कर लेते है। अतः वस्तुओं के प्रदर्शन में पूर्व सम्भावित क्रेता ग्राहक की मनोदशा का मनोवैज्ञानिक आधार पर अध्ययन करना विक्रेता के लिए आवश्यक एवं लाभप्रद होता है।

7 वस्तुओ के चुनाव मे मनोविज्ञान—ग्राहक जब वस्तुओं का चुनाव करते है तब भी विक्रयकर्त्ता को मनोविज्ञान का पूरा पूरा प्रयोग करना चाहिये। जब ग्राहक निर्भर प्रकृति के हो तब वस्तुओ के चुनाव म विक्रयकर्त्ता को ग्राहक की अवश्य मदद करनी चाहिये। किन्तु कुछ अन्य प्रकृति के ग्राहक विक्रयकर्त्ता का वस्तुओ के चुनाव म तनिक भी हस्तक्षेप पसन्द नहीं करते है। अतएव मनोविज्ञान के आधार पर ही उसे यह निर्धारित करना चाहिये कि कब उसे चुनाव मे हस्तक्षेप करना चाहिये तथा कब नही।

8 अतिरिक्त वस्तुओ के विक्रय मे मनोविज्ञान—ग्राहक सदैव दुकान पर पहुँच कर केवल वे ही वस्तुए खरीद कर नही लौट जाता है जिनको खरीदने के लिए वह दुकान म गया था बल्कि अनेक अवसर ऐसे आते है जबकि अपनी मूल आवश्यकता की वस्तु के अतिरिक्त भी कुछ अन्य वस्तुएँ क्रय करने पर आता है। इन अतिरिक्त वस्तुओ के क्रय के पीछे विक्रयकर्त्ता का महत्त्वपूर्ण हाथ होता है। विक्रयकर्त्ता अपने

ग्राहकों को कुछेक अतिरिक्त वस्तुओं के क्रय के लिए आग्रह करता है और ग्राहक कभी कभी अपने विक्रयकर्त्ता के आग्रह को स्वीकार कर वस्तुओं को क्रय कर लेते हैं। किन्तु विक्रयकर्त्ता को यहाँ अपने मनोवैज्ञानिक ज्ञान का पूर्ण प्रयोग करना पड़ता है। उसे ग्राहक की अभिलाषा एवं प्रकृति को देखकर ही अतिरिक्त वस्तु के क्रय के लिए प्रेरित करना चाहिये। ग्राहकों को समझे बिना अतिरिक्त वस्तु के क्रय के लिए आग्रह करना व्यर्थ होता है।

9 **सविदाई में मनोविज्ञान**—कई ग्राहक औपचारिकताओं में बहुत कम विश्वास करते हैं और विक्रयकर्त्ता द्वारा औपचारिकता न निभाने पर उसे अपना अपमान समझते हैं। अतएव वस्तु के विक्रय हो जाने के बाद, जब ग्राहक दुकान छोड़ कर जाता है तो उसे सम्मानपूर्वक विदाई देनी चाहिये। कई ग्राहक ऐसे भी होते हैं, जिन्हें दुकान के बाहर तक छोड़ने जाना पड़ सकता है, कुछ को काउन्टर से ही हाथ जोड़कर विदाई देनी पड़ती है। इसी प्रकार कुछ ग्राहकों को विदाई के समय जलपान के लिए आग्रह करना पड़ता है। अतएव विक्रयकर्ता को यहाँ पर मनोविज्ञान का प्रयोग करते हुए उचित निर्णय लेना पड़ता है।

वास्तव में विक्रयकला मनोविज्ञान के बिना अधूरी है। किसी भी विक्रयकर्त्ता का कार्य, इसके बिना नहीं चल सकता है। विक्रयकला और मनोविज्ञान में घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसलिए, अगर हम कहें कि **"विक्रयकला ग्राहकों का मनोविज्ञान है"** (Salesmanship is the Psychology of Customers) तो भी कोई अतिशयोक्ति न होगी। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है, कि वह हर समय मनोविज्ञान के सिद्धान्तों को अपनाने की ही रट लगाये। उसे सिद्धान्तों को प्रयोग में लाते हुए विक्रयकार्यों में कुशलता प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिये। उसे सिद्धान्तों में अधिक व्यावहारिकता को स्थान देना चाहिये।

विक्रयकला का महत्त्व
(Importance of Salesmanship)

विक्रयकला आधुनिक व्यावसायिक सगठन की आत्मा कही जाती है। व्यापारी की सफलता उसके व्यक्तिगत गुणों पर निर्भर करती है। ग्राहकों को माल के प्रति आकर्षित कर उसे वस्तु के क्रय के लिये बाध्य कर देना विक्रेता की विक्रयकला पर ही निर्भर करता है। वर्तमान युग में जबकि ग्राहक व्यापार का केन्द्र बिन्दु है, प्रत्येक व्यापारी उसे अपनी दुकान से सन्तुष्ट होकर लौटते देखना चाहता है। विक्रयकला ही उसकी सन्तुष्टि का साधन है। प्रसिद्ध **विद्वान थॉम्पसन** (Thompson) के अनुसार "विक्रयकला वह विधि है, जिससे विक्रय कार्यों का निर्धारण किया जाता है, नई, उच्चतम किस्म की एवं विशिष्ट प्रयोग वाली वस्तुएँ बेची जाती हैं, क्रेताओं की इच्छाओं को सन्तुष्ट किया जाता है व्यवसाय की कार्यक्षमता में वृद्धि की जाती है, लाभ

जमाया जाता है एवं आर्थिक प्रक्रिया को शक्ति प्रदान की जाती है।[1] निम्न विभिन्न शीर्षकों में विक्रयकला के महत्त्व एवं लाभ को स्पष्ट किया गया है।

1 माग मे वृद्धि (Increases Demand)—विक्रयकला ग्राहकों की इच्छाओं को जाग्रत करने में सहायक है। यह इच्छाओं को आवश्यकता में परिणित कर देती है। थॉम्पसन (Thompson) के अनुसार विक्रयकला का आधारभूत महत्त्व यह है कि यह माग उत्पन्न करती है और उसे प्रभावशाली बनाती है तथा वस्तुओं एवं सेवाओं के विक्रय में वृद्धि करती है।[2] हास तथा अर्नेस्ट (Hass and Earnest) के अनुसार 'बाजार अनुसंधान एवं विज्ञापन के माध्यम से, आधुनिक विक्रयकला उपभोक्ताओं को पुराने नये एवं उन्नत वस्तुओं से अवगत करवाती है एवं उनके प्रति आकांक्षा उत्पन्न करती है।''[3]

2 उत्पादन में वृद्धि (Increases Production) —माग में वृद्धि हो जाने से उत्पादन में वृद्धि होती है। विक्रयकला जब मांग में वृद्धि कर देती है तो उत्पादन में वृद्धि होना भी स्वाभाविक ही है।

3 नई वस्तुओं के निर्माण को प्रोत्साहन (Promotes new Products)—विक्रयकला के माध्यम से नई नई वस्तुओं का [illegible] सरल हो जाता है। अतः उत्पादक नई नई वस्तुओं का निर्माण करता है। यह श्रृंखला क्रम बद्ध रूप से चलती ही रहती है। इसीलिए एक विद्वान ने उचित ही लिखा है कि "प्रतिदिन नई नई वस्तुओं का निर्माण हो रहा है, उनके लिए नये बाजारों का निर्माण करना आवश्यक है जो बहुत बड़ी सीमा तक विक्रयकला पर ही निर्भर है।''

4 प्रति इकाई लागत में कमी (Lowers Unit Price) —विक्रयकला के प्रयोग से माग में वृद्धि हो जाने से उत्पादन में वृद्धि हो जाती। जब उत्पादन में वृद्धि हो जाती है, तो बड़े पैमाने के सभी लाभ मिलने लगते है। फलतः प्रति इकाई लागत कम हो जाती है।

---

1. Salesmanship is a method of pin-pointing the sales effort selling new higher quality and special use products satisfying buyers wants raising the standerd of living persuading people to buy increasing the efficiency of business making profits and energizing the economic system. Willard M Thompson, Salesmanship Concepts, Management and Straegy pp 6,7

2. The basic significance of salesmanship in our economy is the part it plays in initiating, energizing and increasing the flow of goods and services. Willard M Thompson op cit p 9

3 "Through the use of marketing research and advertising morden salesmanship aims to create among users and consumers a maximum awareness of, and desire for, old, new and improve products and services Kenneth B Hass and John B Ernest, *Creative Salesmanship Understanding Essentials*, p. 9

5 रोजगार के साधनों में वृद्धि (Higher Employment)—उत्पादन वृद्धि से माल के उत्पादन एवं वितरण में श्रम की आवश्यकता पड़ती है। फलस्वरूप, लोगों को रोजगार उपलब्ध होता है।

6. जीवन-स्तर में वृद्धि (Increases Standard of Living)—जब वस्तुओं की प्रति इकाई लागत कम हो जाती है और अधिक रोजगार मिलने लगता है तो लोगों के पास क्रय शक्ति बढ़ जाती है। वे उतनी ही मुद्रा से अधिक माल का क्रय कर सकते हैं। एक विद्वान् का यह मत शत-प्रतिशत सत्य प्रतीत होता है कि **"विक्रयकला जीवन स्तर बनाती है।"** (Salesmanship delivers standard of living) विक्रयकला विषय के विद्वान प्रो० थॉम्पसन (Thompson) का मत है कि **"उच्च जीवन स्तर जो आज हम बिता रहे हैं, एक सीमा तक विक्रयकला की ही देन है।"**[1]

7. अधिक लाभ (Higher Profits)—विक्रयकला विक्रय वृद्धि करके अधिक लाभ कमाने में सहायक होती है। व्यापारी कम से कम मूल्य पर अधिकाधिक माल का विक्रय कर अधिकाधिक लाभ कमाते हैं। इसके अतिरिक्त एक सन्तुष्ट ग्राहक ही सबसे बड़ा लाभ है। कुशल विक्रयकला से ग्राहक को सन्तुष्ट किया जा सकता है। एक विद्वान ने ठीक ही कहा है **"विक्रयकला एक व्यवसाय को लाभदायी करने एवं बनाये रखने में सहायक है।"** ("Salesmanship serves to make and keep business enterprise profitable")

8. विक्रय कार्य के लिए आवश्यक (Essential to selling Function)—आधुनिक प्रतिस्पर्धा के युग में विक्रय करना एक सरल कार्य नहीं है। विक्रय से पूर्व उस वस्तु के लिए सम्भावित ग्राहक की इच्छा जाग्रत करनी होती है, जो विक्रयकर्ता के पास है। इसके पश्चात् उसकी इस इच्छा को आवश्यक आवश्यकता में परिणित करना पड़ता है। ये सब विक्रयकला के बिना सम्भव नहीं है। प्रो० थाम्पसन के अनुसार **'बहुत सी वस्तुएँ जो विक्रयकला के माध्यम से बेची जाती हैं, किसी अन्य माध्यम से कभी भी नहीं बेची जा सकेंगी।'**[2] स्पष्ट है कि बहुत सी वस्तुओं के विक्रय में विक्रयकला का बहुत बड़ा हाथ होता है।

9 व्यवसाय की अभिवृद्धि—(Invigorates Business)—एक विद्वान के अनुसार **"विक्रयकला व्यवसाय की अभिवृद्धि करती है।"** (Salesmanship creates business) विक्रयकला माँग में वृद्धि करती है, लाभ बढ़ाती है, ग्राहकों को सन्तुष्ट करती है जो अन्ततोगत्वा सम्पूर्ण व्यवसाय की अभिवृद्धि करती है।

---

1 "The higher standard of living that we enjoy is attributable, at least partially to Salesmanship" Willard M Thompson, op. cit., p. 10

2. Much of the goods sold by salesmanship would never be sold at all through other means." Willard M. Thompson, op cit, p 5

वास्तव मे, आज कई लोग बाजार में उपलब्ध कई वस्तुओं के बारे में कुछ भी नही जानते है। उनके पास धन होते हुए भी वे उन्हे क्रय नही कर पाते है, क्योंकि उन वस्तुओं के बारे मे बताने वालो की कमी है। विक्रयकर्ता ही इन्हे बताकर उनके जीवन स्तर को बढाने मे योगदान दे सकते है।

10 ग्राहको की सतुष्टि (Customer Satisfaction)—वर्तमान युग में उपभोक्ताओं की सन्तुष्टि को विक्रयकला का आधारभूत सिद्धान्त माना जाता है। जोन एम विल्सन (John M Wilson Vice-president, National Cash Register Co) के अनुसार **"आधुनिक विक्रयकला उपभोक्ता की सन्तुष्टि के सिद्धान्त पर आधारित है।"** (Modern salesmanship is based on the principle of customer's satisfaction) एक अन्य विद्वान के अनुसार विक्रयकला सही वस्तु को सही ग्राहक तक पहुँचाने मे मदद करती है। (Salesmanship helps in providing the right product to the right buyer) अमेरिका के अनेक व्यवसायियों के शब्दों मे, हम समस्याओ के हल का विक्रय करते हैं (We sell solutions to the Problems)। स्पष्ट है आधुनिक विक्रयकला ग्राहकों की समस्या का निवारण कर उन्हे अधिकाधिक सन्तुष्टि प्रदान करती है।

11 व्यापार चक्रों से सुरक्षा (Safety from Trade Cycles)—विक्रयकला के माध्यम से उत्पादक एव उपभोग मे सामन्जस्य स्थापित कर व्यापारिक चक्रो से सुरक्षा प्राप्त की जा सकती है। विद्वान अर्थशास्त्री कीन्स का मत है कि मदी (Depression) का प्रमुख कारण यह है कि लोग बचत करके जमा कर लेते है और उसे पूँजी के रूप मे पुन विनियोग नही कर पाते है। इससे न तो उत्पादन ही बढता है और न उपभोग ही। विक्रयकला के कारण लोगो मे इच्छाएँ जाग्रत कर आवश्यकता में वृद्धि की जाती है। इससे लोगो की बचत को माल के क्रय मे लगाई जा सकती है। उपभोग ही सम्पन्नता का आधार है। अत उपभोग बढ जायेगा और उत्पादन एव उपभोग की प्रक्रिया सतुलित बनी रहेगी तथा व्यापार चक्रो मे सुरक्षा बनी रहेगी।

12 क्रेताओ के ज्ञान मे वृद्धि (Increases Knowledge of Customers)—विक्रयकर्ता माल का विक्रय करते समय, माल की उपभोग विधि एव उसके सम्बन्ध मे आवश्यक बातें बताता है। इससे क्रेता के ज्ञान मे वृद्धि होना स्वाभाविक ही है उदाहरणार्थ एक विक्रेता सिलाई मशीन बेचता है। बेचते समय वह ग्राहक को मशीन सम्बन्धी कुछ आवश्यक बातें बताता है। उसको तेल देने सफाई करने की विधि भी समझाता है। इस प्रकार विक्रयकला से क्रेता का ज्ञान बढता है।

13 क्रेता के धन का सदुपयोग (Right Use of Money)—विक्रयकला के माध्यम से क्रेता सही वस्तु का क्रय कर सकता है। विक्रयकर्ता ग्राहक को उसकी आवश्यकतानुसार माल का क्रय करने के लिए उचित सुझाव दे सकता है। क्रेता की

सावधानी के नियम का परित्याग हो जाने से क्रेता को धन के दुरुपयोग का तनिक भी भय नही रहता । कई ऐसे अवसर देखने को मिलते हैं, जबकि विक्रयकर्ता ग्राहकों को स्पष्ट रूप से मना कर देता है, कि अमुक वस्तु का क्रय नही करना चाहिये । ये सभी सुझाव क्रेता के धन के सदुपयोग मे सहायक होते हैं । कई लोग अपनी आवश्यकता के बारे मे भी अस्पष्ट होते हैं । उन्हे यह ज्ञात नहीं होता है कि उन्हे कौनसी वस्तु खरीदनी चाहिये तथा कौन सी वस्तु नही खरीदनी चाहिये । डोनाल्ड रोबिन्सन (Donald Robinson) के अनुसार, **"विक्रयकला इसलिए भी आवश्यक है कि लोगो को अपनी आवश्यकताओ के बारे मे बहुत कम ध्यान होता है । अत उन्हें विक्रयकर्ता की सहायता की अधिक आवश्यकता पडती है ।"**

14 प्रबन्धकीय योग्यता का विकास (Development of Managerial Skill)—आज के अधिकाश प्रबन्धवर्ग के भूतकाल के जीवन का अध्ययन किया जाय तो स्पष्ट होगा कि अधिकाश प्रबन्धक एव उच्च पदाधिकारी विक्रय विभाग मे ही नियुक्त थे । एच बी मेनार्ड (H B Maynard, President of Method Engineering Council) के शब्दो मे 56% से भी अधिक कम्पनियो के अध्यक्ष या तो विक्रय विभाग से आये है या विक्रय एव निर्माण विभाग से सम्मिलित रूप से आये हैं । इस सम्बन्ध मे रसेल एव बीच का मत है **"विक्रय का ज्ञान एव इस क्षेत्र का अनुभव उन नवयुवको के लिए अत्यधिक महत्त्व का है जो भविष्य मे बड़े पदो पर जाने की आकाक्षा रखते हैं ।"**[1]

15. राष्ट्रीय आय मे वृद्धि (Increase in National Income) —अधिक उत्पादन, अधिक माँग, अधिक रोजगार सभी राष्ट्रीय आय की वृद्धि करते हैं ।

विक्रयकला में सफलता के आवश्यक तत्व
(Essentials of Successful Salesmanship)

विक्रयकला की सफलता के निम्न आवश्यक तत्त्व है

(1) विक्रयकर्ता के व्यक्तिगत गुण (Personal qualities of salesman)

(2) विक्रय की जाने वाली वस्तु का ज्ञान (Knowledge of Product to be sold)

(3) सस्था के सम्बन्ध मे पूर्ण ज्ञान (Knowledge of the Institution)

(4) ग्राहको का ज्ञान (Knowledge of the customers)

(5) विक्रय विधि या विक्रय अनुक्रम का ज्ञान (Knowledge of the sequence of selling)

---

1. Knowledge of selling and experience in that field are of increasing importance to the young man who has his eye on bigger jobs in the future, Frederic A Russel and Frank H Beach, Textbook of Salesmanship p 8

(1) विक्रयकर्ता के व्यक्तिगत गुण—विक्रयकला की सफलता का प्रथम आवश्यक तत्व विक्रयकर्ता के व्यक्तिगत गुण है। विक्रयकर्ता के व्यक्तिगत गुण ग्राहक को एक बहुत बड़ी सीमा तक प्रभावित करते है। अत एवं विक्रयकर्ता को अपने विक्रय कार्य मे सफलता प्राप्त करने के लिए सर्वप्रथम यह देखना चाहिए कि उसमे वे सभी गुण है या नही, जो एक सफल विक्रयकर्ता के लिए आवश्यक हैं। एक सफल विक्रयकर्ता मे विभिन्न गुण होते है जैसे—शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एव व्यावसायिक गुण आदि आदि। यद्यपि सभी गुण एक साथ एक ही व्यक्ति म पाये जाने असम्भव है फिर भी अधिकाश गुणों के होने से एक विक्रयकर्ता अपने विक्रयकार्य मे सफल हो सकता है। विक्रयकर्ता को चाहिये कि उसमे जिन गुणो का अभाव है उन्हे पाने का सतत् प्रयास करे।[1]

इन गुणो के आधार पर विक्रयकर्ता ग्राहको म आत्म विश्वास प्राप्त कर उन्हे स्थायी ग्राहक बना सकता है।

(2) *विक्रय की जाने वाली वस्तु का ज्ञान* एक विक्रयकर्ता को विक्रय म सफलता प्राप्त करने के लिए जितना महत्त्व उसके व्यक्तिगत गुणो का है उससे अधिक महत्त्व उसके द्वारा विक्रय की जाने वाली वस्तु के सम्बन्ध म ज्ञान का होना है। अपने द्वारा विक्रय किये जाने वाले माल के सम्बन्ध म सम्पूर्ण ज्ञान उसे अपनी सफलता म कई प्रकार से सहायक होता है। वस्तुओ के पर्याप्त ज्ञान से एक विक्रयकर्ता ग्राहकों को अधिक प्रभावित कर सकता है, ज्यादा फरमाइश प्राप्त किये जा सकते है और ग्राहकों को भली प्रकार सन्तुष्ट भी किया जा सकता है। विक्रयकर्ता के लिए वस्तुओं के ज्ञान के बारे म विचार व्यक्त करते हुए एक विद्वान ने तो यहाँ तक लिखा है कि 'विक्रय कला के कुछ आवश्यक तत्त्व है, लेकिन विक्रय-कला मे से वस्तुओ को सही एवं पूर्ण ज्ञान को घटा दिया जाय तो रेत पर किला बनाने के समान होगा।'[2]

आज बाजार म एक ही वस्तु कई संस्थाओ द्वारा निर्मित की जाती है। ग्राहक इन विभिन्न संस्थाओ द्वारा निर्मित वस्तुओं को देखकर प्राय इस समस्या म फस जाता है, कि कौन सी वस्तु को क्रय किया जाये। ऐसी स्थिति म एक विक्रयकर्त्ता अपने विशिष्ट ज्ञान से भी वस्तुओ के तुलनात्मक लाभों से ग्राहकों को अवगत करा सकता है। परिणामस्वरूप, ग्राहक सही वस्तु का चयन करता है। जिससे ग्राहक सन्तुष्ट होकर सदैव के लिए स्थाई ग्राहक बन जाता है। एक विक्रयकर्त्ता जो अपने माल का आकर्षण माल की विशिष्ट विशेषतायें माल के उत्पादन म प्रयोग

---

1 विक्रयकर्ता के गुणों का विस्तृत उल्लेख अगले अध्याय म किया गया है।

2 There are the essentials of good salesmanship but salesmanship minus a precise and complete knowledge of goods is just like a castle built on sand — M Chaudhry Personal Salesmanship p 5[illegible]

मे आने वाला कच्चा माल, माल का विकास माल की उत्पादन विधि, माल की प्रतिस्पर्द्धात्मक स्थिति, माल की पूर्ति, माल का नाम, माल का पैकिंग, माल का व्यापार, माल का डिजाइन, माल की किस्म, माल को उठाने, रखने तथा रक्षा-सम्बन्धी विशेष बातें आदि-आदि की जानकारी होनी चाहिए।

(3) संस्था के सम्बन्ध मे पूर्ण ज्ञान—आधुनिक व्यापार गृहों मे जब विक्रयकर्त्ता कोई वस्तु ग्राहको मे विक्रय करता है, तो वह ग्राहको को केवल वस्तु मात्र का ही विक्रय नही करता है, बल्कि उस संस्था की प्रतिष्ठा का भी सौदा करता है, जो उस वस्तु का उत्पादन कर रही है। उस संस्था की ख्याति, प्रसिद्धि, प्रतिष्ठा सभी कुछ वस्तु के साथ साथ रहते है। अत अपने ग्राहकों म संस्था की प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिये आवश्यक है कि स्वय विक्रयकर्त्ता को अपनी संस्था के बारे म पूर्ण जानकारी हो। संस्था के सम्बन्ध म सम्पूर्ण ज्ञान विक्रयकर्त्ता मे आत्म विश्वास उत्पन्न करता है। उसके प्रयत्नों को संस्था के उद्देश्यो के अनुरूप ढालना है और अपनी नीतियो को संस्था की नीतियों के अनुसार बनाता है। सामान्यत एक विक्रयकर्त्ता को उद्योग व संस्था का इतिहास, कर्मचारी एव श्रम-सम्बन्ध, प्लाट, विक्रय कार्यालय एव गोदामो की शाखाएँ वित्तीय स्थिति, प्रबन्धकीय नीतियाँ, वितरण विधियाँ, संस्था का संगठन अनुसंधान एव विकास उद्योग म प्रतिस्पर्द्धात्मक स्थिति, विक्रय की मात्रा, आन्तरिक विधियाँ सामाजिक कार्य, विशेष सेवाएँ आदि आदि बातो का ज्ञान होना चाहिए।

(4) ग्राहको का ज्ञान—विक्रय कार्य म सफलता प्राप्त करने के लिये एक विक्रयकर्त्ता को अपने ग्राहको का पूर्ण ज्ञान होना चाहिये। कभी कभी संस्था स्वय बाजार अनुसधान (Market research) के द्वारा ग्राहको के सम्बन्ध मे आवश्यक जानकारी प्राप्त करके विक्रयकर्त्ता को पूर्ण सूचनाएँ प्रदान कर देती है। साधारणत विक्रयकर्त्ता स्वय ही ग्राहक से भेंट करने समय ही ग्राहक के बारे म जानने का प्रयास करता है, ताकि वह उस ग्राहक की प्रकृति के अनुसार ही वस्तु प्रस्तुत कर सके, और आचरण कर सके। एक विक्रयकर्त्ता को ग्राहक म मिलते ही उसके सम्बन्ध मे निम्न दो बातो का ज्ञान करना चाहिये —

(क) क्रय करने के उद्देश्य[1]—प्रभावपूर्ण विक्रय से पूर्व यह ज्ञान करना आवश्यक है, कि ग्राहक माल का क्रय क्यों करते है। प्रत्येक ग्राहक किसी न किसी उद्देश्य से माल का क्रय करता है। निरुद्देश्य होकर माल का क्रय नही करता है। एक विक्रयकर्त्ता को चाहिए, कि वह ग्राहक के क्रय के उद्देश्यो को ज्ञात करे। जब विक्रयकर्त्ता अपने ग्राहक के क्रय के उद्देश्यो को जान लेता है तो उसे अपने ग्राहक को सन्तुष्ट करने में कोई भी कठिनाई नही होती है। इन उद्देश्यो का ज्ञान करने के लिए विक्रयकर्त्ता को निम्न कार्य करने चाहिए —

---

1 ग्राहको के प्रकार पर इकाई 5 मे एक अलग अध्याय दिया गया है।

विधि जिसके अनुसार एक विक्रयकर्त्ता ग्राहक के दुकान पर पहुँचने से लेकर उसके पुन. लौटने तक की विभिन्न क्रियाएँ करता है। विक्रय विधि उन विभिन्न स्तरों या चरणों का योग है, जो कि एक विक्रयकर्त्ता ग्राहक के पहुँचने तथा पुन लौटने के समय मे करता है। इस विधि मे वह उसके स्वागत से लेकर विदाई तक सभी कार्य करता है। विक्रय प्रक्रिया मे अनेक स्तर होते हैं। विक्रय कला क्षेत्र के महान विद्वान प्रो हरबर्ट एन केसन ने इस प्रक्रिया के कुछ स्तर बताये हैं। उन स्तरो के प्रारम्भिक अक्षरो से ही "RIDSAC" का सूत्र बना लिया है। उनके अनुसार इस विधि या प्रक्रिया के छ स्तर (Stages) है, वे निम्नलिखित क्रम में हैं—

(i) स्वागत (Reception)

(ii) पूछताछ (Enquiry)

(iii) प्रदर्शन (Demonstration)

(iv) चुनाव (Selection)

(v) सवर्द्धन (Addition)

(vi) प्रशसा एव विदाई (Commendation)

प्रो ग्रीफ (Grief) ने विक्रय विधि के पाँच स्टार' या स्तर (Five stars) का वर्णन किया है —

(i) ध्यानाकर्षण (Attention)

(ii) रुचि (Interest)

(iii) इच्छा (Desire)

(iv) विश्वास (Conviction)

(v) अंत (The Close)

इनका विस्तृत वर्णन निम्न प्रकार है —

(1) ध्यानाकर्षण—जब ग्राहक दुकान तक नहीं पहुँचता है, विक्रयकर्त्ता को विक्रयकला दिखाने का अवसर मिलना कठिन है। अत विक्रयकर्त्ता को ग्राहको का ध्यान आकर्षित करने के लिए यथासम्भव सभी प्रयत्न करने चाहिए।

यहीं से विक्रयकर्त्ता को चाहिए कि वह ग्राहक मे यह भावना भर दे, कि उस सुनना ग्राहक के हित मे है। यही वह स्टेज है, जहाँ से सम्पूर्ण विक्रय क्रिया को प्रभावशाली एव सफल बनाया जा सकता है। फुटकर विक्रयकर्त्ता ग्राहको को आकर्षित करने के लिए, वातायन सजावट (Window display) का प्रयोग कर सकता है। विज्ञापन ग्राहको को दुकान तक खीचकर लाता है, जबकि वातायन सजावट ग्राहको को दुकान के अन्दर खींचकर लाती है। इसके आगे ग्राहको को आकर्षित करने का कार्य विक्रयकर्त्ता का है। वह ग्राहको को अपनी अच्छी वेषभूषा, हसमुख चेहरा, स्पष्ट एव कुशल वार्तालाप द्वारा आकर्षित कर सकता है। इसके अतिरिक्त काउन्टर सजावट (Counter display), दिवाल सजावट (Wall display) आदि के आधार पर भी ग्राहको को सतुष्ट किया जा सकता है।

अल्फ्रेड ग्रोस (Alfred Gross) के अनुसार एक विक्रयकर्ता अपनी दुकान पर आये ग्राहकों का ध्यान निम्न तरीकों से आकर्षित करता है —

(i) ईमानदारी के साथ अभिनन्दन एवं प्रशंसा करके।
(ii) महत्त्वपूर्ण नाम का सदर्भ देकर।
(iii) विशिष्ट समस्या का सदर्भ देकर।
(iv) अनुसधानों एव रुचिप्रद आँकडो का सदर्भ देकर।
(v) रुचिप्रद प्रदर्शन (Exhibits) से प्रारम्भ करके।
(vi) सहायता अथवा सेवा का प्रस्ताव करके।
(vii) मुफ्त भेट (Free gifts) का प्रस्ताव करके।
(viii) कौतूहल पैदा करके।
(ix) घटना वर्णन करके।
(x) कहानी कहकर अथवा वस्तु का नाम बताकर।

2 रुचि उत्पन्न करना—ध्यानाकर्षण के तत्पश्चात् ग्राहक मे वस्तु के प्रति रुचि उत्पन्न करने का प्रयास करना चाहिये। मनोवैज्ञानिको ने ग्राहको की निम्न तीन प्रकार की रुचियाँ बताई हैं —

(अ) मानवीय रुचि (Human Interest)
(ब) सूचना रुचि (News Interest)
(स) नवीनता रुचि (Novelty Interest)

विक्रयकर्त्ता को ग्राहकों में वस्तु के अनुसार रुचि उत्पन्न करने का प्रयत्न करना चाहिये। प्रसिद्ध विद्वान् पॉल इवी (Paul Ivey) के अनुसार "ग्राहको मे रुचि उत्पन्न करने के लिये सर्व प्रथम यह ज्ञात करना चाहिये कि ग्राहक पहले से ही किस प्रकार की रुचि रखते हैं, और फिर उसमे रुचि लीजिये एव बात करिये। यदि आप पहले उस सम्बन्ध मे बात करेंगे, जिसमे उनको (ग्राहको को) रुचि है तो वे (ग्राहक) बाद मे आपकी इच्छानुसार बात करने की सोचेंगे।"[1] स्पष्ट है कि ग्राहको की इच्छानुसार ही विचार प्रस्तुत करने चाहिये। उनकी आवश्यकताओ एव समस्याओ पर विचार करना चाहिये। इससे वस्तु के प्रति रुचि उत्पन्न की जा सकती है।

3 इच्छा उत्पन्न करनी चाहिये—रुचि उत्पन्न करने के पश्चात् ग्राहको की क्रय की इच्छा उत्पन्न करनी चाहिये। अल्फ्रेड ग्रोस (Alfred Gross) के अनुसार इच्छा उत्पन्न करने के तीन स्तर (Three steps) है —

---

1 The first method for arousing customer s interest is to find out what they are already interested in and then be interested in it and talk about it If you will talk about what they are interested in, they will later on be willing to consider what you are interested in Paul Ivey, Successful Salesmanship p 211.

(i) आवश्यकताओं का पता लगाना एवं असंतुष्टि का स्पष्टीकरण करना।

(ii) यह बताना है कि अपनी वस्तु किस प्रकार क्रेता की आवश्यकता की पूर्ति करेगी।

(iii) उन लाभों को बताना चाहिये जो वस्तु के क्रय से हो सकते हैं।

इन विभिन्न स्तरों से क्रमशः गुजरने पर ग्राहक में प्रभावशाली इच्छा (Effective desire) उत्पन्न हो सकेगी।

4 विश्वास (Conviction)—जब ग्राहक की वस्तु के प्रति इच्छा जाग्रत हो जाय, तो इच्छा को आवश्यकता में परिणित करने के लिये विक्रयकर्ता को चाहिये, कि वह ग्राहक के दिल में यह विश्वास उत्पन्न कर दे कि उनके द्वारा क्रय की जाने वाली वस्तु उसे संतुष्टि प्रदान करेगी। एक विक्रयकर्ता निम्न तरीकों से ग्राहक में विश्वास उत्पन्न कर सकता है —

(i) वस्तु की जाँच एवं प्रदर्शन करके।

(ii) संतुष्ट ग्राहकों एवं विशेषज्ञों का प्रमाण देकर।

(iii) गारंटी तथा प्रतिज्ञा करके।

(iv) वस्तु के प्रभाव बताकर।

(v) तथ्य एवं तर्क देकर।

(vi) विक्रेता की ख्याति बताकर।

(vii) दावे (Claims) का अधिकार देकर।

(viii) प्रतिष्ठा के लिए आवश्यकता (Prestige Appeal) बताकर।

(ix) आत्मविश्वास दिलाकर।

5 अन्त (The Close)—ग्राहकों में प्रभावशाली इच्छा व दृढ़ विश्वास उत्पन्न कर देने के पश्चात् विक्रय विधि का अन्तिम स्तर आता है। इस समय ग्राहक यह निर्णय लेते हैं कि उन्हें क्रय करना है अथवा नहीं। विक्रयकर्ता को अब भी कुछ विशेष बातों का ध्यान रखना पड़ता है क्योंकि उसके समस्त परिश्रम की सफलता विक्रय पर ही है। इसलिये विक्रयकर्ता को अन्त में एक विशेष विधि अपनानी चाहिए। अल्फ्रेड गोस (Alfred Gross) के अनुसार विक्रय विधि का अन्त निम्न प्रकार करना चाहिए —

(i) क्रयादेश के लिये पूछताछ करके।

(ii) जाँच का अन्त करके।

(iii) गर्भित स्वीकृति स्पष्ट करके।

(iv) विशिष्ट प्रेरणा देकर।

(v) भयकारी घटनायें जैसे—माल समाप्त हो सकता है, बताकर।

(vi) दो या तीन ऐच्छिकों में से चयन करने की सलाह देकर।

(vii) छोटी छोटी बातों पर निर्णय में सहायता करके।

(४) ठहराव स्वीकारात्मक करने का प्रयास करें।
(५) आश्वासन देकर।
(६) अधिकारपूर्वक कहकर।
(७) वस्तु के चयन की प्रशंसा करके।

विक्रयकला कला अथवा विज्ञान
(Salesmanship An Art or a Science)

विक्रयकला के विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं का ध्यानपूर्वक अध्ययन से स्पष्ट है कि कुछ विद्वानों ने इसे एक कला के रूप में स्वीकार किया है और कुछ अन्यों ने इसे एक विज्ञान के रूप में। विक्रयकला कला है अथवा विज्ञान। इस प्रश्न का उत्तर देने से पूर्व कला एवं विज्ञान का स्पष्ट रूप से अर्थ समझना आवश्यक है।

विक्रयकला क्या एक कला है ? (Is Salesmanship an Art ?) किसी कार्य को सर्वोत्तम विधि से करना ही कला है। जार्ज आर टेरी के शब्दों में "चातुर्य के प्रयोग से इच्छित परिणाम प्राप्त करना ही कला है।"[1] कला ज्ञान की उस शाखा का नाम है जो निश्चित उद्देश्यों या आदर्शों की प्राप्ति के लिए उपायों एवं विधियों का ज्ञान कराती है। कला सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप प्रदान करने की विधि बतलाती है। कला की सफलता कला के प्रयोग करने वाले व्यक्ति की व्यक्तिगत योग्यता पर निर्भर करती है। कला व्यक्तिगत योग्यता, परिश्रम, लगन एवं अनुभव से ही प्राप्त की जा सकती है। इस अर्थ में विक्रयकला निश्चय ही एक कला है क्योंकि एक विक्रयकर्ता को अनेक समस्याओं का समाधान करना पड़ता है जो उनके विक्रय करते समय अचानक उपस्थित होती हैं। विक्रयकर्ता को अपने तौर पर विक्रय करते समय ही निर्णय लेने पड़ते हैं। ये निर्णय प्रत्येक विक्रयकर्ता अपने ढंग से लेता है। इसके अतिरिक्त विक्रयकला के माध्यम से वस्तु का इस प्रकार विक्रय किया जाता है जिसमें क्रेता एवं विक्रेता दोनों को सन्तुष्टि प्राप्त होती है। यह सब कला ही तो है।

विक्रयकला को एक कला के रूप में समझने का महत्वपूर्ण कारण यह भी है कि इसके सम्बन्ध में अभी तक त्रुटि रहित नियमों का निर्माण नहीं किया जा सका है। द्वितीय विक्रयकला का हस्तान्तरण भी कठिन है। अतः स्पष्ट है कि विक्रयकला एक कला ही है।

विक्रयकला क्या एक विज्ञान है ? (Is Salesmanship a Science ?) विज्ञान ज्ञान का क्रमबद्ध अध्ययन है जो कारण एवं परिणाम में पारस्परिक सम्बन्ध निर्धारित करता है। इस प्रकार विज्ञान के दो प्रमुख लक्षण हैं

1 Art is the bringing about of a desired result through the application of skill — George R. Terry: Principles of Management, p. 86

(1) विज्ञान ज्ञान का क्रमबद्ध अध्ययन है।

(2) यह निश्चित विधि द्वारा कार्य एव कारण मे पारस्परिक सम्बन्ध निर्धारित करता है।

विज्ञान की दो शाखाएं हैं (i) वास्तविक विज्ञान (Positive Science) (ii) आदर्श विज्ञान (Normative Science)। वास्तविक विज्ञान का उद्देश्य वस्तु-स्थिति का ज्ञान कराना है। यह इस बात का ज्ञान कराना है कि वस्तु-स्थिति क्या है? आदर्श विज्ञान का उद्देश्य आदर्शों का निर्धारण करना है। इसके द्वारा 'क्या होना चाहिए' प्रश्न का उत्तर मिलता है। यह किसी भी वस्तु-स्थिति मे क्या उचित एव क्या अनुचित इसका ज्ञान करता है। यह उचित एव अनुचित आदर्शों को स्पष्ट करते हुए उचित आदर्शों की प्राप्ति के लिये मार्ग प्रदर्शित करता है।

विक्रयकला क्या एक वास्तविक विज्ञान है? अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या विक्रयकला वास्तविक विज्ञान है अथवा आदर्श विज्ञान? क्या विक्रयकला वास्तविक विज्ञान है? इस प्रश्न के उत्तर मे कहा जा सकता है कि विक्रयकला से विक्रयकर्त्ता ग्राहक का क्रमबद्ध अध्ययन कर उसकी इच्छाओ का ज्ञान कर लेता है। वह यह ज्ञान मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तो के आधार पर करता है। यह मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त तथ्यो पर आधारित होते हैं और कारण एव परिणाम मे सम्बन्धो का निर्धारण करते हैं। इन सिद्धान्तो को विक्रयकला के सर्वत्र क्षेत्र मे समान रूप से लागू किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त विक्रयकला के सिद्धान्तो का प्रशिक्षण देकर विक्रयकला को हस्तान्तरित भी किया जाने लगा है। विक्रयकला मे अब ऐसी विधियो एव प्रणालियो का विकास किया जाने लगा है, जिनसे आकर्षक ढग से विश्वासपूर्वक विक्रय किया जाने लगा है। इस दृष्टिकोण से विक्रयकला एक वास्तविक विज्ञान है।

विक्रयकला · क्या एक आदर्श विज्ञान है? विक्रयकला आदर्श विज्ञान भी है। क्योंकि विक्रयकर्ता विक्रयकला के सिद्धान्तो के आधार पर ग्राहको की वास्तविक स्थिति का अध्ययन कर इस सम्बन्ध मे आवश्यक सुझाव भी देता है कि क्या होना चाहिए। वह ग्राहको को अधिकतम सन्तुष्टि प्रदान करने हेतु सुझाव दे देता है कि अमुक वस्तु उपयोग की है अथवा नही। यह आदर्श विज्ञान का पहलू है।

परन्तु विक्रयकला भौतिक शास्त्र एव रसायन शास्त्र की भाँति विज्ञान नही है। विक्रयकला की प्रकृति इन विज्ञानो की तरह न होने का कारण यह है कि विक्रय कर्त्ताओ को मनुष्यों मे माल का विक्रय करना पडता है और मनुष्यो का व्यवहार स्थिर नही रहता है। मानव व्यवहार परिस्थितियो के अनुसार बदलता ही रहता है अत मानव व्यवहार के सम्बन्ध मे जो नियम बनाये जाते हैं वे पूर्ण रूप मे सत्य सिद्ध नही हो पाते हैं।

विक्रयकला · कला एव विज्ञान दोनों हैं . उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि विक्रयकला एक कला एव विज्ञान दोनो ही हैं। इसके वैज्ञानिक एव कलात्मक रूप को विभक्त नही किया जा सकता है। क्योंकि सैद्धान्तिक एव व्यावहारिक विज्ञान दोनो

एक-दूसरे के पूरक हैं। दोनों एक-दूसरे के बिना अपूर्ण है। विक्रयकला किस सीमा तक कला है और किस सीमा तक विज्ञान, इस प्रश्न का उत्तर देना भी सरल नहीं है। परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि यह कला अधिक है और विज्ञान कम। विद्वानों के मतानुसार प्रबन्ध (Management) में 80% कला व 20% विज्ञान है। स्पष्ट है, प्रबन्ध जिसमें कई गणितीय एवं सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग किया जाता है उसमें भी 80% कला का भाग है तो विक्रयकला जो केवल मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित है निश्चय ही 80% से भी अधिक कला है। अतः यह कह दिया जाय कि विक्रयकला में 90% भाग कला का है, और अधिक से अधिक 10% भाग विज्ञान का है तो भी कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। स्पष्ट शब्दों में कहा जा सकता है कि विक्रयकला में कला का पक्ष अधिक है और विज्ञान का पक्ष कम है।

अभ्यास के लिए प्रश्न

1. विक्रयकला क्या है ? इसकी प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
   What do you mean by Salesmanship Narrate its main characteristics
2. विक्रयकला क्या है ? आधुनिक समय में विक्रयकला के महत्त्व पर प्रकाश डालिए।
   What is Salesmanship ? Describe the importance of salesmanship in the modern world
3. विक्रयकला के विकास पर एक संक्षिप्त लेख लिखिए।
   Write a lucid note on the development of salesmanship
4. सफल विक्रयकला के कौन कौन से आवश्यक तत्त्व है ? उनकी विवेचना कीजिये।
   What are the essentials of successful salesmanship ? Explain.
5. विक्रयकला कला है अथवा विज्ञान ? स्पष्ट रूप से समझाइये।
   Is salesmanship an art or a science ? Discuss
6. विक्रयकला क्या है ? यह कितने प्रकार की होती है ?
   What is salesmanship ? What are the types of it ?
7. विक्रयकला एवं मनोविज्ञान के आपसी सम्बन्ध को स्पष्ट कीजिये।
   Discuss the relation between salesmanship and psychology
8. विक्रयकला में केवल व्यक्तित्व की ही आवश्यकता नहीं होती है, अपितु विक्रय-व्यूह रचना और विक्रय प्रविधि ज्ञान भी होना चाहिए। इस कथन को स्पष्टतया समझाइये।
   'Salesmanship requires not only personality but also knowledge of sales strategy and sales technique ' Elucidate
   (II yr com 1975)

9 विक्रयकला की परिभाषा दीजिये। इसके क्षेत्र व विकास को समझाकर लिखिए।

Define Salesmanship State and explain its scope and development (1976;

10 भारतीय अर्थ-व्यवस्था में विक्रयकला के आर्थिक महत्त्व की विस्तारपूर्वक विवेचना कीजिए।

Discuss in detail the economic importance of salesmanship in Indian economy (1976)

11 रचनात्मक विक्रयकला तथा प्रतिस्पर्द्धी विक्रयकला मे अन्तर बतलाइये।

Distinguish between creative salesmanship and competitive salesmanship

12 विक्रयकला की सीमाओ पर प्रकाश डालिए।

Discuss the limitations of salesmanship

2

एक सफल विक्रयकर्त्ता के गुण
(Qualities of a Successful Salesman)

Make it thy business to know thyself, which is the most difficult lesson in the world — *Cervantes*

आधुनिक व्यावसायिक जगत में विक्रयकर्ताओं का महत्व उनके द्वारा प्रदत्त सेवाओं के परिणामस्वरूप दूज के चाँद की भाँति बढ़ता जा रहा है। आज की बाजार केन्द्रित व्यावसायिक संस्थाएँ (Market Oriented Business Institution) एवं विक्रयकर्त्ता को अपनी अमूल्य सम्पत्ति समझती हैं। ये संस्थाएँ विक्रयकर्त्ताओं को अपनी सफलता का आधार मानती हैं। कुशल विक्रयकर्ताओं के अभाव में एक संस्था की व्यावसायिक स्थिति गम्भीर बन सकती है। उनके बढ़ते हुए महत्व के कारण ही अब विक्रयकर्त्ता को धोखा देने वाला, झूठ बोलने वाला एवं लुटेरा जैसे अपमानजनक विशेषणों से मुक्त कर नये सम्मानजनक विशेषणों जैसे बाजार विशेषज्ञ (Market Specialist) क्षेत्र प्रतिनिधि (Field Representative) माल सलाहकार (Merchandising Consultant) सेवा प्रतिनिधि (Service Representative) आदि से सुशोभित किया जाने लगा है।

आज का विक्रयकर्त्ता व्यावसायिक जगत के लिये ही लाभप्रद नहीं है वरन् सम्पूर्ण उपभोक्ता वर्ग, समाज एवं राष्ट्र के लिये भी महत्वपूर्ण है। वह ग्राहकों से प्रभावपूर्ण विधि से माल का विक्रय कर उनको अधिकाधिक सन्तुष्टि प्रदान करने की चेष्टा करता है। वह ग्राहकों की विक्रय समस्याओं का समाधान कर उनके धन के सदुपयोग में सहायता पहुँचाता है। वह उपभोग में वृद्धि करने में भी सहायक होता है जिस पर सम्पूर्ण उपभोक्ता वर्ग, मजदूर वर्ग, समाज एवं राष्ट्र की समृद्धि निर्भर करती है।

एक सफल विक्रयकर्त्ता के गुण
(Qualities of a Successful Salesman)

आधुनिक युग को यदि विक्रय क्रान्ति (Sales Revolution) का युग कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। इस क्रान्तिकारी विक्रय युग में सृजनशील (creative) विक्रयकर्ताओं की आवश्यकता है जो प्रतिस्पर्द्धात्मक स्थिति में श्रेष्ठतम विधियों से जनता में अपने माल की माँग उत्पन्न कर सकें, ग्राहकों को क्रय के लिये

बाध्य कर अधिकाधिक सतुष्टि प्रदान कर सके तथा अपनी विक्रय-कुशलता से अपने ग्राहकों को स्थाई बनाकर संस्था के लाभो में वृद्धि कर, इसकी नींव को दृढ बना सके। इस उद्देश्य से विक्रयकर्ता मे कुछ विशिष्ट गुणो का होना अनिवार्य है। एक प्रमुख विद्वान् के अनुसार 'एक सफल विक्रयकर्ता मे बिल्ली के समान उत्सुकता, कपि के समान चातुर्य, गगाजल के समान सरलता एव पवित्रता, शिशु की भाति मैत्री, फुटबाल के खिलाडी की भाँति सक्रियता तथा एक स्त्री के भांति धैर्य होना चाहिए।

हास एव अर्नेस्ट (Hass & Ernest) के मतानुसार, 'आज के विक्रयकर्ताओ मे से प्रत्येक को समस्या निवारक, प्रेरणा देने वाला एव बाजार विशेषज्ञ होना चाहिये। इसी प्रकार अमेरिका की प्रसिद्ध डू पोन्ट कम्पनी (Du Pont Company) के अनुसार "एक विक्रयकर्ता को कुछ वैज्ञानिक, कुछ अर्थशास्त्री तथा कुछ बाजार या वस्तु विशेषज्ञ होना चाहिये।"[1]

पॉल एच नाइस्ट्रोम (Pual H Nystrom) के अनुसार एक सफल विक्रयकर्ता म निम्न गुण होना चाहिये —

1 फुर्तीला	7 कर्त्तव्यनिष्ठ	13 सुहृदय
2 सतर्क	8 स्वस्थ	14 अच्छी वाणी एव भाषा
3 विनम्र	9 सृजनकर्ता	15 उत्साही
4 चतुर	10 परिश्रमी	16 सहयोगी
5 सूचना देन वाला	11 विश्वसनीय	17 व्यवहार कुशल
6 यथार्थ	12 ईमानदार	

प्रो० ग्रीफ (Grief) ने सफल विक्रयकर्ताओ के गुणो का निम्न प्रकार से वर्गीकरण किया है —

1 चारित्रिक गुण	2 मानवीय गुण	3. मानसिक गुण
विश्वासनीयता	जनप्रिय	समझाने की योग्यता
स्थायित्व	लोगो की समझ	लोचपूर्ण
साहस	चतुर	निर्णय योग्यता
सृजनकर्ता	कर्त्तव्यनिष्ठ	निरीक्षण योग्यता
उद्यमी	यथार्थ	विश्लेषण योग्यता
कुशल ज्ञान	उत्साही	दूरदर्शिता
महत्वाकाक्षी	हसमुख	व्यावसायिक समझ
स्वअनुशासन	सहकारी	कल्पना शक्ति
	रचनात्मक दृष्टिकोण	युक्ति सम्पन्नता

1. "Today's Salesmen must be problem solvers motivators and marketing experts, all in one" Kenneth B Hass and John W. Ernest, Creative Salesmanship Undertaking Essentials, p 2.

4 दिखावट एवं प्रभाव
शालीनता सम्बन्धी गुण

स्वस्थ
शक्तिशाली
अच्छे कपड़े
स्वच्छता
आत्मविश्वास एवं साहस
उचित लम्बाई
प्रतिष्ठा
मधुरवाणी एवं भाषा

5 परिपक्वता सम्बन्धी गुण

उत्तरदायी
आलोचना को सुनने एवं
आलोचकों की प्रशंसा करने की
क्षमता
सुविकसित
सामाजिक भावना
स्वार्थहीनता

प्रो० किलपैट्रिक (Kilpatrick) ने सफल विक्रयकर्ता के गुणों को निम्न तीन भागों में विभक्त किया है—

(1) शारीरिक गुण
(2) मानसिक एवं नैतिक गुण
(3) सामाजिक गुण

जब कि डेविड मेयर (David Mayer) तथा हरबर्ट ग्रीनबर्ग (Herbert Greenberg) ने एक सफल विक्रयकर्ता में केवल निम्न दो गुणों का होना ही अनिवार्य बताया है —

1 विक्रयकर्ता में ग्राहकों के विचारों को समझने की क्षमता हो।

2 विक्रयकर्ता में विक्रय के लिये आत्म प्रेरणा हो।

उपर्युक्त दिये गये विवरण से स्पष्ट है कि विभिन्न विद्वानों ने एक सफल विक्रयकर्ता के गुणों का विभिन्न प्रकार से वर्णन किया है। कुछ विद्वानों ने विस्तृत रूप से वर्णन किया है तो कुछ ने गागर में सागर भरने का प्रयास किया है। इन सभी विद्वानों के मतों को ध्यान में रखते हुये हम एक सफल विक्रयकर्ता के गुणों का अध्ययन निम्न पाँच शीर्षकों के अन्तर्गत कर सकते हैं —

(i) शारीरिक गुण (Physical Traits)
(ii) मानसिक गुण (Mental Traits)
(iii) सामाजिक गुण (Social Traits)
(iv) नैतिक गुण (Moral Traits)
(v) व्यावसायिक गुण (Business Traits)

1 शारीरिक गुण (Physical Traits)

1 सुदृश्य (Good Appearance)—एक विक्रयकर्ता की सफलता पर बहुत बड़ी सीमा तक इस बात पर निर्भर करती है कि विक्रयकर्ता दिखने में कैसा है। एक आकर्षक एवं हँसमुख चेहरे वाला विक्रयकर्ता फुटपाथ पर चलते हुए अनेक ग्राहकों को दुकान में प्रवेश करने के लिए बाध्य कर देता है। उसके विपरीत

कुरूप एवं भद्दे शक्ल एवं गन्दे कपड़े वाला विक्रयकर्त्ता दुकान पर आए हुए ग्राहकों को भी लौटने के लिए बाध्य कर देता है। अतः एक विक्रयकर्त्ता को सुदृश्य होना चाहिए।

2. **उत्तम स्वास्थ्य** (Good Health)—विक्रयकर्ता का स्वास्थ्य उत्तम होना आवश्यक है। उत्तम स्वास्थ्य एक विक्रयकर्त्ता को हंसमुख रखता है, जो ग्राहकों के आकर्षण का केन्द्र बिन्दु हो जाता है। एक विद्वान् के अनुसार **"अच्छा स्वास्थ्य ही व्यक्तित्व के निर्माण का सबसे बड़ा तत्व है।"**

3. **प्रसन्न मुख मुद्रा** (Cheerful Disposition)—एक विक्रयकर्त्ता का सदैव हंसमुख प्रसन्न चित्त एवं प्रफुल्लित रहना चाहिए। ग्राहकों से वार्तालाप करते समय चेहरे पर सलवटें चिड़चिड़ापन गुस्सा आदि नहीं होने चाहिए। उसे ग्राहकों से सम्मानपूर्वक एवं प्रसन्नता से बातचीत करनी चाहिए।

4. **स्फूर्ति** (Agile)—एक विक्रयकर्ता को ग्राहकों की आवश्यकताओं एवं इच्छाओं पर यथासम्भव जल्दी से जल्दी ध्यान देना चाहिए। अतः एक विक्रयकर्त्ता को स्फूर्ति वाला होना चाहिये। फुटकर विक्रयकर्त्ता को विशेष रूप से स्फूर्ति वाला होना चाहिए। थोक विक्रयकर्ता को भी नियत समय पर शीघ्रातिशीघ्र अपने व्यापारी से मिलना चाहिए।

5. **मधुर वाणी** (Sweet voice)—एक विद्वान के अनुसार **"अच्छी वाणी किसी भी अन्य बात की अपेक्षा अधिक अनुकूल प्रभाव डालती है।"** ("A good voice will do more than anything else to create a favourable impression") अतः विक्रयकर्त्ता की वाणी मधुर, स्पष्ट एवं सन्तोषप्रद होनी चाहिए, जिससे विक्रयकर्त्ता से ग्राहक बातचीत करने में आनन्द का अनुभव करे। अटपटी वार्ता तथा वाणी से हकलाने वाला विक्रयकर्ता ग्राहक पर अच्छा प्रभाव नहीं डाल पाता है। इसीलिए एक विद्वान् ने ठीक ही लिखा है कि **"मधुर वाणी प्रत्येक विचार को स्पष्ट एवं सुन्दरता से प्रकट करने का उपयुक्त माध्यम है।** (Sweet voice is a fit medium to express correctly and pleasingly every thought)"

6. **कार्य शक्ति** (Stamina)—एक कुशल विक्रयकर्त्ता में एक साथ लम्बे समय तक कार्य करते रहने की क्षमता होनी चाहिये। कभी-कभी दुकान पर लगातार ग्राहक आते रहते हैं। इससे उसे थकावट अनुभव हो सकती है। परन्तु, इस स्थिति में भी उसमें प्रसन्नचित्त रहकर कार्य करने की क्षमता होनी चाहिए।

7. **हावभाव** (Postures)—एक विक्रयकर्त्ता के लिए हावभाव बहुत अधिक महत्त्व रखते हैं। अतः उसे अपनी वाणी एवं भावनाओं के अनुसार हाथों, आँखों, सिर आदि के हावभाव से अपना अर्थ स्पष्ट करते रहना चाहिए। हावभाव के प्रदर्शन से ग्राहकों पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

II मानसिक गुण (Mental Traits)

1 युक्ति सम्पन्नता (Resourcefulness)—एक सफल विक्रयकर्ता को युक्ति सम्पन्न होना चाहिये। एक युक्ति सम्पन्न विक्रयकर्ता एक अच्छे मित्र की भांति ग्राहकों को आवश्यक सूचनाएँ अथवा माल दर्शन देकर क्रय के लिए प्रेरित कर सकता है और उसे स्थाई ग्राहक बना सकता है।

2 सतर्कता (Alertness)—एक विक्रयकर्ता को ग्राहक की सेवा में सदैव सतर्क रहना चाहिए। ज्यों ही ग्राहक दुकान में प्रवेश करे उसे अभिवादन करना चाहिए। उसकी आपत्तियों एवं समस्याओं का समाधान करते समय पूर्ण सावधानी रखनी चाहिये।

3 कल्पना शक्ति (Imagination) —कल्पनाशक्ति एक महत्त्वपूर्ण मानसिक गुण है जिसका प्रत्येक विक्रयकर्ता में होना अति आवश्यक है। प्राय देखने को मिलता है कि जब ग्राहक दुकानों पर माल क्रय करने के लिये जाते है, उस समय उनका माल के सम्बन्ध में कोई ठोस विचार नही होता है और वे इच्छित वस्तु का नाम व प्रकृति भी ठीक ठीक नहीं बता पाते हैं। एक अच्छा विक्रयकर्ता ग्राहक के टूटे फूटे विचारों को सुनकर अपनी कल्पनाशक्ति के आधार पर ही इच्छित वस्तु निकाल कर उसको दे सकता है और सन्तुष्ट कर सकता है।

4 प्रखर बुद्धि (Intelligence)—एक विक्रयकर्ता में प्रखर बुद्धि होनी चाहिए, जिससे वह ग्राहकों को भली प्रकार समझ सके और उन्हें बुद्धिमतापूर्वक उनकी बात का उत्तर देकर अपनी बात भी समझा सके। उसका सामान्य ज्ञान एवं उच्च कोटि का होना चाहिए, जिससे वह ग्राहक के विचार जान कर वार्तालाप कर सके।

5 परिपक्वता (Maturity)—एक विक्रयकर्ता में पर्याप्त परिपक्वता बहुत महत्त्व रखती है। उसमें उत्तरदायित्व को समझने एवं निभाने की क्षमता होनी चाहिये। ग्राहकों द्वारा की गई आलोचनाओं को सुनते हुए भी उनकी प्रशंसा करने की क्षमता भी होनी चाहिये। उत्तेजित ग्राहकों से वार्तालाप करते समय उसको मानसिक सन्तुलन बनाये रख कर उसे एक सफल विक्रयकर्ता का परिचय देना चाहिये।

6 तीव्र स्मरण शक्ति (Sharp Memory) —एक विक्रयकर्ता में स्मरण शक्ति बहुत ही तेज होनी चाहिए। वह अपनी तीव्र स्मरण शक्ति से ही पुराने ग्राहकों को आसानी से पहचान सकता है, पुरानी भेंट के विषय को स्मरण कर सकता है, पुरानी शिकायतों के समाधान की सूचना दे सकता है अथवा पुरानी भेंट पर ग्राहक द्वारा दिये गये सुझावों के आधार पर किए गये कार्यों को बता सकता है। इस प्रकार की तीव्र स्मरण शक्ति द्वारा विक्रयकर्ता का ग्राहकों पर बहुत ही अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

7 आत्म-विश्वास (Self-Confidence)—ग्राहकों में विश्वास उत्पन्न करने के लिए विक्रयकर्त्ता में आत्मविश्वास होना आवश्यक है। एक विक्रयकर्त्ता को अपने आप में आत्मविश्वास उत्पन्न करने के लिये अपने कार्य की पर्याप्त जानकारी होनी चाहिए। आत्मविश्वास रखने वाला विक्रयकर्त्ता ही ग्राहकों से निर्भीक होकर वार्तालाप कर सकता है।

8· पहल शक्ति (Initiative)—एक विद्वान् के अनुसार **"पहलपन को सर्वत्र सभी धन्धों में प्रथम आवश्यकता है।"** (Initative is a pre-requisite of almost every occupation)। विक्रयकर्त्ता का धन्धा भी कम महत्त्व का नहीं है। इसमें भी सफल होने के लिये विक्रयकर्त्ता की पहल शक्ति महत्त्वपूर्ण योगदान देती है। ग्राहकों में वस्तुओं की आवश्यकता जाग्रत करना एवं उन्हें क्रय के लिये बाध्य करना इन सब में पहल शक्ति की आवश्यकता होती है।

9 *अवलोकन एवं निर्णय की क्षमता* (Ability to Observe and *Judge)—एक विक्रयकर्त्ता में ग्राहक को देखकर उसकी प्रकृति को समझने की क्षमता* होनी चाहिये। इसके अतिरिक्त उस *ग्राहक की प्रकृति के अनुरूप किस प्रकार का व्यवहार किया जाय, इस बात के निर्णय की योग्यता भी होनी चाहिये।*

10 आशावादिता (Optimism)—एक विक्रयकर्त्ता का सदैव आशावादी होना चाहिये। उसके मस्तिष्क में सदैव यही दृष्टिकोण रहना चाहिये कि ग्राहक दुकान पर क्रय करने के लिये ही आया है। यदि ग्राहक बिना क्रय किये वापस चला जाय तो उसे निराश नहीं होना चाहिये। एक अच्छे विक्रयकर्त्ता को असफलता ही सफलता की प्रथम सीढ़ी समझकर निरन्तर प्रयत्न करते रहना चाहिये। एक प्रसिद्ध विद्वान् का मत है कि **"एक सफल विक्रयकर्त्ता को आशावादी होना चाहिए। उसे आशाओं का बाध होना चाहिए।"** ("The successful salesman must be a optimist He must be reservior of hopes)

III सामाजिक गुण (Social Traits)

1 मिलनसारिता (Sociable)—आधुनिक युग में एक विक्रयकर्त्ता की सफलता उसकी मिलनसार प्राकृति पर ही निर्भर करती है। उसे युवा-वृद्ध स्त्री पुरुष, निम्न-वर्गीय उच्चवर्गीय विदेशी-स्वदेशी, एवं शिक्षित-अशिक्षित सभी प्रकार के व्यक्तियों से भेंट करनी पड़ती है। उसे *सबसे हिल-मिल कर रहना पड़ता है तभी* ग्राहकों में आत्मीयता एवं विश्वास उत्पन्न कर सकता है।

2 व्यवहार कुशलता (Tactful)—एक सफल विक्रयकर्त्ता को व्यवहार कुशल होना चाहिये। ग्राहकों की प्रकृति के अनुसार अपने आपको ढालकर उनकी प्रकृति के अनुरूप ही व्यवहार करना चाहिए। आगे एक अध्याय में हम ग्राहकों के स्वभाव एवं उनके साथ वाञ्छनीय व्यवहार की सूची दे रहे हैं। एक विक्रयकर्त्ता को उस सूची का अनुसरण करना चाहिये।

3 नम्रता (Politeness)—एक सफल विक्रयकर्त्ता में विनम्रता का होना अति आवश्यक है। एक विक्रयकर्त्ता जितना ही अधिक विनम्र होगा उतना ही अधिक सफल होगा।

4 सहयोगी (Co-operative)—एक विक्रयकर्त्ता में सहयोग की भावना होना भी एक अनिवार्य गुण है। उसे अपने नियोक्ता, ग्राहकों सहकर्मियों आदि सभी के साथ सहयोग एवं भ्रातृत्व भाव से कार्य करना चाहिये। इस गुण के अभाव में एक विक्रयकर्त्ता की सफलता अन्धकारमय ही होती है। एक विद्वान् ने तो यहाँ तक कह दिया कि **जो विक्रयकर्त्ता दूसरों के साथ मिलकर कार्य करके संतोषप्रद सम्बन्धों का निर्माण नहीं कर सकते उन्हें विक्रय कार्य को एक खराब कार्य समझकर छोड़ देना चाहिये।**" ("The salesman who cannot work with and establish satisfactory relations with others should give-up selling as a job.")

5 अच्छी आदत (Good Manners)—अपनी अच्छी आदतों से ही एक विक्रयकर्त्ता अपने ग्राहक के अप्रिय स्वभाव पर काबू प्राप्त कर सकता है। ग्राहक कितनी ही बुरी आदतों वाला क्यों न हो विक्रयकर्त्ता को हमेशा भली आदतों से ही पेश आना चाहिये।

6 वाक्पटुता (Convincing Conversationalist)—एक विक्रयकर्ता को वार्तालाप करने में कुशल होना चाहिये। कुशल वार्तालाप द्वारा ही ग्राहक में विश्वास उत्पन्न किया जा सकता है। विक्रयकर्त्ता में अपनी बात को उचित रूप से समझाने की योग्यता होनी चाहिए, जिससे ग्राहक को स्थायी बनाया जा सके।

7 सुशील स्वभाव (Likable Disposition)—एक विक्रयकर्त्ता को अपने स्वभाव से सुशील होना चाहिये। अच्छी आदत नम्रता एवं व्यवहार कुशलता आदि से एक विक्रयकर्ता सुशील बन सकता है।

8 धैर्य एवं सहिष्णुता (Patience and Sobriety)—धैर्य एवं सहिष्णुता वे गुण हैं जो शत्रु को भी मित्र बना देते हैं। एक विक्रयकर्त्ता को धैर्यपूर्वक अपने ग्राहकों की बात सुनकर ही उत्तर देना चाहिये। इससे ग्राहक को सन्तुष्टि अनुभव होगी।

(v) चारित्रिक गुण (Moral Traits)

1 ईमानदारी (Honesty)—प्रत्येक विक्रयकर्त्ता को ईमानदारी सर्वोत्तम नीति है कथन का पूर्णतः पालन करना चाहिये। ग्राहकों को माल अथवा सेवा के बारे में जो कुछ बातें एवं शर्तें बताई जाय वे पूर्णतः सही होनी चाहिये। बढ़ा-चढ़ा कर बात करना व्यवसाय के हित में नहीं होता है। उसे इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि काठ की हांडी चूल्हे पर एक ही बार चढ़ सकती है अर्थात् ग्राहक को धोखा एक ही बार दिया जा सकता है बार बार नहीं। चरित्र ही दूसरों में आपके प्रति विश्वास जगाता है और स्वयं में आत्म विश्वास का निर्माण करता है। अमेरिका के एक बहुत बड़े साहूकार (Banker) मोरगन (Morgan) का कहना है कि "मैं दो

सो हजार डॉलर का ऋण उसे दूँगा, जिसका चरित्र अच्छा है, चाहे उसके पास और कोई जमानत न हो।"

2 निष्ठावान (Loyal)—एक विद्वान् के अनुसार "अधिकांश ग्राहक उस विक्रयकर्त्ता को आदर देते हैं और प्रशंसा करते हैं जो निष्ठावान है।" (Most customers respect and come to appreciate the salesman who is loyal)। अत एक विक्रयकर्त्ता को अपने मालिक एवं ग्राहकों के प्रति निष्ठावान अथवा वफादार होना चाहिये।

(५) व्यावसायिक गुण (Business Traits)

1 अभिरुचि (Aptitude)—एक विक्रयकर्त्ता की विक्रय कार्य में रुचि होनी चाहिए। स्वाभाविक रुचि वाले व्यक्ति ही ग्राहकों को भली प्रकार माल का विक्रय कर सन्तुष्ट कर सकते है। यदि विक्रयकार्य मे विक्रयकर्त्ता की रुचि नहीं है, तो वह कभी सफल विक्रयकर्त्ता नहीं बन सकता है। इसीलिये मेयर तथा ग्रीनबर्ग (Mayer and Greenberg) ने उचित ही लिखा है कि "विक्रयकर्त्ता में विक्रय के लिए आत्म प्रेरणा होनी चाहिए।" उनका मानना है कि यदि विक्रयकर्त्ता में आत्म प्रेरणा है तो वह अधिक आत्मीयता से विक्रय कर सकता है।

2 वस्तुओं का ज्ञान (Knowledge of Products)—एक विक्रयकर्त्ता को अपने द्वारा विक्रय की जाने वाली वस्तुओं के गुण, प्रकृति, उपयोग आदि के बारे मे पूर्ण जानकारी भी होनी आवश्यक है।

3 ग्राहकों का ज्ञान (Knowledge of Customers)—ग्राहक का ज्ञान भी विक्रयकर्त्ता के लिये आवश्यक है। जो ग्राहक उसके पास आने वाला है उनकी प्रवृत्ति, क्रय की मात्रा, क्रय के उद्देश्य आदि के बारे मे भी जानकारी आवश्यक है। मेयर तथा ग्रीनबर्ग (Mayer and greenberg) के अनुसार "विक्रयकर्त्ता मे दूसरों को समझने की क्षमता होनी ही चाहिये।" (Empathy is essential in a good Salesman)।

4 प्रशिक्षित (Trained)—एक विक्रयकर्त्ता को सफलता के लिये प्रशिक्षण भी आवश्यक है। प्रशिक्षित विक्रयकर्त्ता अधिक कुशलता से विक्रय करते है।

5 उद्यमी (Industrious)—एक विक्रयकर्त्ता को उद्यमी होना चाहिए। उसे हर समय कुछ कार्य करने मे व्यस्त रहना चाहिए।

6 उत्साही (Enthusiastic) एक विद्वान के अनुसार, "बिना उत्साह के कोई भी विक्रय कार्य सफल नहीं हो सकता है।" (No selling effort can succeed without enthusiasm)। एक अन्य विद्वान के अनुसार। 'यह विक्रयकर्त्ता का एक श्रेष्ठ गुण है, क्योंकि आज तक कोई भी महान् कार्य उत्साह के बिना पूरा नहीं हुआ है।" उसे सदैव अपने कार्य के प्रति उत्साही रहना चाहिये। यह हो सकता है कि कभी कभी विक्रयकर्त्ता अपने कार्य मे असफल हो जाए, परन्तु उसे सफ

लता के लिये सतत् प्रयास करना चाहिए । उसे यह दृढ़ विश्वास होना चाहिये कि सफलता एक दिन अवश्य उसके चरण चूमेगी ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि एक सफल विक्रयकर्ता में कई गुण होने चाहिये विक्रयकर्ता चाहे भ्रमणशील हो या चाहे काउन्टर पर काम करने वाला सभी में इन गुणों का पाया जाना आवश्यक है । इन गुणों के बिना सफलता प्राप्त करना किसी भी विक्रयकर्ता के लिए सरल कार्य नहीं है ।

अभ्यास के लिए प्रश्न

1. एक आदर्श विक्रयकर्ता के शारीरिक एवं मानसिक गुणों का वर्णन कीजिये ।
   Enumerate physical and mental qualities of an ideal salesman
   (1974)
2. एक फुटकर तथा भ्रमणशील विक्रेता के गुणों का वर्णन कीजिये ।
   Discuss the essential qualities of retail and travelling salesman
   (1973)
3. एक सफल विक्रयकर्ता के प्रमुख गुणों का वर्णन कीजिये ।
   Narrate qualities of successful salesman

3

विक्रयकर्त्ताओं के प्रकार

(Types of Salesmen)

"It is the first of all problems for a man to find out what kind of work he is to do in this Universe" —*Carlyle.*

एक सामान्य व्यक्ति के मस्तिष्क मे विक्रयकर्त्ता केवल एक ही प्रकार का होता है। उसके मस्तिष्क में केवल काउन्टर पर बैठा हुआ विक्रयकर्त्ता ही होता है। किन्तु आधुनिक युग मे माल को उत्पादन से उपभोक्ता तक पहुँचाने मे केवल काउन्टर पर बैठा हुआ विक्रयकर्त्ता ही पर्याप्त नहीं है। इसके अतिरिक्त भी कई स्तरो पर कई विक्रयकर्त्ताओं की आवश्यकता पड़ती है। इस अध्याय मे उन सभी प्रकार के विक्रयकर्त्ताओं के बारे मे सक्षेप म बताने का प्रयास किया गया है।

विक्रयकर्त्ताओं के वर्गीकरण के आधार
(Bases of Classification of Salesmen)

1 **विक्रयकर्त्ता के नियोक्ता के आधार पर** (On the basis of Employer)—एक विक्रयकर्त्ता, एक उत्पादक, थोक व्यापारी अथवा फुटकर व्यापारी द्वारा नियुक्त किया जा सकता है। यदि वह उत्पादक द्वारा नियुक्त किया गया है, तो वह उत्पादन का विक्रयकर्त्ता (Manufacture's Salesman) कहलायेगा और यदि वह थोक व्यापारी एव फुटकर व्यापारी द्वारा नियुक्त किया जाता है, तो वह क्रमश. थोक व्यापारी का विक्रयकर्त्ता (Wholesaler's Saleman) एव फुटकर व्यापारी का विक्रयकर्त्ता (Retail Salesman) कहलायेगा।

2 **वस्तु के आधार** (On the basis of Product)—कुछ विक्रयकर्त्ता मूर्त वस्तुओ (Tangible Product) का विक्रय करते हैं, तो कुछ अमूर्त वस्तुओ (Intangible Product) का। इन वस्तुओ के आधार पर भी विक्रयकर्त्ताओ का वर्गीकरण किया जाता है। मूर्त वस्तुओ मे हम कपडा, मशीन, स्टोव आदि सम्मिलित कर सकते हैं, जबकि अमूर्त वस्तुओं मे किसी सेवा जैसे, बीमा पालिसी, विज्ञापन कार्य आदि को सम्मिलित किया जाता है।

3 **स्थिति के आधार** (On the basis of Position)—कुछ विक्रयकर्त्ता व्यावसायिक सस्था के भवन पर रहकर ही विक्रय कार्य करते हैं और कुछ बाहर

जाकर। जो विक्रयकर्त्ता सस्था के भवन पर ही विक्रय काय करते हैं उन्हे आन्तरिक विक्रयकर्त्ता (Internal Salesmen) तथा जो बाहर जाकर विक्रय काय करते हैं उन्हे बाह्य विक्रयकर्त्ता (External Salesmen) की श्रेणी म रखत हैं।

4 पारिश्रमिक के आधार (On the basis of Remuneration)—विक्रयकर्त्ताओ को वेतन अथवा कमीशन अथवा वेतन व कमीशन अथवा अन्य किसी भी आधार पर पारिश्रमिक दिया जा सकता है। इन पारिश्रमिक की विधिया क आधार पर विक्रयकर्त्ताओ का वर्गीकरण किया जा सकता है।

5 क्रेता के आधार (On the basis of Customer)—बाजार म कई प्रकार के क्रेता होते है जैसे उत्पादक क्रेता थोक व्यापारी क्रेता फुटकर व्यापारी क्रेता अथवा उपभोक्ता। इन विभिन्न प्रकार के क्रेताओ के आधार पर विक्रयकर्त्ताओ का वर्गीकरण किया जा सकता है।

6 विक्रय काय के आधार पर (On the basis of Function)—विक्रय कर्त्ताओ को उनके कार्यो के आधार पर भी वर्गीकरण किया जा सकता है। किसी विक्रय कार्य मे तकनी की ज्ञान की आवश्यकता होती है तो किसी मे सामान्य ज्ञान की। जिस प्रकार का विक्रय कार्य हो उसी के आधार पर वर्गीकरण किया जा सकता है।

विक्रयकर्त्ताओ के प्रकार
(Types of Salesmen)

अमेरिका के वाणिज्य विभाग (Department of Commerce of U S A) के अनुसार विक्रयकर्त्ताओ के निम्न चार प्रकार हैं —

1 निर्माता का विक्रयकर्त्ता (The Manufacturer s Salesman)

2 थोक व्यापारी का विक्रयकर्त्ता (The Wholesaler s Salesman)

3 फुटकर विक्रयकर्त्ता (The Retail Salesman)

4 विशिष्ट विक्रयकर्त्ता, विक्रय अभियता सहित (The Specialty Salesman including Sales Engineer)

केनफील्ड (Canfield) ने विक्रयकर्त्ताओ की उनके कार्यों क आधार पर (On the fuctional basis) निम्न छ प्रकार के बताये है —

1 विशिष्ट विक्रयकर्त्ता (Specialty Salesmen)

2 कनिष्ट विक्रयकर्त्ता (Junior Salesmen)

3 प्रचारक विक्रयकर्त्ता (Missionary Salesmen)

4 वरिष्ठ विक्रयकर्त्ता (Senior Salesmen)

5 विक्रय अभियन्ता (Sales Engineer)

विक्रयकर्त्ताओं के प्रकार
1 निर्माता विक्रयकर्त्ता
2 थोक व्यापारी विक्रयकर्त्ता
3 फुटकर व्यापारी विक्रयकर्त्ता
4 विशिष्ट विक्रयकर्त्ता
6 निर्यात विक्रयकर्त्ता
I मध्यस्थ विक्रयकर्त्ता
II उपभोक्ता विक्रयकर्त्ता
(क) अन्वेषक विक्रयकर्त्ता
(ख) व्यापारी सेवा विक्रयकर्त्ता
(ग) व्यापारिक व्यक्ति
(अ) व्यापारिक विक्रयकर्त्ता
(ब) 'डिटेल Detail) विक्रयकर्त्ता
(स) प्रचारक विक्रयकर्त्ता
(अ) उपभोक्ता माल विशिष्ट विक्रयकर्त्ता
(ब) कारखाना कार्यालय माल विशिष्ट विक्रयकर्त्ता
(स) विक्रय अभियन्ता
(अ) आन्तरिक विक्रयकर्त्ता
(ब) बाह्य विक्रयकर्त्ता
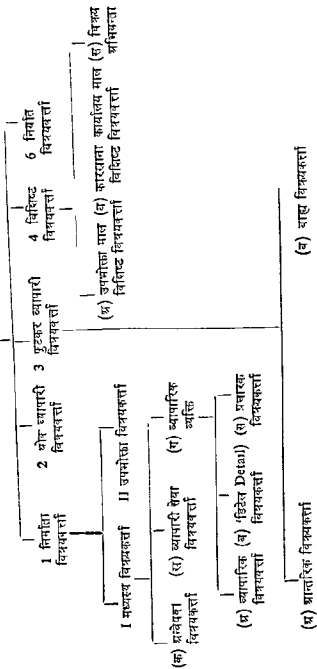
6 निर्यात विक्रयकर्त्ता (Export Salesman)

इस प्रकार अन्य विद्वानो ने भी अपने अपने ढग से अलग अलग आधारो पर विक्रयकर्त्ताओ के प्रकारो का वर्णन किया है। सभी वर्गीकरणो को ध्यान मे रखते हुए हम विक्रयकर्त्ताओ को निम्न भागो मे विभक्त कर सकते हैं—

1 निर्माताओ के विक्रयकर्त्ता (The Manufactures Salesmen)
2 थोक व्यापारी के विक्रयकर्त्ता (The Wholesaler s Salesmen)
3 फुटकर विक्रयकर्त्ता (The Retail Salesmen)
4 विशिष्ट विक्रयकर्त्ता (The Specialty Salesmen)
5 निर्यातक के विक्रयकर्त्ता (The Exporter s Salesmen)

निर्माताओ के विक्रयकर्त्ता
(Manufacturers Salesmen)

निर्माताओ के विक्रयकर्त्ताओ को हम मुख्यत दो भागो मे विभक्त कर सकते हैं —

(I) वे विक्रयकर्त्ता जो थोक व्यापारियो एव फुटकर व्यापारियो अर्थात् मध्यस्थो (Middlemen) को माल का विक्रय करते हैं।

(II) वे विक्रयकर्त्ता जो उपभोक्ताओ (Consumers) मे माल का विक्रय करते है।

वे विक्रयकर्त्ता जो मध्यस्थो को माल का विक्रय करते है। मुख्यत तीन प्रकार के होते हैं—

(क) **अग्रवेधक विक्रयकर्त्ता** (Pioneer Salesmen)—ये विक्रयकर्त्ता बाजार म नई-नई वस्तुओ के लिए माग उत्पन्न करते है। चूँकि बाजार मे नई नई वस्तुओं का विक्रय करना कठिन होता है। अत इनमे विशिष्ट योग्यता का होना आवश्यक है। निर्माता के इन विक्रयकर्त्ताओ से थोक व्यापारी एव फुटकर व्यापारी को भी लाभ प्राप्त होता है। इस प्रकार के विक्रयकर्त्ता को सजनशील विक्रयकर्त्ता (Creative Sale men) भी कहते है। इस प्रकार के विक्रयकर्त्ताओ को सबसे ज्यादा पारिश्रमिक दिया जाता है।

अग्रवेधक विक्रेता के विशिष्ट गुण (Special Qualities of Pioneer Salesmen)—एक अग्रवेधक विक्रयकर्त्ता मे निम्न गुण होने आवश्यक हैं—

(i) आत्मविश्वास होना चाहिये।
(ii) पहल करने (Initiative) की योग्यता होनी चाहिये।
(iii) कल्पना शक्ति होनी चाहिये।
(iv) अपने विक्रय कार्य म कुशल होना चाहिये।
(v) वाक पटु होना चाहिये।
(vi) ग्राहक पहचानने की योग्यता होनी चाहिये।

(vii) शीघ्र निर्णय की योग्यता होनी चाहिये।

(ख) व्यापारियों की सेवा करने वाले विक्रयकर्त्ता (Dealers' Service Salesmen)—इन विक्रयकर्त्ताओं का मुख्य कार्य पुराने व्यापारिक ग्राहकों में नियमित रूप से माल उपलब्ध कराना मात्र है। ये विक्रयकर्त्ता यह देखते हैं कि व्यापारियों के पास माल का स्टाक उपलब्ध है अथवा नहीं। ये पुराने व्यापारियों की समस्याओं को भी दूर करते हैं। इस प्रकार के विक्रयकर्त्ताओं को निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए—

(i) यदि माल का भारी मात्रा में विक्रय होता है तो उसका विस्तारपूर्वक वितरण का प्रबन्ध करना चाहिये।

(ii) माल के सम्बन्ध में उचित एवं सम्पूर्ण जानकारी होनी चाहिये।

(iii) मध्यस्थों की दुकान को फुटकर व्यापार का माध्यम समझना चाहिए।

(iv) दुकान में माल की ठीक प्रकार से सजावट करवानी चाहिये।

(v) मध्यस्थों एवं उनके विक्रयकर्त्ताओं को अपने माल की विक्रय-तकनीक समझानी चाहिये।

(vi) मध्यस्थों एवं उनके विक्रयकर्त्ताओं में उसके माल को बेचने के लिए इच्छा जाग्रत करनी चाहिये।

(ग) व्यापारिक व्यक्ति (Merchandising Men)—ये सूचनाएँ एकत्रित करके निर्माताओं को सलाह देते हैं। ये प्रत्यक्ष रूप से माल का विक्रय नहीं करते हैं, बल्कि अप्रत्यक्ष रूप से ही विक्रय वृद्धि में सहायता पहुँचाते हैं। ये तीन प्रकार के होते हैं—

(अ) व्यापारिक विक्रयकर्त्ता (Merchandising Salesmen)

(ब) 'डिटेल' विक्रयकर्त्ता (Detail Salesmen)

(स) प्रचारक विक्रयकर्त्ता (Missionary Salesmen)

(अ) व्यापारिक विक्रयकर्त्ता (Merchandising Salesmen)—ये विक्रयकर्त्ता अपनी संस्था के माल की विक्रय वृद्धि में महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं। इस प्रकार के विक्रयकर्त्ता के निम्न मुख्य कार्य हैं—

(i) उन जॉबर्स (Jobbers) से भेंट करना, जो उनकी संस्था के माल का विक्रय करते हैं।

(ii) जॉबर्स के विक्रयकर्त्ताओं से भी भेंट करना और अधिकाधिक माल के विक्रय एवं सहयोग के लिए कहना।

(iii) यदि कम्पनी किसी स्थानीय समाचार पत्र में अथवा अन्य किसी साधन से विज्ञापन करती है, तो उसे विज्ञापन संस्था के प्रमुख से भी मिलना एवं अधिकाधिक ध्यान देने की सिफारिश करना।

(iv) स्थानीय व्यापारियों से मिलकर उनके पास उपलब्ध माल के स्टॉक का पैकिंग करना।

(x) आवश्यकता पड़ने पर व्यापारियों को माल उपलब्ध कराना।

(xi) अपने संस्था के माल की दिखावट एवं सजावट सम्बन्धी सलाह देना।

(ब) विवरण विक्रयकर्त्ता (Detail Salesmen)—इन विक्रयकर्त्ताओं का मुख्य कार्य प्रत्यक्ष रूप से माल का आर्डर प्राप्त करना नहीं होता है बल्कि प्रति … माल को प्रचलित करना होता है। इस प्रकार के … औषधि उद्योग में ही पाये जाते हैं। उदाहरणार्थ, एक औषधि … अपनी औषधि दिखाता है, और डाक्टर के पास नमूने … औषधि के … में सभी बातें भी बताता है। डाक्टर औषधि से प्रभावित होकर … मरीजों को … की सलाह देता है। इस प्रकार … ने प्रत्यक्ष रूप से औषधि का विक्रय नहीं किया है, परन्तु डाक्टर के … मरीज को वह औषधि लिखी है और मरीज बाजार से … क्रय करता है, तब विक्रय बढ़ता है। स्पष्ट है अप्रत्यक्ष रूप से … विक्रय … है। इस प्रकार के विक्रयकर्त्ताओं को तकनीकी भाषा में … विक्रयकर्त्ता कहते हैं।

एक … विक्रयकर्त्ता को अपने माल के बारे में पूरी जानकारी होनी चाहिए। … होना चाहिए एवं … रहन सहन एवं वार्तालाप का स्तर भी उच्च होना चाहिए।

(स) प्रचार करने वाले विक्रयकर्त्ता (Missionary Salesmen)—इस प्रकार के विक्रयकर्त्ता प्रायः उन निर्माताओं द्वारा नियुक्त किये जाते हैं, जो अपने उत्पादन को सीधे उपभोक्ताओं को नहीं बेचते हैं बल्कि निर्माताओं को उनके कच्चे माल के रूप में बेचते हैं। इन निर्माताओं की मुख्य समस्या यह होती है कि उनका व्यवसाय तब तक नहीं बढ़ पाता, जब तक कि दूसरे निर्माता इनके माल को कच्चे माल के रूप में खरीदने को तैयार न हों। अतः ये निर्माता अपने विक्रयकर्त्ता को बाजार में इस उद्देश्य से भेजते हैं कि वह अपने माल के नये-नये उपयोग तथा बाजार खोज सके। इस प्रकार के विक्रयकर्त्ताओं को ही प्रचार करने वाले विक्रयकर्त्ता कहते हैं।

थोक व्यापारी के विक्रयकर्त्ता
(Wholesaler's Salesmen)

थोक व्यापारी निर्माता व फुटकर व्यापारी के बीच की कड़ी है। इसके द्वारा नियुक्त विक्रयकर्त्ता थोक व्यापारी के विक्रयकर्त्ता कहलाते हैं। इस प्रकार के विक्रयकर्त्ताओं को मुख्य निम्न बातें ध्यान में रखनी चाहिए—

(i) निरन्तर फुटकर व्यापारियों से भेंट करते रहना चाहिए।

(ii) यह ध्यान करते रहना चाहिये कि फुटकर व्यापारियों के पास पर्याप्त मात्रा में माल उपलब्ध है अथवा नहीं।

(iii) यदि उनके पास पर्याप्त मात्रा में माल उपलब्ध नहीं है तो उन्हें यथा समय माल उपलब्ध कराना चाहिये।

(iv) ग्राहकों में उचित एवं समानता का व्यवहार करना चाहिए।

(v) अपने ग्राहकों म मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास करना चाहिये।

थोक व्यापारियों के विक्रयकर्ताओं को भी दो भागों में बाँटा जा सकता है। प्रथम, आन्तरिक विक्रयकर्ता, तथा द्वितीय भ्रमणशील विक्रयकर्ता। आन्तरिक विक्रयकर्ता संस्था के कार्यालय पर ही रहकर आने वाले ग्राहकों को माल का विक्रय करते हैं, जबकि भ्रमणशील विक्रयकर्ता विभिन्न स्थानों पर फैले फुटकर व्यापारियों से क्रयादेश प्राप्त करके लाते हैं।

फुटकर विक्रयकर्त्ता
(Retail Salesmen)

फुटकर विक्रयकर्ता के प्रमुख दो प्रकार हैं—

(अ) आन्तरिक अथवा स्टोर विक्रयकर्ता (Internal or Store Salesmen)

(ब) बाह्य विक्रयकर्ता (External or Outdoor Salesmen)

(अ) आन्तरिक अथवा स्टोर विक्रयकर्त्ता (Internal or Store Salesmen) इस वर्ग के अन्तर्गत वे विक्रयकर्त्ता आते हैं, जो दुकान पर बैठकर ही माल का विक्रय करते हैं। इन्हें 'काउन्टर (Counter) विक्रयकर्ता भी कहते हैं। इन्हें दिन भर ग्राहकों से वार्तालाप करना पड़ता है। अतः थकावट आना स्वाभाविक ही है। परन्तु कुशल विक्रयकर्त्ता थकावट को प्रकट नहीं होने देते हैं। इन विक्रयकर्ताओं का प्रमुख कार्य दुकान पर आने वाले ग्राहकों को माल दिखाकर माल का विक्रय करना होता है। इनको दुकान पर निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए —

(i) दुकान पर आने वाले प्रत्येक ग्राहक की बात ध्यानपूर्वक सुननी चाहिये।

(ii) ग्राहक की आवश्यकता की वस्तु को समझकर वही वस्तु दिखानी चाहिये।

(iii) तत्पश्चात् कुछ अन्य वस्तुएँ जो ग्राहक की रुचि एवं स्तर की हो दिखानी चाहिए।

(iv) ग्राहक को वस्तु दिखाने से पूर्व विक्रयकर्ता को उस वस्तु के गुण किस्म, विशेषताएँ व मूल्य आदि का ज्ञान होना चाहिए।

(v) यदि ग्राहक माल क्रय न करे तो भी उसे सहर्ष विदा करना चाहिए।

(ब) बाह्य फुटकर विक्रयकर्त्ता (External or Outdoor Retail Salesmen)—ये विक्रयकर्त्ता घर घर घूमकर माल का विक्रय करते हैं। ये ऐसी वस्तुओं का विक्रय करते हैं, जो दिन प्रतिदिन के उपयोग की तथा बार बार क्रय की जाने वाली होती हैं। इन विक्रयकर्ताओं की नियुक्ति वे ही फुटकर व्यापारी करते हैं जिनका

व्यापार काफी विस्तृत होता है। इन विक्रयकर्त्ताओं को निम्न बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिये—

(i) ग्राहकों या सम्भावित ग्राहकों के द्वार पर पहुँच कर उनको सर्वप्रथम अभिवादन करते हुए अपना परिचय देना चाहिये।

(ii) तत्पश्चात् अपने पास उपलब्ध माल के बारे में बताना चाहिये।

(iii) माल का क्रय करने के लिए कुशल विक्रयकला का प्रयोग करना चाहिये।

(iv) अन्त में, ग्राहकों को उनका समय लिया, उसके लिए धन्यवाद देना चाहिये।

विशिष्ट विक्रयकर्त्ता
(Specialty Saelsmen)

विशिष्ट विक्रयकर्त्ता वह विक्रयकर्त्ता है, जो कोई विशिष्ट प्रकार की वस्तु बेचता है। ये वस्तुएँ प्रायः असाधारण कीमती एवं टिकाऊ होती हैं, और ये वस्तुएँ लोगों द्वारा कभी कभी ही क्रय की जाती हैं। ये विक्रयकर्त्ता प्रायः घूम घूम कर घरेलू एवं कार्यालय अथवा फैक्टरी में सदा काम उपयोग की वस्तुओं का विक्रय करते हैं।

विक्रयकर्त्ताओं में चतुरता, वाक्‌पटुता, व्यवहार-कुशलता के गुण पर्याप्त मात्रा में होने चाहिये। विशिष्ट विक्रयकर्त्ताओं को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है —

(अ) उपभोक्ता माल विशिष्ट विक्रयकर्त्ता (Consumer Goods Specialty Salesmen)

(ब) कारखाना व कार्यालय माल विशिष्ट विक्रयकर्त्ता (Factory and Office Goods Specialty Salesmen)

(स) विक्रय अभियन्ता (Sales Engineers)

(अ) उपभोक्ता माल विशिष्ट विक्रयकर्त्ता (Consumer Goods Specialty Salesmen)—ये विक्रयकर्त्ता मुख्यतः मोटो मोबाइल्स रेडियो एल्युमिनियम का सामान, होजरी का सामान, पुस्तक, शीतागार (Refrigerators), धुलाई की मशीनें (Washing Machines) आदि वस्तुओं का विक्रय करते हैं। प्रायः ये विक्रयकर्त्ता घर घर जाकर ही माल का विक्रय करते हैं परन्तु शीतागार जैसे भारी माल का विक्रय घर घर ले जाकर करना सम्भव नहीं होता है। इसलिए विक्रयकर्त्ता ग्राहकों से घर घर जाकर इसके विक्रय के लिए बातचीत करते हैं। माडल के आधार एवं इनका प्रयोग दुकान पर ही दिखाया जाता है, और अन्तिम विक्रय का कार्य दुकान पर ही होता है।

प्रत्येक विक्रयकर्त्ता का कार्य भिन्न प्रकार का होता है। अतः विक्रय प्रयासों में अन्तर पड़ जाता है। किसी वस्तु का विक्रय आसानी से ही हो जाता है तो किसी वस्तु का विक्रय कठिनाई से होता है। जिस वस्तु का विक्रय कठिनाई से होता है, उसके लिए विक्रयकर्त्ता को पारिश्रमिक भी अधिक मिलता है। कई वस्तुओं के विक्रय

मे भी विक्रयकर्त्ता को काफी परिश्रम करना पडता है। ग्राहको मे प्रभावशाली माग उत्पन्न करने के लिए अनेक प्रयास करने पडते हैं। अत नई वस्तुओ के विक्रय-कर्त्ताओ को भी पारिश्रमिक अधिक मिलता है। उपभोक्ता माल विशिष्ट विक्रय कर्त्ताओ को विक्रयकला मे पूर्णत दक्ष होना चाहिये। उनमे वे सभी गुण होने चाहिये, जो एक सफल विक्रयकर्त्ताओ मे होना आवश्यक है।

(ब) **कारखाना व कार्यालय माल विशिष्ट विक्रयकर्त्ता** (Factory and Office Goods Specialty Salesmen)—ये विक्रयकर्त्ता कारखाना एव कार्यालय सम्बन्धी वस्तुओ का विक्रय करते हैं। ये वस्तुये जैसे, आफिस फर्नीचर, टाइपराइटर, गणक मशीन (Counting machine), हिसाब मशीन (Accounting machine) एव कारखाने सम्बन्धी मशीनें होती हैं। इस प्रकार के विक्रयकर्त्ताओ को निम्न बातो का ज्ञान होना चाहिये —

(i) माल सम्बन्धी तकनीकी ज्ञान होना चाहिये।

(ii) उत्पादकों को सलाह देने की क्षमता होनी चाहिये।

(iii) तकनीकी बातो का स्पष्टीकरण करने की क्षमता होनी चाहिए।

(iv) अपने ग्राहकों की समस्याओ को हल करने मे समर्थ होना चाहिए।

(स) **विक्रय अभियन्ता** (Sales Engineer)—विक्रय अभियन्ता वह विक्रय-कर्त्ता होता है, जो तकनीकी वस्तुओ (Technical Product) का विक्रय करता है। इसको तकनीकी ज्ञान होता है। वह अपने तकनीकी ज्ञान से ही अपने ग्राहको को माल क्रय करने के लिए प्रेरित करता है। ये विक्रयकर्त्ता प्राय निर्माताओ द्वारा नियुक्त किये जाते हैं। कभी-कभी ये विक्रयकर्त्ता बिना तकनीकी ज्ञान वाले विक्रय-कर्त्ताओ के साथ होकर तकनीकी माल के विक्रय मे सहायता पहुँचाते हैं —

निर्यातको के विक्रयकर्त्ता
(Exporters Salesmen)

निर्यात विक्रयकर्त्ता वह विक्रयकर्त्ता होता है, जो एक देश की सस्था का माल दूसरे देश अथवा देशो मे जाकर बेचता है। ये विक्रयकर्त्ता काफी कुशल एव अनुभवी होते हैं। इन विक्रयकर्त्ताओं को निम्न बातो का विशेष ज्ञान होना चाहिए —

(i) यातायात एव आयात निर्यात सम्बन्धी नियमो का ज्ञान होना चाहिये।

(ii) उस देश की व्यावसायिक एव राजनीतिक स्थिति का ज्ञान होना चाहिये।

(iii) विक्रयकर्त्ता मे निर्णय क्षमता होनी चाहिये।

(iv) उस देश की मुद्रा का ज्ञान होना चाहिए।

(v) उस देश की भाषा का पूर्ण ज्ञान होना चाहिये।

निर्यातक विक्रयकर्त्ताओ को उस देश मे स्थित अपनी सस्था के माल के व्यापारियो की समस्याओ का निवारण करना चाहिये। उन्हे माल की नियमित

सप्लाई करते रहना चाहिये। उसे अपने व्यापारियों को माल के सम्बन्ध में आवश्यक सूचनाएँ देनी चाहिये।

कार्य क्षेत्र के आधार पर विक्रयकर्त्ताओं के प्रकार

(Types of Salesmen on the basis of Field of Operation)

कार्य क्षेत्र के आधार पर भी विक्रयकर्त्ताओं का वर्गीकरण किया जा सकता है। कार्य क्षेत्र के आधार पर विक्रयकर्त्ता दो प्रकार के हो सकते हैं —

(i) आन्तरिक विक्रयकर्त्ता (Indoor Salesmen), तथा

(ii) भ्रमणशील विक्रयकर्त्ता (Travelling Salesmen)

आन्तरिक विक्रयकर्त्ता (Indoor Salesmen)—आन्तरिक विक्रयकर्त्ता वे विक्रयकर्त्ता होते हैं, जो अपने व्यापार-गृह पर ही रहते है, और व्यापार गृह पर पहुँचने वाले ग्राहकों या सम्भाव्य ग्राहकों से व्यवहार करते हैं। ये विक्रयकर्त्ता काउण्टर विक्रयकला, रचनात्मक विक्रयकला तथा प्रतिस्पर्द्धी विक्रयकला का आवश्यकतानुसार प्रयोग करते हैं। इन विक्रयकर्त्ताओं में पर्याप्त धैर्य होना चाहिये क्योंकि व्यापार गृह पर विभिन्न प्रकृति के लोग आते है, और उनके साथ अलग अलग तरीकों से व्यवहार करना पड़ता है।

आन्तरिक विक्रयकर्त्ता को वस्तुओं के सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान होने के साथ साथ इस बात का भी ध्यान होना चाहिये कि वस्तुएँ कहाँ रखी हुई हैं। सामान्य ग्राहक के व्यापार-गृह पर पहुँचते ही उसकी आवश्यकता की वस्तु तत्काल निकाल देनी चाहिये। यदि वस्तुओं के ढूँढने में ही अनावश्यक समय लगा दिया, तो सम्भाव्य ग्राहक झुंझला उठेगा और उसे ग्राहक के रूप में परिवर्तित करना कठिन हो जावेगा। ऐसे विक्रयकर्त्ताओं में वे सभी गुण होने चाहियें, जो अच्छे विक्रयकर्त्ताओं के लिए अपरिहार्य माने जाते हैं। *ऐसे विक्रयकर्त्ता सामान्यतः फुटकर व्यापार करने* वाली संस्थाओं द्वारा ही नियुक्त किये जाते हैं।

भ्रमणशील विक्रयकर्त्ता (Travelling Salesmen)—भ्रमणशील विक्रयकर्त्ता अपनी संस्था की वस्तुओं का विभिन्न स्थानों पर घूम-घूम कर विक्रय करते है। भ्रमणशील विक्रयकर्त्ताओं को आजकल विक्रय प्रतिनिधि, फील्ड विक्रयकर्त्ता, आदि कई नामों से पुकारा जाने लगा है। ऐसे विक्रयकर्त्ता प्रायः उत्पादकों, थोक व्यापारियों द्वारा अपने माल के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष विक्रय के लिए नियुक्त किये जाते है।

भ्रमणशील विक्रयकर्त्ता उपभोक्ता माल (Consumer goods) तथा औद्योगिक माल (Industrial goods) के हो सकते हैं। जो प्रत्यक्ष रूप से उपभोक्ता माल का विक्रय करते हैं, उन्हें उपभोक्ता माल विक्रयकर्त्ता कहते हैं। कूकर, सिलाई मशीनें, रेफ्रीजरेटर, टेपरिकार्डर आदि-आदि वस्तुओं का विक्रय करने वाले विक्रयकर्त्ता इसी श्रेणी में आते हैं। दूसरी ओर, उद्योगों एवं व्यापारिक प्रतिष्ठानों में काम आने वाले कच्चे माल, मशीनों आदि का विक्रय करने वाले औद्योगिक माल विक्रयकर्त्ता होते हैं।

ऐसे विक्रयकर्त्ता अपने साथ माल लेकर नही घूमते हैं, बल्कि अपने पास माल के नमूने तथा मूल्य सूचियां रखते है। आजकल कुछ सस्थाम्रो के विक्रयकर्त्ताम्रो के पास माल की स्लाइडें तथा फिल्मे भी होती हैं, जिन्हे छोटे प्रोजेक्टर पर सम्भावित ग्राहको को दिखाकर उन्हे माल के सम्बन्ध मे विस्तृत रूप से बताया जाता है।

भ्रमणशील विक्रयकर्ताम्रो मे एक अच्छे विक्रयकर्त्ता के सभी आवश्यक गुणो के अतिरिक्त निम्न गुण होने चाहिये —

1 जिस क्षेत्र मे भ्रमण करना है, उस क्षेत्र का पूरा ज्ञान होना चाहिये।

2 उस क्षेत्र मे लागू होने वाले क्रय-विक्रय सम्बन्धी नियमो का पूरा-पूरा ज्ञान होना चाहिये।

3 उस क्षेत्र की भाषा, रीति रिवाजो एव आदतो का ज्ञान होना चाहिये।

4. माल की पूर्ति की स्थिति से अवगत रहना चाहिये।

5 अपने दैनिक कार्यक्रमो मे समय की पाबन्दी का विशेष ध्यान रखना चाहिये।

6 सम्भाव्य ग्राहक से उसके द्वारा निश्चित किये गये समय पर ही मिलना चाहिये तथा एक निश्चित समय में ही अपनी बात समाप्त कर देनी चाहिए।

7 ऐसे विक्रयकर्त्ताम्रो मे उच्च किस्म की निर्णय क्षमता भी होनी चाहिये।

8 विदेश मे भ्रमण करते समय विदेशी मुद्रा तथा विदेशी भाषा का ज्ञान भी होना चाहिय।

9 अपने कार्य क्षेत्र के बारे मे स्पष्ट ज्ञान होना चाहिये।

10 अपने दैनिक कार्य की रिपोर्ट लिखने की कला मे कुशल होना चाहिये। चाहिये।

विक्रयकर्त्ताम्रो के कार्य

(Function of Salesmen)

विक्रयकर्त्ताम्रो को माल के विक्रय की प्रक्रिया मे कई कार्य करने पड़ते ह। उनमे से कुछ प्रमुख कार्य निम्न प्रकार हैं —

1 काउन्टर सजाना या विक्रय साहित्य तैयार रखना—विक्रयकर्त्ताम्रो का यह प्रथम एव अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य है। यदि विक्रयकर्ता किसी व्यापार-गृह पर रहकर ही विक्रय कार्य करता है, तो उसे अपने काउन्टर को भली प्रकार आकर्षक रूप से सजा लेना चाहिये, जिससे राह चलते राहगीर को भी माल के क्रय के लिए आकर्षित किया जा सके। दूसरी ओर, यदि विक्रयकर्त्ता भ्रमणशील है, तो उसे अपने सम्भावित ग्राहको से भेंट करने से पूर्व आवश्यक विक्रय साहित्य यथा, मूल्य सूचियाँ, नमूने, केटलॉग, आदि अपने पास रख लेने चाहिये, जिसमे आवश्यकता पड़ने पर उनको दिया या दिखाया जा सके।

2. मूल्य सूची सरना—व्यापार-गृह पर रहकर विक्रय कार्य करने वाले विक्रयकर्त्ता का यह दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य है। प्रत्येक विक्रयकर्ता को अपने व्यापार-

गृह पर इसी मूल्य सूची में प्रतिदिन आवश्यक परिवर्तन कर लेने चाहिये। आवश्यक आवश्यकता की वस्तुओं में व्यापार करने वाली संस्थाओं के लिए मूल्य सूची टांगना अब वैधानिक रूप से अनिवार्य है। अतएव विक्रयकर्ताओं का अब यह एक महत्त्वपूर्ण कार्य हो गया है। भ्रमणशील विक्रयकर्त्ताओं को भी अपने अधिकारियों से प्राप्त निर्देशों के अनुसार मूल्य सूचियों में परिवर्तन कर लेना चाहिये।

3 स्टॉक की देखभाल एवं लेखा जोखा—छोटी व्यापारिक संस्थाओं के विक्रयकर्ताओं को यह भी काय करना पड़ता है। विक्रयकर्त्ताओं को प्रतिदिन का स्टॉक रजिस्टर तैयार करना पड़ता है।

4 सम्भाव्य ग्राहकों का आदर करना—यह एक महत्त्वपूर्ण कार्य है, जिसे प्रत्येक प्रकार की संस्था का प्रत्येक प्रकार का विक्रयकर्ता करता है। व्यापार गृह पर ... विक्रय करने वाला विक्रयकर्ता ग्राहकों का आदर के साथ अन्दर आने का आग्रह करता है जो भ्रमणशील विक्रेता जिससे भेंट करता है उनके प्रति विनम्रता के साथ समय के लिए कृतज्ञता प्रकट करता है। यह आवश्यक भी है। व्यवसाय परस्पर आदर एवं विनम्रता से ही बढ़ सकता है। ग्राहक के रूष्ट होने पर भी विक्रयकर्ता को उस आदर सूचक शब्द न ही सम्बोधित करना चाहिये।

5 आवश्यकता की वस्तु की पूछताछ—विक्रयकर्त्ताओं को ग्राहकों की आवश्यकता की वस्तुओं के बारे में पूछताछ करनी चाहिये। यदि ग्राहक अपनी आवश्यकता की वस्तु का उचित विवरण न दे सके, तो विक्रयकर्त्ताओं को सम्भाव्य ग्राहक की वस्तुओं का मनोविज्ञान एवं अनुभव के आधार पर पता लगाना चाहिये।

6. माल की जानकारी रखना—विक्रयकर्त्ताओं के लिए यह कार्य अत्यधिक महत्त्व का है किन्तु सामान्यतः कई फुटकर विक्रयकर्ता इस बात पर ज्यादा ध्यान नहीं देते। ... विक्रयकर्ता को अपने द्वारा बेचे जाने वाले माल में प्रयुक्त कच्चे माल, निर्मित करने वाली संस्था, वस्तु के प्रयोग के अभाव उसकी स्थानापन्न (Substitutes) वस्तुएँ आदि का पूरा ज्ञान होना चाहिए। इसके अतिरिक्त अपने पास उपलब्ध माल की मात्रा का भी ज्ञान होना चाहिये।

7 ग्राहक की आपत्तियों एवं शिकायतों का उचित उत्तर—अच्छे विक्रयकर्त्ता अपने ग्राहकों की कठिनाइयों, आपत्तियों एवं शिकायतों को बड़े ही ध्यानपूर्वक सुनते हैं और उनका उचित उत्तर देते हैं। विक्रयकर्त्ताओं को ग्राहक की आपत्तियों एवं शिकायतों के उत्तर बहुत ही स्पष्ट रूप से देने चाहिये। इस सम्बन्ध में इस *सिद्धान्त का सामान्यतः पालन कर लेना चाहिए, कि ग्राहक सदैव सही है।* किन्तु इस सिद्धान्त के पालन में भी पूर्ण विवेक से काम लेना चाहिये। आपत्तियों एवं शिकायतों का उचित हल होने पर ग्राहक सन्तुष्ट हो जाता है तथा वह सदैव के लिये स्थाई ग्राहक बन जाता है।

8. ग्राहक को क्रय में सहायता—कई बार ग्राहक अपनी आवश्यकता की वस्तु के चुनाव में कठिनाई अनुभव करते हैं। जब एक ही वस्तु विभिन्न ब्राण्डों एवं

संस्थाओं द्वारा निर्मित होती है, तो ग्राहक के लिए क्रय का निर्णय करना एक समस्या हो जाती है। अच्छे विक्रयकर्त्ताओं का कर्त्तव्य है कि वे अपने ग्राहकों के क्रय में सहायता प्रदान करें तथा उनके धन के सदुपयोग में सहयोग दें।

9. ग्राहकों को वस्तुओं के विभिन्न प्रयोगों से अवगत कराना—अच्छे विक्रयकर्त्ताओं का यह भी एक कर्त्तव्य है, कि वे अपने ग्राहकों को एक वस्तु के विभिन्न प्रयोगों से भी अवगत करें।

10 'विक्रय-पश्चात् सेवा' करना—विक्रयकर्त्ताओं का यह कर्त्तव्य है कि वे ग्राहकों को माल का विक्रय करने के बाद भी आवश्यक सेवा उपलब्ध करें। कई बार ग्राहक विशेषकर गाँव में रहने वाले ग्राहक कई आधुनिक यन्त्र इसलिए नहीं खरीद पाते हैं, कि उन्हें मरम्मत की सुविधा उपलब्ध नहीं है। अतः मरम्मत की सुविधा तथा अन्य 'विक्रय पश्चात् सेवाएँ' प्रदान करके ग्राहकों के जीवन-स्तर को ऊँचा उठा सकते हैं।

अभ्यास के लिए प्रश्न

1 विक्रयकर्त्ताओं के वर्गीकरण के कौन कौन से आधार हैं ?
What are the bases of classification of salesmen ?

2 निर्माताओं के विक्रयकर्त्ताओं का वर्गीकरण कीजिये तथा उनके कार्य बताइये।
Classify manufacturer s salesmen and discuss their functions

३ कार्य क्षेत्र के आधार पर कितने प्रकार के विक्रयकर्त्ता होते हैं ? उनके कार्यों का वर्णन कीजिये।
What are the types of salesmen on the basis of their area of work ? Discuss their functions

4 विक्रयकर्त्ताओं के सामान्य कार्यों का वर्णन कीजिये।
Discuss general functions of salesmen

4

विक्रयकर्ताओं का चुनाव
(Selection of Salesman)

"The Successful salesman is still the hardest man to spot by either interviews or any other hiring technique,"

—Fortune magazine.

वर्तमान युग में व्यवसाय प्रगति के पथ पर अग्रसर हो रहा है। चारों ओर विकास ही विकास की चर्चा सुन रही है। विकासशील राष्ट्र भी उद्योग धन्धों एवं व्यापार का विकास कर अपने राष्ट्र के उत्थान में लगे हुए हैं। वे अधिकाधिक बड़े-बड़े व्यावसायिक संगठनों की स्थापना कर रहे हैं। इनके लिए विक्रयकर्ता अपरिहार्य हैं। प्रत्येक संस्था में विक्रयकर्ताओं की आवश्यकता बढ़ती ही जा रही है। विक्रयकर्ता इस समस्त व्यावसायिक विकास की धुरी हैं। अतएव विक्रयकर्ताओं का सही-सही एवं उचित प्रकार से चुनाव करना विक्रय प्रबन्धकों के समक्ष एक महत्वपूर्ण चुनौती है। भारत जैसे देश के लिए जहाँ पर पंचवर्षीय योजनाओं तथा बीस सूत्री आर्थिक कार्यक्रम द्वारा आर्थिक क्रान्ति का बीड़ा उठाया गया है तथा कार्य कुशलता को प्रगति का मूलमन्त्र माना गया है, कुशल विक्रयकर्ताओं के उचित प्रकार से चुनाव का महत्त्व और भी बढ़ जाता है।

चुनाव की परिभाषा एवं अर्थ
(Definition and Meaning)

डेल योडर (Dale Yoder) के अनुसार 'चुनाव वह प्रक्रिया है जिसमें नियुक्ति के प्रार्थियों को दो श्रेणियों में विभक्त किया जाता है—वे जिन्हें नियुक्ति का प्रस्ताव करना है और वे जिन्हें नियुक्ति का प्रस्ताव नहीं करना है।[1]

भर्ती के द्वारा विभिन्न स्रोतों से अच्छे प्रार्थियों की खोज की जाती है। चुनाव में उन प्रार्थियों को छाँटा जाता है। दूसरे शब्दों में, चुनाव का आशय विभिन्न प्रार्थियों में से कुछ योग्य एवं संस्था की आवश्यकतानुसार प्रार्थियों को छाँटना है एवं नियुक्त करना है।

---

1. Selection is the process in which candidates for employment are divided into two classes—those who are to be offered employment and those who are not. Dale Yoder, Personnel Management and Industrial Relations, p. 322.

चुनाव की आवश्यकता
(Need for Selection)

एक सस्था मे विक्रयकर्ताओं के चुनाव की आवश्यकता कई कारणो से हो सकती है। वर्तमान मे कार्यरत विक्रयकर्ता सस्था को छोडकर चले जाते हैं या सस्था को और अधिक विक्रयकर्ताओं की आवश्यकता पडती है, तो विक्रयकर्ताओं का चुनाव करना पडता है। इस प्रकार सामान्यत विक्रयकर्ताओं के चुनाव की आवश्यकता निम्न कारणो से पडती है -

1. विक्रयकर्ताओं का आवर्तन (*Salesman's Turn-over*)—*यह एक* सामान्य सत्य है कि प्रत्येक सस्था मे विक्रयकर्ताओं का आना एव जाना बना रहता है। कभी कभी विक्रयकर्ता स्वय उस सस्था को छोडकर जाना चाहते है, तो कभी *उनको सस्था से निकाल भी दिया जाता है। जब विक्रयकर्ताओं को दूसरी सस्थाओ मे अच्छा पद या अधिक वेतन प्राप्त हो जाता है या वे कार्य करने मे शारीरिक रूप* से अशक्त हो जाते हैं तो वे स्वत. उस सस्था को छोडकर चले जाते है। कभी-कभी *विक्रयकर्ता स्वय अपना व्यवसाय प्रारम्भ कर लेते हैं। ऐसी स्थिति मे भी उन्हे उस* सस्था को छोडना पडता है। इसके अतिरिक्त कभी-कभी एक सस्था स्वय अपने विक्रयकर्ताओं को निकाल देती है। इसके कई कारण हो सकते हैं। जब कोई *विक्रयकर्ता अकुशल हो, वर्तमान तकनीकी आवश्यकता को पूरा करने मे असमर्थ हो* तो सस्था स्वय अपने कर्मचारियो को सेवा मुक्त कर देती है। इन सब परिस्थितियों मे एक सस्था को विक्रयकर्ताओं का चुनाव करना पडता है।

2 सस्था का विकास (Growth of Organisation)—वर्तमान युग मे चहुँ ओर विकास ही विकास की धूम मच रही है। व्यावसायिक सस्थाएँ भी इसमे पीछे नही हैं। वे अपनी वस्तुओ के बाजार को असीमित बनाने के लिए भरसक प्रयत्न कर रही हैं। *अर्थात्, वे अपने बाजार को किसी एक सीमा तक सीमित न* रखकर विश्वव्यापी बनाने का प्रयास कर रही है। ये व्यावसायिक सस्थाएँ नई-नई वस्तुओं का सृजन करके भी अपनी सस्था के आकार को बढाने का प्रयास कर रही हैं। *इन प्रयासो मे विक्रयकर्ताओं की भूमिका निश्चित ही अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बन* रही है। अतएव प्रत्येक सस्था को अपने विकास के अनन्तर ही और अधिक विक्रयकर्ताओं की नियुक्ति करनी पड रही है।

उचित चुनाव के लाभ
(Advantages of Proper Selection)

सस्था मे विक्रयकर्ताओं का चुनाव बहुत ही उचित तरीके से करना चाहिये। उचित चुनाव करके ही 'उचित स्थान पर उचित व्यक्ति' ('Round pegs in round holes and square pegs in square holes') की नियुक्ति की जा सकती है तथा सस्था की कुशलता को बढाया जा सकता है। नाइस्ट्रोम (Nystrom)

के शब्दों मे ',उचित चुनाव विक्रयकर्त्ताओं के आवर्तन को कम करता है, यह विक्रय कर्त्ताओं की पर्याप्त सख्या बनाये रखने मे मदद करता है, यह प्रति व्यक्ति विक्रय मात्रा को बढाता है, तथा सामान्यत यह सम्पूर्ण विक्रय सगठन के मनोबल को बढाता है।'' सामान्यत उचित चुनाव से निम्न लाभ होत हैं —

1 **सीमित आवर्तन** (Limited Turnover)—उचित प्रकार से चुनाव करने का सबसे बडा लाभ यह है कि विक्रयकर्त्ताओं का आवर्तन सीमित रहता है। अत बार बार विक्रयकर्त्ताओं की नियुक्ति नही करनी पडती है।

2 **विक्रयकर्त्ताओं पर कम व्यय** (Decreases Cost of Sales Force)—उचित प्रकार से चुनाव करने का एक लाभ यह होता है कि विक्रयकर्त्ताओं पर कम खच आता है। आवागमन के कम हो जाने पर स्वत ही विक्रयकर्त्ताओं पर किया जाने वाला व्यय कम हो जाता है। एक अध्ययन से यह ज्ञात हुआ है कि औसत रूप से एक विक्रयकर्ता के भर्ती तथा चुनाव करने नियुक्ति करने, तथा सुचारु रूप से काय प्रारम्भ करने से पूव तक निरीक्षण करने का लगभग 7813 डालर खच पडता है। अत स्पष्ट है कि आवर्तन के कम होने से विक्रयकर्त्ताओं पर होने वाले व्यय मे कमी हो जायगी। बार बार नये व्यक्तियों के लिए चुनाव तथा प्रशिक्षण की व्यवस्था भी नही करनी पडेगी।

3 **प्रशिक्षण की कम आवश्यकता** (Little Need for Training)—उचित प्रकार से चुने गये विक्रयकर्त्ताओं को प्रशिक्षण भी कम देना पडता है। इसके अतिरिक्त, उन्हें अपेक्षाकृत कम समय मे ही प्रशिक्षण दिया जा सकता है क्योंकि उचित प्रकार से चुने हुये विक्रयकर्ता सामान्यत चतुर एव पर्याप्त बौद्धिक योग्यता वाले ही होते है।

4 **अधिक विक्रय** (Increases Sales Volume)—अच्छे विक्रयकर्ता तभी प्राप्त किये जा सकते है जबकि उचित प्रकार से चुनाव किया गया हो। जब सस्था मे अच्छे या कुशल विक्रयकर्ता उपलब्ध होते है तो सामान्यत विक्रय तुलनात्मक रूप से अधिक होता है।

5 **विक्रय कर्मचारियों मे मनोबल** (Increases Morale of Sales Personnel)—उचित प्रकार से चुनाव करने पक्षपात न करने तथा योग्यता कुशलता एव अनुभव को पर्याप्त स्थान मिलने से सस्था के विक्रय कर्मचारियों का ही नहीं बल्कि सभी कर्मचारियों का भी मनोबल बढता है।

6 **सस्था की ख्याति मे वृद्धि** (Increses Goodwill of the Institution)- अच्छे विक्रयकर्ता सदैव सस्था की ख्याति मे वृद्धि करते हैं। **नाइस्ट्रोम** (Nystrom) ने उचित ही लिखा है कि **ग्राहक की दृष्टि मे विक्रयकर्ता ही सस्था है। यदि वह अच्छा प्रभाव नहीं डालता है, तो ग्राहकों में सस्था की ख्याति भी अच्छी नही बन सकती है।** (In the eys of the buyer, the salesman is the

company If he makes a poor impression, the company is likely to have a poor reputation with its customers " Nystrom)

7 अच्छे अधिकारियों की प्राप्ति (Availability of Goods Executives)—अनुसंधानो म यह ज्ञात हुआ है कि अधिकाश उच्च अधिकारी पहले विक्रय विभाग मे ही नियुक्त थे। एच बी मेनार्ड (H B Maynard President, Method Engineering Council) के शब्दो मे "56 प्रतिशत मे भी अधिक कम्पनियो के अध्यक्ष या तो विक्रय विभाग से आये है या विक्रय तथा निर्माण विभाग मे सम्मिलित रूप से कार्य करते हुए आय हैं। स्पष्ट है कि विक्रय विभाग उच्च अधिकारी पैदा करने मे सक्षम है। किन्तु यह तभी सम्भव है, जबकि विक्रयकर्त्ताओ का चुनाव उचित प्रकार से हो।

अनुचित चुनाव के दुष्परिणाम
(Bad Effects of Poor Selection)

उचित चुनाव के लाभो को ध्यान मे रखकर हम यह जान सकते हैं कि अनुचित चुनाव के कौन-कौन से दुष्परिणाम हो सकते हैं। फिर भी हम छात्रो की सुविधा के लिए इन दुष्परिणामो को नीचे दे रहे हैं

1 बार बार चुनाव करने एव प्रशिक्षण की व्यवस्था करने मे काफी व्यय लगता है।
2 इसका ग्राहको पर अच्छा प्रभाव नही पडता है। नये-नये विक्रयकर्त्ताओ के आते जाते रहने से सम्भवत प्रत्येक ग्राहक के पास प्रत्येक अगली बार नया विक्रयकर्त्ता पहुँचेगा। प्रत्येक नया विक्रेता ग्राहक की रुचि, आदतो एव व्यवहार के बारे मे जान नही पाता है। अत सस्था के व्यवसाय की गति पर विपरीत प्रभाव पड सकता है।
3 विक्रयकर्त्ताओ के उचित प्रकार से चुनाव न होने से अन्य विभागो के काय मे भी बाधा पहुँचती है।
4 लगातार अकुशल विक्रयकर्त्ता आने से भविष्य मे उच्च पदो पर भी अकुशल व्यक्ति आ सकते हैं क्योंकि इनमें से कुछ की पदोन्नति हो सकती है।
5 संस्था की ख्याति पर विपरीत प्रभाव पडता है।

चुनाव करते समय ध्यान रखने योग्य बातें
(Essentials for Selection)

विक्रयकर्त्ताओ के विधिवत् चयन करने के लिए कुछ बातो पर ध्यान देना परमावश्यक है। सामान्यत चुनाव करते समय निम्नलिखित बातो का ध्यान रखना चाहिये

1 चुनाव कार्य ऐसे महत्त्वपूर्ण एवं उत्तरदायी व्यक्तियों को सौंपा जाना चाहिये जो कि चयन करने में सक्षम हों तथा उच्च मानसिक योग्यता एवं सन्तुलन रखते हों।

2 चुनाव में आन्तरिक या बाह्य किसी भी स्रोत को अनुचित महत्त्व नहीं देना चाहिये।

3 चुनाव में व्यक्ति को महत्त्व न देकर, उसकी योग्यता एवं क्षमता को महत्त्व देना चाहिए।

4 चुनाव में निर्धारित प्रमापों का पर्याप्त पालन करना चाहिये।

5 चुनाव की विधि सरल एवं स्पष्ट होनी चाहिये।

6 अलग अलग पदों के लिए अलग अलग चुनाव विधियाँ अपनानी चाहिये।

7 चुनाव प्रक्रिया के प्रत्येक स्तर को समान महत्त्व का समझना चाहिये।

8 चयन की विधि लोचपूर्ण होनी चाहिये

9 चुनाव में भाई भतीजेवाद या पक्षपात को स्थान नहीं देना चाहिये।

10 चुनाव नीति संस्था की सामान्य नीति के अनुरूप होनी चाहिये।

11 चुनाव करते समय देश समाज एवं व्यवसाय के सामान्य नियमों को ध्यान में रखना चाहिये।

विक्रयकर्त्ताओं का चुनाव कार्य
(Function of Selection of Salesmen)

विक्रयकर्त्ताओं का चुनाव एक सरल कार्य नहीं है। चुनाव करने के लिए कई बातों को निश्चित करना पड़ता है। सामान्यतः विक्रयकर्त्ताओं का चुनाव करते समय निम्न कार्य करने पड़ते हैं —

I विक्रयकर्त्ताओं की प्रकृति (Type) को निर्धारित करना

II विक्रयकर्त्ताओं की संख्या (Number) निर्धारित करना

III विक्रयकर्त्ताओं के स्रोतों को निर्धारित करना

IV चुनाव प्रक्रिया को निर्धारित करना।

अब हम इन चारों कार्यों का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

I विक्रयकर्त्ताओं की प्रकृति का निर्धारण
(Determination of the Nature or Type of Salesmen)

प्रत्येक संस्था को विक्रयकर्त्ताओं का चुनाव करने से पूर्व विक्रयकर्त्ताओं की शारीरिक मानसिक चारित्रिक व्यावसायिक शैक्षणिक योग्यताओं को अवश्य निर्धारित कर लेना चाहिए। विक्रयकर्त्ताओं का चुनाव करते समय इन बातों का ध्यान रखने से संस्था के लिए अनुकूल एवं उपयुक्त विक्रयकर्त्ता प्राप्त किये जा सकते है। यदि इन बातों को पहले से निर्धारित करके चुनाव करते समय ध्यान न रखा जाय, तो संस्था में अकुशल विक्रयकर्त्ता बढ़ जायेंगे। फलस्वरूप विक्रयकर्त्ताओं का आवर्तन (Turn over) बढ़ जायेगा और संस्था का अनावश्यक ही काफी धन एवं

समय व्यर्थ चला जायेगा। इसीलिये नाइस्ट्रोम (Nystrom) ने इस बात पर बल देते हुए लिखा है कि **"सावधानीपूर्वक विक्रयकर्त्ताओं की प्रकृति प्रमाप का निर्धारण करना, विक्रय कर्मचारियों के कुशलतापूर्वक चुनाव की पहली शर्त है।"** (Carefully pre-determined standards are prerequiste to the effecient selection of sales personnel—Nystrom) किन्तु विक्रयकर्त्ताओं की प्रकृति को सही सही निर्धारित करना एक सरल कार्य नहीं है। प्रत्येक संस्था को इस कार्य को पूरा करने के लिए दो कार्य करने पड़ते हैं (अ) कार्य विश्लेषण, तथा (ब) वर्तमान विक्रयकर्त्ताओं का पुनरावलोकन।

(अ) कार्य विश्लेषण (Job Analysis)

कार्य विश्लेषण विक्रय प्रबन्धक का एक महत्त्वपूर्ण औजार है, जिसके द्वारा विक्रय प्रबन्धक यह ज्ञात करता है, कि अमुक विक्रयकर्त्ता को कौन कौन से कार्य किन किन परिस्थितियों में करने होंगे तथा इन कार्यों को पूरा करने के लिए उसमें *किन किन योग्यताओं का होना आवश्यक है।* दूसरे शब्दों में, *कार्य विश्लेषण करने* के लिए निम्न क्रियाएँ पूरी करनी पड़ती हैं (क) कार्य विवरण, तथा (ख) व्यक्ति विशिष्ट विवरण।

(क) कार्य विवरण (Job Description)—विक्रयकर्त्ताओं की प्रकृति का निर्धारण तभी किया जा सकता है, जबकि उचित प्रकार से कार्य विवरण तैयार कर लिया जाय। कार्य विवरण एक ऐसा विवरण है, जिसमें सामान्यतः इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया जाता है कि एक विक्रयकर्त्ता को क्या-क्या कार्य करने हैं। एक विद्वान लेखक का मत है कि कार्य विवरण में दो प्रकार की सूचनाएँ अवश्य होनी चाहिए। प्रथम तकनीकी आवश्यकताएँ तथा द्वितीय कार्य दशाएँ।

कार्य की तकनीकी आवश्यकताओं के सम्बन्ध में निम्न बातें ज्ञात की जानी चाहिये

(i) एक विक्रयकर्त्ता को अपनी वस्तुओं, सेवाओं आदि के बारे में किन-किन बातों की जानकारी होनी चाहिए, जिससे कि वह अपना कार्य भली प्रकार पूरा कर सके, तथा (ii) एक विक्रयकर्त्ता को कार्य प्रदर्शन करने तथा ग्राहकों के प्रश्नों का उत्तर देने के लिए किन किन बातों की जानकारी होनी चाहिए।

कार्य विवरण तैयार करते समय दूसरी सूचना *कार्य दशाओं के सम्बन्ध में* प्राप्त की जानी चाहिये। यह बात सत्य है कि सामान्यतः विक्रयकर्त्ताओं का कार्य विक्रय करना ही होता है, किन्तु प्रत्येक संस्था की बाजार स्थिति, प्रतिस्पर्द्धात्मक स्थिति अलग अलग होती हैं। इसी प्रकार लम्बे समय से चल रही वस्तु तथा नई वस्तु के विक्रय की भी अलग स्थितियाँ होती हैं। अतः कार्य विवरण तैयार करते समय उन दशाओं पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाना चाहिए। सामान्यतः कार्य दशाओं के सम्बन्ध में अग्रलिखित सूचनाएँ प्राप्त की जानी चाहिये :

(i) वस्तु की स्थानीयता एव अस्थानीयता की मात्रा ।

( ) विक्रयकाय एक सामान्य एव सरल प्रकृति का है या सृजनात्मक तथा कल्पनाशील प्रकृति का ।

(i) वस्तु की विक्रय की जाने वाली सामान्य मात्रा ।

(v) वस्तु के विक्रय म आने वाली बाधाए ।

( ) वस्तु के विक्रय की सम्भावनाए

( ) विक्रय सगठन म उसका स्थान तथा अधिकारियो एव अन्य कमचारियो म सम्बन्ध ।

(v) पारिश्रमिक की विधि ।

(v) विक्रय काय म यात्रा की आवश्यकता ।

(x) स्थानान्तरण एव पदोन्नति आदि ।

(ग) व्यक्ति विशिष्ट विवरण (Man Specification)—जब काय विवरण तयार करके यह ज्ञात कर लिया जाता है कि किसी अमुक पद पर काय करने वाले विक्रयकर्त्ता को कौन-कौन से काय किन किन परिस्थितियों म करने हैं—तब विक्रय प्रबन्धक एव व्यक्ति विशिष्ट विवरण तयार करता है। इस विवरण म उन योग्यताओ का उल्लेख किया जाता जिनका होना काय विवरण म बताये गये कार्यों को पूरा करने के लिए आवश्यक होता है सामान्यत व्यक्ति विशिष्ट विवरण म निम्न सूचनाए दी जाती हैं

(i) शारीरिक स्वास्थ्य मुख्य मधुरवाणी आकषण आदि आदि ।

( ) मानसिक उचित तथा मानसिक सन्तुलन प्रशिक्षित सतकता इत्यादि ।

( ) व्यक्तिगत परिचय एव सामान्य उत्साह वक चातुर्य बात प्रस्तुत करने की क्षमता आदि ।

( ) काय अनुभव ।

(v) अधिकारो एव दायित्वो को वहन करने की क्षमता ।

(vi) वातावरण सामाजिक सगठनो म सदस्यता वैवाहिक स्थिति निर्भर व्यक्ति आदि ।

(v i) भावात्मक गुण

इस प्रकार इन दोनो विवरणो की सहायता से काय निरूपण पूरा किया जाता है तथा यह तय कर लिया जाता है कि सस्था म किन किन योग्यताओ वाले व्यक्तियो की आवश्यकता है ।

(ब) वतमान विक्रयकर्त्ताओ का पुनरावलोकन
(Review of the Present Salesmen)

विक्रयकर्त्ताओ की प्रकृति को निर्धारित करने के लिए वतमान विक्रयकर्त्ताओ का पुनरावलोकन भी किया जाता है तथा उनके बारे में अग्रांकित तथ्यो की जानकारी की जा सकती है

(i) वे किस प्रकार की प्रवृत्ति के कारण अपने कार्य में सफल या असफल रहे हैं ?

(ii) वे किस प्रकार की रुचि वाले हैं ?

(iii) उनकी शिक्षा का स्तर कैसा है ?

(iv) वे किस प्रकार के पारिवारिक वातावरण मे पले है, आदि-आदि ।

वर्तमान विक्रयकर्त्ताओ के सम्बन्ध मे इन प्रश्नो का उत्तर कार्यालय मे उनके गोपनीय अभिलेखों, व्यक्तिगत फाइलो आदि से प्राप्त किया जा सकता है । उनकी वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट (Annual Confidential Report) का भी इस सम्बन्ध मे अध्ययन किया जा सकता है । इन अभिलेखो की सहायता से यह ज्ञात किया जा सकता है कि भविष्य मे किस प्रकार की पारिवारिक परिस्थितियों, शिक्षा, अनुभव रुचियो वाले व्यक्ति किसी अमुक प्रकार के विक्रय कार्य को अधिक सफलतापूर्वक पूरा कर सकेंगे .

II विक्रयकर्त्ताओ की सख्या का निर्धारण
(Determining the Number of Salesmen)

विक्रयकर्त्ताओं का चुनाव करने से पूर्व दूसरी समस्या यह आती है कि सस्था को कितने विक्रयकर्त्ताओ की आवश्यकता है ? विक्रयकर्त्ताओ की सख्या का निर्धारण करते समय कई बातो को ध्यान मे रखना पडता है । किन्तु सामान्यत निम्न बातो को ध्यान मे रखकर ही विक्रयकर्त्ताओ की सख्या का निर्धारण किया जाता है

(i) भावी विक्रय अनुमान,

(ii) प्रति विक्रयकर्त्ता द्वारा विक्रय का अनुमान,

(iii) वर्तमान मे विक्रयकर्त्ताओ की सख्या; तथा

(iv) विक्रयकर्त्ताओ का आवर्तन (Turn-over) ।

इन बातो को ध्यान मे रखकर विक्रयकर्त्ताओ की सख्या का निर्धारण निम्न सूत्र के आधार पर किया जा सकता है

$$N = \frac{S}{P} + T(s\ p)$$

अर्थात् $N = \frac{S}{P}(1 + T)$

यहाँ पर N का तात्पर्य विक्रयकर्त्ताओ की सख्या,

S का तात्पर्य भावी विक्रय अनुमान,

P का तात्पर्य प्रति विक्रयकर्त्ता द्वारा विक्रय का अनुमान, तथा

T का तात्पर्य विक्रयकर्त्ताओ का आवर्तन ।

उदाहरण

अपोलो इन्टरनेशनल का अनुमान है कि उसकी आगामी वर्ष मे रु० 10,00,00,000 – का विक्रय होगा तथा उसका प्रत्येक विक्रयकर्त्ता रु० 1,00,000 – का विक्रय कर सकेगा । पिछले वर्षों के अभिलेख यह बताते हैं कि

विक्रयकर्त्ताओं का औसत आवर्तन 10 प्रतिशत है। वर्तमान में कार्यरत विक्रयकर्त्ता 900 हैं।

उपयुक्त सूत्र द्वारा हम निम्न प्रकार यह ज्ञात कर सकते हैं कि अपोलो इन्टरनेशनल को आगामी वर्ष में कितने विक्रयकर्त्ताओं की आवश्यकता पड़ेगी।

$$N = \frac{10\,00\,000}{10\,000}\left(1+\frac{10}{100}\right)$$

$$1000 \times 1.10$$

$$= 1100$$

इस प्रकार रु. 10 करोड़ के आगामी वर्ष के भावी विक्रय अनुमान को पूरा करने के लिए इस संस्था को 1100 विक्रयकर्त्ताओं की आवश्यकता पड़ेगी। किन्तु वर्तमान में इस संस्था में 900 विक्रयकर्त्ता काम कर रहे हैं। अतएव उसे केवल 200 (1100-900) नये विक्रयकर्त्ताओं की आवश्यकता पड़ेगी। इन 200 विक्रयकर्त्ताओं में से 100 विक्रयकर्त्ता पुराने विक्रयकर्त्ताओं का स्थान लेंगे क्योंकि आगामी वर्ष में 100 विक्रयकर्त्ताओं के संस्था को छोड़कर चले जाने का अनुमान है। यह अनुमान इस आधार पर लगाया गया है कि संस्था में आगामी वर्ष में औसत रूप से 1000 विक्रयकर्त्ता $\left(\frac{900+1100}{2}=1000\right)$ होंगे तथा विक्रयकर्त्ताओं का आवर्तन 10 प्रतिशत है। इस प्रकार 100 विक्रयकर्त्ता $\left(1000 \times \frac{10}{100}=100\right)$ संस्था को छोड़कर जा सकते हैं। अतएव 100 विक्रयकर्त्ताओं की आवश्यकता इन स्थानों को भरने के लिये होगी एवं बाकी 100 विक्रयकर्त्ताओं की आवश्यकता संस्था के विकास के लिये होगी। इनके लिये पदों का सृजन किया जायेगा।

यहाँ इस बात का ध्यान में रखना चाहिये कि इस सूत्र में विक्रयकर्त्ताओं के प्रशिक्षण में लगने वाले समय का ध्यान नहीं रखा गया है। अतएव प्रशिक्षण अवधि का ध्यान में रखकर ही संस्था में विक्रयकर्त्ताओं की आवश्यक संख्या में समायोजन कर देना चाहिये।

III विक्रयकर्त्ताओं की भर्ती के स्रोतों का निर्धारण
(Determination of Sources of Recruitment of Salesmen)

विक्रयकर्त्ताओं का चुनाव करने से पूर्व विक्रयकर्त्ताओं के स्रोतों का भी निर्धारण कर लेना चाहिये। विक्रयकर्त्ताओं के स्रोतों को मोटे रूप से दो भागों में विभाजित करके अध्ययन किया जा सकता है:

(अ) आन्तरिक स्रोत तथा

(ब) बाह्य स्रोत

(अ) विक्रयकर्त्ताओं के आन्तरिक स्रोत
(Internal Sources of Salesmen)

कई संस्थाएँ अपने वर्तमान कर्मचारियों से या उनके माध्यम से विक्रयकर्त्ताओं

को प्राप्त कर लेती हैं। वास्तव मे, यह एक अच्छा स्रोत है। इस स्रोत को मुख्य रूप से दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है

1 दूसरे विभागो मे कार्य करने वाले कर्मचारी (Present Empolyees in some other Departments)—जब एक सस्था मे कई विभाग एव उप-विभाग होते हैं तो विक्रय विभाग के अतिरिक्त विभागो मे भी कई ऐसे व्यक्ति हो सकते है, जिन्हे विक्रय कार्य मे अधिक रुचि हो या विक्रय कार्य का अनुभव हो तथा वे विक्रय कार्य को स्वीकार करना चाहते हो। ऐसी स्थिति मे विक्रय प्रबन्धको को इन स्रोतो को अवश्य ध्यान मे रखना चाहिये। किन्तु इस सम्बन्ध मे यह भी नही भूलना चाहिये, कि कार्यालय का सबसे अच्छा बाबू तथा कारखाने का सबसे अच्छा कर्मचारी विक्रय कार्य मे सबसे अच्छे सिद्ध होगे, यह आवश्यक नही है। विक्रयकर्त्ता का कार्य एक विशिष्ट कार्य है जिसे पूरा करने के लिय विशिष्ट योग्यताओ की आवश्यक्ता पडती है। जब तक उन कर्मचारियो मे विक्रयकार्य को पूरा करने के लिये आवश्यक गुण नही हो, तब तक उनका चुनाव कभी भी नही करना चाहिये।

लाभ—इस स्रोत से विक्रयकर्त्ताओ की भर्ती करने से निम्नलिखित लाभ प्राप्त किये जा सकते है।

(i) ऐसे व्यक्तियो की कार्यक्षमता तथा आचरण को आसानी से मूल्याकन किया जा सकता हैं।

(ii) ऐसे व्यक्ति सस्था की स्थिति, इतिहास, नीतियो, आदि के बारे मे भी जानते हैं। अत उन्हे इन बातो को बताने की आवश्यकता नही रहती है।

(iii) उन्हे वस्तुओ की तकनीक एव विशेषताओ के बारे मे भी जानकारी होती है। अत प्रशिक्षण मे विशेष समय एव धन भी खर्च नही करना पडता है।

(iv) ऐसे व्यक्ति सामान्यत स्वामिभक्त सिद्ध होते है।

(v) कर्मचारियो का मनोबल बढता है तथा उन्हे अभिप्रेरणा मिलती है।

दोष—इस स्रोत से विक्रयकर्त्ता को प्राप्त करने मे कुछ दोष एव सीमाएँ हैं, वे निम्न प्रकार है—

(i) विक्रयकार्य मे विशिष्ट ज्ञान एव चातुर्य की आवश्यकता होती है जो सामान्य कर्मचारियो मे सामान्यत नही पाई जाती है।

(ii) इस स्रोत से विक्रयकर्त्ता प्राप्त करने मे पक्षपात होने का भय बना रहता है।

2 विक्रयकर्त्ताओ तथा अन्य कर्मचारियो की सिफारिश (Recomendations of Salesmen and other Employees)—कभी कभी कुछ सस्थाएँ अपने वर्तमान विक्रयकर्त्ताओ तथा अन्य कर्मचारियो को उनके मित्रो रिश्तेदारो या अन्य किसी व्यक्ति के नाम का सुझाव करने का भी अवसर प्रदान करती है। कभी कभी सस्थाएँ अपने विक्रयकर्त्ताओ के घर के सदस्यों को भी विक्रयकर्त्ताओ के रूप मे स्वीकार करने मे प्राथमिकता देती हैं।

(ii) आधुनिक युग परिवर्तनशील है। यदि वस्तुओ की तकनीक एव उनकी प्रकृति मे परिवर्तन कर दिया गया है, तो पूर्व विक्रयकर्त्ताओ को भी प्रशिक्षण देने की आवश्यकता पड सकती है।

(iii) यदि पूर्व विक्रयकर्त्ताओ ने काफी समय पूर्व कार्य किया है, तो वे वस्तुओ कि प्रकृति, तकनीक आदि को भी भूल सकते हैं। एसी परिस्थिति मे भी विक्रयकर्त्ताओ को प्रशिक्षण देने की आवश्यकता पडती है।

2. स्वत प्रार्थना पत्र (Applications on the Gate)

कभी-कभी कुछ व्यक्ति अपना प्रार्थना पत्र स्वत बिना सस्था द्वारा मागे ही भेज देते हैं। ऐसे प्रार्थना पत्रो को ही स्वत प्राप्त प्रार्थना पत्र या (Application 'on the gate' or Un-solicited applications or Casual applications) कहते हैं। जब सस्था को विक्रयकर्त्ताओ की आवश्यकता पडती है तो उन स्वत प्राप्त प्रार्थना पत्रो मे से कुछ या सब प्रार्थियो को चुनाव करते समय ध्यान रखा जा सकता है।

लाभ—इस स्रोत का प्रयोग करने मे निम्नलिखित लाभ प्राप्त होते हैं—

(i) विक्रयकर्त्ताओ की खोज करने मे धन व समय व्यय नही करना पडता है।

(ii) ऐसे विक्रयकर्त्ताओ को अधिक वेतन भी नही देना पडता है।

दोष—इस स्रोत क कुछ प्रमुख दोष इस प्रकार हैं—

(i) ऐसे प्रार्थियो मे कुछ योग्यताओ का अभाव हो सकता है।

(ii) ऐसे प्रार्थना पत्र सामान्यत तभी प्राप्त होते हैं, जबकि वे बेरोजगारी की स्थिति मे हो। भारत जैसे देश की सस्थाओ मे ऐसा सम्भव है।

(iii) ऐसे प्रार्थना पत्र तभी प्राप्त होते हैं जबकि सस्था काफी पुरानी तथा ख्याति प्राप्त हो।

(iv) चुनाव का क्षेत्र अत्यन्त सीमित है।

3 विज्ञापन (Advertisements)

समाचार पत्रो मे तथा कभी कभी व्यापारिक पत्रिकाओ मे विक्रयकर्त्ताओ की भर्ती के विज्ञापन दिये जाते हैं। समाचार पत्र तो एक सामान्य प्रयुक्त साधन है। समाचार पत्रो मे दिये जाने वाले विज्ञापन की भाषा ऐसी होनी चाहिये, जिससे उसे कई व्यक्ति पढें तथा विक्रयकर्त्ता के पद के लिये अपना प्रार्थना-पत्र भेजे।

समाचार पत्रो मे कई सस्थाएँ ऐसे विज्ञापन अपने नाम से भी देती हैं, तो कभी-कभी अपने नाम को विज्ञापन मे प्रकट नही होने देती हैं। जब विज्ञापन मे नाम दिया जाता है तो उसे Open advertisement कहते हैं तथा जब नाम नहीं दिया जाता है तो उसे 'Blind Advertisement' कहते हैं। कई बार यह देखा एव सुना जाता है कि कई बडी सस्थाएँ विज्ञापनो मे नाम इसलिए नही देती है, कि आवश्यक रूप से चुनाव से सिफारिशें न आयें। कभी कभी नई सस्थाएँ जिन्हे अच्छे विक्रयकर्त्ता उपलब्ध नही हो पाते हैं, व भी विज्ञापन मे नाम नही देती हैं। किन्तु

अच्छी एवं ख्याति प्राप्त संस्थाओं को विज्ञापन में नाम अवश्य देने चाहिये, ताकि उन्हें कुशलतम विक्रयकर्त्ता प्राप्त हो सकें।

लाभ—विज्ञापन के द्वारा विक्रयकर्त्ताओं की भर्ती करने के कुछ लाभ इस प्रकार हैं—

(i) विज्ञापन का क्षेत्र विस्तृत होता है। अतः अच्छे विक्रयकर्त्ता प्राप्त किये जा सकते हैं।

(ii) ख्याति प्राप्त संस्थाएँ अपने नाम से विज्ञापन करके कुशलतम विक्रयकर्त्ता प्राप्त कर सकती हैं।

(iii) नई संस्थाएँ भी बिना नाम के विज्ञापन से अच्छे विक्रयकर्त्ता प्राप्त कर सकती हैं।

दोष—इस स्रोत के निम्नलिखित कुछ दोष हैं—

(i) विज्ञापन का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत होने से अनेक प्रार्थना पत्र आ जाते हैं। अतः उनकी छटनी करने में भी काफी समय लग जाता है।

(ii) नाम युक्त विज्ञापन देने पर संस्था में कार्यरत अन्य कर्मचारी विक्रयकर्त्ता के पद के लिए आवेदन करने में हिचकिचाते हैं।

(iii) कई बार बिना नाम के विज्ञापन देने पर अच्छी योग्यताओं वाले व्यक्तियों को आवेदन करने के लिए प्रोत्साहित नहीं किया जा सकता है।

4. महाविद्यालय, स्कूल आदि (Colleges, School etc.)

महाविद्यालय एवं स्कूल दो ऐसे स्रोत हैं जहाँ से प्रतिवर्ष लाखों छात्र डिग्री या डिप्लोमा प्राप्त कर निकलते हैं। अतः कोई भी संस्था इन स्नातकों या अन्य छात्रों से भी विक्रयकर्त्ता के पदों के लिए चुनाव कर सकती है।

कई संस्थाएँ अपने लिए आवश्यक विक्रयकर्त्ताओं की भर्ती हेतु महाविद्यालय एवं स्कूलों में जाकर अच्छे छात्रों का, उनके अध्ययन काल में ही चुनाव कर लेती हैं। ये संस्थाएँ महाविद्यालय या स्कूल के प्राचार्य से सम्पर्क स्थापित कर पहले से ही छात्र-छात्राओं से मिल लेती हैं और अध्ययन समाप्त होने पर अपने यहाँ सेवा में रखने का वचन दे देती हैं। इस प्रकार बहुत बड़ी संख्या में से कुछेक छात्रों को भावी विक्रयकर्त्ताओं के रूप में चुनने का अवसर मिल जाता है।

लाभ—इस स्रोत से चुनाव करने के निम्नलिखित कुछ लाभ हैं—

(i) संस्था की आवश्यकतानुसार छात्र छात्राओं का चुनाव किया जा सकता है।

(ii) छात्र/छात्राओं के आचरण, व्यवहार, रुचि एवं योग्यता के बारे में महाविद्यालय तथा स्कूल से सम्पूर्ण जानकारी मिल जाती है।

(iii) प्राध्यापकों की राय भी प्राप्त हो सकती है।

(iv) चुनाव करते समय पर्याप्त विकल्प सामने रहते हैं।

दोष-- इस स्रोत के कुछेक दोष इस प्रकार हैं—

(i) यह स्रोत उन संस्थाओं के लिए उपयुक्त है, जो विभिन्न महाविद्यालयों में अपने प्रतिनिधि भेजकर अच्छे छात्रों से साक्षात्कार कर सकें।

(ii) जब छात्र आवेदन करने से पूर्व ही संस्था को देखने का उत्सुक हो, तो उसे संस्था में ले जाना पड़ता है। ऐसी स्थिति में संस्था व महाविद्यालय स्कूल में बहुत दूरी होती है, तो बहुत अधिक व्यय होता है।

(iii) तत्काल आवश्यकताओं के लिए इस स्रोत का अधिक महत्त्व नहीं है। सामान्यतः छात्र छात्राएँ अध्ययन समाप्ति के बाद ही सेवा में आने को तैयार होते हैं। अतः वे कुछ समय बाद ही उपलब्ध हो पाते हैं।

5. रोजगार कार्यालय (Employment Exchanges)

भारत में रोजगार कार्यालय विक्रयकर्त्ताओं की भर्ती के स्रोत के रूप में प्रयुक्त किये जा सकते हैं। अमेरिका में भी ऐसे कार्यालय हैं, जिन्हें रोजगार अभिकरण (Employment Agencies) कहते हैं। अमेरिका में रोजगार अभिकरण निजी एवं सार्वजनिक दोनों ही क्षेत्रों में हैं। निजी क्षेत्र के रोजगार अभिकरण कुछ शुल्क लेकर रोजगार दिलाने में मदद करते हैं, जबकि सार्वजनिक क्षेत्र के अभिकरण निःशुल्क रूप से सहायता करते हैं। भारत में ये अब तक मुख्य रूप से सार्वजनिक क्षेत्रों में ही हैं। निजी क्षेत्र में अब कुछेक संस्थाएँ रोजगार दिलाने में मदद करने लगी हैं। भारत में सार्वजनिक क्षेत्र की ऐसी संस्थाओं को रोजगार केन्द्र (Employment Exchanges) कहते हैं।

जो व्यक्ति कार्य की खोज में रहते हैं, वे अपना नाम इन संस्थाओं में पंजीकृत करवा लेते हैं। इस प्रकार बेरोजगार कार्यालय में रोजगार व्यक्तियों के नाम की सूची होती है। कोई भी संस्था, जिसे विक्रयकर्त्ताओं की आवश्यकता होती है, वह रोजगार कार्यालय को विक्रयकर्त्ताओं की योग्यताएँ, अनुभव, आयु आदि लिखकर भेज देती है। इसके अतिरिक्त वह संस्था यह भी लिखकर भेज देती है, कि उसे कितने विक्रयकर्त्ताओं की आवश्यकता है। रोजगार कार्यालय अपनी सूची में से मांगी गई योग्यताओं वाले व्यक्तियों को छांटकर उनके नाम व पते संस्था को भेज देता है। दूसरी ओर, रोजगार कार्यालय भी सम्बन्धित बेरोजगार व्यक्तियों (जिसके नाम संस्था को भेजे हैं) को भी इस बात की सूचना भेज देता है, कि अमुक संस्था में स्थान रिक्त हैं। इस प्रकार रोजगार कार्यालय एक ओर व्यावसायिक संस्था को विक्रयकर्त्ताओं की प्राप्ति में मदद कर देता है, तो दूसरी ओर बेरोजगार व्यक्तियों को रोजगार प्राप्त करने में भी सहायता करता है।

लाभ—भारत के रोजगार कार्यालय से विक्रयकर्त्ता प्राप्त करने के प्रमुख लाभ इस प्रकार हैं—

(i) भर्ती के सम्बन्ध में कोई व्यय नहीं करना पड़ता है।
(ii) अनावश्यक सिफारिशें नहीं आने पाती हैं।
(iii) व्यक्तियों के नाम शीघ्र प्राप्त हो सकते हैं।

(iv) अनावश्यक बहुत बड़ी संख्या मे प्रार्थना पत्र नही पहुँचते हैं। अत छँटनी करने म भी समय एव धन व्यय नही जाता है।

दोष—(i) सस्था की चुनाव स्वतन्त्रता समाप्त हो जाती है।

(ii) रोजगार कार्यालय म भी भाई भतीजेवाद का प्रचलन होने के कारण कई बार योग्य व्यक्तियो के नाम सस्था क पास नही पहुँच पाते हैं।

(iii) रोजगार कार्यालय से प्रत्याशियो के बारे म केवल शैक्षणिक योग्यताएँ अनुभव आदि की ही सूचनाएँ मिलती है। अत अन्य सूचनाओ को एकत्रित करने मे काफी समय लग जाता है।

(iv) रोजगार कार्यालय देरी एव अकार्यकुशलता के शिकार होने के कारण, समय पर नाम नही भेज पाते हे।

6 प्रतिस्पर्द्धी सस्थाएँ (Competitive Institution)

सामान्यत व्यवसाय म कुछ प्रतिस्पर्द्धी सस्थाएँ होती हैं जिनमे से भी विक्रयकर्त्ता प्राप्त किये जा सकत है। उदाहरणार्थ एक दवा बनाने वाली सस्था के लिए अन्य दवा बनाने वाली सस्थाय प्रतिस्पर्द्धी सस्थाएँ हैं। अतएव एक दवा बनाने वाली सस्था दूसरी दवा बनाने वाली सस्था के विक्रयकर्त्ता को अपने यहाँ रख सकती है।

लाभ—प्रतिस्पर्द्धी सस्थाओ से विक्रयकर्त्ता प्राप्त करने के निम्न लाभ होते है

(i) ऐसे विक्रयकर्त्ता अनुभवी होते है।

(ii) ऐसे विक्रयकर्त्ता को विशेष प्रशिक्षण देने की आवश्यकता नही रहती है।

(iii) ऐसे विक्रयकर्त्ता को चुनाव करते ही काम पर लगा लिया जाता है।

(iv) ये प्रतिस्पर्द्धा का भली प्रकार सामना कर सकते है।

(v) इन्हे ग्राहको तथा वस्तुओ का पूरा पूरा ज्ञान होता है।

दोष—इन लाभो के होते हुए भी इस स्रोत से विक्रयकर्त्ता प्राप्त करने के निम्न दोष है—

(i) इस स्रोत से प्राप्त विक्रयकर्त्ताओ को अन्य स्रोतों से प्राप्त विक्रयकर्त्ताओ की अपेक्षा अधिक वेतन देना पडता।

(ii) ऐसे विक्रयकर्त्ता बार बार वेतन वृद्धि की माँग करने लगते है तथा वेतन न बढाने पर सस्था छोडकर चले जाते है।

अन्य सस्थाएँ (Other Institutions)

कभी कभी प्रतिस्पर्द्धी सस्थाओ के अतिरिक्त सस्थाओ से भी एक सस्था विक्रयकर्त्ता प्राप्त कर सकती है। उदाहरणार्थ यदि दवा बेचने वाली सस्था कपडा बेचने वाली सस्था से या स्टेशनरी बेचने वाली सस्था से, मशीनें बेचने वाली सस्था

या पुस्तकें बेचने वाली सस्था से विक्रयकर्ता प्राप्त कर लेती है, तो उन्हे हम अन्य सस्थाओ से प्राप्त विक्रयकर्ता कहेगे ।

लाभ—इस स्रोत से विक्रयकर्त्ता प्राप्त करने से निम्नलिखित लाभ हो सकते हैं—

(i) अन्य सस्थाओ से प्राप्त विक्रयकर्त्ता बिल्कुल नये विक्रयकर्त्ताओ की तुलना मे सामान्यतः अधिक अनुभवी होते हैं ।

(ii) ऐसे विक्रयकर्त्ताओ को सामान्य व्यावसायिक कार्यों के प्रशिक्षण देने की आवश्यकता नही पडती है ।

दोष—प्रमुख दोष इस प्रकार है—

(i) सस्था के व्यावसायिक क्षेत्र का अनुभव नही होना है । केवल सामान्य व्यावसायिक ज्ञान होता है ।

(ii) ऐसे विक्रयकर्त्ताओ को भी नये विक्रयकर्त्ताओ की तुलना मे अधिक पारिश्रमिक देना पडता है ।

(iii) इनको भी सस्था की वस्तुओ के सम्बन्ध मे पर्याप्त तकनीकी प्रशिक्षण देना पडता है ।

8. सस्था को माल विक्रय करने वाले विक्रयकर्त्ता (Salesmen Making Calls on the Institution)

प्रत्येक सस्था मे कई दूसरी सस्थाओ के विक्रयकर्त्ता अपना माल बेचने के लिए आते रहते हैं । इन माल बेचने के लिए आने वाले विक्रयकर्त्ताओ मे से भी सस्थाएँ अपने लिये योग्य विक्रयकर्त्ताओ को चुन सकती है ।

लाभ—ऐसे विक्रयकर्त्ताओ को चुनने से निम्न लाभ हैं—

(i) विक्रयकर्त्ता के चुनाव एव नियुक्ति से पूर्व ही उसको कार्य करते हुए देखा जा सकता है ।

(ii) प्रशिक्षण देने की आवश्यकता बहुत ही कम रह जाती है ।

(iii) विक्रयकर्त्ता अनुभवी होते हैं ।

दोष—इन विक्रयकर्त्ताओ को लेने मे निम्न बाते सामने आती हैं —

(i) अधिक वेतन देना पडता है ।

(ii) जल्दी छोडकर चले जाने का भय बना रहता है ।

(iii) बार बार वेतन वृद्धि की माग करते रहते हैं ।

9. ग्राहको के कर्मचारी (Employees of Customers)

कुछ सस्थाएँ अपने ग्राहको के कर्मचारियो को भी अपने विक्रयकर्त्ताओ के रूप मे चुनाव करने मे प्राथमिकता दे देती है (यहाँ ग्राहकों से तात्पर्य फुटकर व्यापारी थोक व्यापारी आदि ग्राहकों से है ।) ये सस्थाएँ अपने ग्राहको को यह निवेदन कर सकती हैं कि वे उनके यहाँ कार्य कर रहे कर्मचारियो मे से विक्रयकर्त्ताओ के पद के लिये उन व्यक्तियो के नाम की सिफारिश करे, जो अब उनकी सस्था मे सर्वोच्च

पद पर पहुँच चुके हैं और वे उनको संस्था को उच्च पद या वेतन के लिए छोड़ सकते हैं। किन्तु इस सम्बन्ध में ग्राहकों के कर्मचारियों को अपनी संस्था में विक्रय कर्त्ताओं के रूप में लेने से पूर्व ग्राहकों से उनकी स्वीकृति अवश्य ले लेनी चाहिये।

लाभ—इस स्रोत से विक्रयकर्त्ता प्राप्त करने से निम्न लाभ हो सकते हैं :

(i) ऐसे विक्रयकर्त्ताओं को माल के गुणों एवं तकनीकी बातों के बारे में पूरी जानकारी होती है। अतः प्रशिक्षण पर धन व्यय नहीं करना पड़ता है।

(ii) ऐसे विक्रयकर्त्ताओं के बारे में सभी आवश्यक जानकारी आसानी से अपने ग्राहकों से प्राप्त की जा सकती है।

(iii) ऐसे विक्रयकर्त्ता अनुभवी होते हैं।

दोष—ऐसे विक्रयकर्त्ताओं के लेने में कोई विशेष दोष नहीं है। हाँ, इनको अपने यहाँ लेते समय इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि जिस ग्राहक की संस्था से विक्रयकर्त्ता आ रहा है उस ग्राहक की स्वीकृति हो। दूसरे, यदि ग्राहक की संस्था से आने वाले कर्मचारी यदि उस संस्था में विक्रय कार्य से सम्बन्धित नहीं रहा हो, तो प्रशिक्षण की आवश्यकता पड़ सकती है।

10 'कार्य चाहिये' विज्ञापन (Situation wanted Advertisement)

कई बार कई कुशल व्यक्ति जब बेरोजगार हों या वर्तमान पद के वेतन, कार्य स्थिति, शर्तों आदि से सन्तुष्ट न हों तो वे अपनी ओर से स्वयं 'कार्य चाहिये' विज्ञापन ('Situation wanted advertisement) समाचार पत्रों में प्रकाशित करवाते हैं। इन विज्ञापनों में कई ऐसे व्यक्तियों के विज्ञापन भी हो सकते हैं, जो विक्रयकर्त्ता के पद पर कार्य करना चाहते हों। अतः संस्थाएँ इस स्रोत का प्रयोग भी कर सकती हैं।

लाभ—इस स्रोत के निम्नलिखित लाभ हैं—

(i) विक्रयकर्त्ताओं का पता लगाने के लिए बहुत अधिक धन एवं समय नहीं लगाना पड़ता है।

(ii) सामान्यतः कुशल एवं अनुभवी व्यक्ति ही ऐसे विज्ञापन देते हैं। अतः कुशल एवं अनुभवी व्यक्ति ही प्राप्त होते हैं।

दोष—इस स्रोत के प्रमुख दोष निम्नलिखित हैं :

(i) ऐसे व्यक्तियों के सम्बन्ध में पूरी जानकारी प्राप्त करने में काफी समय लग जाता है।

(ii) अनुभवी एवं कुशल होने पर अधिक वेतन देना पड़ता है।

(iii) प्रशिक्षण की आवश्यकता भी पड़ सकती है। यदि वे अब तक किसी दूसरे उद्योग में कार्य करते रहे हों।

ऊपर के कुछ पृष्ठों में विक्रयकर्त्ताओं की भर्ती के विभिन्न स्रोत तथा उनके लाभ एवं दोष बताये गये हैं। अतः प्रत्येक संस्था को इन लाभ-दोषों को ध्यान में

रख कर ही भर्ती के स्रोतो का प्रयोग करना चाहिये। इसके अतिरिक्त भूतकाल मे प्रयुक्त किये गये भर्ती के साधनो को भी ध्यान से रखना चाहिये।

IV चुनाव प्रक्रिया
(Selection Process)

विक्रयकर्त्ताओ के चुनाव कार्य का अन्तिम चरण चुनाव प्रक्रिया का निर्धारण है। सभी सस्थाओ मे समान प्रकार की चुनाव प्रक्रिया का प्रयोग करना सम्भव नही होता है क्योकि प्रत्येक सस्था की चुनाव समस्या भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है। सामान्यत. चुनाव प्रक्रिया ऐसी होनी चाहिए, जिससे प्रक्रिया के प्रत्येक स्तर पर प्रार्थियो की छटनी हो सके, जिससे कि प्रक्रिया के अन्तिम स्तर तक पहुँचते-पहुँचते स्वत. ही योग्य व्यक्ति बच जाय। डल योडर (Dale Yoder) ने ठीक ही लिखा है कि "एक चुनाव प्रक्रिया को बाधाओं के क्रम के रूप मे भी वर्णित किया जाता है। क्योंकि इस प्रक्रिया के दौरान एक प्रार्थी को एक-एक करके अनेक बाधाओ को पार करना पड़ता है।" इस प्रकार सब बाधाओ को क्रमश पार करे तथा उसका चुनाव स्वत ही जाय ऐसी प्रक्रिया का निर्धारण किया जाना चाहिए।

चुनाव प्रक्रिया मे केवल एक अनौपचारिक साक्षात्कार से लेकर कई स्तर (steps) हो सकते है। किन्तु एक सामान्य चुनाव प्रक्रिया मे निम्न स्तर हो सकते हैं—

1 नियोजन कार्यालय मे प्रार्थी का स्वागत
2 प्रारम्भिक साक्षात्कार
3 प्रार्थना पत्र (फार्म) भरना
4 चुनाव जाच
5 मुख्य नियोजन कार्यालय मे साक्षात्कार
6 प्रार्थी के सन्दर्भ मे जानकारी करना
7 चिकित्सा परीक्षा
8 प्रत्यादेश देना या नियुक्ति का निश्चय करना
9 कार्य परिचय

अब हम नीचे प्रत्येक स्तर का वर्णन करेंगे।

1 नियोजन कार्यालय में प्रार्थी का स्वागत (Reception of the Candidate in Employment office)

प्रार्थी जब अपनी चुनाव प्रक्रिया के दौरान सस्था मे आता है, तो उसका नियोजन कार्यालय मे स्वागत करना चाहिये। सभी प्रार्थियो को सस्था मे मेहमानो के रूप मे मानना चाहिये तथा सभी का भली प्रकार स्वागत करना चाहिये। किसी भी प्रकार से उनके आत्म सम्मान पर ठेस नही पहुँचने देना चाहिए, अन्यथा अच्छे प्रार्थी कभी भी ऐसी संस्था मे नौकरी करना स्वीकार नही करेंगे।

किन्तु सामान्यत आजकल एक ही पद के लिए हजारों प्रार्थी आते हैं। अत संस्थाएँ इस स्तर का इतना सतर्कतापूर्वक पालन नही कर पाती हैं

2 **प्रारम्भिक साक्षात्कार** (Preliminary Interview)

कुछ लोग इसे छटनी साक्षात्कार (Screening Interview) भी कहते है, क्योकि इस साक्षात्कार का उद्देश्य अक्षम एव योग्य व्यक्तियो की छटनी करना होता है। यह साक्षात्कार किसी विशिष्ट साक्षात्कारकर्त्ता द्वारा लिया जाता है। सम्भवत यही साक्षात्कारकर्त्ता अतिम साक्षात्कार भी लेता है। सामान्यत प्रारम्भिक साक्षात्कार लगभग दस मिनट का होता है। इस समय मे साक्षात्कारकर्त्ता प्रार्थी को कार्य की प्रकृति वेतनमान सेवा की शर्त आदि के बारे मे भी बताता है। इस समय मे साक्षात्कारकर्त्ता प्रार्थी से उसकी शैक्षणिक योग्यता, अनुभव अन्य योग्यता, कार्य के प्रति रुचि आदि आदि के बारे मे सूचनाएँ प्राप्त कर लेता है।

किन्तु सामान्यत यह देखा जाता है कि व्यावसायिक सस्थाओ मे ये दोनो स्तर व्यवहार मे नहीं आते है।

3 **प्रार्थना पत्र फाम भरना** (Filling in Application Blank)

जब प्रारम्भिक साक्षात्कार पूरा हो जाता है और प्रार्थी उसमे सफल हो जाता है तो उससे प्रार्थना पत्र फार्म भरवाया जाता है। यदि प्रारम्भिक साक्षात्कार नही लिया जाता है तो सभी प्रार्थियो से यह फार्म भरवाया जाता है। इस प्रार्थना पत्र मे अनेकों बातो के सम्बन्ध मे सूचनाएँ पूछी जाती है।

प्रार्थना पत्र फाम भरवाने का प्रमुख उद्देश्य चुनाव करने वालो को चुनाव करने मे अधिकाधिक सुविधा प्रदान करना होता है। यह वह उपकरण है जिसके द्वारा प्रार्थियों की योग्यताओ को पद के लिए पूर्व निश्चित योग्यताओ से तुलना की जाती है। यदि वह प्रार्थी इस तुलना मे योग्य सिद्ध नही होता है तो उसे आगे के लिए साक्षात्कार जाचो आदि के लिए अयोग्य समझा जाता है और उसे आगे के स्तरो मे नही बुलाया जाता है।

प्रार्थना पत्र फार्म सामान्यत छपे हुए होते है। सामान्यत इस फार्म को प्रार्थी को अपने ही हाथो से भरकर देना पडता है। सामान्यत प्रार्थना पत्र फार्मों म निम्न बातों के सम्बन्ध मे सूचनाए मागी जाती ह

(i) **प्रार्थी का नाम**—पूरा नाम उपनाम व पता

(ii) **प्रार्थी के पिता का नाम**—पूरा नाम व पता

(iii) **प्रार्थी की जन्म तिथि** जन्म स्थान लिंग, नागरिकता, जाति धर्म आदि।

(iv) *शारीरिक सरचना—जिसमे छाती सीना वजन, लम्बाई आदि के* सम्बन्ध मे जानकारी।

(v) शैक्षणिक योग्यता—सामान्यत हाई स्कूल या समकक्ष परीक्षा से अंतिम परीक्षा तक।

(vi) कार्यानुभव—यदि प्रार्थी पहले से ही किसी संस्था मे कार्य कर चुका है तो उसका विवरण। आवश्यक प्रमाण पत्र भी संलग्न करने पड़ते हैं। कभी-कभी प्रार्थना पत्र वर्तमान नियोक्ता के द्वारा अग्रेषित (forward) भी करवाना पड़ता है।

(vii) वेतन—वेतन जो प्रार्थी न्यूनतम स्वीकार कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त, वर्तमान म कार्य पर नियुक्त हैं, तो इस समय प्राप्त कर रहे वेतन का भी वर्णन करना चाहिये।

(viii) पाठ्यत्तर प्रवृत्तियाँ—इसमे प्रार्थी ने एन सी सी, स्काउटिंग, खेल-कूद, आदि म भाग लेने एवं विशिष्ट योग्यता प्राप्त करने क सम्बन्ध म सूचना भरनी चाहिये।

(ix) सदर्भ—यहाँ चरित्र, व्यवहार आदि के सम्बन्ध में पूछताछ करने हेतु एक दो भद्र पुरुषो के नाम देने पड़ते हैं, जिनसे कि नियोक्ता, प्रार्थी के बारे में पूछताछ कर सके। कई बार इस हेतु चरित्र प्रमाण पत्र भी भेजने पड़ते हैं।

इनके अतिरिक्त भी कोई संस्था आवश्यकतानुसार कई सूचनाएँ माँग सकती है। अत प्रत्येक संस्था अपनी आवश्यकता को ध्यान में रखकर ही प्रार्थना पत्र-फार्म छपवाती है।

विलियम बी० वोल्फ (William B Wolf) के मतानुसार प्रार्थना पत्र फार्म भरवाने के निम्न लाभ हैं—

(i) यह प्रार्थी के सम्बन्ध म महत्त्वपूर्ण सूचनाएं प्रदान करता है, जैसे नाम, पता फोन नम्बर इत्यादि।

(ii) यह प्रार्थी के व्यक्तित्व के सम्बन्ध म जानकारी प्रदान करता है।

(iii) यह साक्षात्कारकर्ता को ऐसी सूचनाएँ प्रदान करता है, जिनसे उसे साक्षात्कार लेने में बड़ी सुविधा रहती है।

(iv) यह उन बातो को प्रकट करता है, जिन्हे साक्षात्कार के समय स्पष्ट करना आवश्यक होता है।

प्रार्थना पत्र फार्म मे ध्यान रखने योग्य बातें :

फार्म तैयार करते समय कई बातो को ध्यान मे रखना चाहिये। पिगर्स तथा मायर्स (Pigors and Myres) के अनुसार प्रार्थना पत्र फार्म निम्न प्रकार का होना चाहिए :—

1 प्रार्थना पत्र फार्म संक्षिप्त होने चाहिये।

2 इसमे केवल वे ही बातें पूछी जानी चाहिये, जो कि कार्य के सम्बन्ध में आवश्यक हो।

3 प्रार्थना पत्र फार्म में कोई ऐसा प्रश्न नहीं पूछना चाहिये, जिसका उसे गलत उत्तर देने को बाध्य होना पड़े।

इन तीनों के अतिरिक्त प्रार्थना पत्र फार्म में निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिये।

4 इसमें वे सभी बातें पूछी जानी चाहिये जिससे प्रार्थी का विस्तृत परिचय प्राप्त किया जा सके।

5 प्रश्नों का दोहराव नहीं होना चाहिये।

6 जिरह के प्रश्न (Cross questions) भी पूछने चाहिये जिससे आसानी से सत्यता का पता लग सके।

7 प्रार्थना पत्र फार्म में जहाँ आवश्यक हो प्रमाण पत्र संलग्न करने का संकेत दे देना चाहिए।

प्रार्थना पत्र फार्म भरते समय ध्यान देने योग्य बातें —

प्रार्थी जब अपना प्रार्थना पत्र भरता है तो उसे निम्नलिखित बातों को विशेष रूप से ध्यान में रखना चाहिये—

1 प्रार्थना पत्र स्वच्छता से भरा जाना चाहिये।

2 प्रार्थना पत्र फार्म में पूछे गये प्रश्नों का उत्तर स्पष्ट एवं एकदम सीधा होना चाहिये।

3 यदि प्रार्थना पत्र प्रार्थी को अपने हस्तलेख (Hand writing) में भरने के लिये कहा गया हो तो उसे ऐसा ही करना चाहिये।

4 प्रार्थना पत्र में दिये गये निर्देशों जैसे—बड़े अक्षरों (Capital letters) में लिखिये, प्रमाण पत्र संलग्न कीजिये आदि का पूर्ण रूप से पालन करना चाहिये।

5 किसी प्रश्न का जान बूझकर गलत उत्तर नहीं देना चाहिये।

4 **चुनाव जाँच** (Selection Test)[1]

चुनाव जाँच चुनाव प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण स्तर है। आजकल चुनाव से पूर्व जाँच करना सामान्य सा हो गया है। चुनाव जाँच के द्वारा प्रार्थी की योग्यता चातुर्य आदि की जाँच की जा सकती है। इससे प्रार्थी की रुचि अरुचि आदि की जानकारी भी ली जा सकती है।

चुनाव जाँच कई प्रकार की हो सकती है। यथा योग्यता जाँच निष्पादन जाँच व्यक्तित्व जाँच, अभिरुचि जाँच प्रकृति जाँच रुचि जाँच आदि। आवश्यकतानुसार इनमें से किसी भी जाँच या अनेकों जाँचों का एक साथ प्रयोग किया जा सकता है। चुनाव जाँच करने से चुनाव एवं नियुक्ति के विभिन्न खर्चों में कमी की

1 चुनाव जाँच के सम्बन्ध में विस्तार से वर्णन इकाई–2 के पाठ 6 में किया गया है।

जा सकती है, तथा साथ ही व्यक्ति का सही पद के लिये चयन करने मे बडी सहायता मिलती है।

5. मुख्य नियोजन कार्यालय में साक्षात्कार (Main Employment Office Interview)[1]

जो प्रार्थी जाच मे उत्तीर्ण होते हैं, उनसे साक्षात्कार लिया जाता है। यद्यपि साक्षात्कार चुनाव का कोई महत्त्वपूर्ण आधार नही बन सकता है, फिर भी किसी भी प्रार्थी के चयन करने मे साक्षात्कार महत्त्वपूर्ण स्थान है। एक अनुसन्धान से यह ज्ञात हुआ है, कि लगभग 98% संस्थाओ मे चुनाव के लिये साक्षात्कार किया जाता है। साक्षात्कार इसलिए आवश्यक है कि प्रत्येक सेवायोजक अपने भावी विक्रयकर्त्ता को नियुक्ति से पूर्व देख सकें तथा बातचीत कर सकें।

इस साक्षात्कार का मुख्य उद्देश्य सूचनाओ का आदान-प्रदान करना है, जिसके आधार पर प्रबन्धक यह निश्चय करता है, कि कोई व्यक्ति अच्छा विक्रयकर्त्ता हो सकता है अथवा नही ? उसमें विक्रय-कार्य करने के लिए आवश्यक गुण हैं अथवा नहीं ? इसके अतिरिक्त इस साक्षात्कार के समय प्रार्थना-पत्र मे लिखी बातो मे कोई अस्पष्टता रह गई हो, तो उस अस्पष्टता का निवारण किया जा सकता है।

6 प्रार्थी के सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त करना (Investigation of Applicant's Background)

साक्षात्कार पूरा हो जाने के पश्चात् प्रार्थी के सन्दर्भ म विशेष जानकारी प्राप्त की जाती है। कभी-कभी इस ओर विशेष ध्यान नही दिया जाता है, किन्तु प्रार्थी के सम्बन्ध मे जानकारी करना बहुत लाभप्रद होता है। प्रार्थी के सन्दर्भ मे मुख्यत चरित्र, शिक्षा, पूर्व कार्यानुभव आदि के बारे मे जानकारी प्राप्त की जाती है।

इन बातो के सम्बन्ध में जानकारी स्कूलों, कॉलेजों, भूतपूर्व नियोक्ताओं, प्रार्थी द्वारा सन्दर्भ हेतु दिये गये नाम, प्रार्थी के पडोसियो आदि से प्राप्त की जा सकती है।

कई बार यह देखने एव सुनने मे आता है कि कई नियोक्ता अपने विक्रय-कर्त्ताओ के सम्बन्ध मे कभी भी विपरीत बात नहीं लिखते हैं। उन्होंने किन्ही विक्रयकर्त्ताओ को चाहे, दुराचरण के कारण ही क्यों न हटाया हो, फिर भी वे उसके लिये अच्छा आचरण होने का ही प्रमाण पत्र देंगे। अत एक विक्रय प्रबन्धक को विक्रयकर्त्ताओ के सन्दर्भ की जानकारी प्राप्त करते समय इन तथ्यो को ध्यान मे रखना चाहिए। आवश्यकता पडने पर भूतपूर्व नियोक्ताओ या शैक्षणिक संस्थाओ से भी व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करके भी प्रार्थी के सन्दर्भ मे सही-सही जानकारी प्राप्त करनी चाहिए।

---

1. साक्षात्कार के सम्बन्ध मे विस्तार से वर्णन इकाई 2 के पाठ 6 में किया गया है।

7. चिकित्सा परीक्षण (Medical Examination)

चिकित्सा-परीक्षा या शारीरिक परीक्षा (Physical Examination) चुनाव प्रक्रिया का एक महत्त्वपूर्ण स्तर है। डा० एस० बीच (D le S. Beach) ने चिकित्सा परीक्षा के अग्रलिखित चार उद्देश्य बताये हैं—

(i) उन व्यक्तियों को अस्वीकार करना जो कि उस कार्य को करने में असमर्थ हैं जिनको करने के लिए चुनाव किया जाना है।

(ii) कर्मचारी के नियुक्ति के समय का शारीरिक प्रलेख तैयार करना, ताकि श्रमजीवी क्षतिपूर्ति वाले मामलों में आसानी से निर्णय किया जा सके।

(iii) छूत की बीमारियों से ग्रस्त लोगों को नियुक्त करने से रोकना।

(iv) शारीरिक रूप से क्षीण व्यक्तियों को उन कार्यों पर लगाना जिन्हें वे कुशलतापूर्वक पूरा कर सकें।

चिकित्सा परीक्षण के पहलू (Aspects of Medical Examination)— चिकित्सा परीक्षा कई पहलुओं को ध्यान में रखकर की जाती है। **स्टोन तथा केन्डाल** (Stone and Kendall) ने चिकित्सा जाँच में निम्न पहलुओं को सम्मिलित किया है —

1 प्रार्थी का चिकित्सा इतिहास प्राप्त किया जाता है

2. शारीरिक नाप तोल जैसे-ऊँचाई वजन छाती या सीना पेट का घेरा आदि का नाप-तोल किया जाता है।

3 सामान्य परीक्षा जिसमें चर्म जोड़ मांसपेशियों की परीक्षा सम्मिलित है।

4 प्रार्थी के विशेष बोध (Senses) का परीक्षण किया जाता है। इसमें दृष्टि-जाँच एवं श्रवण क्षमता की जाँच करना बहुत ही आवश्यक है।

5 आँखों नाक कान तथा दाँतों की जाँच।

6 वक्षस्थल एवं फेफड़ों की जाँच।

7 रक्त चाप और हृदय जाँच करना। आवश्यकता पड़ने पर कार्डियोग्राफिक परीक्षा करना।

8 पेशाब खून आदि की जाँच करना।

9 छाती एवं अन्य भागों की एक्सरे जाँच करना।

10 कोई अन्य आवश्यक जाँच करना।

11 जब चिकित्सा इतिहास एवं चिकित्सक के प्रयोजन में अन्तर पाया जाय, तो न्यूरो साइकिट्रिक (Neuro Psychiatrick) परीक्षा करना।

8 प्रत्यादेश देना या नियुक्ति का निर्णय करना (Rejecting or Deciding to Appoint)

चुनाव प्रक्रिया के स्तरों के समाप्त होने से पूर्व दो निर्णयों में से एक निर्णय लेना ही पड़ता है। किसी प्रार्थी को प्रत्यादेश (Reject) किया जाय या नियुक्त किया

जाय। जब कोई प्रार्थी संस्था के पद के लिए उपयुक्त नहीं दीखता है, उसे प्रत्यादेश देना पड़ता है, किन्तु प्रत्यादेश देते समय बहुत सावधानी बरतनी चाहिए। प्रार्थी को यह महसूस नहीं होने देना चाहिये, कि उसे अपमानित किया गया है या उसमें योग्यता की कमी है। उसे खेद पूर्ण शब्दों में प्रत्यादेश की सूचना देनी चाहिये।

जब नियुक्ति का निर्णय लिया जाता है तो उस प्रार्थी को नियुक्ति से पूर्व कई बातों के सम्बन्ध में जानकारी दी जाती है। कार्य भार सम्भालने की तिथि के सम्बन्ध में पूछताछ की जाती है। उसे संस्था के अभिन्न अंग के रूप में स्वीकार करना चाहिए।

9. कार्य परिचय (Introduction)

जब किसी प्रार्थी की नियुक्ति हो जाती है तो वह प्रार्थी से विक्रयकर्त्ता बन जाता है और उसे संस्था में आवश्यक कार्य सौंपा जाता है। भली प्रकार कार्य करवाने के लिये नये विक्रयकर्त्ताओं को कार्य परिचय करवाना बहुत आवश्यक है। सामान्यतः कार्य परिचय की दृष्टि से निम्न बातों के सम्बन्ध में बतलाया जाता है—

(i) संस्था का इतिहास।
(ii) संस्था की निर्मित वस्तुएँ व मुख्य क्रियाएँ।
(iii) संस्था की सामान्य नीतियाँ तथा नियन्त्रण।
(iv) वेतन तथा वेतन नीतियाँ।
(v) कार्य के घण्टे, छुट्टियाँ इत्यादि।
(vi) अनुशासन एवं शिकायत विधि।
(vii) सामाजिक लाभ योजनाएँ।
(viii) मनोरंजन की सुविधाएँ।
(ix) पदोन्नति व स्थानान्तरण के अवसर आदि।

अभ्यास के लिए प्रश्न

1. आप विक्रयकर्त्ताओं की योग्यताओं एवं संख्या का निर्धारण किस प्रकार करेंगे ?
   How will you determine the qualities and number of salesmen ?
2. विक्रयकर्त्ताओं की किन किन स्रोतों से भर्ती किया जा सकता है ? प्रत्येक स्रोत के लाभ-दोषों का वर्णन कीजिये।
   What are the sources through which salesmen can be recruited ? Discuss merits and demerits of each of them.
3. एक अच्छी विक्रयकर्त्ता चुनाव प्रक्रिया का संक्षिप्त वर्णन कीजिये।
   Discuss a good selection process of salesmen.

4 विभिन्न प्रकार की चुनाव जाचो का वर्णन कीजिये। चनाव जांचो के लाभ एव दोषो को स्पष्ट कीजिये।

Discuss the various selection tests and clearly state the advantages and disadvantages of selection tests

5 साक्षात्कार के क्या उद्देश्य होने है ? अच्छ साक्षात्कार के लिए कौन कौन सी आवश्यक बाते है ?

What are the objects of interviews ? What are requisits of a sound interview ?

6 साक्षात्कार मे क्या करना चाहिये तथा क्या नही करना चाहिए ?

What are the do s and don ts of interviews ?

7 एक साक्षात्कार योजना दीजिये तथा बताइये कि एक साक्षात्कारकर्त्ता म किन किन गुणो होना आवश्यक है ?

Give an interview plan and state that what are essential qualities of interviewer ?

8 विभिन्न प्रकार की साक्षात्कार पद्धतियो का विवेचन कीजिये।

Discuss the various methods of interviews

5

विक्रयकर्त्ताओं को प्रशिक्षण

(Training Salesman)

"Management's challenge is to educate its salesman to such a belief in the product or service-that they can confidently orient their approach and thinking to developing the customer's interest in the product not breaking his resistance with high pressure selling."
— J M Hickerson

विक्रयकर्त्ताओं का चुनाव कर लेने के बाद विक्रय प्रबन्धक के समक्ष उनके प्रशिक्षण की समस्या आती है। आधुनिक विक्रय प्रबन्धक इस मान्यता में विश्वास नहीं करते हैं कि "विक्रयकर्त्ता पैदा होते हैं, बनाये नहीं जाते।" (Salesman are born, not made')। वे यह अनुभव करते हैं, कि कुछ निश्चित रुचिया वाले व्यक्तियो को प्रशिक्षण देकर बहुत अच्छे विक्रयकर्त्ता बनाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त पुराने विक्रयकर्त्ताओं को भी समय-समय पर परिवर्तित बाजार की परिस्थितियो एवं वस्तुओं के गुणों एवं प्रकृति में किये गये परिवर्तनों की जानकारी देने हेतु प्रशिक्षण देना पड़ता है। अतः प्रशिक्षण विक्रयकर्त्ताओं को कुशलता प्रदान करने के लिए आवश्यक एवं अपरिहार्य है।

प्रशिक्षण परिभाषाएँ एवं अर्थ
(Definitions and Meaning of Training)

प्रोक्टर तथा थोरुटन (Proctor and Thoruton) के शब्दों में, "प्रशिक्षण जान बूझकर किया जाने वाला वह कार्य है, जो किसी कार्य को करना सीखने के लिए साधन प्रदान करता है'।[1]

बीच (Beach) ने भी एक संक्षिप्त एवं सारगर्भित परिभाषा दी है। उनके शब्दों में, "प्रशिक्षण वह सगठित प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति किसी निश्चित उद्देश्य के लिए ज्ञान और चातुर्य सीख सकता है'।[2]

---

1 "Training is the international act of providing means for learning to take place" —Proctor and Thoruton

2 "Training is the organised procedure by which people learn knowledge and/or skills for a definite purpose" —Dale S Beach

उपर्युक्त परिभाषाओं का अध्ययन करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि प्रशिक्षण एक सतत् प्रक्रिया है, जिसके द्वारा प्रशिक्षणार्थियो के ज्ञान, चातुर्य एवं योग्यता आदि का विकास किया जाता है, जिससे वे अपने कार्य को कुशलतापूर्वक करते रह सकें व संस्था की कुशलता को बनाये रख सकें। किन्तु इस सम्बन्ध मे यह ध्यान रखने योग्य बात है कि शिक्षा एवं प्रशिक्षण दोनो मे पर्याप्त अन्तर होता है। शिक्षा सामान्य-ज्ञान प्राप्ति मे सहायक है और शिक्षा प्राप्ति के लिये व्यक्ति, स्कूलो, कालेजो, विश्वविद्यालयो आदि में अध्ययन करता है। प्रशिक्षण का आशय किसी क्षेत्र विशेष के सम्बन्ध मे तकनीकी एवं विशिष्ट ज्ञान तथा चातुर्य प्राप्त करना है, जो उसे उस विशेष क्षेत्र मे कार्य करने मे सहायता प्रदान करता है।

लक्षण (Characteristics)—प्रशिक्षण की प्रकृति को समझने हेतु प्रशिक्षण के निम्न लक्षणो को ध्यान मे रखना परमावश्यक है—

(i) प्रशिक्षण एक सतत् प्रक्रिया है।

(ii) प्रशिक्षण पूर्ण व्यवस्थित एवं नियोजित प्रक्रिया है।

(iii) प्रशिक्षण वह साधन है, जिसके द्वारा व्यक्ति के चातुर्य एवं ज्ञान का विकास करना सम्भव है।

(iv) प्रशिक्षण के द्वारा प्रशिक्षणार्थियो की कार्यक्षमता को बढाया जाता है।

(v) प्रशिक्षण प्रशिक्षणार्थियो एवं संस्था दोनो के हित मे होता है।

(vi) प्रशिक्षण एवं शिक्षा मे पर्याप्त अन्तर होता है।

विक्रय प्रशिक्षण की परिभाषाएँ एवं अर्थ (Definitions and Meaning of Sales Training)—'प्रशिक्षण' शब्द मे 'विक्रय' शब्द जोड़ देने से 'विक्रय प्रशिक्षण' शब्द का निर्माण हुआ है। अतएव अब हमे प्रशिक्षण शब्द का अर्थ एक विशिष्ट रूप मे समझना होगा।

नेशनल सोसाइटी ऑफ सेल्स ट्रेनिंग एक्जीक्यूटिव्ज अमेरिका (National Society of Sales Training Executives, U S A.) के अनुसार विक्रय प्रशिक्षण विक्रय कर्मचारियों को उनकी कार्य क्षमता बढाने मे सहयोग देने के लिए सामान्य ज्ञान का इच्छानुरूप प्रयोग करना है।[1]

उपर्युक्त परिभाषा मे विक्रय प्रशिक्षण को सामान्य एवं सरल रूप से परिभाषित किया गया है। इसमे विक्रय प्रशिक्षण की प्रकृति एवं उसके प्रारूप पर कुछ भी प्रकाश नही डाला गया है।

जॉर्ज आर कोलिन्स (George R Collins) के अनुसार, विक्रय प्रशिक्षण एक संगठित क्रिया है, जिसमे तथ्यो का पता लगाना नियोजन करना, निर्देशन देना, अभ्यास कराना समालोचना करना तथा उद्देश्यानुरूप विक्रय योग्यताओ के विकास

1. Sales training is the intentional and sound application of ordinary horse sense to the problem of helping the sales personnel to make the most of its talents—National Society of Sales Training Executives, U S A.

के प्रयास की सिफारिश करना तथा इन्हे मौलिक योग्यताओ, सामान्य रूप से प्राप्त ज्ञान तथा अनुभव के साथ जोडना सम्मिलित है ।[1]

इस प्रकार स्पष्ट है कि विक्रय प्रशिक्षण एक ऐसी विधि एव कार्य है, जिसके द्वारा विक्रय कर्मचारियो को विक्रय समस्याओ को हल करने के योग्य बनाने के लिए उनके ज्ञान-चातुर्य एव कार्य-क्षमता को बढ़ाने का प्रयास किया जाता है ।

प्रशिक्षण के उद्देश्य
(Objects of Training)

विक्रयकर्त्ताओ को प्रशिक्षण देने के कई उद्देश्य हो सकते हैं । आस्प्ले (Aspley) तथा रिसो (Riso) के अनुसार 'प्रशिक्षण प्रक्रिया का उद्देश्य अधिक अच्छा विक्रय प्रस्तुतीकरण एव अधिक अच्छी विक्रय समाप्ति (better closing) के द्वारा अधिक विक्रय मात्रा का निर्माण करना है । इसका उद्देश्य विक्रयकर्त्ता के कार्य वातावरण मे सुधार करना भी है । इसका उद्देश्य उस सस्था के इतिहास एव उद्देश्यो, वस्तुओ, सेवाओ, नीतियों, कार्यविधियों तथा औपचारिकताओ के ज्ञान को बढाना है । उसका उद्देश्य इसका (विक्रयकर्त्ता का) व्यक्तिगत विकास तथा सस्था की प्रगति मे योगदान देने तथा उसे सस्था मे बने रहने के लिए प्रोत्साहित करना है ।" इनके अतिरिक्त भी विक्रयकर्त्ताओ के प्रशिक्षण के कई उद्देश्य हो सकते हैं । सामान्य रूप से प्रशिक्षण देने के लिए निम्नलिखित उद्देश्य होते हैं —

1 विक्रयकर्त्ताओ को विक्रयकला के सिद्धान्तो एव विक्रय प्रवधि से अवगत कराना ।

2 विक्रयकर्त्ताओ को सस्था की मूल्य, वितरण, साख आदि नीतियो से अवगत कराना ।

3 विक्रयकर्त्ताओ को माल के गुणों, तकनीकी बातो के सम्बन्ध मे आवश्यक जानकारी देना ।

4 विक्रयकर्त्ताओ को सस्था के सम्बन्ध मे आवश्यक जानकारी देना ।

5 विक्रयकर्त्ताओ को सस्था की प्रतिस्पर्धात्मक स्थिति से अवगत करवाना ।

6 उन्हे सस्था के सम्भावित एव वर्तमान ग्राहको के सम्बन्ध मे आवश्यक जानकारी देना ।

7 उन्हे प्रतिस्पर्द्धी सस्था के विक्रयकर्त्ताओ के स्तर से अधिक योग्य बनाना ।

---

1. 'It is an organized activity involving fact finding, planning, coaching, practice, criticism, and commendation in a purposive attempt to develop selling skills and to add these skills to sellected native ability, casually acquired knowledge and experience "
—George R Collins

8 सेवा निवृत्त होने वाले संस्था छोड़कर जाने वाले, या अनुपस्थित रहने वाले विक्रयकर्त्ताओं का स्थान भरने के लिए।
9 अयोग्य विक्रयकर्त्ताओं का पता लगाना तथा उन्हें हटाना।
10 विक्रयकर्त्ताओं के आवर्तन को कम करना।
11 विक्रयकर्त्ताओं को वैधानिक नियमों से अवगत कराना।
12 संस्था के प्रति विक्रयकर्त्ताओं में अच्छी भावनाओं का विकास करना।
13 उन्हें उन तकनीकों से अवगत करवाना, जिनसे उनकी कार्यक्षमता बढ़ सके तथा संस्था का विक्रय बढ़ सके।
14 विक्रयकर्त्ताओं के मनोबल को बढ़ाना।
15 प्रबन्धकों की विचारधारा से विक्रयकर्त्ताओं को अवगत करवाना।

प्रशिक्षण का महत्व या लाभ
(Importance or Advantages of Training)

विक्रयकर्त्ताओं के लिए प्रशिक्षण आवश्यक माना जाने लगा है। इसीलिये शायद अब यह कहा जाने लगा है कि विक्रयकर्त्ता बनाए जाते हैं पैदा नहीं होते हैं (Salesman are made, not born)। यद्यपि कई प्रबन्धक यह मानते हैं कि अनुभव से व्यक्ति अपने आप सीख जाता है किन्तु प्रशिक्षण का अपना महत्व है। इसीलिये आज से कई वर्षों पूर्व 1893 में ही नेशनल कैश रजिस्टर कं० के जे० एच० पेटरसन (J H Patterson—National Cash Register Co U S A) ने तो इस बात पर बल देना प्रारम्भ कर दिया था कि तथाकथित पैदा हुए विक्रयकर्त्ता को भी अपनी प्राकृतिक देन के लिए दिशा निर्देश एव अभ्यास की आवश्यकता पड़ी थी। (Even the so called born salesman needed to have his natural gifts guided and exercised) अतः आधुनिक युग में प्रशिक्षण के औचित्य पर दो मत होना सम्भव ही नहीं है। विक्रयकर्त्ताओं के प्रशिक्षण के महत्व एव लाभों को विस्तार से नीचे समझाया गया है—

1 अधिक विक्रय (Increased Sale)—मेनार्ड तथा डेविस (Maynard and Davis) के शब्दों में "वैज्ञानिक प्रशिक्षण कार्यक्रम से विक्रय वृद्धि होती है।" (A scientifically designed training programme results is increased Sales) प्रशिक्षण के द्वारा विक्रयकर्त्ताओं को विक्रय के सिद्धान्तों एव विक्रयकला की तकनीक बताई जाती है। वह इनका व्यवहार में प्रयोग करके अधिक विक्रय कर सकता है।

2 कम आवर्तन (Lower Turn over)—विक्रयकर्त्ताओं को प्रशिक्षण देने का दूसरा सबसे बड़ा लाभ यह है कि इससे विक्रयकर्त्ता संस्था में लम्बे समय तक रुकते हैं तथा उनके आवर्तन का प्रतिशत कम हो जाता है। आस्ले तथा रिसो (Aspley and Riso) के अनुसार "प्रशिक्षण विक्रयकर्त्ता को संस्था में बने रहने को प्रेरित करता है।" प्रशिक्षण से विक्रयकर्त्ता की योग्यता और कार्यक्षमता बढ़ती है

और इसके परिणामस्वरूप उसे अधिक वेतन एव ऊँचा पद मिलता है। अत वह सस्था छोडकर नही जाता है।

3. **कम निरीक्षण व्यय** (Lowers Supervisory Costs)—प्रशिक्षण से निरीक्षण व्ययो को कम किया जा सकता है। प्रशिक्षित विक्रयकर्त्ताओ के कार्यों का निरीक्षण करने के लिए, विक्रय प्रबन्धक तथा अन्य निरीक्षको को अधिक समय लगाना पडता है, किन्तु प्रशिक्षित विक्रयकर्त्ताओं का निरीक्षण करना सरल, सुविधाजनक एव मितव्ययी होता है। **नोलेन तथा मेनार्ड** (Nolen and Maynard) के मतानुसार पर्याप्त जानकारी (प्रशिक्षण) वाले व्यक्तियो की अपेक्षा अप्रशिक्षित व्यक्ति या वे व्यक्ति, जिन्हे अपने आप प्रशिक्षित होने पर छोड दिया जाता है, के निरीक्षण की अधिक आवश्यकता पडती है। उन्हे अधिकाधिक पत्र भेजे जाने आवश्यक होते हैं तथा प्राय उनके कार्य क्षेत्र मे आदेशो के समायोजन, वापसी तथा निरस्तीकरण की सूचनाएँ आती ही रहती हैं, जो शायद उचित प्रशिक्षण द्वारा कम की जा सकती थीं।

4 **बार-बार आदेशो की प्राप्ति** (Repeat Orders Obtained)—विक्रयकर्त्ताओ को सभी प्रकार प्रशिक्षण देने से बार-बार क्रयादेश प्राप्त किये जा सकते है। विक्रयकर्त्ता विक्रयकला के सिद्धान्तो का व्यवहार मे प्रयोग करके ग्राहको को सदैव के लिए अपना बना सकता है। अच्छा प्रशिक्षित विक्रयकर्त्ता अपने अपने ग्राहको को उचित मूल्य पर उपयुक्त किस्म का माल बेचकर उन्हे सन्तुष्ट रखने का प्रयास करते हैं। अतएव उनका ग्राहको से अच्छा सम्बन्ध बना रहता है और वे बार-बार उनसे क्रयादेश प्राप्त करते रहते हैं।

5 **वितरण व्ययो मे कमी** (Reduces Distribution Costs)—कुशल तथा प्रशिक्षित विक्रयकर्त्ताओ का एक लाभ यह है, कि वे ग्राहको से अच्छे सम्बन्ध बनाये रखते हैं। अत बार बार विज्ञापन करने की आवश्यकता नही पडती है तथा विक्रयकर्त्ताओ को भी अपेक्षाकृत कम जाना पडता है। इस प्रकार सस्था के वितरण व्ययो मे कमी होना सम्भव है।

6 **विक्रयकर्त्ता के पारिश्रमिक मे वृद्धि** (Increases Remuneration of Salesmen)—प्रशिक्षण से विक्रयकर्त्ता की विक्रय क्षमता मे वृद्धि की जा सकती है। अधिक विक्रय के परिणामस्वरूप विक्रयकर्त्ता को अधिक वेतन मिलना सम्भव है।

7 **विक्रयकर्त्ता के ज्ञान मे वृद्धि** (Increases Knowledge of Salesmen)—प्रशिक्षण प्राप्त करने से विक्रयकर्त्ता के ज्ञान मे पर्याप्त वृद्धि होती है। उसे वस्तु के सम्बन्ध मे नवीनतम जानकारी प्राप्त हो जाती है। उसे ग्राहको की प्रकृति को समझने के नये तरीको की भी जानकारी मिलती है। इनके अतिरिक्त विक्रयकला के नवीनतम सिद्धान्त तथा विक्रय से सम्बन्धित नये वैधानिक नियमो की भी जानकारी प्रशिक्षण प्राप्त करते समय हो जाती है।

8 विक्रयकर्त्ता को पदोन्नति के अवसर (Opportunity for Promotion of Salesmen)—प्रशिक्षण विक्रयकर्ता के ज्ञान का स्तर बढने, उसकी कार्यक्षमता बढने आदि से सस्था मे ही नही सम्पूर्ण उद्योग मे उसकी ख्याति एव प्रतिष्ठा मे वृद्धि होती है। अत उसकी पदोन्नति के अवसर बढ जाते है।

9 ग्राहकों एव व्यापारी मे सौहार्दपूर्ण सम्बन्धो का निर्माण (Helps building Congenial Relations between Customers and Dealer)—प्राय प्रशिक्षित विक्रयकर्त्ता अपने ग्राहको एव मालिक के बीच अच्छे सम्बन्धो के निर्माण मे सफल हो जाता है जो आज के व्यवसाय की सफलता के लिए अत्यावश्यक है। अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने म सफल होने का प्रमुख कारण यह है कि उसे प्रशिक्षण द्वारा ग्राहको को समझने तथा उनकी समस्याओ को हल करने के सम्बन्ध सभी बाते बता दी जाती है।

10. सगठनात्मक स्थिरता (Organisational Stability)—प्रशिक्षण व्यवस्था निरन्तर बनी रहने से विक्रय सगठन मे स्थिरता एव लोचशीलता बनी रहती है। जब कोई विक्रयकर्ता सस्था छोडकर या अवकाश पर चला जाय, तो प्रशिक्षित विक्रयकर्ता को उसके स्थान पर लगाया जा सकता है। इससे विक्रय सगठन मे अस्थिरता की स्थिति उत्पन्न नही होने पाती है तथा अन्य विभागो के कार्य मे भी किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न नही होने पाती है।

11 अकुशल विक्रयकर्त्ताओ की छटनी (Retrenchment of Inefficient Salesmen)—यदि कोई विक्रयकर्ता सम्पूर्ण चुनाव प्रक्रिया को सफलतापूर्वक पार करके आ जाने म तो सफल हो जाता है किन्तु वह प्रशिक्षण के समय विक्रयकार्य के लिए अनुकूल नही पाया जाता है तो उसे हटाया जा सकता है। ऐसा कर देने से अकुशल विक्रयकर्ताओ के कारण सस्थाओ पर पडने वाले दुष्प्रभावो को रोका जा सकता है।

12. युवा वर्ग को लेना सम्भव (Possible to Appoint Youngesters)—जिस सस्था मे प्रशिक्षण की व्यवस्था नही होती है वे सस्थाएँ प्राय प्रशिक्षित या अनुभवी विक्रयकर्त्ताओ की ही नियुक्ति करना चाहती हैं। ऐसा करने से सस्था म युवा वर्ग एव नये विचार के लोगो का आना-जाना प्राय बन्द हो जाता है। अत प्रशिक्षण की व्यवस्था होने से सस्था मे नये एव आधुनिक विचार वाले अच्छे युवा पीढी के लोगो को नियुक्त किया जा सकता है।

13 प्रशिक्षित विक्रयकर्त्ता देश की सम्पत्ति है (Trained Salesmen are an Asset to the Nation)—वर्तमान युग म प्रशिक्षित विक्रयकर्त्ता देश की सम्पत्ति है। **प्रथम,** वे देश के नागरिको को सही सलाह देकर उनके धन के सदुपयोग करने मे मदद करते है। **द्वितीय,** ये देश मे वस्तुओ की माग को स्थाई बना कर उत्पादन बढाने मे योगदान देते हैं, जो आज किसी भी राष्ट्र के लिए सर्वाधिक महत्त्व की बात है। **तृतीय,** ये नई-नई वस्तुओ के विक्रय को सम्भव बनाकर नये-नये

कारखाने खोलने को प्रोत्साहित करते हैं, जिनसे देश की बेरोजगार जनता को रोजगार प्राप्त हो सकता है।

प्रशिक्षण की सीमाएं
(Limitations of Training)

प्रशिक्षण से अकार्यकुशल, आलसी व्यक्तियो को कुशल नही बनाया जा सकता है। प्रशिक्षण से केवल अभ्यासी एव मेहनती व्यक्ति ही कुशल विक्रयकर्ता बन सकते हैं। चाहे प्रशिक्षण कार्यक्रम कितना ही अच्छा क्यो न हो, प्रशिक्षणार्थी तब तक अच्छी तरह प्रशिक्षण प्राप्त नही कर सकता है, जब तक कि वह प्रशिक्षण मे रुचि न ले। सामान्यत. प्रशिक्षण की निम्न प्रमुख सीमाएँ हैं —

1. प्रशिक्षण दोषपूर्ण सगठन की समस्याओ का निवारण नही करता है। वास्तव मे, दोषपूर्ण संगठन प्रशिक्षण मे बाधा ही पहुँचाते है।

2 प्रशिक्षण के द्वारा चुनाव एव नियुक्ति की त्रुटियो को समाप्त नही किया जा सकता है।

3 प्रशिक्षण के द्वारा सीखने की क्षमता बढाई जा सकती है।

4 प्रशिक्षण देने मात्र से ही कार्य क्षमता नही बढ जाती है। इसके लिए कई प्रयास करने पडते हैं।

5 प्रशिक्षण मे इस तथ्य को भुलाया नही जा सकता है, कि प्राप्त करना सीखने की अपेक्षा अधिक सरल है।

6 प्रशिक्षण के द्वारा हरेक व्यक्ति को हरेक बात नही सिखाई जा सकती है। प्रशिक्षण सिखाने का एक माध्यम मात्र है।

अच्छे प्रशिक्षण कार्यक्रम की आवश्यक बातें
(Essentials of a Good Training Programme)

प्रशिक्षण कार्यक्रम की सफलता कई बातो पर निर्भर करती है। निम्न कुछ बातो को प्रशिक्षण कार्यक्रम को निर्धारित करते समय ध्यान मे रखना चाहिये—

1 सस्था मे प्रशिक्षण कार्यक्रम सतत् रूप से चलत रहना चाहिये।
2 प्रशिक्षण कार्यक्रम पूर्ण रूप से नियोजित एव व्यवस्थित होना चाहिये।
3 प्रशिक्षण कार्यक्रम मे सभी विक्रयकर्त्ताओ को सम्मिलित करना चाहिये।
4 प्रशिक्षण कार्यक्रम सस्था एव विक्रयकर्त्ताओ दोनो के सामूहिक हित एव सुविधा को ध्यान मे रखकर निर्धारित करना चाहिये।
5 प्रशिक्षण कार्यक्रम विक्रयकर्त्ताओ को स्वीकार होना चाहिये।
6 प्रशिक्षण कार्यक्रम मे व्यक्तिगत मान्यताओ को भी ध्यान मे रखना चाहिये।
7 प्रशिक्षण पर्याप्त होना चाहिये।
8 प्रशिक्षण कार्यक्रम व्यावहारिक होना चाहिये।

9 प्रशिक्षण कार्यक्रम संस्था की वित्तीय स्थिति को ध्यान में रखकर निर्धारित करना चाहिये।

10 प्रशिक्षण कार्यक्रम में अनुवर्तन की पूर्ण व्यवस्था होनी चाहिये।

प्रशिक्षण की योजना
(The Training Plan)

प्रत्येक संस्था को अपने विक्रयकर्त्ताओं के प्रशिक्षण के लिए एक योजना बना लेनी चाहिये। निश्चित योजना के अनुरूप प्रशिक्षण देने से कर्मचारियों को शीघ्र एवं क्रमबद्ध रूप से प्रशिक्षित किया जा सकता है। सामान्यतः विक्रयकर्त्ताओं के प्रशिक्षण की योजना बनाते समय निम्न बातों को निर्धारित किया जाना चाहिए :—

1. प्रशिक्षण के उद्देश्य (Training Objectives)—प्रशिक्षण की योजना बनाते समय सर्वप्रथम यह निर्धारित कर लेना चाहिये, कि विक्रयकर्त्ताओं को प्रशिक्षण देने के उद्देश्य क्या है? क्या विक्रयकर्त्ताओं को केवल विक्रयकला के सामान्य सिद्धान्तों से अवगत करवाना है या वस्तु के तकनीकी गुणों से अवगत करवाना है? इसी प्रकार के अन्य प्रश्नों को ध्यान में रखकर प्रशिक्षण के उद्देश्यों को निर्धारित करना चाहिये। प्रशिक्षण के उद्देश्यों का निर्धारण करने के उपरान्त ही प्रशिक्षण विधियों तथा विषय वस्तु को तय किया जा सकता है। इसी प्रकार प्रशिक्षण की व्यवस्था करते समय भी इन उद्देश्यों को ध्यान में रखा जा सकता है। अन्ततोगत्वा, प्रशिक्षण के उद्देश्यों को निर्धारित करने से ही प्रशिक्षण समाप्त होने पर उसकी सफलता एवं असफलता का मूल्यांकन किया जा सकता है। अतः विक्रयकर्त्ताओं की प्रशिक्षण योजना बनाते समय सर्वप्रथम प्रशिक्षण के उद्देश्यों को निर्धारित करना चाहिए। प्रशिक्षण के उद्देश्यों को कई उपविभागों में बाँटकर भी निश्चित किये जा सकते हैं। हेगार्टी (Hegarty) के अनुसार 'प्रशिक्षण के उद्देश्य निर्धारित करते समय उन्हें तीन भागों में बाँटा जा सकता है—(i) प्रबन्धकों के उद्देश्य, (ii) प्रशिक्षणार्थियों के उद्देश्य, तथा (iii) प्रशिक्षण विभाग के उद्देश्य। प्रशिक्षण के उद्देश्यों को तीन भागों में बाँट देने से तीनों पक्षकारों को प्रशिक्षण के उद्देश्यों के बारे में स्पष्ट जानकारी प्राप्त हो जाती है।

2. प्रशिक्षण की विषय-वस्तु (Subject-matter of Training)—प्रशिक्षण के उद्देश्यों को ध्यान में रखकर ही प्रशिक्षण की विषय-वस्तु को निर्धारित किया जाता है। प्रशिक्षण में किन किन बातों के सम्बन्ध में जानकारी दी जाय, यह बात कार्य की प्रकृति पर भी निर्भर करती है। अतएव प्रशिक्षण की विषय-वस्तु निर्धारित करते समय कार्य विवरण (Job-description) को भी ध्यान में रखना परमावश्यक है। सामान्यतः प्रशिक्षण में विक्रयकर्त्ताओं के चातुर्य, ज्ञान, आचरण पर विशेष बल दिया जाना चाहिये। संस्था की नीतियाँ, संस्था तथा उसकी उद्योग में स्थिति, संस्था द्वारा निर्मित या विक्रय की जाने वाली वस्तुएँ, संस्था की प्रतिस्पर्द्धात्मक

स्थिति, संस्था के ग्राहकों की प्रकृति तथा उनके नय के उद्देश्य, उद्योग तथा संस्था मे सामान्यत. प्रयुक्त वितरण पद्धतियाँ आदि-आदि के सम्बन्ध मे विक्रयकर्त्ताओं को प्रशिक्षण देते समय बताया जाना चाहिये।

3 **प्रशिक्षण की व्यवस्था** (Training Arrangement)—प्रशिक्षण की योजना का निर्माण करते समय प्रशिक्षण की व्यवस्था का भी अवश्य निर्धारण कर लेना चाहिये। क्या प्रशिक्षण संस्था के मुख्यालय पर दिया जावेगा या क्षेत्रीय कार्यालयो पर। इसके अतिरिक्त, क्या वैयक्तिक रूप मे प्रशिक्षण दिया जावेगा या सामूहिक रूप से, इन सब प्रश्नो को हल किया जाना आवश्यक है। इन प्रश्नो के हल करने के बाद ही प्रशिक्षण की पद्धतियो एव अन्य बातो को तय किया जा सकता है।

4. **प्रशिक्षण का समय** (Time of Training)—प्रशिक्षण कब दिया जाय, यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। वैसे प्रशिक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है, जो कभी समाप्त होने वाली नही होती है। विक्रयकर्त्ता के चुनाव से लेकर विक्रयकर्त्ता की सेवानिवृत्ति तक प्रशिक्षण दिया ही जाता रहता है। किन्तु सामान्यत प्रशिक्षण विक्रयकर्त्ताओं के चुनाव के तत्काल बाद अवश्य ही दिया जाना चाहिये। कई बार विक्रयकर्त्ताओं का चुनाव करने से पहले ही प्रशिक्षण दिया जाता है। उदाहरणार्थ, चुनाव करते समय यह भी शर्त हो सकती है कि चुनाव से पहले प्रत्येक प्रार्थी को 15 दिन संस्था मे विक्रयकर्त्ता के रूप मे कार्य करके दिखाना होगा। इस प्रकार, वह व्यक्ति 15 दिन कार्य करने के परिणामस्वरूप बहुत कुछ बातें सीख जाता है।

पुराने विक्रयकर्त्ताओं को कब प्रशिक्षण दिया जाय, यह बात अत्यन्त महत्त्व की है। अतएव उनके लिये एक अवधि निर्धारित करनी चाहिए, जिसके समाप्त होते ही पुराने विक्रयकर्त्ताओं को पुन प्रशिक्षण दिया जावेगा।

5 **प्रशिक्षण की अवधि** (Period of Training)—प्रशिक्षण की अवधि प्रशिक्षणार्थियो को ध्यान मे रखकर तय की जाती है। यदि विक्रयकर्त्ता नये हैं, तो प्रशिक्षण अवधि भी लम्बी हो सकती है। इसके विपरीत यदि विक्रयकर्त्ता पुराने है, तो प्रशिक्षण के लिये 2-4 दिन भी पर्याप्त हो सकते हैं। प्रशिक्षण की अवधि प्रशिक्षण की विषय-वस्तु तथा पद्धतियो से भी प्रभावित होती है। अतः इन बातो को ध्यान मे रखकर ही प्रशिक्षण की अवधि निर्धारित करनी चाहिये।

6 **प्रशिक्षक** (Trainer)—प्रशिक्षक कौन हो यह भी एक बहुत बडी समस्या है। कुछ लोगो का मत है कि प्रशिक्षण विक्रय प्रबन्धको तथा विक्रय पर्यवेक्षको निरीक्षकों द्वारा ही दिया जाना चाहिये, क्योंकि उन्हे वास्तविक स्थिति एव समस्याओं की पूरी पूरी जानकारी होती है। दूसरी ओर, कुछ विद्वानो का यह मत है कि प्रशिक्षण देने के लिये, अलग से प्रशिक्षक नियुक्त किये जाने चाहिये। उनका मत है कि इस प्रकार नियुक्त किये गये, प्रशिक्षको का आधुनिक विधियो,

नकनीको ग्रादि का ज्ञान होता है। वे प्रशिक्षण देने मे कुशल होते है, ग्रतः कम समय मे ही विक्रयकर्त्ताग्रो को ग्रच्छी प्रकार से प्रशिक्षित कर सकते हैं। इसके ग्रतिरिक्त, ये प्रशिक्षक केवल प्रशिक्षण के लिये होते है, जो प्रशिक्षण की समस्याग्रो का विस्तारपूर्वक ग्रध्ययन भी कर सकते है। विक्रय क्षेत्र की समस्याग्रो मे ग्रनुसधान करके प्रशिक्षण मे उन्ही बातो पर विशेष जोर दे सकते है, जिनकी ग्रावश्यकता होती है। किन्तु व्यवहार मे न तो केवल विक्रय प्रबन्धको या निरीक्षको पर ही तथा न केवल प्रशिक्षको पर ही प्रशिक्षण का भार डालना चाहिये। *प्रशिक्षण कार्यक्रम तो विक्रय-प्रबन्धको तथा निरीक्षको की देख रेख मे विक्रय* प्रशिक्षको के द्वारा पूरा किया जाना चाहिए ग्रर्थात् दोनो का प्रशिक्षण कार्यक्रम मे हाथ होना चाहिए। प्रशिक्षण देने का कार्य कोई भी क्यो न करे, किन्तु प्रशिक्षको मे निम्न गुण होने चाहिए—

(i) प्रशिक्षक को सस्था एव सस्था की नीतियों का पूरा-पूरा ज्ञान होना चाहिए।
(ii) *ग्रध्ययन की योग्यता होनी चाहिए।*
(iii) *मानसिक एव शारीरिक रूप से सतर्क होना चाहिए।*
(iv) विचार स्पष्ट होने चाहिए।
(v) व्यक्तित्व ग्रच्छा एव प्रभावशाली होना चाहिए।

7 **प्रशिक्षण पद्धतियाँ** (Training Methods)—प्रशिक्षण के उद्देश्यो की सफलता या सम्पूर्ण प्रशिक्षण की सफलता प्रशिक्षण पद्धतियो के चुनाव पर निर्भर करती है। ग्रत प्रशिक्षण पद्धतियों का चुनाव बहुत ही सतर्कता से करना चाहिए। प्रशिक्षण के उद्देश्यों एव विषय वस्तु को ध्यान मे रखकर ही प्रशिक्षण पद्धतियो का चुनाव करना चाहिए। *प्रशिक्षण पद्धतियाँ मुख्य रूप से दो भागो मे विभक्त* की जा सकती हैं—(i) वैयक्तिक प्रशिक्षण पद्धतियाँ, तथा (ii) सामूहिक प्रशिक्षण पद्धतियाँ। विक्रय प्रबन्धक को यह निश्चय करना चाहिए कि उसे कौन कौन सी पद्धतियाँ प्रयोग करनी है, जिससे प्रशिक्षण के ग्रच्छे परिणाम प्राप्त हो सकें। प्रशिक्षण की पद्धतियो का *चुनाव करते समय ग्रग्रलिखित बातें ध्यान मे रखना* चाहिए—

(i) सर्वप्रथम यह देखना चाहिए कि प्रशिक्षार्थी ग्रनुभवी है या नही। ग्रनुभवी प्रशिक्षणार्थियो तथा नए प्रशिक्षणार्थियो के लिए भिन्न भिन्न प्रशिक्षण पद्धतियाँ उपयुक्त रहती है।
(ii) प्रशिक्षण के उद्देश्य क्या है ?
(iii) प्रशिक्षणार्थियो की योग्यता का स्तर क्या है ?
(iv) प्रशिक्षण की विषय-वस्तु क्या है ?

अच्छे प्रशिक्षण की विषय-वस्तु
(Subject matter of a Good Training Programme)

हम इस अध्याय मे पहले ही लिख चुके हैं, कि प्रशिक्षण की योजना बनाते समय प्रशिक्षण की विषय वस्तु को निर्धारित कर लेना चाहिये। प्रशिक्षण की विषय-वस्तु सस्था की प्रतिस्पर्द्धात्मक स्थिति एव आवश्यकता को ध्यान मे रखकर तय की जानी चाहिये। किन्तु, सामान्यत विक्रयकर्त्ताओ के प्रशिक्षण कार्यक्रम मे निम्न बातो पर प्रशिक्षण की उचित व्यवस्था होनी चाहिये—

1. सस्था के सम्बन्ध मे जानकारी (Knowledge about Institution)—सबसे पहले विक्रयकर्त्ताओ को सस्था के सम्बन्ध मे विस्तार से जानकारी देनी चाहिये, ताकि वह सस्था मे अपनी स्थिति को समझ सके तथा सस्था को अपना समझ सके। किन्तु जोन्स (Jones) का मानना है, कि **कई विक्रयकर्त्ताओ को उन्हें अपनी सस्था के बारे मे कोई विशेष जानकारी नहीं होती है। अत. उनका मत है कि "बिना इसकी जानकारी के विक्रयकर्ताओं को प्रशिक्षण पूरा कर लेने देना एक बहुत बड़ी भूल है।** (To allow them to complete their training without this knowledge is a serious mistake) उन्होंने आगे लिखा है कि विक्रयकर्त्ताओ को सस्था के सम्बन्ध मे पूर्ण जानकारी हो, तो "**वे भावी एव वर्तमान ग्राहकों के समक्ष, सस्था को मनुष्यों के सजीव सगठन के रूप मे प्रस्तुत कर सकते हैं।** (They can present the Company to prospects and customers as a living organization of human beings) अतएव विक्रयकर्त्ताओ को प्रशिक्षण देते समय अपनी सस्था के बारे मे विस्तार से बताया जाना चाहिये। सस्था के सम्बन्ध मे जानकारी देते समय, सस्था का इतिहास, सस्था द्वारा निर्मित या बेची जाने वाली वस्तुएँ, सस्था की उद्योग मे स्थिति, सस्था की प्रतिस्पर्द्धात्मक स्थिति, सस्था के प्रबन्धको की नीतियां, सस्था की शाखाये, कार्यरत कर्मचारियो की सख्या आदि बातो के सम्बन्ध म विक्रयकर्त्ताओ को अवश्य बताया जाना चाहिये।

2 वस्तुओ के बारे मे जानकारी (Knowledge about Products)—प्रत्येक विक्रयकर्त्ता की सफलता के लिय यह आवश्यक है, कि उसे उन वस्तुओ के बारे मे पर्याप्त जानकारी हो, जिन्हे वह विक्रय करता है। टोसडल (Tosdal) का सुझाव है कि "**विक्रयकर्त्ताओ को उनके द्वारा बेची जाने वाली वस्तु या सेवा के बारे मे जानकारी होनी चाहिये तथा उन्हे अपने विक्रय सगठन की नीतियो एव व्यवहार की पर्याप्त जानकारी एव समझ होनी चाहिये।**" अतएव प्रशिक्षण देते समय वस्तुओ के सम्बन्ध मे पर्याप्त जानकारी देनी चाहिये। विक्रयकर्त्ताओ को सस्था द्वारा निर्मित या बेची जाने वाली वस्तुओं के सम्बन्ध मे बताते, समय उन्हे वस्तुओ की विशेषताओ, उपयोगिता, प्रयोग विधि, मूल्य, बनावट, निर्माण विधि, प्रतियोगी वस्तुएँ आदि क बारे मे विस्तार से बताया जाना चाहिये। वस्तुओ के बारे मे पर्याप्त जानकारी होने

पर ही वह ग्राहकों के प्रश्नों का उत्तर दे सकेगा तथा उन्हें सन्तुष्ट कर सकेगा। जिन विक्रयकर्त्ताओं को वस्तुओं के सम्बन्ध में उपर्युक्त बातों की जानकारी नहीं होती है, वे कभी भी सफल नहीं हो सकते है।

3 ग्राहकों के बारे में सूचना (Knowledge about Customers)—प्रशिक्षण देते समय विक्रयकर्त्ताओं को वर्तमान तथा भावी ग्राहकों के बारे में भी बताया जाना अत्यावश्यक है। ग्राहकों के सम्बन्ध में जानकारी देते समय उन्हें मुख्य रूप से दो बातें बताई जानी चाहिये। प्रथम, ग्राहकों की प्रकृति कैसी है एवं ग्राहक किस प्रकार के है? ग्राहक सीधे सादे, भोले-भाले, झगड़ालू, निर्भर, बूढ़े, युवा, बालक औद्योगिक या घरेलू आदि आदि कई प्रकार के हो सकते है। अत संस्था के ग्राहक इनमें से किस प्रकार के है विक्रयकर्त्ताओं को बताया जाना चाहिये। द्वितीय, ग्राहकों के क्रय उद्देश्यों के बारे में भी प्रशिक्षणार्थियों को बताया जाना चाहिये। ग्राहक कई उद्देश्यों से प्रेरित होकर माल क्रय करते है। उन सब उद्देश्यों की जानकारी विक्रयकर्त्ताओं को दी जानी चाहिये। विक्रयकर्त्ताओं को ग्राहकों की समस्याओं के बारे में भी जानकारी दी जानी चाहिये। जोंस (Jones) के अनुसार प्रभावशाली विक्रयकला के लिए ग्राहकों की समस्याओं का सहानुभूतिपूर्वक ज्ञान होना चाहिये। ("Effective salesmanship demands a sympathetic understanding of the buyer's problsms")

4 वितरण विधियों का ज्ञान (Knowledge about Channels of Distribution)—विक्रयकर्त्ताओं को उद्योग तथा संस्था द्वारा प्रयुक्त वितरण विधियों का भी ज्ञान होना चाहिये। उदाहरणार्थ यदि संस्था माल का निर्माण करती है, तो माल के वितरण में थोक व्यापारी एजेन्ट, फुटकर व्यापारी या शृंखलाबद्ध दुकानें आदि के महत्त्व के बारे में विस्तार से बताया जाना चाहिये।

5 विक्रय अनुक्रम (Selling Sequence)—विक्रयकर्त्ताओं को प्रशिक्षण देते समय विक्रय अनुक्रम (Selling Sequence) भी बताया जाना चाहिये। ग्राहक के स्वागत से लेकर ग्राहक की विदाई तक के सभी विक्रय स्तरों को सफलतापूर्वक पूरा करने की तकनीक प्रत्येक विक्रयकर्त्ता को बताई जानी चाहिये। टोसडल (Tosdal) के मतानुसार उसे विक्रय विधि का ज्ञान होना चाहिये। उसे अपने भावी ग्राहकों के समक्ष विक्रय प्रस्ताव करने की कला का विकास करना चाहिये, ताकि वह विक्रय कर सके, ग्राहकों को बढ़ा सके तथा ख्याति का निर्माण कर सके।"

6 सन्देशवाहन के सिद्धान्त (Principles of Communication)—प्रत्येक विक्रयकर्त्ता को सन्देशवाहन के सिद्धान्तों की भी सामान्य जानकारी प्रशिक्षण के समय अवश्य दी जानी चाहिये क्योंकि विक्रय कार्य स्वयं एक प्रकार का सन्देशवाहन ही है। इसके अतिरिक्त, जो विक्रयकर्त्ता बाहर (field में) रहकर कार्य करते है, उन्हें अपने दैनिक कार्य की प्रगति का प्रतिवेदन अपने विक्रय प्रबन्धक को भेजना

पड़ता है। इसी प्रकार कभी-कभी ग्राहकों को भी पत्र लिखने पड़ सकते हैं। इन सभी कार्यों की सफलता के लिए आवश्यक है, कि उन्हें संदेशवाहन के सामान्य सिद्धान्तों से अवगत करवाया जाय।

7. सेवा की शर्तें एवं पारिश्रमिक (Service Conditions and Remuneration)—प्रशिक्षण देते समय विक्रयकर्त्ताओं को सेवा की शर्तें एवं पारिश्रमिक के बारे में भी विस्तार से बताया जाना चाहिये। कार्य का समय, कार्य की प्रकृति, अनुशासनिक दण्ड, पारिश्रमिक मिलने की समयावधि, पारिश्रमिक प्राप्त करने का तरीका आदि-आदि बातों के सम्बन्ध में सामान्यत. बताया जाना चाहिये।

प्रशिक्षण की पद्धतियाँ
(Training Methods)

विक्रयकर्त्ताओं को प्रशिक्षण देने के लिए कई पद्धतियाँ प्रयोग में लाई जाती हैं। प्रमुख प्रशिक्षण पद्धतियों को मुख्य रूप से दो भागों में विभक्त करके अध्ययन किया जा सकता है—

I सामूहिक प्रशिक्षण पद्धतियाँ :
1 प्रवचन पद्धति
2. समूह परिचर्चा पद्धति
3 विक्रय सम्मेलन पद्धति
4. समस्या अध्ययन पद्धति
5. भूमिका निर्वाह पद्धति
6. सचेतनता प्रशिक्षण पद्धति
7 विशेष पाठन पद्धति
8. विक्रय नाट्य प्रदर्शन पद्धति
9. विशेष पाठ्यक्रम पद्धति

II. वैयक्तिक प्रशिक्षण पद्धतियाँ :
1. कार्य पर प्रशिक्षण
2. वैयक्तिक परिचर्चा
3 पत्राचार प्रशिक्षण

अब हम नीचे प्रत्येक का विस्तार से वर्णन करेंगे।

I सामूहिक प्रशिक्षण पद्धतियाँ
(Group Training Methods)

एक से अधिक व्यक्तियों को एक साथ प्रशिक्षण देने की प्रमुख पद्धतियों का इस शीर्षक के नीचे वर्णन किया गया है :—

1. प्रवचन पद्धति (By Lectures)—प्रवचन एक औपचारिक एवं संगठित वार्ता है, जो एक समूह के सम्मुख की जाती हैं। प्रवचनकर्त्ता को वार्ता के विषय के सम्बन्ध में बहुत अधिक ज्ञान होता है और वह वार्ता के सम्बन्ध में श्रोताओं के सभी प्रश्नों का उत्तर देने की स्थिति में होता है। प्रवचन देने वाले प्रायः उच्च योग्यता प्राप्त व्यक्ति, अनुभवी विक्रय प्रबन्धक ही होते हैं। इस प्रकार के प्रवचन प्रायः

विस्तृत एव पर्याप्त सूचनादायक होते हैं। कई बार इस प्रकार के प्रवचनो की प्रतियाँ पहले से ही प्रशिक्षणार्थियो में बाट दी जाती हैं। इन प्रवचनो को रुचिकर बनाने के उद्देश्य से प्रवचन में स्लाइड टेप रिकार्डर प्रोजेक्टर आदि का प्रयोग भी किया जा सकता है।

लाभ (Advantages)

(i) बहुत अधिक प्रशिक्षणार्थियो को एक ही साथ प्रशिक्षण दिया जा सकता है।

(ii) प्रति प्रशिक्षणार्थी प्रशिक्षण लागत कम रहती है।

(iii) प्रशिक्षणार्थियो को पूर्ण सैद्धान्तिक बातो का ज्ञान आसानी से करवाया जा सकता है।

(iv) अपने सदेहो का निवारण प्रशिक्षणार्थी आसानी से कर सकते हैं।

दोष (Disadvantages)

(i) प्रशिक्षणार्थी सम्पूर्ण प्रवचन में एकाग्रचित्त नही हो पाते हैं।

(ii) इस विधि से केवल सीखा ही जा सकता है किया नही जा सकता है।

(iii) सामान्यत प्रवचनकर्त्ता अपनी बात कहने में ही अधिक समय लगाता है, प्रशिक्षणार्थियो के सदेहो के निवारण पर बहुत कम समय व्यय करता है।

(iv) प्रशिक्षणार्थियो की प्रगति को आँकना बहुत कठिन है।

उपयुक्तता (Suitability)—वहाँ प्रवचन विधि का प्रयोग नही करना चाहिये, जहाँ पर प्रशिक्षणार्थियो की सख्या अधिक हो तथा वह प्रशिक्षण बहुत अधिक तकनीकी प्रकृति का हो

2 समूह परिचर्चा (Group Discussion)—यह प्रशिक्षण की एक ऐसी पद्धति है जिसमे आपसी विचार विमर्श एव विचारो के आदान प्रदान के द्वारा समस्याओ को सुलझाया जाता है। इस पद्धति में विक्रयकर्त्ताओ के समूह मे से कोई भी विक्रयकर्त्ता या विक्रय प्रबन्धक किसी भी विक्रय समस्या के बारे मे कुछ अपने सक्षिप्त विचार सभी विक्रयकर्त्ताओ के समक्ष प्रस्तुत करता है। यह समस्या सभी विक्रयकर्त्ताओ मे सम्र्पकित होती है। इसके पश्चात् बारी बारी से सभी या अधिकाश प्रशिक्षणार्थी विक्रयकर्त्ता उस समस्या के सम्बन्ध में अपने अपने विचार प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार उस समस्या के अनेक पहलुओ पर सभी विचार सबको सुनने को मिलते है और विक्रयकर्त्ता उन विचारो से अपनी परिस्थितियो के अनुसार अपनी समस्या का हल निकालने मे सक्षम हो जाते हैं।

सामान्यत ऐसी परिचर्चाओ के सचालन के लिए एक सभापति नियुक्त कर दिया जाता है जो सभी विक्रयकर्त्ताओ को किन्ही निष्कर्षों पर पहुँचाने मे सहयोग करता है। इन परिचर्चाओ के निष्कर्षों को बाद मे क्रम बद्ध रूप में तैयार करके

एक-एक प्रति सभी विक्रयकर्ताओं को देदी जाती है, ताकि भविष्य में आवश्यकता पड़ने पर देखा जा सके।

लाभ (Advantages)—इस पद्धति में प्रशिक्षण देने से निम्न लाभ होते हैं—

(i) लगभग सबको अपने अपने विचार प्रस्तुत करने का अवसर मिलता है।
(ii) सब मन लगाकर प्रशिक्षण प्राप्त कर सकते हैं।
(iii) सबकी रुचि बनी रहती है।
(iv) कई नये-नये विचार सुनने का अवसर मिलता है।

दोष तथा सीमाएँ (Disadvantages and Limitations)

(i) परिचर्चा में प्रायः लोग मुख्य बिन्दु से हट जाते हैं और अनावश्यक ही समय नष्ट होने लगता है।
(ii) कभी-कभी अनावश्यक ही आपसी वाद-विवाद बढ़ जाते हैं और आपसी सम्बन्ध बिगड़ जाते हैं।
(iii) परिचर्चा का संचालन करना एक कठिन कार्य है।

उपयुक्तता (Suitability)—सामूहिक परिचर्चा द्वारा नये एवं पुराने सभी विक्रयकर्ताओं को प्रशिक्षण दिया जा सकता है, किन्तु यह पद्धति तभी उपयुक्त रहती है, जबकि परिचर्चा पूर्व निश्चित आधारों पर हो। मुख्य बिन्दुओं पर परिचर्चा करके ही अच्छे परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं।

3 विक्रय सम्मेलन पद्धति (Sales Conferences)—यह प्रशिक्षण की एक विधि है, जिसका मूल उद्देश्य एक समूह के ज्ञान एवं अनुभव को सबके लिए उपलब्ध कराना है। सम्मेलन में भाग लेने वाले प्रशिक्षणार्थी अपने विचार एवं अनुभव को सम्मेलन में प्रकट करने को स्वतन्त्र होते हैं। इस प्रकार आपसी विचार विमर्श एवं अनुभवों के आदान प्रदान द्वारा प्रशिक्षणार्थी बहुत कुछ आसानी से ही सीख जाते हैं। सम्मेलनों में प्रायः विचारों का आदान-प्रदान अनौपचारिक रूप में ही होता है।

प्रशिक्षण सम्मेलनों में भाग लेने वाले व्यक्तियों को सम्मेलन में विचार विमर्श किये जाने वाले विषय के सम्बन्ध में थोड़ा बहुत ज्ञान अवश्य होता है, किन्तु इस सम्बन्ध में यह बात ध्यान में रखनी चाहिये, कि सम्मेलनों की सफलता सम्मेलन में भाग लेने वालों की इच्छा पर बहुत अधिक निर्भर करती है।

लाभ (Advantages)

(i) प्रशिक्षणार्थी प्रत्येक समय पर सतर्क रहता है।
(ii) प्रशिक्षणार्थी की रुचि बनी रहती है।
(iii) प्रशिक्षणार्थी का बौद्धिक विकास होता है।
(iv) प्रशिक्षणार्थी को स्वतन्त्र रूप से विचार व्यक्त करने का अवसर मिलता है।

दोष या सीमाएँ (Disadvantages or Limitations)

(i) सम्मेलन में बहुत अधिक प्रशिक्षणार्थी भाग लेते हैं। अतः सबको अपने-अपने विचार प्रस्तुत करने का अवसर नहीं मिलता है।

(ii) प्रशिक्षण की इस विधि में काफी समय लगता है।

(iii) कभी कभी असगत मामलों पर वार्तालाप चलता रहता है। इसमें अनावश्यक ही समय की बरबादी होती है।

उपयुक्तता (Suitability)—सम्मेलन पद्धति वहीं अधिक उपयोगी रहती है, जहाँ पर समान योग्यता एवं स्तर वाले व्यक्तियों को प्रशिक्षण देना हो तथा उन व्यक्तियों को सम्मेलन में विचार विमर्श किये जाने वाले विषय के सम्बन्ध में कुछ सामान्य ज्ञान हो।

4. समस्या अध्ययन पद्धति (Case Study Method)—प्रशिक्षण की इस विधि का विकास लगभग 1920-25 में हार्वर्ड बिजनेस स्कूल (Harvard Business School) ने किया था। इस पद्धति में प्रशिक्षणार्थी के सम्मुख किसी समस्या के तथ्यों को रख दिया जाता है व इन तथ्यों के आधार पर प्रशिक्षणार्थी से समस्या का हल पूछा जाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि इस विधि के द्वारा प्रशिक्षणार्थी के समक्ष चुनौती प्रस्तुत की जाती है और इस चुनौती को प्रशिक्षणार्थी स्वीकार करता है। यदि वह समस्या का सही उत्तर नहीं ढूँढ पाता है तो उसे अन्य कुशल व्यक्तियों का सही उत्तर बताया जाता है।

समस्या विधि के अन्तर्गत क्रमशः निम्न प्रमुख स्तर पार करने पड़ते हैं—

(i) समस्या का अध्ययन करना।

(ii) तथ्यों का इकट्ठा करना।

(iii) क्या निर्णय करना है ? इस बात का निर्धारण करना।

(iv) इस समस्या के संदर्भ में क्या करना है ? इस बात का निर्णय करना।

समस्या अध्ययन विधि का प्रमुख उद्देश्य स्वतः सीखना है। इस विधि से प्रशिक्षण देने पर प्रशिक्षणार्थी को बहुत अधिक सतर्क रहना पड़ता है। इस सम्बन्ध में यह भी ध्यान रखना चाहिये, कि प्रशिक्षण की इस विधि की बहुत कुछ सफलता प्रशिक्षक की योग्यता एवं क्षमता पर निर्भर करती है।

लाभ (Advantages)

(i) प्रशिक्षणार्थी बहुत ही सतर्क रहकर प्रशिक्षण प्राप्त करता है।

(ii) प्रशिक्षणार्थी को व्यावहारिक प्रशिक्षण मिल जाता है।

(iii) कुशल प्रशिक्षकों द्वारा प्रशिक्षण दिया जाता है।

(iv) प्रशिक्षणार्थी को क्रमबद्ध प्रशिक्षण मिलता है।

(v) प्रशिक्षणार्थियों में रुचि बनी रहती है।

दोष (Disadvantages)

(i) इस विधि से प्रशिक्षण देना काफी खर्चीला पड़ता है।

(ii) प्रशिक्षण में समय भी अधिक लगता है।

उपयुक्तता (Suitability)—प्रशिक्षण की यह पद्धति उस संस्था के लिए अधिक उपयोगी है जो कि पर्याप्त धन राशि खर्च करने की स्थिति में हो तथा प्रशिक्षणार्थियों की संख्या भी सीमित हो।

5 भूमिका निर्वाह पद्धति (Role-playing Method)—प्रशिक्षण की यह विधि बहुत ही आधुनिक मानी जाती है। इस विधि में प्रशिक्षणार्थी को स्वयं को अपने पद की भूमिका को निर्वाह करने का अवसर दिया जाता है। यह केवल नाटकीय तौर पर किया जाता है। इसके आधार पर यह ज्ञात किया जाता है, कि कोई व्यक्ति अपने पद पर भली प्रकार कार्य कर सकेगा या नहीं। कार्य करने में होने वाली त्रुटियों में सुधार के लिए प्रशिक्षणार्थी को आवश्यक निर्देश दिये जाते हैं।

इस विधि से प्रशिक्षण देने के लिये प्रशिक्षणार्थी को मानवीय सम्बन्धों की व्यावहारिक जानकारी प्रदान की जाती है और अपने व्यवहार में सुधार करने का उचित अवसर प्रदान किया जाता है।

लाभ (Advantages)

(i) प्रशिक्षण की यह विधि अच्छे मानवीय सम्बन्धों के निर्माण में योगदान देती है।

(ii) इसके द्वारा कार्य का सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों ही प्रकार का प्रशिक्षण प्राप्त होता है।

(iii) विभिन्न क्रियाओं के परिणामों को शीघ्र स्पष्ट किया जा सकता है।

(iv) प्रशिक्षणार्थी में आत्म विश्वास उत्पन्न हो जाता है।

(v) कार्य की छोटी छोटी बातों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त हो जाती है।

(vi) प्रशिक्षणार्थी की प्रगति का ज्ञान हो जाता है।

(vii) एक प्रशिक्षणार्थी को अन्य प्रशिक्षणार्थियों की प्रशंसा मिल सकती है।

(viii) प्रशिक्षणार्थी भावनात्मक रूप में विषय-वस्तु समझ सकता है।

(ix) बदलते परिवेश में प्रशिक्षण देना सरल हो जाता है।

(x) इस विधि से सम्पूर्ण समूह का ध्यान महत्वपूर्ण तथ्यों की ओर आकर्षित करना सरल होता है।

दोष (Disadvantages)

(i) यह पद्धति खर्चीली पड़ती है।

(ii) प्रशिक्षण में समय भी अधिक लगता है।

(iii) यह पद्धति को केवल अकेले ही प्रयुक्त नहीं की जा सकती है। इस पद्धति को तभी प्रभावशाली बनाया जा सकता है, जबकि अन्य पद्धति इसके साथ प्रयुक्त की जाय।

6 सचेतनता प्रशिक्षण (Sensitivity Training)—सचेतनता प्रशिक्षण जैसा कि नाम से स्पष्ट है, कि यह एक प्रकार की प्रशिक्षण विधि है, जिसका उद्देश्य प्रशिक्षणार्थियों के किसी समूह के प्रति सचेतनता जागृत करना है तथा उसके व्यवहार का दूसरों पर पड़ने वाले प्रभाव के प्रति जागृत करना है।

इस प्रकार के प्रशिक्षण का मूल उद्देश्य प्रशिक्षणार्थी में दूसरों से व्यवहार करने की योग्यता का विकास करना है। योडर (Yoder) के अनुसार, सामान्यतः सचेतनता प्रशिक्षण के निम्न प्रमुख उद्देश्य होते हैं—

(i) मानव व्यवहार के सम्बन्ध में समझ को बढ़ाना एवं सुधार करना तथा भावी व्यवहार के बारे में पूर्वानुमान करने की योग्यता का विकास करना।

(ii) प्रशिक्षणार्थियों को व्यवहार के मूल्यांकन की प्रक्रिया के विश्लेषण में लगाना।

(iii) उस प्रक्रिया का प्रदान एवं विश्लेषण करना जिसके द्वारा एक व्यक्ति दूसरे से सम्बन्धित रहते हैं।

(iv) प्रशिक्षणार्थियों के व्यवहार के प्रभावों के प्रति सजग करना।

(v) प्रशिक्षणार्थियों को दूसरे के विचार एवं भावनाओं के प्रति सचेतना को प्रकट करना।

(vi) प्रशिक्षणार्थियों में उनके दूसरों के साथ सम्बन्धों के प्रति सन्तुष्टि को बढ़ाना।

लाभ (Advantages)

(i) इस विधि में प्रशिक्षणार्थी को मानव व्यवहार को समझने में बड़ी सहायता मिलती है।

(ii) व्यावहारिक ज्ञान मिलता है।

(iii) दूसरों की भावनाओं एवं विचारों को समझने में सहायक है।

दोष (Disadvantages)

(i) इस प्रशिक्षण में अनावश्यक ही बहुत सारा समय व्यर्थ हो जाता है।

(ii) इस विधि में व्यक्तिगत गोपनीयता समाप्त हो जाती है।

(iii) यह मानव प्रकृति की काल्पनिक मान्यताओं पर आधारित विधि है।

(iv) यह विधि केवल निर्देशात्मक है।

(v) यह विधि केवल संस्था के वातावरण को ही ध्यान में रखती है। बाह्य दुनिया को ध्यान में नहीं रखती है।

उपर्युक्त दोषों के उपरान्त भी यह विधि अमरिका की कई संस्थाओं में बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुई है।

7. **विशेष पाठन विधि** (Special Reading Method)—कुछ संस्थाएँ अपने प्रशिक्षणार्थियो के लिए विशेष पाठन कार्यक्रम आयोजित करती हैं। इस पाठन कार्यक्रम मे कोई एक व्यक्ति किसी विषय के सम्बन्ध मे अपना भाषण पढता है और अन्य प्रशिक्षणार्थी उसे सुनते हैं और विचार विमर्श करते हैं।

लाभ एव दोष (Advantage and disadvantage)

इस विधि का एक लाभ यह है कि सबके ज्ञान का सामान्य स्तर बढता है। किन्तु सबसे बडा दोष यह है कि कई प्रशिक्षणार्थी पाठन कार्यक्रमो मे रुचि नही लेते हैं अत कार्यक्रम का उद्देश्य पूरा नही हो पाता है।

8 **विक्रय-नाट्य प्रदर्शन** (Sales Dramatisation Method)—विक्रयकर्त्ताओ को प्रशिक्षण देने की यह एक अत्यधिक रोचक एव लाभप्रद पद्धति है। इस पद्धति के अन्तर्गत नये विक्रयकर्त्ताओ के समक्ष विक्रय कार्य को नाटकीय ढग से प्रस्तुत किया जाता है। इसमे पुराने विक्रयकर्त्ता तथा विक्रय प्रबन्धक विक्रय-व्यवहारो को पूरा करने के लिए किये जाने वाले कार्यों का अभिनय करके, नये विक्रयकर्त्ताओ को बताने का प्रयास करते हैं।

इसमे दो पुराने विक्रयकर्त्ता या अधिकारी अभिनय करते हैं, जिनमे से एक क्रेता की भूमिका निभाता है, तो दूसरा विक्रेता की। क्रेता अपनी समस्याएँ बताता है और विक्रेता बडे ही सहज भाव से उन्हे हल करता है। इस प्रकार इस अभिनय को देखकर नये विक्रयकर्त्ता यह अनुमान लगा सकते है, कि भविष्य मे उन्हे किस प्रकार का कार्य किस विधि से करना होगा।

लाभ (Advantages)—इस विधि से विक्रयकर्त्ताओ को प्रशिक्षण देने के निम्न प्रमुख लाभ हैं—

(i) वास्तविक रूप से विक्रय स्थिति को समझने का अवसर मिलता है।

(ii) कुशल विक्रयकर्त्ताओ द्वारा प्रशिक्षण दिया जाता है।

(iii) प्रशिक्षण प्राप्त करने मे रुचि बनी रहती है।

(iv) विक्रय विधि का क्रमबद्ध रूप से ज्ञान करवाया जा सकता है।

(v) यह विधि व्यावहारिक पहलू के साथ साथ सैद्धान्तिक पहलुओ की भी जानकारी देती है।

दोष या सीमाएँ *(Disadvantages or Limitations)*

(i) इस विधि से प्रशिक्षण देने से विक्रयकर्त्ताओ को स्वय को कार्य करने का अवसर नही मिल पाता है।

(ii) कई प्रशिक्षणार्थी प्राय अभिनय पक्ष को ही अधिक ध्यान मे रखते हैं, इससे प्रशिक्षण प्राप्त करने की कोशिश कम करते हैं।

10 **विशेष पाठ्यक्रम** (Special Courses)—आजकल कई विश्वविद्यालयो ने विक्रयकला, विपणन प्रबन्ध, विक्रय प्रबन्ध विषयो के प्रशिक्षण के लिए कई

पाठ्यक्रम प्रारम्भ कर दिये है। अत कोई भी सस्था अपने विक्रयकर्त्ताओं को प्रशिक्षण के लिए इन विश्वविद्यालयो के इन पाठ्यक्रमो म प्रवेश दिलवा सकते है।

II वैयक्तिक प्रशिक्षण पद्धतियाँ
(Individual Training Methods)

वैयक्तिक रूप से प्रशिक्षण दने की प्रमुख पद्धतिया का नीचे वर्णन किया गया है—

1 कार्य पर प्रशिक्षण (On the Job Training)—काय पर प्रशिक्षण को ही उद्योग के अन्तर्गत प्रशिक्षण (Training within Industry or T W I) या गुरु शिष्य प्रशिक्षण (Coach and Pupil Training) भी कहते हैं। यह प्रशिक्षण की अत्यधिक महत्त्वपूर्ण पद्धति है। स्प्रिगल तथा जेम्स (Spriegel and James) क मतानुसार **"यह सर्वाधिक रूप से प्रयुक्त की जाने वाली प्रशिक्षण विधि है।"** अनको विद्वानो ने यह मत व्यक्त किया है कि किसी भी काय को करके ही उचित प्रकार से एव सरलता से सीखा जा सकता है। **सोफोक्लेस** (Sophocles) के अनुसार **"प्रत्येक व्यक्ति को काय को करते हुए सीखना चाहिए, क्योंकि यद्यपि आप यह सोचते हैं, कि आप उसे जानते हैं, फिर भी जब तक आप प्रयास नहीं कर लेते, तब तक आप विश्वस्त नही हो सकते।'** प्रशिक्षण की इस विधि म नये आने वाले विक्रयकर्त्ता को किसी पुराने सधे हुए विक्रयकर्त्ता के पास रखा जाता है और वह सधा हुआ विक्रयकर्त्ता उसको उसके काय के सम्बन्ध म आवश्यक बातो की जानकारी देता है और उनसे काय करवाता है। नया विक्रयकर्त्ता पुराने विक्रयकर्त्ता की देख रेख म कुछ दिनो तक काय करता है और जब उसे यह विश्वास हो जाता है कि वह सन्तोषप्रद रूप से काय करने लग गया है तब उसको अपना काम बता दिया जाता है। प्रशिक्षण की इस विधि म प्रशिक्षण देने क लिए प्रक्रिया चार्ट, चित्र म युअल (Manuals) क्रियात्मक प्रदशन टेप रिकार्ड आदि का प्रयोग किया जाता है।

लाभ (Advantages)—प्रशिक्षण की इस विधि के प्रमुख निम्न लाभ हैं—

(i) यह विधि अत्यन्त सरल है।
(ii) यह विधि पर्याप्त मितव्ययी है।
(iii) प्रशिक्षणार्थियो को काय म प्रत्यक्ष रूप से उत्प्रेरणा मिलती है।
(iv) प्रशिक्षण मे प्रगति का मूल्यांकन साथ ही साथ हो जाता है।
(v) प्रशिक्षण के लिए कृत्रिम वातावरण बनाने की आवश्यकता नही पडती है।
(vi) अलग म प्रशिक्षको एव यत्रो की व्यवस्था नहीं करनी पडती।

दोष (Disadvantages)—यद्यपि 'काय पर प्रशिक्षण' की विधि को सर्वाधिक उपयुक्त समझा जाता है, किन्तु इसके भी कुछ प्रमुख दोष हैं, व निम्न प्रकार हैं—

(i) नये विक्रयकर्त्ता को कार्य पर लगा देने से हानि की सम्भावना बनी रहती है।

(ii) प्रशिक्षणार्थी को प्रशिक्षण सम्बन्धी आदेश एवं निर्देश क्रमवार नहीं मिल पाते हैं। दूसरे शब्दों से यह विधि अव्यवस्थित विधि है।

(iii) इस विधि से प्रशिक्षण देने में प्रशिक्षण के सिद्धान्तों का पूर्णत पालन नहीं किया जा सकता है।

(iv) कई पुराने नये विक्रयकर्त्ता भी प्रशिक्षण देने की उचित विधि से परिचित नहीं होते हैं।

(v) बहुत अधिक प्रशिक्षणार्थी होने पर यह विधि अनुपयुक्त रहती है।

उपयुक्तता—(Suitability) प्रशिक्षण की यह विधि वहीं अनुपयुक्त रहती है जहाँ,

(i) कार्य बहुत ही सरल प्रकृति का हो,

(ii) प्रशिक्षणार्थियों की संख्या बहुत ही कम हो,

(iii) कार्य में जोखिम कम हो,

(iv) कार्य की कृत्रिम परिस्थितियाँ उत्पन्न करना अत्यधिक कठिन हो, आदि।

2 वैयक्तिक परिचर्चा (Personal Discussion)—प्रशिक्षण की इस विधि में विक्रयकर्त्ता एवं विक्रय प्रबन्धक या अन्य विक्रय अधिकारी दोनों आपस में मिल-बैठकर विक्रय की समस्याओं यथा—विक्रय समय का प्रयोग किस प्रकार किया जाय, विक्रयकर्त्ता का कार्य मार्ग (Route) किस प्रकार का हो, ग्राहकों से भेंट करने की तालिका किस प्रकार तय की जाय, विक्रय की असामान्य समस्याएँ किस प्रकार सुलझाई जाँय आदि को हल करने का प्रयास करते हैं।

लाभ—(Advantages)—इस विधि के प्रमुख लाभ इस प्रकार हैं—

(i) प्रत्येक विक्रयकर्त्ता की समस्याओं पर पूर्ण ध्यान दिया जा सकता है।

(ii) विक्रयकर्त्ता तथा उसके अधिकारी में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो अत निरीक्षण एवं नियन्त्रण में अधिकारी को सुविधा मिलती है।

दोष या सीमाएँ (Disadvantages or Limitations)

(i) इस विधि का सबसे बड़ा दोष यह है कि यह विधि बहुत खर्चीली पड़ती है। क्योंकि प्रत्येक विक्रयकर्त्ता की समस्या को अलग-अलग सुलझाया जाता है।

(ii) व्यक्तिगत रूप से मिलकर विक्रय समस्याएँ सुलझाते समय, प्रायः विक्रयकर्त्ता एवं अधिकारी गप शप करने लग जाते हैं तथा समस्याओं का समाधान होने से रह जाता है।

इन सीमाओं को ध्यान में रखकर यह कहा जा सकता है, कि यह विधि तभी अपनाई जानी चाहिये, जबकि प्रत्येक विक्रयकर्त्ता की समस्याएँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हों।

जब इस विधि का प्रयोग किया जाय तब इस बात को ध्यान मे रखना चाहिये कि इस सम्मेलन के समय का उपयोग पूर्णत विक्रय समस्याओ के हल के लिए ही हो।

3 पत्राचार (Correspondence)—पत्राचार के द्वारा भी विक्रयकर्त्ताओ को प्रशिक्षण दिया जा सकता है। वास्तव मे प्रशिक्षण की यह विधि विक्रयकर्त्ता की नियुक्ति से लेकर उसकी सेवा समाप्ति तक प्रशिक्षण देने के लिए प्रयुक्त की जा सकती है। जिन संस्थाओ की निर्मित वस्तुएँ तकनीकी प्रकृति की होती है तथा जिनमे बार बार परिवर्तन होते रहते है प्रशिक्षण की यह विधि सर्वाधिक रूप से प्रयोग की जाती है। औषधि निर्माण करने वाली संस्थाएँ प्राय अपने विक्रयकर्त्ताओ को वस्तुओ की नवीनतम बातो की जानकारी देने के बारे मे लगातार पत्र व्यवहार करती रहती है। इस प्रकार की संस्थाएँ निरन्तर रूप से अनुसंधान करके अपनी वस्तुओ मे लगने वाले विभिन्न पदार्थों (Components or Content) मे परिवर्तन करके उनके गुणो मे वृद्धि करती है। अतएव विक्रयकर्त्ताओ को इन नवीनतम गुणो के बारे मे जानकारी देने के लिए प्रशिक्षण की यही विधि अपनाई जाती है।

कई निर्माता अपने विक्रयकर्त्ताओ के लिए ही नही बल्कि अपने थोक एव फुटकर व्यापारी के विक्रयकर्त्ताओ को प्रशिक्षण देने के लिए भी इसी विधि का प्रयोग करते है। वे उनको भी अपनी वस्तुओ मे हुए परिवर्तनो के बारे मे जानकारी देने के लिए छपे हुए पत्र या लघु पुस्तिकाएं भेज देती है।

लाभ (Advantage)—इस विधि से प्रशिक्षण देने के निम्नलिखित लाभ होते है—

(i) विक्रयकर्त्ताओ को किसी एक स्थान पर एकत्रित नही होना पडता है।

(ii) इस विधि से प्रशिक्षण देने मे खर्च कम आता है।

(iii) विक्रय पत्र धारक के समय का बचत होती है क्योकि वह खाली समय मे बैठकर ऐसे पत्रो की विषय वस्तु (Subject matter) तैयार कर सकता है।

(iv) अपनी संस्था के विक्रयकर्त्ताओ के साथ साथ थोक तथा फुटकर व्यापारियो के विक्रयकर्त्ताओ को प्रशिक्षण दिया जा सकता है।

दोष या सीमाए (Disadvantages or Limitations)—इस विधि से प्रशिक्षण देने की कई सीमाएं है जो निम्नलिखित है—

(i) यह विधि बिल्कुल नये विक्रयकर्त्ताओ के लिए अनुपयुक्त है।

(ii) इस विधि का प्रयोग के उपरान्त भी विक्रयकर्त्ताओ को प्रशिक्षण देने के लिए अन्य साधनो का प्रयोग करना पडता है।

(iii) व्यक्तिगत सम्पर्क का अभाव रहता है।

(iv) पत्रो की विषय वस्तु बनाने के लिए पर्याप्त परिश्रम की आवश्यकता पडती है।

(v) पत्राचार से प्रशिक्षण देने मे पर्याप्त प्रशासकीय चातुर्य की आवश्यकता पड़ती है।

उपयुक्तता (Suitability)—यह प्रणाली उन सस्थाओ के लिए अधिक उपयुक्त है, जिनकी वस्तुओ के तकनीकी गुणों मे बार बार परिवर्तन होते रहते हैं तथा उन परिवर्तनो की विक्रयकर्त्ताओ को तत्काल जानकारी देना आवश्यक होता है। द्वितीय, यह प्रणाली वहाँ पर भी उपर्युक्त रहती है, जहाँ पर भी विक्रयकर्त्ता अनुभवी हो तथा वे दूर दूर तक फैले हुए हो, जिनसे बार-बार सम्पर्क करना सम्भव न हो।

अभ्यास के लिए प्रश्न

1 विक्रयकर्त्ताओ के प्रशिक्षण के उद्देश्य एव महत्त्व पर प्रकाश डालिये।
Discuss the importance and objects of Training salesmen—

2 प्रशिक्षण की योजना को बनाते समय किन किन बातो को निर्धारित करना चाहिये।
What factors should be decided while framing a training plan?

3 विक्रयकर्त्ताओ को प्रशिक्षण देने की कौन कौन सी विधियाँ प्रचलित हैं। प्रत्येक के लाभ-दोषों का सक्षेप मे वर्णन कीजिये।
What are the different popular methods of training salesmen? Discuss in brief the advantages and disadvantages of each of them

6

विक्रयकर्त्ताओं का पारिश्रमिक

(Remuneration of Salesmen)

It is not easy to formulate a compensation plan that can be trusted to attract motivate and keep good salesmen

—Philip Kotler

विक्रयकर्ताओं की कार्यकुशलता बढ़ाने, संस्था के लक्ष्यों को प्राप्त करने तथा संस्था में अच्छे विक्रयकर्ताओं को प्राप्त करने तथा उन्हें बनाये रखने के लिए अच्छी पारिश्रमिक पद्धतियों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। कई बार पारिश्रमिक योजनाओं के निर्माण एवं संचालन में पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता है। किन्तु इस बात को सदैव ध्यान में रखा जाना चाहिए कि उचित पारिश्रमिक योजना तथा उसके उचित रूप में संचालन पर संस्था के विक्रय व्यवसाय की सफलता निर्भर करती है। इस अध्याय में हमने विभिन्न पारिश्रमिक योजनाओं तथा अच्छी पारिश्रमिक योजना के लक्षणों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है।

अच्छी पारिश्रमिक पद्धति के उद्देश्य
(Objectives of a Sound Remuneration Plan)

अच्छी पारिश्रमिक योजना के कई उद्देश्य हो सकते हैं। **प्रो० नाइस्टोम** (Nystrom) ने निम्न प्रमुख उद्देश्य बताये हैं —

1 अधिकाधिक लाभप्रद विक्रय को प्रोत्साहित एवं अभिप्रेरित करना।

2 प्रत्येक विक्रय क्षेत्र में संस्था की तात्कालीन एवं दीर्घकालीन स्थिति को सशक्त करना।

3 संस्था में स्वामिभक्त विक्रयकर्ताओं का निर्माण करना तथा उन्हें संस्था में रोकना।

4 पारिश्रमिक योजना के लोचशीलता के साथ साथ सरलतापूर्वक संचालित करना।

5 विक्रयकर्ताओं को आश्वस्त करना कि उनका पारिश्रमिक उनके प्रयासों क्षमता के अनुसार है।

6 न्यूनतम लागत पर कुशलतापूर्वक उत्पादक से उपभोक्ता तक माल पहुंचाना।

7 विक्रयकर्ताओं को संस्था के योग्य बनाना या उनको हटाना, जो संस्था के विक्रय उद्देश्य के अनुरूप नहीं हैं।
8 विक्रयकर्ताओं पर कुशलतापूर्वक नियन्त्रण स्थापित करना।
9 विक्रय के अतिरिक्त कार्यों के लिए विक्रयकर्ताओं का प्रयोग करना।
10 कुशल विक्रयकर्ताओं को अधिक पारिश्रमिक प्रदान करना।

एक अच्छी पारिश्रमिक योजना के आवश्यक तत्व
(Essentials of a Sound Remuneration Plan)

विक्रय कार्य एक महत्त्वपूर्ण कार्य है जिसकी सफलता विक्रयकर्ता के परिश्रम पर निर्भर करती है। उसे परिश्रम के लिए प्रेरित करने हेतु अच्छी पारिश्रमिक योजना का होना आवश्यक है। अच्छे विक्रयकर्ता संस्था में तभी आना एवं ठहरना पसन्द करेंगे, जबकि संस्था में उचित पारिश्रमिक योजना होगी।

उचित पारिश्रमिक योजना का निर्माण करना एक सरल कार्य नहीं है। कोटलर (Kotler) ने उचित ही लिखा है कि ऐसी पारिश्रमिक योजना का निर्माण करना एक सरल कार्य नहीं है, जिससे कि अच्छे विक्रयकर्ताओं को आकर्षित किया जा सके, अभिप्रेरित किया जा सके तथा उन्हें संस्था में रोका जा सके। किन्तु एक पारिश्रमिक योजना में कुछ महत्त्वपूर्ण गुण पाये जाने चाहिये जिससे कि संस्था में विक्रयकर्ता अधिक समय तक ठहर सकें, संस्था में मन लगाकर कार्य कर सकें तथा संस्था में अच्छे विक्रयकर्ताओं को आकर्षित किया जा सके। सामान्यतः एक अच्छी पारिश्रमिक योजना में निम्नलिखित गुणों या तत्वों का होना आवश्यक है –

1. नियन्त्रण (Control)—सामान्यतः प्रबन्धक या नियोक्ता उस पारिश्रमिक योजना को श्रेष्ठ समझते हैं, जिसके द्वारा वे विक्रयकर्ताओं पर आसानी से नियन्त्रण स्थापित कर सकते हों। कोटलर का मत है कि प्रबन्धक उस योजना को पसन्द करते हैं, जिसके द्वारा उन्हें विक्रयकर्ता द्वारा व्यय किये जाने वाले समय पर नियन्त्रण करने में सहायता मिलती हो। "Management likes a plan which facilitates their control over how salesmen spend their time" अत्यधिक नियन्त्रण स्थापित करने के उद्देश्य से कई संस्थाएँ केवल वेतन पद्धति का ही अपनाती हैं। जबकि केवल कमीशन पद्धति में नियोक्ताओं का विक्रयकर्ताओं पर कोई विशेष नियन्त्रण नहीं रहता है। अच्छी पारिश्रमिक पद्धति वह होती है जिसमें विक्रयकर्ताओं पर निरीक्षण या सामान्य नियन्त्रण बना रह सके।

2 मितव्ययता (Economy)—नियोक्ताओं के दृष्टिकोण से पारिश्रमिक योजना में मितव्ययता भी होनी चाहिये। मितव्ययता का तात्पर्य विक्रयकर्ताओं को आवश्यकता से कम पारिश्रमिक देने से नहीं है। इसका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक विक्रयकर्ता को उसके कार्यों एवं प्रयासों के अनुरूप पारिश्रमिक मिले। पारिश्रमिक विधि के संचालन करने में अधिक प्रशासनिक व्यय भी नहीं होने चाहिये। यदि

पारिश्रमिक योजना के संचालन करने तथा उसे लागू करने में संस्था पर काफी आर्थिक भार पड़ता है, तो वह योजना कभी भी सफलतापूर्वक लागू नहीं की जा सकती है।

3. लोचशीलता (Flexibility)—अच्छी पारिश्रमिक योजना का लोचशील होना भी अपरिहार्य है। किन्तु बहुत कम पारिश्रमिक योजनाओं में ही गुण पाया जाता । इसके फलस्वरूप संस्था में परिस्थितियों के थोड़ा सा बदलने पर ही नई पारिश्रमिक योजनाओं का निर्माण करना पड़ता है। इस गुण के अभाव में पुरानी योजना में परिवर्तन करना सम्भव नहीं होता है। प्रबन्धकों एवं नियोक्ताओं का सदैव यह प्रयास होना चाहिये कि पारिश्रमिक योजना में लोचशीलता का गुण विद्यमान रहे तथा पारिश्रमिक योजना में परिवर्तन तभी करना पड़े जब परिस्थितियाँ में एकदम परिवर्तन हो जाय।

4. सरलता (Simplicity)—प्रत्येक पारिश्रमिक योजना सरल होनी चाहिये। दूसरे शब्दों में पारिश्रमिक योजना ऐसी हो जिसे आसानी से लागू किया जा सके। पेचीदा (Complicated) पारिश्रमिक योजनाएं लागू करने में बड़ी कठिनाइयाँ आती है। उन्हें लागू करना आसान कार्य नहीं है उनसे पारिश्रमिक की गणना करने में भी कठिनाई आती है। अतः पारिश्रमिक योजनाएँ ऐसी हों, जिन्हें आसानी से समझा जा सके, जिनसे आसानी से पारिश्रमिक की गणना की जा सके, जिन्हें विक्रयकर्त्ताओं तथा विक्रय निरीक्षकों को भी भली प्रकार समझाया जा सके।

पारिश्रमिक योजना को यदि विक्रयकर्त्ता भली प्रकार नहीं समझ पाते हैं, तो उसमें असंतोष पैदा हो सकता है। अतः पारिश्रमिक योजना का निर्माण करते समय इस बात का यथासम्भव ध्यान रखा जाय कि उसमें तनिक भी अस्पष्टता तथा जटिलता न रह तथा विक्रयकर्त्ता के सम्भावित सभी प्रश्नों तर्कों विरोधों, आदि के पैदा होने से पहले ही उनका समाधान हो जाय।

5. आय की निरन्तरता (Regularity of Income)—प्रत्येक व्यक्ति एक निश्चित आय निरन्तर रूप से प्राप्त करना चाहता है। चूंकि विक्रय की मात्रा पूर्ण रूप से विक्रयकर्त्ता के नियन्त्रण में नहीं है। अतएव वह और भी अधिक सचेत होकर आय की निरन्तरता पर ध्यान देता है। प्रत्येक विक्रयकर्त्ता निरन्तर आय प्राप्त करके अपनी तथा अपने परिवार की आवश्यक आवश्यकताओं को पूरा करने निश्चित होना चाहता है। अतएव प्रत्येक अच्छी पारिश्रमिक योजना में इस गुण का पाया जाना अत्यावश्यक है। एक अच्छी पारिश्रमिक पद्धति में विक्रयकर्त्ताओं को एक निश्चित वेतन के अलावा कमीशन भी दिया जाता है जिससे बिक्री की मात्रा बढ़ने पर आय अधिक प्राप्त हो सके तथा आय में निरन्तरता भी बनी रहे।

6. न्यायपूर्ण (Fair)—प्रत्येक पारिश्रमिक योजना में इस गुण का पाया जाना भी महत्वपूर्ण है। पारिश्रमिक योजना में इस बात पर पर्याप्त ध्यान दिया

जाना चाहिये कि समान योग्यता एव अनुभव वाले व्यक्तियों को समान पारिश्रमिक मिले। केवल अपनी ही सस्था मे कार्य करने वाले विक्रयकर्त्ताओं को समान पारिश्रमिक मिले, इतना ही पर्याप्त नही है। दूसरी सस्थाओ मे कार्य करने वाले विक्रयकर्त्ताओं के पारिश्रमिक से भी अपने विक्रयकर्त्ताओं का पारिश्रमिक कम न हो तथा महगाई के बढने के साथ-साथ पारिश्रमिक मे समायोजन अवश्य किया जाय।

7. सामान्य से अधिक योग्य को प्रतिफल (Reward for above-average performance)—अच्छी पारिश्रमिक योजना सामान्य से अधिक योग्य व्यक्तियों को भी ध्यान मे रखती है। अधिक योग्य व्यक्तियों को अधिक पारिश्रमिक देने की व्यवस्था प्रत्येक अच्छी पारिश्रमिक योजना मे अवश्य होनी चाहिये। यदि ऐसा नहीं होगा, तो अच्छे एव कुशल विक्रयकर्त्ता सस्था को छोडकर दूसरी सस्थाओ म चले जावेंगे। यदि इस बात पर ध्यान दिया गया और अच्छे विक्रयकर्त्ताओं को अधिक पारिश्रमिक की व्यवस्था की गई, तो सस्था मे सदैव अच्छे तथा कुशल विक्रयकर्त्ताओं की सेवाएँ प्राप्त होती रहेंगी।

8 **विक्रयकर्त्ताओं के लिए लाभप्रद** (Beneficial to Salesmen)—एक *पारिश्रमिक पद्धति सदैव विक्रयकर्त्ताओं के लिए भी लाभप्रद होनी चाहिये।* यह पारिश्रमिक योजना कभी भी सफल नहीं हो सकती है, जिससे विक्रयकर्त्ताओं का हित न हो सके। एक अच्छी पारिश्रमिक योजना उसे कहेगे। जिसमे विक्रयकर्त्ताओं को उचित पारिश्रमक मिले तथा पारिश्रमिक यथा समय मिले। पारिश्रमिक योजना से विक्रयकर्त्ताओ को वर्तमान आवश्यकताओ के साथ साथ भावी आवश्यकताओ की पूर्ति भी होनी चाहिये। ऐसी योजना मे यात्रा भत्ता, दैनिक भत्ता, महगाई भत्ता, वाहन भत्ता, शहर क्षतिपूर्ति भत्ता, मकान भत्ता, बीमारी भत्ता, पेंशन, भविष्य निधि आदि की व्यवस्था भी होनी चाहिये।

9. विक्रयकर्त्ताओं की कार्यक्षमता की वृद्धि मे सहायक हो (Helpful in Increasing Efficincy of Salesmen)—पारिश्रमिक योजना बनाते समय इस बात को भी ध्यान मे रखना चाहिये, कि इसके लागू करने से विक्रयकर्त्ताओं की कार्यक्षमता मे वृद्धि हो। यह योजना उन्हे अधिकाधिक कार्य करने की प्रेरणा दे सके तथा अन्ततोगत्वा उनकी कार्य क्षमता में वृद्धि हो सके। इनसे विक्रयकर्त्ताओं को पारिश्रमिक भी अधिक मिलेगा।

10 *विक्रय वृद्धि मे सहायक (Helpful in Increasing Sales)*—अच्छी पारिश्रमिक योजना के लिए आवश्यक है कि वह सस्था क कुल विक्रय मे वृद्धि करने म भी सहायक हो सके। विक्रयकर्त्ताओं की सख्या म वृद्धि होने मात्र से ही सस्था के विक्रय मे वृद्धि नहीं हो जाती है। सस्था के विक्रय मे वृद्धि तब होती है, जबकि सस्था की पारिश्रमिक योजना विक्रयकर्त्ताओं को अधिक कार्य करने तथा उन्हे सस्था मे बने रहने के लिए अभिप्रेरित करे। एक अच्छी पारिश्रमिक योजना मे विक्रय-

कर्त्ताओं को एक निश्चित वेतन के अलावा बिक्री की मात्रा के आधार पर कमीशन देने की व्यवस्था की जाती है।

विक्रयकर्त्ताओं के पारिश्रमिक को निर्धारित या प्रभावित करने वाले तत्व

(Factors Affecting Remuneration of Salesmen)

विक्रयकर्त्ताओं को दिया जाने वाला पारिश्रमिक कई बातों से प्रभावित होता है। विभिन्न उद्योगों में कार्य करने वाले विक्रयकर्त्ताओं का पारिश्रमिक प्राय भिन्न भिन्न होता है। इसी प्रकार एक ही उद्योग की विभिन्न संस्थाओं तथा एक ही संस्था के विभिन्न विक्रयकर्त्ताओं के पारिश्रमिक के स्तर में भी अन्तर पाया जाता है। इसके कई कारण हो सकते हैं। सामान्यत प्रमुख कारण निम्न कारणों में से ही होते है—

1 वस्तु की प्रकृति (Nature of the Product)—वस्तु की प्रकृति विक्रय कर्त्ताओं के पारिश्रमिक को बहुत बडी सीमा तक प्रभावित करती है। यदि वस्तुएँ ऐसी है जिनकी माग पर्याप्त है तथा दैनिक जीवन में प्रयोग आने वाली है तो उनके विक्रयकर्त्ताओं के पारिश्रमिक की दर प्राय कम होती है। इसके विपरीत यदि विक्रय कर्त्ता द्वारा बेची जाने वाली वस्तुएँ विलासिता की है या जिनका उपयोग सीमित है उनके लिए पारिश्रमिक भी अधिक ऊँची दर से देना पडता है।

2 बाजार क्षेत्र (Market Area)—जिन वस्तुओं का बाजार क्षेत्र सीमित होता है उन वस्तुओं के विक्रयकर्त्ताओं का पारिश्रमिक प्राय विस्तृत बाजार क्षेत्र वाली वस्तुओं के विक्रयकर्त्ताओं की तुलना में अधिक होता है। दूसरे शब्दों में जब एक ही स्थान पर अधिक क्रेता होते हैं तो पारिश्रमिक की दर सामान्यत कम होती है। इसके विपरीत जब क्रेता छितराये हुए (Scattered) होते है तो पारिश्रमिक की दर प्राय अधिक होती है।

3 वस्तुओं का मूल्य (Price of the Product)—वस्तुओं का मूल्य भी विक्रयकर्त्ताओं के पारिश्रमिक को प्रभावित करता है। यदि वस्तुएँ बहुत अधिक मूल्य वाली होती हैं तो उनके क्रेता कम रहते है। अत पारिश्रमिक की दर भी अधिक होती है किन्तु यदि वस्तुएँ बहुत ही सामान्य मूल्य वाली है तो उन्हे बेचना कठिन नही होता है और प्राय पारिश्रमिक की दर भी कम होती है।

4 प्रतिस्पर्द्धात्मक स्थिति (Competitive Position)—वस्तुओं की प्रतिस्पर्द्धात्मक स्थिति वस्तुओं की माग को प्रभावित करती है, जिसके परिणामस्वरूप विक्रयकर्त्ता के पारिश्रमिक पर भी प्रभाव पडता है। यदि वस्तुओं के विक्रय में अधिक प्रतिस्पर्द्धा का सामना नही करना पडता है और वस्तुएँ सामान्य प्रयासों से ही बेची जा सकती हैं तो पारिश्रमिक अपेक्षाकृत कम ही दिया जाता है। इसके विपरीत यदि तीव्र प्रतिस्पर्द्धा का सामना करना पडता है तो विक्रयकर्त्ता को वस्तु के विक्रय के लिए प्रयास भी अधिक करने पडते है। फलत पारिश्रमिक तुलनात्मक रूप में अधिक ही मिलता है।

5 विज्ञापन नीति (Advertising Policy)—संस्था की विज्ञापन नीति से संस्था की वस्तुओं के विक्रय पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। यदि संस्था विज्ञापन पर अधिकाधिक रूप से विनियोजन करती रहती है, तो संस्था की वस्तुओं की माग निरन्तर रूप से बढ़ती रहती है। अत. विक्रयकर्ता को वस्तुओं के विक्रय मे अधिक परिश्रम नही करना पडता है। जबकि विपरीत परिस्थिति मे, विक्रयकर्त्ता को बहुत समय एव परिश्रम लगाना पड़ता है और इसके बाद भी वह बहुत अधिक मात्रा मे वस्तु को बेचने मे सफल नही हो पाता है। अतएव स्पष्ट है कि विज्ञापन पर अधिक ध्यान देने वाली संस्था के विक्रयकर्त्ता के पारिश्रमिक की दर विज्ञापन न करने वाली संस्था के विक्रयकर्त्ता की तुलना मे काफी कम होगी।

6. संस्था की स्थिति (Position of the Institution)—कई बार संस्थान की स्थिति के अनुसार भी पारिश्रमिक की दरो मे अन्तर पाया जाता है। प्राय नई संस्था अपने विक्रयकर्त्ताओं को उद्योग की पुरानी संस्थाओं के विक्रयकर्त्ताओं के बराबर पारिश्रमिक नही दे पाती है।

7. विक्रयकर्त्ताओं का अनुभव (Experience of Salesmen)—प्राय कई संस्थाएँ अनुभवी विक्रयकर्त्ताओं को नये विक्रयकर्त्ताओं की तुलना मे पारिश्रमिक अधिक ऊँची दर से देती है। इस प्रकार अनुभव पारिश्रमिक को प्रभावित करता है।

8 रहन-सहन का स्तर (Standard of Living)—जन सामान्य का रहन-सहन का स्तर भी विक्रयकर्त्ताओं के पारिश्रमिक को प्रभावित करता है। दूसरे लोगो का वेतन, कार्य दशाएँ एव सुविधाएँ विक्रयकर्त्ताओं के पारिश्रमिक को अवश्य प्रभावित करती है।

9 प्रतिस्पर्द्धी संस्थाओं के विक्रयकर्त्ताओं का पारिश्रमिक (Remuneration of Salesman of the Competitive Institutions)—किसी संस्था के विक्रय-कर्त्ताओं का पारिश्रमिक तय करते समय दूसरी संस्थाओं मे विक्रयकर्त्ताओं को दिये जाने वाले पारिश्रमिक को भी ध्यान मे रखा जाता है। कई संस्थाएँ अच्छे विक्रयकर्त्ताओं को आकर्षित करने के लिए दूसरी संस्थाओं की अपेक्षा अधिक पारिश्रमिक देती हैं। अत दूसरी संस्थाओं द्वारा दिये, जाने वाले पारिश्रमिक को ध्यान मे रखना बहुत ही आवश्यक हो जाता है।

10 संस्था द्वारा प्रदत्त सुविधाएँ (Facilities provided by the Institution)—कई बार संस्थाएँ प्रत्यक्ष मौद्रिक पारिश्रमिक तो प्रतिस्पर्द्धी संस्थाओं के बराबर या कम रख देती हैं, किन्तु अन्य सुविधाएँ अधिक दे देती हैं। उदाहरणार्थ नि शुल्क आवास की सुविधा, वाहन सुविधा, नि शुल्क चिकित्सा सुविधा, सवेतन अवकाश, भ्रमणकारी अवकाश तथा भत्ता आदि। ऐसी स्थिति मे वास्तविक पारिश्रमिक बहुत अधिक हो जाता है। अतएव प्रत्यक्ष मौद्रिक पारिश्रमिक कम रखा जाता है। इस प्रकार संस्था द्वारा दी जाने वाली अमौद्रिक सुविधाओं का वास्तविक पारिश्रमिक पर प्रभाव पड़ता है।

पारिश्रमिक पद्धतियाँ
(Methods of Remuneration)

पारिश्रमिक भुगतान की अनेकों पद्धतियाँ प्रचलित है। किन्तु सामान्यत विक्रयकर्त्ताओ के पारिश्रमिक का भुगतान करने के लिए निम्न पद्धतियो का प्रयोग किया जाता है—

1 केवल वेतन पद्धति	5 लाभ भागिता पद्धति
2 केवल कमीशन पद्धति	6 विशिष्ट कार्य पद्धति
3 वेतन तथा कमीशन पद्धति	7 भत्ता पद्धति
4 आहरण लेखा तथा कमीशन पद्धति	8 प्रदत्त सुविधा पद्धति

1 केवल वेतन पद्धति
(Straight Salary Plan)

पारिश्रमिक भुगतान की इस सर्व साधारण रूप से जानी मानी पद्धति मे विक्रयकर्त्ता को निश्चित राशि मासिक पाक्षिक अथवा साप्ताहिक आधार पर मिलती रहती है। हाँ इस सम्बन्ध में यह बताना आवश्यक नही होगा कि वेतन की निश्चित राशि मे वार्षिक वेतन वृद्धि या अन्य किसी कारण से वेतन वृद्धि जो निरन्तर रूप से विक्रयकर्त्ता को मिलने वाली हो सम्मिलित है। पारिश्रमिक की इस पद्धति मे विक्रयकर्त्ता की विक्रय मात्रा या विक्रय प्रगति (S le Perf rm ce) का वेतन से कोई सम्बन्ध नही होता है। उदाहरणार्थ यह मान लीजिए एक विक्रयकर्त्ता ने जुलाई मे एक लाख रुपये के माल के क्रयादेश प्राप्त किये तथा अगस्त मे एक हजार रुपये के क्रयादेश प्राप्त किये हैं। अब हम यह भी मान लें कि उस विक्रयकर्त्ता को एक हजार रुपया मासिक वेतन मिलता है। इन परिस्थितियो मे उस विक्रयकर्त्ता को जुलाई महीने के लिये भी एक हजार रुपये का वेतन मिलेगा तथा अगस्त महीने के लिये भी उतना ही वेतन मिलेगा। अगस्त के महीने मे विक्रय की मात्रा कम होने के उपरान्त भी उसके वेतन मे कोई कमी नही होगी।

लाभ (Adv)

पारिश्रमिक भुगतान की इस पद्धति के कई लाभ है। इन लाभो को दो भागो मे बाँटकर अध्ययन किया जा सकता है—

(अ) नियोक्ताओं के दृष्टिकोण से लाभ

(i) गणना मे सरलता—पारिश्रमिक भुगतान की इस पद्धति का सबसे बड़ा लाभ यह है कि यह पद्धति अत्यन्त सरल है। इस पद्धति से पारिश्रमिक की गणना करना सर्वाधिक रूप से आसान है।

(ii) मितव्ययता—गणना मे सरलता होने के कारण इसमे न तो अधिक समय ही लगता है और न ही किसी प्रकार के गणना यन्त्र (Calculating

machine) मे धन विनियोग की आवश्यकता पडती है। इस प्रकार यह विधि मितव्ययी मानी जाती है।

(iii) भुगतान की जाने वाली राशि का अनुमान—इस विधि का एक बहुत बडा लाभ यह भी है कि सस्था पहले से ही यह आसानी से अनुमान लगा सकती है कि उसे कब-कब कितनी राशि का विक्रयकर्त्ताओ का भुगतान करना पडेगा। इस प्रकार विक्रय व्यय बजट (Sales expense budget) बनाना बहुत सरल हो जाता है।

(iv) विक्रयकर्त्ताओं की क्रियाओ पर अधिक नियन्त्रण—जब वेतन के आधार पर पारिश्रमिक का भुगतान किया जाता है, तो विक्रय प्रबन्धक विक्रयकर्त्ताओ की क्रियाओ पर अधिक नियन्त्रण स्थापित कर सकता है। विक्रयकर्त्ताओ को केवल विक्रय मात्रा बढाने के ध्येय से हटाकर सस्था की ख्याति निर्माण के कार्य मे भी लगाया जा सकता है। उन्हे नये बाजार के निर्माण के लिए आवश्यक प्रयास मे लगाया जा सकता है, उन्हे ग्राहको की समस्याओ को सुलझाने के लिए अधिक ध्यान देने के लिए भी कहा जा सकता है। इसी प्रकार से अन्य कार्यों मे विक्रयकर्त्ताओ को आसानी से लगाया जा सकता है। यदि उन्हे पारिश्रमिक इस विधि द्वारा दिया जाता है।

(v) स्थानान्तरण मे सुविधा—इस विधि मे वेतन का भुगतान करने के कारण विक्रयकर्त्ताओ के स्थानान्तरण मे भी सुविधा रहती है। यदि पारिश्रमिक विक्रय के आधार पर होता है, तो विक्रयकर्त्ता ऐसी शाखाओ में स्थानान्तरण पर आपत्ति करते हैं, जहाँ पर विक्रय अपेक्षाकृत कम होता हो। किन्तु निश्चित वतन की स्थिति मे वे आसानी से तैयार हो जाते हैं।

(vi) कम डूबत ऋण—चूंकि विक्रयकर्त्ता के पारिश्रमिक का विक्रय मे कोई सम्बन्ध नही होता है। अत वह विक्रय की मात्रा को बढाने की इतनी अधिक चिन्ता नही करता है। वह उचित ग्राहको को ही माल का उधार विक्रय करने का प्रयास करता है। इसके परिणामस्वरूप उधार की राशि एकत्रित करना सरल होता है और अन्ततोगत्वा डूबत ऋणो की राशि मे कमी होने लगती है।

(ब) विक्रयकर्त्ताओ के दृष्टिकोण से लाभ

(i) निश्चित आय—इस विधि से पारिश्रमिक प्राप्त करने से विक्रयकर्त्ताओ को सबसे बडा लाभ यह होता है कि उन्हे निरन्तर स्थाई आय प्राप्त होती रहती है। चाहे सस्था का विक्रय घट या बढे, इसका उनके वेतन पर कोई प्रभाव नही पडता है।

(ii) भविष्य की चिन्ताओ से मुक्ति—चूंकि विक्रयकर्त्ताओ को वेतन की एक निश्चित राशि एक निश्चित समय के पश्चात् मिलती रहती है। अत उन्हे भविष्य की चिन्ता नही रहती है। यदि वे लगातार सतर्कता पूर्वक कार्य करते रहे।

(iii) स्वत वेतन वृद्धि—प्राय वतन की एक निश्चित श्रृंखला (Pay scale) होती है। अत सामान्यत प्र यक विक्रयकर्ता को एक नि नत अवधि के बाद स्वत वृद्धि प्राप्त हो जाती है। उस वतन वृद्धि क लिए भी विक्रि शन की आवश्यकता नहीं रहती है।

(iv) नये विक्रयकर्त्ताओं को अच्छा पारिश्रमिक—इस विधि स वतन मिलन क कारण नय विक्रयकर्त्ता को जिनकी प्रारम्भिक कायक्षमता बहुत कम होती है भी अच्छा पारिश्रमिक प्राप्त हो जाता है।

(v) मंदी क समय सुरक्षा विक्रयकर्त्ता म दी की स्थिति म पूण तरह से सुरक्षित रहत है। मंदी क समय मनुष्यों के विक्रय घटत है तथा लाभ की मात्रा भी कम हो जाती है कि तु विक्रयकर्त्ताओं को इस विधि स एक निश्चित धन राशि मिलती है

(vi) विक्रयकर्त्ताओं म मधुर सम्बन्ध—इस विधि स पारिश्रमिक देन का एक प्रभाव यह भी होता है कि विक्रयकर्त्ताओं म आपस म मधुर सम्ब ध बने रहत हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि प्र यक विक्रयकर्त्ता को लगभग समान राशि ही प्राप्त होता है। जबकि पारिश्रमिक की अन्य विधियों म विक्रयकर्त्ताओं के पारिश्रमिक म भारी असमानता पाई जाती है।

दोष (Disadvantages)

स्वत वतन पद्धति क निम्न वर्णित कुछ दोष भी है। इनको नीच नियोक्ताओं तथा विक्रयकर्त्ताओं क दृष्टिकोण स समझाया गया है—

(अ) नियोक्ताओं क दृष्टिकोण से

(i) वेतन घटाना कठिन—एक बार वतन बढा देन क बाद वतन को पुन कम करना बहुत ही कठिन है। यह क म वतन कम करन क सम्ब ध म बहुत ही कम सुना गया होगा। अत मंदी क समय या कम विक्रय वाले दिनों म भी उतना ही वतन देना पड़ता है जितना सामान्य दिनों म दिया जाता रहा है।

(ii) वेतन वृद्धि की माग—जब पारिश्रमिक निश्चित वतन विधि क आधार पर दिया जाता है तो विक्रयकर्त्ता बार बार वतन बढान की मांग करत रहत है। आजकल विभिन्न क कर्मचारियों क सगठन काफी सक्रिय है जो एक निश्चित समय क बाद वतन वृद्धि की मांग करत रहत है व कीमत स्तर म वृद्धि होन की वतन वृद्धि की मांग करत है।

(iii) निम्न कोटि क विक्रयकर्त्ताओं स हानि—इस पद्धति स पारिश्रमिक दन की विक्रयकर्त्ताओं की काय कुशलता स कोई सम्ब ध नहीं रहता है। अत अकुशल विक्रयकर्त्ताओं को भी कुशल विक्रयकर्त्ताओं क बराबर ही वतन मिल जाता है। इसक परिणामस्वरूप नियोक्ताओं को हानि उठानी पड़ती है।

(iv) विक्रय अनुमान लगाना कठिन—इस पद्धति से वेतन चुकाने का एक बहुत बड़ा दोष यह भी है, कि विक्रय अनुमान लगाना कठिन हो जाता है। इसके परिणामस्वरूप, सस्था की स्थिति अनिश्चित बनी रहती है।

(v) अच्छे विक्रयकर्त्ता को प्राप्त करना कठिन—चूंकि अच्छे विक्रयकर्त्ता बहुत अधिक क्रयादेश प्राप्त कर सकते है। अत. वे कभी भी केवल वेतन के आधार पर अधिक परिश्रम एव लगन से कार्य करना पसन्द नही करते है। परिणामस्वरूप, सस्था को अच्छे एव कुशल विक्रयकर्त्ताओ की सेवाओ से वचित रहना पडेगा।

(vi) अकुशल विक्रयकर्त्ताओ के नियत्रण पर व्यय—चूंकि इस विधि मे सामान्यत विक्रयकर्त्ताओ को समान वेतन देना पडता है, जबकि अकुशल विक्रयकर्त्ता कार्य कम ही करते है। ऐसी स्थिति मे प्रबन्धको को उनकी क्रियाओ पर अधिक नियत्रण रखना पडता है, ताकि उनसे कुछ पूरा कार्य करवा सके।

(vii) प्रशिक्षण पर व्यय—जब अकुशल विक्रयकर्त्ता पर्याप्त नियत्रण के बावजूद भी अपनी कार्य कुशलता नही बढा पाते है, तो उनको पुन प्रशिक्षण देना पडता है। अत. प्रशिक्षण का अतिरिक्त वित्तीय भार भी सस्था को उठाना पडता है।

(viii) लोचहीन—पारिश्रमिक भुगतान की यह पद्धति लोचहीन है। इसमे परिस्थितियो के अनुसार तथा आवश्यकतानुसार परिवर्तन नही किया जा सकता है।

(ix) विक्रयकर्त्ताओ के आवर्तन मे वृद्धि—इस पारिश्रमिक पद्धति का एक दोष यह भी है, कि इससे विक्रयकर्त्ताओ के आवर्तन मे वृद्धि होती है। कुशल विक्रयकर्त्ताओ को ज्यो ही दूसरी सस्था मे अच्छे पारिश्रमिक मिलने के अवसर दिखाई देते हैं। इस सस्था को छोडकर चले जाते हैं।

(ब) विक्रयकर्त्ताओ की दृष्टि से दोष :

(i) अभिप्रेरणा का अभाव—इस विधि मे सभी प्रकार के—कुशल एव अकुशल विक्रयकर्त्ताओ को लगभग समान वेतन मिलता है। इसके परिणामस्वरूप, विक्रयकर्त्ताओ को अधिक विक्रय कार्य करने की प्रेरणा नहीं मिल पाती है। वे यह अच्छी तरह जानते हैं, कि अधिक कार्य करने से उन्हे कोई अतिरिक्त लाभ नहीं होने वाला है। अत वे उतना ही कार्य करते हैं, जितना कार्य करना आवश्यक होता है।

(ii) दक्षता का अभाव—अभिप्रेरणा के अभाव मे जब विक्रयकर्त्ता लगन, रुचि एव परिश्रम से पर्याप्त कार्य नही करते हैं, तो वे दक्ष भी नही बन पाते हैं। अतः सस्था मे अदक्ष व्यक्ति बढते रहते है।

(iii) जीवन-स्तर एव कीमत-स्तर का सम्बन्ध नहीं—पारिश्रमिक की इस पद्धति का विक्रयकर्त्ताओ की दृष्टि से यह भी एक महत्त्वपूर्ण दोष है, कि इस पद्धति का जीवन स्तर एव बाजार-मूल्यो मे कोई सम्बन्ध नही होता है। अतः इस पद्धति मे विक्रयकर्त्ताओ का कीमतो के बढने के साथ-साथ वेतन नही बढ पाता है, जिससे उनके जीवन-स्तर मे गिरावट आने लगती है।

(५) वेतन शृंखला पार करने पर आय स्थिर—यदि विक्रयकर्त्ता अपनी सम्पूर्ण वेतन शृंखला पार कर लेता है, तो इसके बाद उसे सदैव ही उसी वेतन पर कार्य करना पड़ता है। स्वतः वेतन वृद्धि सम्भव नहीं हो पाती है। इस कारण भी विक्रयकर्ताओं की कार्य में अधिक रुचि नहीं रहती है।

उपयुक्तता (Suitability)—विक्रयकर्त्ताओं को पारिश्रमिक देने के लिए पारिश्रमिक की इस अकेली पद्धति का प्रयोग बहुत ही कम किया जाता है। हाँ, इतना अवश्य है कि इस पद्धति का प्रयोग अन्य पद्धतियों के साथ-साथ किया जाता है। किन्तु इस पद्धति का प्रयोग प्रचारक विक्रयकर्त्ता, सेवा विक्रयकर्त्ता तथा अन्य दिन प्रतिदिन के विक्रयकार्य में लगे विक्रयकर्त्ताओं को पारिश्रमिक देने के लिए किया जा सकता है।

2. केवल कमीशन पद्धति
(Straight Commission Plan)

केवल कमीशन पद्धति विक्रयकर्त्ताओं को वेतन भुगतान करने की एक ऐसी पद्धति है, जिसमें विक्रयकर्त्ताओं को उनके द्वारा प्राप्त किये गये, कुल क्रयादेशों के आधार पर पारिश्रमिक देय होता है। इस पद्धति में पारिश्रमिक एवं समय का कोई सम्बन्ध नहीं होता है। जबकि केवल वेतन पद्धति में ठीक इसके विपरीत होता है। उसमें समय के आधार पर पारिश्रमिक दिया जाता है। इस पद्धति में 'जितना गुड़ डालो उतना मीठा' वाली कहावत पूर्ण रूप से चरितार्थ होती है अर्थात् विक्रयकर्त्ता जितनी अधिक राशि के क्रयादेश प्राप्त करेगा, उसे उतना ही अधिक पारिश्रमिक भी मिलेगा। इस सम्बन्ध में यहाँ यह बताना भी अनावश्यक नहीं होगा, कि कई संस्थाएँ विक्रय पर कमीशन न देकर अपने लाभों में से कमीशन दे देती हैं, किन्तु यह प्रथा अधिक प्रचलित नहीं है। कमीशन प्रायः **दो आधारों** पर दिया जाता है (अ) स्थिर आधार पर, तथा (ब) प्रगतिशील आधार पर।

(अ) स्थिर आधार पर कमीशन (Commission at a Fixed or Flat Rate)—इस आधार पर कमीशन देते समय सम्पूर्ण विक्रय की मात्रा पर एक ही दर से कमीशन दिया जाता है, चाहे विक्रयकर्त्ता कितना ही विक्रय क्यों न करें। अर्थात् यदि विक्रयकर्त्ता अपने निश्चित अभ्यंश (Quota) से कम या अधिक मात्रा में विक्रय करे, तो भी उसे उसी एक ही दर से कमीशन दिया जाता है। उदाहरणार्थ, आकाश और पाताल दो विक्रयकर्त्ता हैं। उन्होंने जुलाई माह में क्रमशः 10,000 रुपये तथा 20,000 रुपये के माल का विक्रय किया है। यदि उन्हें विक्रय पर 10 प्रतिशत कमीशन प्राप्त होता है, तो उन्हें क्रमशः 1,000 रुपये तथा 2,000 रुपये पारिश्रमिक के रूप में मिलेगा। इससे यह स्पष्ट है कि पाताल ने अधिक विक्रय किया है। अतः उसे कमीशन (10% की दर से ही) 1,000 रुपये अधिक मिला है। उसे उसी प्रकार से अतिरिक्त लाभ नहीं हुआ है।

(ब) प्रगतिशील आधार पर कमीशन (Commission at Progresive Rates)—इस पद्धति मे विक्रय को विभिन्न वर्गो (Slabs) मे बांट दिया जाता है तथा उनके लिए अलग-अलग कमीशन की दर निश्चित कर दी जाती हैं। उदाहरणार्थ,

प्रथम 8,000 रु तक के क्रयादेशो पर	8 प्रतिशत
अगले 5,000 रु तक के क्रयादेशो पर	10 प्रतिशत
अगले 2,000 रु तक के क्रयादेशो पर	15 प्रतिशत
अगले सभी आदेशो पर	20 प्रतिशत

इस प्रकार स्पष्ट है कि अधिकाधिक विक्रय करते रहने पर विक्रयकर्त्ता को कमीशन भी अधिकाधिक दर से मिलता है। ऊपर हमने आकाश व पाताल के उदाहरण मे बताया था कि उन्हे 10 प्रतिशत की स्थिर दर से क्रमश 1 000 रु तथा 2 000 रु पारिश्रमिक मिलता है, अब उन्हे प्रगतिशील आधार पर निम्न प्रकार मिलेगा।

आकाश का पारिश्रमिक :

(i) प्रथम 8,000 रु पर 8 प्रतिशत की दर से		640 रु
(ii) अगले 2 000 रु पर 10 प्रतिशत की दर से		200 रु
कुल विक्रय— 10 000	कुल पारिश्रमिक	840

पाताल का पारिश्रमिक .

प्रथम 8 000 रु पर	8 प्रतिशत की दर से	=	640 रु
अगले 5,000 रु पर	10 प्रतिशत की दर से	=	500 रु
अगले 2,000 रु पर	15 प्रतिशत की दर से	=	300 रु
बाकी सभी 5,000 रु पर	20 प्रतिशत की दर से	=	1 000 रु
कुल विक्रय=20,000 रु	कुल पारिश्रमिक	=	2,440 रु

उपर्युक्त दोनो विक्रयकर्त्ताओ के दोनो आधारो पर दिये जाने वाले पारिश्रमिक की तुलना की जाय, तो स्पष्ट होता है कि आकाश को स्थिर आधार पर 1 000 रु तथा प्रगतिशील आधार पर 840 रु मिलता है, जबकि पाताल को स्थिर आधार पर 2 000 रु तथा प्रगतिशील आधार पर 2,440 रु मिलता है। यहाँ पर यह स्पष्ट है कि अधिकाधिक विक्रय करने से पारिश्रमिक में न केवल विक्रय अनुपात मे ही वृद्धि होती है, बल्कि वृद्धि उससे ज्यादा अनुपात मे होती है।

भारत मे आजकल कई सस्थाएँ इस पद्धति को अपना रही हैं। औषधि निर्माण सस्थाएँ, जीवन बीमा निगम आदि इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

लाभ (Advantages)

केवल कमीशन पद्धति के निम्नलिखित प्रमुख लाभ हैं।

(अ) नियोक्ताओ के दृष्टिकोण से :

(1) विक्रयकर्त्ताओ के कार्य का मूल्याकन—इसमे विक्रयकर्त्ताओ को उनके विक्रय के अनुसार पारिश्रमिक दिया जाता है। अत उनके कार्य का समय समय पर

स्वत मूल्याकन होता रहता है। जब भी पारिश्रमिक दिया जाता है कार्य प्रगति की जानकारी हो जाती है।

(ii) **नियत्रण की कम समस्या**—इस पद्धति से पारिश्रमिक का भुगतान करने का एक महत्त्वपूर्ण लाभ यह होता है कि विक्रयकर्त्ताओ पर नियत्रण की समस्या नही रहती है। विक्रयकर्त्ता स्वय अधिकाधिक विक्रय करने म लगे रहते हैं, क्योंकि उन्हे अधिकाधिक विक्रय करने से पारिश्रमिक भी अधिकाधिक मिलता है। इस प्रकार विक्रयकर्त्ताओ के नियत्रण की समस्या कम हो जाती है।

(iii) **अकुशल विक्रयकर्त्ताओ मे हानि नहीं**—केवल वेतन विधि मे 'घोडे एव गधे एक समान समझे जाते है तथा उन्हे समान वेतन दिया जाता है। इससे सस्था को हानि होती है। किन्तु केवल कमीशन पद्धति का यह एक लाभ है कि कुशल विक्रयकर्त्ताओ को अधिक तथा अकुशल विक्रयकर्त्ताओ को कम पारिश्रमिक मिलता है। अत सस्थान को अकुशल व्यक्तियो के कारण हानि नही उठानी पडती है।

(iv) **सस्थान मे हानि की सम्भावना कम**—चू कि प्रत्येक विक्रयकर्त्ता को उसके विक्रय के अनुसार ही पारिश्रमिक प्राप्त होता है। अत सामान्यत सस्था मे हानि होने की सम्भावना कम हो जाती है।

(v) **विक्रय लक्ष्य पूरे करना सरल**—कमीशन पद्धति से पारिश्रमिक का भुगतान करने से विक्रय लक्ष्यो को पूरा करना सरल हो जाता है। जब कभी भी विक्रय राशि पूर्व निर्धारित लक्ष्यो से कम हो रही हो, तो विक्रयकर्त्ताओ के कमीशन की दर बढाकर विक्रय लक्ष्य पूरे किये जा सकते हैं।

(vi) **सस्था को अच्छे विक्रयकर्त्ताओ की प्राप्ति**—पारिश्रमिक भुगतान की इस पद्धति का एक प्रभाव यह भी पडता है कि सस्थान मे अच्छे एव कुशल विक्रय-कर्त्ता आने लगते है। इसका कारण स्पष्ट है कि विक्रय राशि के अनुसार ही उन्हे पारिश्रमिक मिल जाता है।

(vii) **मितव्ययता**—इस पद्धति के अपनाने से सस्थान मे विक्रय खर्च मे कमी आने लगती है विक्रयकर्त्ताओं पर नियत्रण की बहुत कम आवश्यकता पडती है, वेतन कार्य के आधार पर दिया जाता है तथा सस्थान मे कुशल विक्रयकर्त्ताओ के आने से प्रशिक्षण आदि की आवश्यकता रहती है। परिणामस्वरूप इन मदो पर होने वाले व्यय मे पर्याप्त कमी होने लगती है।

(viii) **पारिश्रमिक बढाने की समस्या नहीं**—कमीशन के आधार पर पारिश्रमिक देने की स्थिति मे सामान्यत विक्रयकर्त्ता अपने पारिश्रमिक को बढवाने के लिए आन्दोलनात्मक तरीका नही अपनाते। वे स्वय अधिक क्रयादेश प्राप्त करके अपने वेतन को बढवा लेते है।

(ix) **भावी लाभ की दर का निर्धारण सरल**—विक्रयकर्त्ताओ के पारिश्रमिक

की दर पूर्व निश्चित होने के कारण भावी लाभ की दर को आसानी से निश्चित किया जा सकता है।

(x) सरलता—पारिश्रमिक की इस विधि का एक महत्त्वपूर्ण लाभ यह भी है, कि इसे लागू करना बहुत सरल है। इसकी गणना में अधिक समय एवं श्रम भी नही लगता है।

(xi) लोच—इस पद्धति में पर्याप्त लोच भी पाई जाती है। एक संस्था जब चाहे कमीशन की दरो में परिवर्तन कर सकती है। मंदी के समय कमीशन की दरो में वृद्धि करके अधिकाधिक विक्रय करने को प्रोत्साहित किया जा सकता है, जबकि तेजी के काल में इन्हे कम भी किया जा सकता है और संस्था के खर्चो को बचाया जा सकता है।

(xii) नई संस्थाओं के लिए लाभप्रद—पारिश्रमिक की यह पद्धति नई संस्थाओ के लिए भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, इससे विक्रयकर्त्ता बिक्री में वृद्धि करने के लिए भरसक प्रयत्न करने लगते हैं, क्योंकि उनको वेतन कमीशन पद्धति के आधार पर दिया जाता है।

(ब) विक्रयकर्त्ताओ के दृष्टिकोण से :

(i) कार्यानुसार पारिश्रमिक—इस पद्धति में कार्यानुसार पारिश्रमिक मिलता है। अतः सामान्यतः सभी विक्रयकर्त्ता इसे पसन्द करते हैं।

(ii) कार्य क्षमता में सुधार का अवसर—पारिश्रमिक भुगतान की यह पद्धति विक्रयकर्त्ताओ को अपनी कार्य-क्षमता में सुधार करने का अवसर एवं प्रेरणा देती है। इसका प्रमुख कारण यह है, कि इस पद्धति में जो जितना अधिक कार्य करेगा, उसे उतना ही अधिक पारिश्रमिक मिलेगा। इसके परिणामस्वरूप ही कई बार व्यक्ति अधिक कार्य करने लग जाते हैं और अपनी कार्य-क्षमता को हमेशा के लिए सुधार लेते हैं।

(iii) जीवन-स्तर तथा कीमत स्तर के अनुसार वेतन वृद्धि—इस विधि से पारिश्रमिक मिलने से जीवन-स्तर तथा कीमतो में होने वाले परिवर्तनो को समायोजित किया जा सकता है। ज्यो-ज्यो कीमतें बढ़ती हैं, विक्रय की मात्रा बढ़ती है। इसी प्रकार ज्यो ज्यो लोगो का जीवन-स्तर बढ़ता है, वस्तुओ की भी माग बढ़ती है। इसके परिणाम स्वरूप, विक्रय बढ़ता है। इस पद्धति से इन सब का अन्ततोगत्वा प्रभाव यह होता है, कि इस पद्धति से विक्रयकर्त्ताओं के पारिश्रमिक में भी वृद्धि होती है।

(iv) स्वतन्त्र रूप से कार्य करने का अवसर—जब इस पद्धति से पारिश्रमिक मिलता है, तो प्रायः विक्रयकर्त्ताओं को अधिक नियन्त्रण में रहने की आवश्यकता नही रहती है। वे स्वतः अपने कार्यक्रम एवं कार्य-क्षेत्र तय कर लेते हैं।

(v) कुशल विक्रयकर्त्ताओ को सुविधा—कुशल विक्रयकर्त्ताओ को प्रबंधको की कृपा पर रहने की आवश्यकता नही पड़ती है, क्योंकि वे अधिकाधिक विक्रय करके अधिकाधिक पारिश्रमिक प्राप्त कर लेते हैं।

दोष (Disadvantages) :

केवल कमीशन पद्धति से पारिश्रमिक चुकाने के कई दोष हैं, वे निम्न प्रकार हैं—

(अ) नियोक्ताओं के दृष्टिकोण से :

(i) नियन्त्रण कठिन—पारिश्रमिक की केवल कमीशन पद्धति को अपनाने से सबसे बड़ी हानि नियोक्ताओं को होती है। हानि यह है कि नियोक्ता विक्रयकर्ताओं पर नियन्त्रण स्थापित नहीं कर पाते हैं। विक्रयकर्ताओं का हित केवल विक्रय वृद्धि में होता है जबकि नियोक्ता ख्याति के निर्माण में भी रुचि रखते हैं। किन्तु वे ऐसा नहीं कर सकते हैं, क्योंकि विक्रयकर्ताओं को ऐसा करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है। वे प्राय इच्छानुसार कार्य करने के लिए स्वतन्त्र होते हैं।

(ii) स्थानान्तरण करना कठिन—नियोक्ताओं के समक्ष यह भी एक महत्त्वपूर्ण समस्या आ जाती है कि वे विक्रयकर्ताओं को स्थानान्तरित भी आसानी से नहीं कर सकते हैं। विक्रयकर्ता यह कह कर स्थानान्तरणों को टाल जाते हैं कि उन्हें दूसरे स्थान पर विक्रय के कम अवसर प्राप्त होंगे और उसके परिणामस्वरूप उनके कुल पारिश्रमिक पर प्रभाव पड़ता।

(iii) प्रारम्भ मे ऊँची कमीशन दर—नई संस्थाओं को प्रारम्भ मे विक्रयकर्ताओं को कमीशन की बहुत ऊँची दर देनी पड़ती है। यदि ऊँची दर से कमीशन नहीं दिया जाय, तो अच्छे विक्रयकर्ता भी उपलब्ध नहीं हो पाते हैं।

(iv) नये क्षेत्र मे प्रवेश पर अधिक व्यय—यदि कोई पुरानी संस्था किसी नये क्षेत्र मे अपने माल का विक्रय करना चाहती है तो भी कुशल विक्रयकर्ता रखने पड़ते हैं। उन विक्रयकर्ताओं को कमीशन की अधिक ऊँची दर देनी पड़ती है। इससे उन नये क्षेत्र में प्रवेश का व्यय भी बढ़ जाता है।

(v) विक्रय बढ़ाने के लिए बाध्य करना कठिन—यद्यपि इस पद्धति में कार्य की प्रेरणा स्वतः मिलती है और विक्रयकर्ता स्वयं विक्रय बढ़ाता है। तथापि, विक्रयकर्ताओं को विक्रय वृद्धि करने के लिए बाध्य करना असम्भव है।

(vi) आसानी से बेचे जाने वाली वस्तुओं का अधिक विक्रय—इस पद्धति का एक बहुत बड़ा दोष यह है कि विक्रयकर्ता उन वस्तु के ज्यादा अधिकाधिक प्राप्त करते हैं, जिन्हें आसानी से बेचा जा सकता है। वे उन वस्तुओं के आदेश प्राप्त करने के लिए अधिक प्रयास नहीं करते हैं, जिनका आदेश प्राप्त करना अपेक्षाकृत कठिन होता है या जिनकी माँग कम है।

(vii) असहयोग—इस पद्धति से पारिश्रमिक मिलने के कारण प्रायः विक्रयकर्ता प्रबन्धकों को अधिक महत्त्व नहीं देते हैं। वे अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करके ही अपने दायित्व की इतिश्री समझने लगते हैं।

(viii) अतिरिक्त खर्च—इस पद्धति द्वारा पारिश्रमिक देने के कारण उस संस्था को कई बार कई अतिरिक्त व्यय भी करने पड़ते हैं। उदाहरणार्थ, ग्राहकों को

विक्रय के बाद सेवा करने, थोक व्यापारियों फुटकर व्यापारियों के विक्रयकर्त्ताओं की मदद करने, संस्था की ख्याति निर्माण के लिए ग्राहकों से मिलने आदि-आदि बातों के लिए संस्था को अलग से विक्रयकर्त्ता रखने पड़ते हैं। इसी प्रकार अन्य कई प्रशासकीय कार्य होते है, जो अन्य विक्रयकर्त्ता करते हैं, किन्तु उपरोक्त कार्य इस पद्धति से पारिश्रमिक प्राप्त करने वाले विक्रयकर्त्ता नही करते हैं, उन्हे पूरा करवाने के लिए भी अलग से धन खर्च करना पड़ता है।

(iv) अधिक डूबत ऋण—चूंकि विक्रयकर्त्ताओं का पारिश्रमिक विक्रय की मात्रा पर निर्भर करता है। अत. वे विक्रय करने मे ही अधिक रुचि रखते हैं। वे प्राय: इस बात को बहुत ही आसानी से भूल जाते है कि माल का उधार उन्ही ग्राहकों को करना चाहिये, जो भुगतान करने मे समर्थ हो तथा जो शीघ्र भुगतान करने के इच्छुक हो। अधिक उधार बिक्री का परिणाम है, अधिक डूबत ऋण।

(v) मौसमी वस्तुओं के लिए विक्रयकर्त्ता—मौसमी वस्तुओं का विक्रय या निर्माण करने वाली संस्थाएँ इस पद्धति को अपनाती है, तो उन्हे सामान्यत कुशल विक्रयकर्त्ताओं की सेवाओं का लाभ नहीं मिल सकता है।

(vi) सुख के साथी—इस पद्धति से पारिश्रमिक देने का एक दोष यह भी होता है कि विक्रयकर्त्ता 'सुख के साथी' (fair whether friend) बन जाते हैं। जब तक संस्था की वस्तुओं की माग पर्याप्त हो, तब तक वे संस्था के लिए कार्य करते है। ज्योंही संस्था की वस्तुओं की माँग मे कमी के लक्षण दिखाई देते है, व दूसरी ऐसी संस्था मे चले जाते हैं, जिसकी वस्तु की माँग बढ रही हो।

(ब) विक्रयकर्त्ताओं के दृष्टिकोण से :

(i) अनिश्चितता—इस पद्धति मे पारिश्रमिक मिलने पर विक्रयकर्त्ताओं को अनेक अनिश्चितताओं का सामना करना पडता है। माँग बढ जाने या मौसम के समय बहुत अधिक माँग होने के कारण उन्हे बहुत अच्छा पारिश्रमिक मिल जाता हैं, किन्तु अन्य दिनो मे पारिश्रमिक बिल्कुल कम हो सकता है। इसी प्रकार वे बीमारी या अन्य किसी कारण से विक्रय कार्य पर न जा सके, तो भी बिल्कुल पारिश्रमिक प्राप्त नही होता है। इसमे विक्रयकर्त्ताओं को बहुत ही अनिश्चितताओं की स्थिति का सामना करना पडता है।

(ii) युवा विक्रयकर्त्ताओं को प्रेरणा नहीं—कई नये युवा विक्रयकर्त्ता, जो वर्तमान मे कम विक्रय करते हैं, किन्तु भविष्य मे बहुत अच्छा विक्रयकार्य कर सकते हैं, को इस पद्धति से पारिश्रमिक देने वाली संस्था मे आने की प्रेरणा नही मिल पाती है। इससे संस्था मे नये विचारों के व्यक्तियों का आवागमन रुक जाता है।

(iii) सेवा सुरक्षा का भय—इस पद्धति से पारिश्रमिक प्राप्त करने वाले विक्रयकर्त्ताओं को सदैव सेवा-सुरक्षा का भय रहता है। कभी भी संस्था की वस्तुओं की माँग सदैव के लिए कम हो सकती है और इस प्रकार सदैव के लिए उनकी आय

कम हो सकती है। इससे उन्हें दूसरी संस्था की सेवा में भी जाना पड सकता है। इस प्रकार अपनी सेवा की सुरक्षा का भय उन्हें सदैव सताता रहता है।

(ii) कम विक्रय सहायता—कई बार कई संस्थाएँ जो कमीशन के आधार पर अपने विक्रयकर्त्ताओं को पारिश्रमिक का भुगतान करती हैं विक्रयकर्त्ताओं को विक्रय सम्बन्धी बहुत ही कम सहायता प्रदान करती है। ये उन्हें नमूने तथा विज्ञापन की अन्य सामग्री बहुत कम देती है। इससे विक्रयकर्त्ता अधिक क्रयादेश प्राप्त करने में सफल नहीं हो पाते हैं।

उपयुक्तता (Suitability)—केवल कमीशन पद्धति का प्रयोग कुछ उद्योगों द्वारा कई वर्षों से किया जाता रहा है। बीमा कपड़ा औषधि उद्योग, बिजली का सामान होजरी सौन्दर्य की वस्तुओं आदि आदि में विक्रयकर्त्ताओं को पारिश्रमिक देने के लिए इस पद्धति का पर्याप्त प्रयोग होता है। यह पद्धति वहाँ अधिक उपयुक्त मानी जाती है जहाँ वस्तुओं के क्रयादेश प्राप्त करना ही महत्त्वपूर्ण हो। अन्य कहीं पर भी इस पद्धति का प्रयोग किया नहीं जा सकता किन्तु इस पद्धति के प्रयोग से पूर्व इसके लाभ एवं दोषों को ध्यान में अवश्य रखना चाहिये।

वेतन तथा कमीशन पद्धति
(Salary and Commission Plan)

वेतन तथा कमीशन पद्धति पारिश्रमिक भुगतान की एक ऐसी पद्धति है, जिसके अन्तर्गत एक विक्रयकर्ता को एक निश्चित वेतन के साथ साथ कमीशन भी दिया जाता है। दूसरे शब्दों में इस पद्धति में पारिश्रमिक भुगतान की दो महत्त्वपूर्ण विधियों को सम्मिलित कर दिया गया है। इसीलिये इस पद्धति को 'संयुक्त पद्धति' (Combined Plan) के नाम से भी पुकारा जाता है। इस पद्धति का आविष्कार 'केवल वेतन पद्धति तथा केवल कमीशन पद्धति' के दोषों को दूर करने के उद्देश्य से किया गया है।

इस पद्धति में विक्रयकर्त्ता के पारिश्रमिक के लिए पहले वेतन की राशि तय कर दी जाती है, जो उसे प्रतिमाह निश्चित रूप से मिलती रहेगी। इस राशि के मिलने से वह दैनिक आवश्यकताओं की चिन्ता से मुक्त हो जाता है। इसके साथ ही साथ उसके लिए कमीशन की दर भी निर्धारित कर दी जाती है। कमीशन दर सामान्यतः व्यापार की परिस्थितियों पिछले विक्रय व्यवहारों संस्था की स्थिति, वस्तुओं के मूल्यों के आधार पर निर्भर करती है। कमीशन दर स्थिर तथा 'प्रगतिशील' किसी भी रूप में हो सकती है। यह कमीशन प्राय विक्रय की मात्रा के आधार पर देय होता है। जो प्राय विक्रय की मात्रा के घटने बढ़ने के साथ-साथ घटता बढ़ता रहता है। अतः विक्रयकर्त्ताओं को अधिकाधिक माल विक्रय करने के लिए प्रोत्साहन मिलता रहता है—

उदाहरण 1.

डे एण्ड क मे नाइट एक विक्रयकर्त्ता के पद पर कार्य कर रहा है। नाइट के साथ यह अनुबन्ध हुआ है कि उसे 500 रु प्रतिमाह वेतन तथा विक्रय पर 5 प्रतिशत कमीशन स्थिर कमीशन पद्धति के आधार पर दिया जावगा। अक्टूबर मास मे उसने 40,000 – रु की राशि के माल का विक्रय किया है। ऐसी स्थिति मे उसे पारिश्रमिक निम्नाकित प्रकार से मिलेगा

वेतन	= 500 रुपये
कमीशन 40,000 रुपये पर 5% की दर से	= 2000 रुपये
कुल पारिश्रमिक	2500 रुपये

उदाहरण 2

रेनबो कम्पनी मे आकाश एक विक्रयकर्त्ता के रूप मे कार्य करना है। आकाश को प्रतिमाह 500 रु वेतन तथा प्रथम 10,000 रु के विक्रय पर 3 प्रतिशत कमीशन, अगले 10 000 रु, पर 4 प्रतिशत कमीशन तथा बाकी सभी पर 8 प्रतिशत कमीशन दिया जाना तय हुआ है। जनवरी माह मे उसने 40,000 रु, की राशि के माल का विक्रय किया है। उसका पारिश्रमिक निम्नाकित प्रकार से तय होगा—

वेतन	= 500 रु
कमीशन	
प्रथम 10 000 रु पर 3% की दर से	= 300 रु
अगले 10 000 रु पर 4% की दर से	= 400 रु
बाकी 20 000 रु पर 8% की दर से	= 1,600 रु
कुल पारिश्रमिक	= 2,800 रु

लाभ (Advantages or Merits)

'वेतन तथा कमीशन' पद्धति के अपनाने के कई लाभ हैं। यह नियोक्ताओ के दृष्टिकोण से ही हितकर पद्धति नही है बल्कि विक्रयकर्त्ताओ के दृष्टिकोण से भी लाभप्रद है। दोनो के दृष्टिकोण निम्नलिखित है :

(अ) नियोक्ताओ के दृष्टिकोण से :

(1) **पर्याप्त लोच**—इस पद्धति का सबसे बडा लाभ यह है, कि इसमे पर्याप्त मात्रा मे लोच विद्यमान है। जब चाहे नियोक्ता कमीशन की राशि बढाकर विक्रय

कर्त्ताओं को अधिक विक्रय के लिए प्रोत्साहित कर सकते है तथा जब चाहे इसके विपरीत भी कर सकते है।

(ii) **उचित नियन्त्रण**—इस पद्धति से पारिश्रमिक का भुगतान करने से विक्रयकर्त्ताओं पर एक उचित नियन्त्रण (Reasonable Control) भी स्थापित किया जा सकता है। विक्रयकर्त्ताओं को एक निश्चित मात्रा मे माल के विक्रय के लिए बाध्य किया जा सकता है।

(iii) **विक्रयकर्त्ताओं का सहयोग**—इस पद्धति से पारिश्रमिक देने का एक अन्य महत्वपूर्ण लाभ यह भी है कि नियोक्ता अपने विक्रयकर्त्ताओं का आसानी से सहयोग भी प्राप्त कर सकता है। विक्रयकर्त्ता जब संस्था के विक्रय वृद्धि के लिए कार्य करते है तो उसमे उनका स्वयं का हित भी होता है। अत विक्रयकर्त्ताओं का सहयोग प्राप्त करना सरल होता है।

(iv) **कुशल विक्रयकर्त्ताओं की प्राप्ति**—इस पद्धति के अपनाने पर संस्था मे कुशल विक्रयकर्ता आकर्षित होते है। इस पद्धति मे कुशल विक्रयकर्त्ता अपनी कुशलता का प्रयोग करके अधिक राशि के माल का विक्रय कर सकता है। परिणामस्वरूप उसे पारिश्रमिक भी अधिक मिलता है। अन्ततोगत्वा वह उसी संस्था मे बने रहना चाहता है जिसमे संस्था मे कुशल विक्रयकर्त्ताओं की संख्या बढती है। इसी मे संस्था की ख्याति भी निहित है।

(v) **विक्रय अनुमान सरल**—एक संस्था के लिए भावी विक्रय का अनुमान लगाना एक महत्वपूर्ण समस्या है। इस पद्धति मे पारिश्रमिक का भुगतान करने से विक्रय अनुमान लगाने मे पर्याप्त सहायता मिलती है। इस पद्धति को अपनाने से विक्रय वृद्धि होती है। अत विक्रय वृद्धि की एक सामान्य दर ज्ञात करके विक्रय अनुमान लगाये जा सकते है

(vi) **कार्यों का मूल्यांकन**—नियोक्ता इस पद्धति से पारिश्रमिक भुगतान करके अपने विक्रयकर्त्ताओं के कार्यों का आसानी से मूल्यांकन कर सकते हैं। जो विक्रयकर्त्ता जितना अधिक कमीशन प्राप्त करता है। सामान्यत वह उतना ही अधिक अच्छा विक्रयकर्त्ता माना जाता है एवम् उसे पारिश्रमिक भी उतना ही अधिक मिलता है।

(vii) **विक्रय वृद्धि** इस पद्धति से पारिश्रमिक देने का परिणाम प्राय विक्रय वृद्धि के रूप मे ही होता है। सामान्यत इस स्थिति मे विक्रय की मात्रा मे कमी नही होती है। उसमे हमेशा वृद्धि होती रहती है।

(viii) **कम प्रशिक्षण**—संस्था मे इस पद्धति के प्रचलन से विक्रयकर्त्ता को प्रशिक्षण कम देना पडता है। विक्रयकर्त्ता स्वत अधिक पारिश्रमिक की प्राप्ति की चाह मे स्वत अपनी कार्य कुशलता बढा लेता है।

(ix) **मितव्ययता**—इस पद्धति का एक महत्वपूर्ण लाभ मितव्ययता है। इस पद्धति से पारिश्रमिक देने पर विक्रयकर्त्ताओं पर उचित नियन्त्रण आसानी से

स्थापित किया जा सकता, विक्रय बढता है, विक्रयकर्त्ताओं को प्रशिक्षण की बहुत कम आवश्यकता पडती है, आदि आदि। इस तरह संस्था को मितव्ययता का लाभ प्राप्त होता है।

(५) विक्रयकर्त्ताओं के साथ मधुर सम्बन्ध—इस पद्धति के अपनाने से सबको अपनी अपनी योग्यतानुसार पारिश्रमिक मिलता रहता है। अत प्रबन्धको तथा विक्रयकर्त्ताओं के बीच मधुर सम्बन्धों का निर्माण मे सहायता मिलती है।

(ब) विक्रयकर्त्ताओं को लाभ

(i) निश्चित वेतन—इस विधि का महत्त्वपूर्ण लाभ विक्रयकर्त्ताओं को यह होता है, कि उन्हें कम से कम एक निश्चित वेतन प्रतिमाह मिलता रहता है। अतएव उन्हें दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अधिक चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं रहती है।

(ii) कुशल विक्रयकर्त्ताओं को सतोष—इस पद्धति से पारिश्रमिक का भुगतान करने से कुशल विक्रयकर्त्ताओं को सतोष मिलता है। वे अपनी कुशलता के अनुरूप पारिश्रमिक प्राप्त कर सकते हैं।

(iii) कम कुशल विक्रयकर्त्ताओं को कुशलता बढाने का अवसर—इस पद्धति का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण लाभ यह है, कि यह पद्धति कम कुशल विक्रयकर्त्ताओं को अधिक कुशल बनने के अवसर प्रदान करती है। कम कुशल विक्रयकर्त्ता भी सदैव अपने पारिश्रमिक को बढाने के प्रयास मे लगा रहता है। अन्ततोगत्वा एक दिन ऐसा आता है, जब वह भी कुशल विक्रयकर्त्ता बन जाता है।

(iv) नये विक्रयकर्त्ताओं को अच्छे अवसर—नये विक्रयकर्त्ता सदैव सेवा-सुरक्षा एव निश्चित वेतन चाहते हैं तथा शीघ्र ही कुशलतम विक्रयकर्त्ताओं की श्रेणी मे पहुँचने की महत्वाकाक्षा भी रखते हैं। यह पद्धति उन्हें इन सब बातो के अवसर प्रदान करती है।

(v) मदी से सुरक्षा—मदी के समय विक्रय की मात्रा कम होने लगती है अत कमीशन राशि घट जाती है, किन्तु वेतन की राशि में अन्तर नहीं पडता है। अत विक्रयकर्त्ताओं को पर्याप्त आर्थिक सुरक्षा मिलती है।

दोष (Disadvantages or Demerits)

वेतन तथा कमीशन पद्धति के कुछ दोष भी हैं, वे निम्न प्रकार हैं —

(अ) नियोक्ताओं के दृष्टिकोण से :

(i) अनुपस्थिति मे क्षति—इस पद्धति का सबसे बडा दोष यह है, कि यदि एक विक्रयकर्त्ता अनुपस्थित रहता है, तो भी उस वेतन की एक निश्चित राशि देनी ही पडती है। ऐसी स्थिति मे अनुपस्थिति म दिया जाने वाला वेतन संस्था के लिए हानि होता है।

(ii) लगन का अभाव—इस पद्धति का एक दोष यह भी है, कि कई विक्रय-कर्त्ता केवल मौद्रिक आय प्राप्त करने के लिए ही अधिक कार्य नहीं करते हैं। ऐसे विक्रयकर्त्ताओं मे कार्य के प्रति लगन उत्पन्न करना अत्यन्त कठिन होता है।

(iii) ग्राहकों की सेवा पर कम ध्यान—इस पद्धति के अपनाने पर सामान्यत विक्रयकर्त्ता अपने समय का उपयोग विक्रय बढ़ाने में करने लगते हैं जिससे कि उनको अधिकाधिक पारिश्रमिक मिलता रहे। वे ग्राहकों की सेवा, संस्था के ख्याति निर्माण की अन्य क्रियाओं में विशेष रुचि नहीं लेते हैं।

(iv) अवसाद में हानि—मन्दी के समय में जबकि लाभ बिल्कुल घट जाता है तब भी विक्रयकर्त्ताओं को वेतन की निश्चित राशि देनी ही पड़ती है। इससे संस्था को हानि होती है।

(v) नियन्त्रण में कमी—यदि विक्रयकर्त्ताओं को मिलने वाले पारिश्रमिक में से अधिकांश पारिश्रमिक कमीशन द्वारा दिया जाता है, तो विक्रयकर्त्ताओं पर नियन्त्रण में कमी आना स्वाभाविक ही है।

(vi) गणना में कठिनाई—यदि पारिश्रमिक योजना में प्रगतिशील कमीशन पद्धति अपनाई जाती है और उसमें कई स्तर (Slab) हैं तो पारिश्रमिक की गणना में पर्याप्त समय एवं श्रम लगता है।

(vii) कमीशन दर निर्धारित करना कठिन—कमीशन दर निर्धारित करना एक कठिन कार्य है। यदि कमीशन दर बहुत कम होती है तो विक्रयकर्त्ताओं को प्रेरित करना कठिन हो जाता है। इसके विपरीत, यदि कमीशन दर बढ़ाई जाती है तो विक्रय व्यय बढ़ सकते हैं जिससे संस्था को घाटा हो सकता है। अत कमीशन की दर निर्धारित करना बहुत कठिन कार्य है।

(ब) विक्रयकर्त्ताओं की दृष्टि से

(i) कम वेतन—विक्रयकर्त्ताओं की दृष्टि से सबसे बड़ा दोष इस बात का लगाया जाता है कि उन्हें निश्चित वेतन बहुत कम दिया जाता है जिससे वे उस वेतन में जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं कर पाते हैं। मन्दी के समय उन्हें अत्यधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। जब बिक्री घट जाती है और उन्हें वेतन कम ही मिलता है।

(ii) भुगतान में देरी—इस पद्धति में यह दोष भी है कि जब कभी कमीशन की गणना करने में अधिक समय लग जाता है विक्रयकर्त्ताओं को उचित समय पर पारिश्रमिक नहीं मिल पाता है।

4 आहरण लेखा तथा कमीशन पद्धति
(Drawing Account and Commission Plan)

केवल कमीशन पद्धति के दोषों को दूर करने के उद्देश्य से ही इस पद्धति का आविष्कार किया गया है। इस पद्धति के निर्माण के पीछे भावना यह है, कि कोई भी विक्रयकर्त्ता अपने कार्य पर लगते ही सफलता प्राप्त नहीं कर पाता है। एक नया विक्रयकर्त्ता शनै शनै ही अपनी क्षमता को बढ़ाता है और अपने विक्रय की मात्रा को बढ़ाता है। अत कार्य पर लगते ही विक्रयकर्त्ता के लिए केवल कमीशन पद्धति के आधार पर मिलने वाला पारिश्रमिक कम होता है और उस राशि से वह स्वयं एवं

अपने परिवार के समस्त खर्चों को पूरा करने मे सफल नही हो सकता है। अतएव उसे कुछ अग्रिम धन राशि (Advance Money) की आवश्यकता पडती है। इस अग्रिम राशि को विक्रयकर्त्ता के आहरण लेखे मे लिखा जाता है। जब-जब विक्रयकर्त्ता को अग्रिम धन की आवश्यकता पडती है, विक्रयकर्त्ता के आहरण खाते को डेबिट (Debit) कर दिया जाता है तथा जब एक निश्चित अवधि के समाप्त होने पर (उदाहरणार्थ 15 दिवस या एक महीना आदि) उसके कमीशन का विवरण तैयार किया जाता है, तब उसके आहरण खाते को क्रेडिट (credit) कर दिया जाता है। यह सम्भव है, कि पहले कुछ महीनो मे आहरण खाते का डेबिट शेष ही अधिक रहेगा, किन्तु कुछ माह बाद धीरे-धीरे डेबिट शेष क्रेडिट मे बदल जाता है या शेष नही रह पाता है। जब भी इस खाते मे क्रेडिट शेष होता है, वह राशि विक्रयकर्त्ता को और दे दी जाती है। इस प्रकार अग्रिम राशि स्वत कट जाती है और उसका पारिश्रमिक का शेष उसे मिल जाता है।

लाभ (Advantages)

आहरण लेखा तथा कमीशन पद्धति से पारिश्रमिक भुगतान करने के लाभों का हम नीचे विवेचन करते हैं —

(अ) नियोक्ताओं की दृष्टि से लाभ :

इस पद्धति से पारिश्रमिक का भुगतान करने मे नियोक्ताओ को वे सभी लाभ प्राप्त हो जाते हैं, जो केवल कमीशन पद्धति से होते हैं। केवल कमीशन पद्धति के लाभो का हम पहले ही इसी अध्याय मे विस्तार से वर्णन कर चुके हैं। ये लाभ सक्षेप मे इस प्रकार हैं

(i) विक्रयकर्त्ताओ के कार्य का मूल्याकन स्वत होता रहता है।

(ii) विक्रयकर्त्ताओ पर अत्यधिक नियन्त्रण की आवश्यकता नही रहती है।

(iii) अकुशल विक्रयकर्त्ताओ का सस्था पर कोई भार नही पडता है।

(iv) सस्था मे हानि की सम्भावना कम हो जाती है।

(v) विक्रय अनुमानो को आसानी से पूरा किया जा सकता है।

(vi) सस्था मे अच्छे विक्रयकर्त्ता प्राप्त किये जा सकते है।

(vii) सस्था के कई खर्चो मे बचत होती है।

(viii) बार बार पारिश्रमिक बढाने की आवश्यकता नही रहती है। पारिश्रमिक स्वत बढता रहता है।

(ix) सस्था के भावी लाभो का अनुमान आसानी से किया जा सकता है।

(x) इस विधि को लागू करना आसान है।

(xi) यह विधि लचीली है, जिसे आवश्यकतानुसार परिवर्तित किया जा सकता है।

(xii) नई-नई सस्थाओ के लिए भी यह पद्धति लाभप्रद है।

आहरण लेखा अपनाये जाने के कारण संस्था अपने कर्मचारियों को कुछ धन की सुविधा प्रदान कर सकती है। अन्य विक्रयकर्ताओं को कार्य के प्रति पाबन्द बनाया जा सकता है। उन्हें इससे अभिप्रेरणा भी मिलती है।

(ब) विक्रयकर्ताओं की दृष्टि से लाभ

(1) दैनिक आवश्यकताओं की सुविधापूर्वक पूर्ति—अग्रिम धन राशि प्राप्त हो जाने से विक्रयकर्ताओं को अपनी दैनिक आवश्यकताओं जैसे किराया, भाड़ा, होटल खर्च आदि आदि को पूरा करने में बहुत मदद मिल जाती है।

इसके अतिरिक्त विक्रेताओं को इस पद्धति से वे सभी लाभ प्राप्त होते हैं, जो केवल कमीशन पद्धति से पारिश्रमिक प्राप्त करने से हो सकते हैं। उनका विस्तृत विवेचन हम इसी अध्याय में कर चुके हैं। ये संक्षेप में ये लाभ इस प्रकार हैं—

(ii) कार्यानुसार पारिश्रमिक प्राप्त हो जाता है।

(iii) प्रत्येक विक्रयकर्ता को अपनी कार्यक्षमता के सुधार करने की प्रेरणा मिलती रहती है।

(iv) जीवन-स्तर तथा कीमत स्तर के अनुरूप वेतन वृद्धि होती रहती है।

(v) विक्रयकर्ता को कार्य की स्वतन्त्रता होती है।

(vi) कुशल विक्रेताओं को अधिक वेतन प्राप्त हो जाता है।

दोष (Disadvantages)

आहरण लेखा एवं कमीशन पद्धति के कई दोष भी हैं, वे निम्नलिखित शीर्षकों में अध्ययन किये जा सकते हैं

(अ) नियोक्ता के दृष्टिकोण से

इस पद्धति में वे सभी दोष पाये जाते हैं जो केवल कमीशन पद्धति में हैं। उनका हम विस्तार से विवेचन इसी अध्याय में कर चुके हैं। संक्षेप में वे दोष निम्न प्रकार हैं—

(i) विक्रयकर्ताओं पर प्रत्यक्ष नियन्त्रण स्थापित करना कठिन होता है।

(ii) अच्छे विक्रयकर्ताओं की प्राप्ति के लिए कमीशन भी अधिक देना पड़ता है

(iii) प्रशासनिक व्यय भी अधिक पड़ता है।

(iv) विक्रय वृद्धि के लिए बाध्य करना कठिन होता है।

(v) संस्था के डूबत ऋणों की राशि बढ़ जाती है।

(vi) विक्रयकर्ता केवल धन के साथी बन जाते हैं।

(vii) विक्रयकर्ता सुगमता से बेची जा सकने वाली वस्तु के विक्रय पर अधिक ध्यान देने लगते हैं।

(viii) विक्रयकर्ता संस्था के गैर विक्रय कार्यों में रुचि नहीं लेता है, जिससे संस्था की ख्याति पर बुरा असर पड़ता है।

(ix) मौसमी वस्तुओ के विक्रय के लिए कुशल विक्रयकर्त्ता प्राप्त करना कठिन होता है।

इन दोषो के अतिरिक्त आहरण लेखा होने के कारण निम्न कुछ दोष और उत्पन्न होता हैं :—

(x) **जोखिम पूर्ण पद्धति**—यह पद्धति पूर्णत. जोखिम से ओत-प्रोत है। कई विक्रयकर्त्ता आहरण लेकर भी सस्था के लिए कार्य नही करते हैं तथा एक समय ऐसा आता है, जबकि वे सस्था छोडकर चले जाते हैं। इसके परिणामस्वरूप सस्था को बहुत हानि उठानी पडती है।

(xi) **अत्यधिक प्रशासनिक व्यय**—नियोक्ता को इस पद्धति के सचालन पर अत्यधिक व्यय करना पडता है। आहरण देने, कमीशन की राशि से समायोजन करने तथा शेष राशि को वसूल करने या भुगतान करने मे सस्था के कर्मचारियो को काफी समय व्यय करना पडता है। इसीलिये इस पद्धति को खर्चीली पद्धति कहा जाता है।

(xii) **विक्रयकर्त्ताओ का अकर्मण्य बन जाना**—कई बार कई आलसी विक्रय-कर्त्ता अकर्मण्य भी बन जाते हैं। जब विक्रयकर्त्ता यह सोचते है कि उन्हे प्रति माह स्वत आहरण की राशि प्राप्त हो जाती है, जिससे वे आसानी से अपना खर्च चला सकते हैं तो वे जब चाहेगे तब कभी भी आहरण के शेष को बराबर कर देंगे। इसी आशा मे कार्य कम करते हैं तथा आशा पर भी ज्यादा विश्वास करते हैं। परिणामस्वरूप उनके कार्य करने की आदत छूट जाती है और आशाओ के पुल ही बांधते रह जाते हैं।

(ब) विक्रयकर्त्ताओ के दृष्टिकोण से दोष :

जब विक्रयकर्त्ताओ को इस पद्धति के अन्तर्गत पारिश्रमिक प्राप्त होता है, तब उन्हे कई दोषो का शिकार बनना पडता है। ये दोष मुख्य रूप से वे ही हैं, जो "केवल कमीशन पद्धति" से पारिश्रमिक प्राप्त होने की स्थिति से होते हैं। केवल कमीशन पद्धति से विक्रयकर्त्ताओ को होने वाले दोषों का हम पहले से ही विस्तार से वर्णन कर चुके हैं। सक्षेप मे वे दोष निम्न प्रकार हैं—

(i) विक्रयकर्त्ताओ को पारिश्रमिक मे बडी ही अस्थिरता रहती है।

(ii) असुरक्षा का भय सदैव बना रहता है।

(iii) विक्रयकर्त्ताओ को विक्रय कार्य मे मालिक की सहायता बहुत ही कम मिलती है।

इन दोषो के अतिरिक्त इस पद्धति के निम्न दोष और उत्पन्न हो जाते है—

(iv) **आहरण की राशि**—कई प्रतिष्ठानो मे कार्य करने वाले विक्रयकर्त्ताओ को बहुत ही कम राशि का आहरण करने का अधिकार होता है। कभी-कभी तो यह राशि कुल पारिश्रमिक की 25-30 प्रतिशत के लगभग से अधिक नही होती है। इससे विक्रयकर्त्ता को असुविधा का सामना करना पडता है।

(v) **आहरण का समायोजन**—कुछ संस्थाओं के विक्रयकर्त्ता इस पद्धति को इसलिये भी पसन्द नहीं करते हैं कि उनकी संस्था में आहरण के समायोजन की उचित व्यवस्था नहीं होती है। यदि कई महीनों के आहरण को एक ही महिने में समायोजित किया जाता है तो प्रायः विक्रयकर्त्ता बहुत ही कठिनाई में फँस जाते हैं। उन्हें काफी प्रयास करने के बाद भी महीना समाप्त होते ही समायोजन के बाद एक छोटी सी राशि मिलती है।

(vi) **प्रेरणा का ह्रास सम्भव**—इस पद्धति में पारिश्रमिक चुकाने से विक्रयकर्त्ताओं में प्रेरणा का ह्रास सम्भव है। जब विक्रयकर्त्ता का लगातार कई महीनों तक आहरण खाते का डेबिट शेष बना रहता है तो उसे अधिक कार्य करने के बाद भी अधिक राशि नहीं मिल पाती है क्योंकि आहरण की राशि का समायोजन होता रहता है। ऐसी स्थिति में विक्रयकर्त्ता खीझ कर अधिक कार्य करने की प्रेरणा खो देता है।

5 लाभ-भागिता पद्धति
(Profit-sharing Plan)

विक्रयकर्त्ताओं को पारिश्रमिक देने की यह भी एक महत्त्वपूर्ण विधि है। इस विधि के अन्तर्गत संस्था के विक्रयकर्त्ताओं को संस्था के लाभों में से एक हिस्सा पारिश्रमिक के रूप में दिया जाता है। प्रत्येक वर्ष के अन्त में संस्था को जो लाभ होता है उसमें से एक निश्चित प्रतिशत के आधार पर निश्चित क्षेत्र की विक्रय के आधार पर अथवा वार्षिक विक्रय के आधार पर विक्रयकर्त्ताओं को लाभों में से हिस्सा दिया जा सकता है। किन्तु इस सम्बन्ध में यह बात अवश्य ध्यान में रखनी चाहिए कि लाभ भागिता में पारिश्रमिक भुगतान की अपने आप में सम्पूर्ण पद्धति नहीं है बल्कि यह एक पूरक पद्धति है। इस पद्धति का प्रयोग किसी अन्य पद्धति के साथ ही किया जाता है।

लाभ (Advantages)

पारिश्रमिक भुगतान की इस पद्धति के प्रमुख लाभ निम्न प्रकार हैं:—

(i) **अच्छे सम्बन्धों का निर्माण**—लाभ भागिता पद्धति का सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि संस्था में विक्रयकर्त्ताओं और नियोक्ताओं के मध्य अच्छे सम्बन्धों का निर्माण होता है। उनमें आपसी मतभेद समाप्त हो जाता है।

(ii) **मंदी काल में हितकारी**—इस पद्धति से पारिश्रमिक चुकाने का एक लाभ यह भी होता है कि जब कभी संस्था में लाभ कम होते हैं तो संस्था पर पारिश्रमिक का भार भी कम ही पड़ता है। पारिश्रमिक के कारण किसी प्रकार की अतिरिक्त हानि नहीं उठानी पड़ती है।

(iii) **नियन्त्रण की कम आवश्यकता**—चूंकि प्रत्येक विक्रयकर्त्ता यह जानता है कि अधिक लाभ होने पर उसे पारिश्रमिक भी अधिक मिलेगा। अतः वह स्वतः

अच्छा एव अधिक कार्य करने मे लगा रहता है। इसमे प्रबन्धको को नियन्त्रण के लिए आवश्यक ही धन एव समय के अपव्यय की आवश्यकता नही पडती है।

(iv) **विक्रय वृद्धि की प्रेरणा**—सामान्यत अधिक विक्रय के परिणामस्वरूप ही अधिक लाभ सम्भव है। अधिक लाभ होने से स्वत ही विक्रयकर्त्ताओं को अधिक पारिश्रमिक मिलता है। अत विक्रयकर्त्ताओं को स्वत विक्रय वृद्धि के प्रयास करने की प्रेरणा मिलती रहती है।

(v) **मितव्ययता**—प्रत्येक विक्रयकर्त्ता अधिकाधिक पारिश्रमिक प्राप्त करने की लालसा में सदैव कम से कम लागत पर अधिकाधिक विक्रय करने का प्रयास करता है। इसके अतिरिक्त नियन्त्रण व्ययों मे कमी आने, प्रशिक्षण की आवश्यकता कम हो जाने से भी संस्था मे मितव्ययता बनी रहती है।

(vi) **लाभों मे वृद्धि**—इस पद्धति के अपनाने से एक बडा लाभ यह होता है कि संस्था के कुल सकल लाभो मे वृद्धि होती है। विक्रयकर्त्ताओं के कुशलतापूर्वक कार्य करने तथा सभी प्रकार से मितव्ययताएँ प्राप्त होने से संस्था के लाभों मे वृद्धि हो जाती है।

(vii) **विक्रयकर्त्ताओं मे अपनत्व की भावना का विकास**—इस पद्धति का एक लाभ यह है, कि नियोक्ता अपने विक्रयकर्त्ताओं मे संस्था के प्रति अपनत्व की भावना (belongingness) का विकास करने मे सफल हो जाते हैं। इससे संस्था की कार्य कुशलता मे अभीष्ट वृद्धि की जा सकती है।

(ब) विक्रयकर्त्ताओं के दृष्टिकोण से लाभ

(i) *समानता*—*इस पद्धति का एक बडा लाभ यह है कि सभी विक्रयकर्त्ताओं* को समान दर से लाभो मे से हिस्सा प्राप्त होता है। इससे सबमे समानता की भावना बनती है।

(ii) **सहयोग**—सब विक्रयकर्त्ताओं को जब समान दर से पारिश्रमिक मिलता है और समानता बढती है तब उनमे स्वत आपसी सहयोग की भावना की बढती है।

(iii) **दलीय भावना का विकास**—इस पद्धति से पारिश्रमिक चुकाने से विक्रयकर्त्ताओं मे दलीय भावना (team spirit) का विकास होता है। वे सब मिल-कर संस्था के हितो को ही सबसे ऊपर रखकर सोचते हैं।

(iv) **विक्रयकर्त्ताओं का आदर**—लाभो मे से हिस्सा मिलने से विक्रयकर्त्ता संस्था के साझेदारो के रूप मे समझे जाते हैं, न कि एक कर्मचारी के रूप मे। इससे उनका संस्था मे आदर बढता है।

(v) **कार्यकुशलता मे वृद्धि**—पारिश्रमिक की इस पद्धति के अपनाने से एक अप्रत्यक्ष लाभ यह भी होता है, कि विक्रयकर्त्ताओं की कार्यकुशलता मे वृद्धि होती है। प्रत्येक विक्रयकर्त्ता मन लगाकर मितव्ययतापूर्वक सदैव कार्य करता रहता है। जिनसे धीरे-धीरे स्वत उसकी कार्यकुशलता मे वृद्धि होती है।

दोष (Disadvantages or Demerit)

लाभ भागिता पद्धति में लाभों के होते हुए कई दोष भी हैं। प्रमुख दोष इस प्रकार हैं—

(अ) नियोक्ताओं के दृष्टिकोण से

(i) अवसाद काल में असंतोषजनक—इस पद्धति का सबसे बड़ा दोष यह है कि अवसाद काल में बहुत अधिक मात्रा में लाभ विक्रयकर्त्ताओं को देने पड़ते हैं। संस्था को भारी संकट का सामना करने के लिए लाभों को बचाकर रखने में काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

(ii) हानि की दशा में नियोक्ताओं पर ही भार—इस पद्धति का एक महत्त्वपूर्ण दोष यह है कि यदि संस्था में लाभ होते हैं तो सभी विक्रयकर्त्ता हाथ बटा लेते हैं किन्तु जब हानि होती है तो कोई भी भागी नहीं होता है। हानि का भार केवल नियोक्ता पर ही पड़ता है।

(iii) हानियों के लिए नियोक्ताओं पर दोषारोपण—प्रायः जब संस्था में हानि होती है तो सारा दोषारोपण नियोक्ताओं पर ही किया जाता है। सभी विक्रयकर्त्ता नियोक्ताओं पर लाभों के छिपाने का आरोप लगाते हैं या उनकी प्रबन्ध कुशलता की तीव्र आलोचना करते हैं।

(iv) प्रतिभा का पलायन—चूँकि सभी विक्रयकर्त्ताओं को समान दर से लाभों में हिस्सा दिया जाता है इसलिए कुशल विक्रयकर्त्ता संस्था छोड़कर जाने का प्रयास करते हैं।

(v) विक्रयकर्त्ताओं के आवर्तन में वृद्धि—जब संस्था में लगातार हानि होने लगे या कुशल विक्रयकर्त्ताओं को पारिश्रमिक कम मिले तो विक्रयकर्त्ता संस्था को छोड़कर चले जाते हैं। परिणामस्वरूप नये विक्रयकर्त्ताओं की नियुक्ति करनी पड़ती है। यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है।

(ब) विक्रयकर्त्ताओं के दृष्टिकोण से

(i) कुशल विक्रयकर्त्ताओं की अवहेलना—विक्रयकर्त्ताओं का इस पद्धति के विरोध में सबसे बड़ा तर्क यह है कि सबको समान दर से लाभों में हिस्सा देने से कुशल विक्रयकर्त्ताओं को कोई भी प्रेरणा नहीं मिलती है।

(ii) हानि की दशा में पारिश्रमिक में कमी—जब संस्था में हानि होती है तो विक्रयकर्त्ताओं के पारिश्रमिक की राशि में पर्याप्त कमी हो जाती है। इससे भी विक्रयकर्त्ता को कभी अनिश्चितता की स्थिति का सामना करना पड़ता है।

(iii) अनिश्चितता का भय—इस पद्धति से पारिश्रमिक मिलने के कारण विक्रयकर्त्ताओं को सदैव अनिश्चितताओं का भय सताता रहता है। विक्रयकर्त्ताओं को सदैव यह सोचना पड़ता है कि संस्था में लाभ होंगे या नहीं होंगे? लाभ होंगे तो कितने होंगे यदि लाभ नहीं हुए तो यहाँ से छोड़कर अन्य किसी संस्था में जाना

पड़ेगा तथा अन्य संस्था कैसी होगी, आदि बातें विक्रयकर्त्ताओं के मस्तिष्क मे अनिश्चितता की स्थिति पैदा कर देती है।

(iv) नियोक्ताओं के चतुरता के शिकार—कई बार विक्रयकर्त्ता इस पद्धति को इसलिए भी पसन्द नही करते हैं, कि व नियोक्ताओं की चतुराई के शिकार हो जाते है। दूसरे शब्दो मे, कई बार नियोक्ता अपने व्यावसायिक लाभो को खातो मे बहुत ही कम दर्शाते है। वे आयकर बचाने तथा विक्रयकर्त्ताओं को कम लाभ देने के दृष्टिकोण से पुस्तकों मे वास्तविक लाभ नही दिखलाते है। परिणामस्वरूप विक्रय कर्त्ताओं को बहुत हानि उठानी पडती है।

(v) हानि की स्थिति मे क्षतिपूर्ति नहीं—प्राय प्रत्येक व्यावसायी तेजी के दिनो मे हुए लाभो का कुछ भाग मदी काल के लिए सचय करके रखता है और तेजी के दिनो मे हुए सम्पूर्ण लाभो के अनुपात मे विक्रयकर्त्ताओं को लाभो मे हिस्सा नही दिया जाता है। दूसरी ओर, जब मदी आती है तब कुछ भी हिस्सा उन सुरक्षित लाभो मे से विक्रयकर्त्ताओं को नही दिया जाता है। इस प्रकार नियोक्ता की तो क्षतिपूर्ति हो जाती है जबकि विक्रयकर्त्ताओं को हानि ही उठानी पडती है।

(vi) अन्य कारणो से हानि होने से विक्रयकर्त्ताओं को हानि—चाहे विक्रय कर्त्ता वर्ष भर परिश्रम करें और सस्था के व्यवसाय म वृद्धि करन का परिश्रम करें तो भी उन्हें कभी कभी लाभो के हिस्से के लिए तरसना पड जाता है। प्रबन्धको की असावधानी के कारण सस्था मे हानि हो सकती है अन्य कर्मचारियों की अकुशलता से सस्था के लाभ कम हो सकते हैं, सस्था मे चोरी हो जाने, आग लग जाने आदि आदि कारणो मे भी सस्था के लाभ कम हो सकत है या सस्था को हानि हो सकती है। इसका परिणाम भी विक्रयकर्त्ताओं को भोगना पडता है।

6. विशिष्ट पद्धति
(Special Task Plan)

जैसा कि नाम से स्पष्ट है कि यह पद्धति विशिष्ट कार्य से सम्बन्धित है। जब कभी भी विक्रयकर्त्ताओं से कोई विशिष्ट कार्य करवाया जाता है, तो इस पद्धति के अनुसार पारिश्रमिक दिया जा सकता ह। दिन प्रतिदिन के सामान्य विक्रय कार्यों को पूरा करने पर इस पद्धति से पारिश्रमिक का भुगतान नही किया जाता है। यह पद्धति भी प्राय कमीशन पद्धति के साथ ही प्रयुक्त की जाती है।

प्राय विक्रयकर्त्ताओं को सामान्य ग्राहकों से आदेश प्राप्त करने के लिए नियुक्त किया जाता है। किन्तु कभी कभी उन्हें इन सामान्य ग्राहको से आदेश प्राप्त करने के अतिरिक्त भी कई कार्य सौंपे जा सकत हैं। इन अतिरिक्त कार्यों को करने के लिए विशिष्ट पारिश्रमिक दिया जाता है। इन कार्यों के लिए यह विशिष्ट पारिश्रमिक पहले से ही तय कर दिया जाता है। उदाहरण के लिए, एक विक्रयकर्त्ता का कार्य जयपुर शहर के व्यवसायियो से आदेश प्राप्त करना है। किन्तु यदि कम्पनी उस विक्रयकर्त्ता को पास के कस्बे सागानेर मे भी व्यापारियों को आदेश प्राप्त करने के

लिए भेज देती है तो यह सुनिश्चित है कि वहाँ पर उसे अधिक प्रयास करने पड़ेंगे और अधिक समय देना पड़ेगा। यह उसके लिए विशिष्ट कार्य है। अतः उसे इस कार्य के लिए विशिष्ट पारिश्रमिक मिलेगा। इसी प्रकार उसे पुराने ग्राहकों के पास आदेश प्राप्ति के लिए जाना जिनसे बहुत समय से व्यवहार नहीं हुआ है, ग्राहकों से बकाया राशि वसूल करने जाना आदि कार्यों को विशिष्ट कार्य माना जा सकता है और इन कार्यों के लिए दैनिक कार्यों से अलग एवं भिन्न दर से पारिश्रमिक दिया जाता है तो वह विशिष्ट कार्य पारिश्रमिक कहलायेगा।

लाभ (Advantages or Merits)

विशिष्ट पारिश्रमिक योजना के प्रमुख लाभ निम्न प्रकार हैं

(अ) नियोक्ता के दृष्टिकोण से—

(i) **कम पारिश्रमिक में कार्य** —कई छोटे छोटे कार्य कुछ अतिरिक्त पारिश्रमिक देकर भी पूरे करवाये जा सकते हैं। अतएव अलग विक्रयकर्त्ता की नियुक्ति में पारिश्रमिक के पड़ने वाले भार को वहन करने की आवश्यकता नहीं रहती।

(ii) **अलग विक्रयकर्त्ता की आवश्यकता नहीं**—कुछ विशिष्ट प्रकृति के कार्यों को पूरा करने के लिए अलग से विक्रयकर्त्ताओं की नियुक्ति नहीं करनी पड़ती है।

(iii) **अनुभवी विक्रयकर्त्ताओं की सेवाओं का लाभ**—इस पद्धति के अपनाने से संस्था के कुशल विक्रयकर्त्ताओं को कोई भी विशिष्ट कार्य सौंपा जा सकता है। ये अपने अनुभव से उस कार्य को कुशलतापूर्वक पूरा कर सकते हैं।

(iv) **विक्रयकर्त्ताओं तथा नियोक्ता के बीच अच्छे सम्बन्ध**—इस पद्धति में पारिश्रमिक का भुगतान करने से कोई भी विक्रयकर्त्ता सामान्यतः किसी भी कार्य करने से मना नहीं करता है। अतः नियोक्ताओं का प्रत्येक कार्य आसानी से हो जाता है और संस्था कुशलतापूर्वक चलती रहती है। इससे विक्रयकर्त्ताओं एवं नियोक्ताओं के बीच अच्छे सम्बन्ध बने रहते हैं।

(v) **विक्रय वृद्धि सम्भव**—इस विधि से पारिश्रमिक का भुगतान करने से संस्था के विक्रयकर्त्ता केवल वर्तमान विक्रय पर ही ध्यान नहीं देते हैं बल्कि ग्राहकों की समस्याओं को सुलझाने, संस्था के नये ग्राहकों में विश्वास जगाने तथा संस्था की ख्याति के निर्माण जैसे कार्य करते हैं। इससे परिणामस्वरूप संस्था की विक्रय वृद्धि होती है।

(ब) विक्रयकर्त्ताओं के दृष्टिकोण से

(i) **समय का सदुपयोग**—विक्रयकर्त्ता अपने सामान्य दैनिक कार्यों को करने के बाद बचे हुए समय का उपयोग इन विशिष्ट कार्यों में करता है। इस प्रकार बचे हुए समय का सदुपयोग हो जाता है।

(ii) **कुल आय में वृद्धि**—विशिष्ट कार्य के मिल जाने से विक्रयकर्त्ता को कुछ और आय प्राप्त हो जाती है जिसके परिणामस्वरूप उसकी कुल आय में वृद्धि होती है।

(iii) कार्य क्षेत्र मे वृद्धि—इसमे विक्रयकर्त्ता के कार्य क्षेत्र मे भी वृद्धि होती है। दैनिक कार्यों के अतिरिक्त कुछ विशिष्ट या महत्त्वपूर्ण कार्य भी करने को मिलते हैं।

(iv) प्रेरणा—जब विक्रयकर्त्ता को दैनिक कार्यों के अतिरिक्त कुछ विशिष्ट कार्य भी करने को दिया जाता है, तो उसका स्वाभिमान बढता है। इसके परिणामस्वरूप उसमे अधिक कार्य करने की प्ररणा स्वत उत्पन्न होने लगती है।

दोष (Disadvantages or Demerits)

विशिष्ट कार्य पद्धति के कई दोष भी हैं, जो निम्नलिखित हैं—

(अ नियोक्ताओं की दृष्टि से :

(i) अधिक व्यय—इस पद्धति के अपनाने से प्रत्येक अतिरिक्त कार्य के लिए विक्रयकर्त्ता को पृथक पारिश्रमिक देना पडता है। अत सस्था मे व्यय अधिक होने लगते हैं।

(ii) कार्य करवाना कठिन—प्रत्येक विशिष्ट कार्य के लिए अलग से पारिश्रमिक देना होता है। अत किसी विशिष्ट कार्य को किसी एक विक्रयकर्त्ता से करवाना कठिन हो जाता है। यह विक्रयकर्त्ता की स्वेच्छा पर ही निर्भर करता है कि वह चाहे तो करे या न करे। यदि कोई विक्रयकर्त्ता किसी विशिष्ट कार्य को करने के लिये मना करदे तो उसे बाध्य नही किया जा सकता है।

(iii) पृथक पद्धति के रूप मे अपनाना कठिन—इस पद्धति को पारिश्रमिक की एक पृथक पद्धति के रूप मे अपनाना कठिन होता है। यह पद्धति पारिश्रमिक की किसी अन्य पद्धति के साथ ही प्रयुक्त की जा सकती है।

(ब) विक्रयकर्त्ताओं के दृष्टिकोण से :

(i) नये विक्रयकर्त्ताओं के लिये अनुपयुक्त—यह पद्धति नये विक्रयकर्त्ताओं के लिए सर्वथा अनुपयुक्त है। नये विक्रयकर्त्ताओं को सामान्यत कोई विशिष्ट कार्य नहीं सौंपा जाता है। अत उन्हे इस पद्धति का कोई लाभ भी नही मिल पाता है।

(ii) पारिश्रमिक के उचित मापदण्ड का अभाव—विक्रयकर्त्ताओं की दृष्टि से दूसरा महत्त्वपूर्ण दोष यह है, कि इस पद्धति मे जो पारिश्रमिक दिया जाता है उसका कोई उचित मापदण्ड नही है। चूकि विशिष्ट कार्य के लिए प्राय बहुत कम पारिश्रमिक देकर विक्रयकर्त्ताओं को खुश करने का प्रयास किया जाता है।

7 अभ्यश पद्धति
(Quota Plan)

इस पद्धति के अन्तर्गत प्रत्येक विक्रयकर्त्ता को एक निश्चित क्षेत्र मे, एक निश्चित अवधि मे, एक निश्चित मात्रा मे, माल के विक्रय का भार सौंपा जाता है जिसके लिए कमीशन की एक राशि निश्चित कर दी जाती है। इस निश्चित विक्रय मात्रा को ही अभ्यश (Quota) कहा जाता है तथा कमीशन की यह राशि उसके वेतन के अतिरिक्त होती है। यदि विक्रयकर्त्ता निर्धारित अभ्यश के बराबर माल का

विक्रय कर लेता है, तो उसके लिये कमीशन की समस्त निर्धारित राशि उस विक्रयकर्त्ता को द दी जाती है। यदि वह इस निश्चित अवधि में अपने निर्धारित अभ्यंश की राशि के बराबर विक्रय नही कर पाता है, तो उसे कमीशन का भुगतान नहीं किया जाता है तथा अगली अवधि के लिये निर्धारित अभ्यंश में पिछली अवधि के बकाया अभ्यंश को भी जोड़ दिया जाता है। दूसरे शब्दों में, अगली अवधि के लिए उसका अभ्यंश अगली अवधि का अभ्यंश + पिछली अवधि के बकाया के अभ्यंश के बराबर होगा। अगली अवधि में अभ्यंश के पूरा होने पर, उसे दोनों अवधियों का कमीशन का भुगतान कर दिया जाता है।

लाभ-दोष (Advantages and Disadvantages) :

यह पद्धति वास्तव में 'वेतन तथा कमीशन' पद्धति का ही सुधार मात्र है। अत इस पद्धति के भी वे ही सभी गुण-दोष हैं, जो 'वेतन तथा कमीशन' पद्धति के हैं। हाँ! इसका एक लाभ यह और भी है कि चूंकि अभ्यंश पूरा करने के बाद ही कमीशन मिलता है। इसलिए नियोक्ताओं के लिए विक्रयकर्त्ताओं से कार्य पूरा करवाने की कठिनाई नहीं आती है। दूसरी ओर, विक्रयकर्त्ताओं को भी अपना अभ्यंश पूरा करके कमीशन प्राप्त करने की लालसा बनी रहती है।

8. प्रदत्त सुविधा पद्धति
(Fringe Benefit Plan)

यह भी वास्तव में पारिश्रमिक की अपने आप में कोई स्वतन्त्र पद्धति नहीं है किन्तु पारिश्रमिक की अन्य पद्धतियों की पूरक है। इस पद्धति के अन्तर्गत एक नियोक्ता अपने विक्रयकर्त्ताओं को सेवा काल में तथा सेवा निवृत्त होने के बाद विभिन्न सुविधाएँ प्रदान करता है। जिससे उसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मौद्रिक लाभ होता है। उदाहरणार्थ, मकान भत्ता, बीमारी भत्ता, भविष्य निधि में अंश दान, प्रशिक्षण, मनोरंजन, पेंशन, बीमा, ग्रेच्युटी आदि सुविधाएँ प्रदान करके भी विक्रयकर्त्ताओं को कुछ अतिरिक्त पारिश्रमिक का भुगतान किया जाता है। इन सुविधाओं के कारण विक्रयकर्त्ताओं का मनोबल बढ़ता है और वे संस्था के लिए अधिक रुचि से कार्य करते है।

अभ्यास के लिए प्रश्न

1. आप एक अच्छी विक्रयकर्त्ताओं की पारिश्रमिक योजना के गुणों का वर्णन कीजिये।

   Discuss the basic features of a sound compensation plan for salesmen

2. विक्रयकर्त्ताओं के पारिश्रमिक को कौन-कौन से तत्व प्रभावित करते हैं?

   What are the factors affecting Salesmen's remuneration?

3. 'केवल वेतन पद्धति' का वर्णन कीजिये। इसके गुण-दोषों का वर्णन कीजिये।

   What do you mean by 'Straight Salary Plan'? Discuss its advantages and disadvantages.

4 'केवल कमीशन पद्धति' के गुण एवं दोषों का वर्णन कीजिये।
Discuss the merits and demerits of 'Straight Commission Plan'.

5 'वेतन तथा कमीशन मिश्रित योजना' के लाभ-दोषों का वर्णन कीजिये।
Discuss the advantages and disadvantages of the 'Combination of Salary and Commission Plan'.

6 पारिश्रमिक की आहरण खाता पद्धति पर संक्षिप्त लेख लिखिये।
Write a lucid note on the Drawing Account method of remuneration

7 निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये
(i) लाभ भागिता पद्धति
(ii) अभ्यंश पद्धति
(iii) विशिष्ट कार्य पद्धति।
Write short notes on following
(i) Profit Sharing Plan
(ii) Quota Plan
(iii) Special Task Plan

7

विक्रयकर्ताओं को अभिप्रेरणाएँ

(Incentives or Motivation to Salesmen)

"The Primary Purpose of motivation is to aid salesmen to satisfy their goals by stimulating them to improve the effectiveness of their work

—L K Johnson

प्रबन्ध को दूसरों से कार्य करवाने की कला के रूप में परिभाषित किया जाता रहा है। अतः प्रबन्धकों के समक्ष यह एक महत्त्वपूर्ण चुनौती युक्त प्रश्न है कि वे उन बातों को ज्ञात करें जिनके द्वारा दूसरों से कार्य करवाया जा सके। उनको यह ज्ञात करना पड़ेगा कि वे कौन से रहस्य है जो व्यक्ति को कार्य करने के लिए अभिप्रेरित करते है। अभिप्रेरणा वे इच्छाएँ है और भावनाएँ है जो एक व्यक्ति को कार्य करने के लिये अभिप्रेरित करती है। एक व्यक्ति को अभिप्रेरित तभी किया जा सकता है जबकि उसकी योग्यताओं को किन्ही उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये निर्देशित किया जाता है। सगठनात्मक दृष्टिकोण से उत्प्रेरणा वह प्रेरक शक्ति है जो कि समूह के उत्साह के साथ प्रबन्धकों की योजनाओं को क्रियान्वित करती है।

परिभाषाएँ एवं अर्थ (Definitions and Meaning)

स्टेनले वेन्स (Stanley Vance) के मतानुसार कोई भी ऐसी भावना या इच्छा जो किसी व्यक्ति की इच्छा को इस प्रकार बना देती है कि वह व्यक्ति कार्य करने को प्रेरित हो जाय उसे अभिप्रेरणा कहते है।[1]

जूसियस (Jucius) के अनुसार अभिप्रेरणा एक व्यक्ति को या स्वयं को, किसी वांछित प्रक्रिया को करने के लिये प्रेरित करना है अथवा वांछित कार्य करवाने के लिये सही बटन को दबाना है।[2]

---

1 Motivation implies any emotion or desire which so conditions one's will that individual is propelled into action —Stanley Vance

2 Motivation is the act of stimulating someone or oneself to get a desired course of action or to push the right button to get the desired action —Michael J Jucius

बीच (Beach) के शब्दों में, "अभिप्रेरणा को एक लक्ष्य या पुरस्कार प्राप्त करने की शक्ति के विस्तार की इच्छा के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।"[1]

शार्टल (Shartle) के अनुसार, "किसी निश्चित दिशा की ओर जाने या किसी निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए निश्चित प्रेरणा या तनाव ही अभिप्रेरणा है।"[2]

मेक्फारलेण्ड (McFarland) के मत में, "अभिप्रेरणा की धारणा मूलत मनोवैज्ञानिक है। इसका सम्बन्ध व्यक्तिगत कर्मचारी अथवा अधीनस्थ में कार्य कर रही उन शक्तियों से है, जो उसे किसी कार्य को विधिवत् करने अथवा न करने के लिए प्रेरित करती हैं।"[3]

इस प्रकार स्पष्ट है कि अभिप्रेरणा वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा विक्रयकर्त्ताओं को कार्य के लिए प्रेरित किया जाता है। यह मूलत व्यक्तिगत आवश्यकताओं एव मान्यताओं पर आधारित है। अभिप्रेरणा देने के लिए विक्रयकर्त्ताओं की आवश्यकताओं की सतुष्टि की जाती है और यह प्रक्रिया सदैव चलती रहती है।

अभिप्रेरणा की प्रकृति
(Nature of Motivation)

परिभाषाओं का अध्ययन करके एव अन्य तथ्यों के आधार पर तथा अभिप्रेरणा के निम्न लक्षणों के आधार पर उसकी प्रकृति का अनुमान लगा सकते हैं—

1 **अभिप्रेरणा एक प्रक्रिया**—प्रथम म अभिप्रेरणा एक सतत् प्रक्रिया है जो कभी भी समाप्त नहीं होती है (*Motivation is an unending Process*)। विक्रयकर्त्ताओं से कार्य करवाने के लिए, उन्हें सदैव एव निरन्तर अभिप्रेरित करना ही पड़ता है।

2 **यह विक्रयकर्त्ताओं को कार्य करने को प्रेरित करती है**—अभिप्रेरणा की द्वितीय महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह विक्रयकर्त्ताओं को प्रधान उद्देश्य एव लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रेरित करती है।

3 **अभिप्रेरणा कई प्रकार से दी जा सकती है**—अभिप्रेरणा का यह भी एक महत्त्वपूर्ण लक्षण है, कि अभिप्रेरणा कई प्रकार से दी जा सकती है। केवल वित्तीय साधन ही अभिप्रेरणा का एकमात्र साधन नहीं है, बल्कि गैर वित्तीय साधनों द्वारा भी अभिप्रेरणाएँ दी जा सकती हैं।

---

1 "Motivation can be defined as a willingness to expand energy to achieve a goal or a reward" —Dale S Beach

2 "Motivation is a reported urge or tension to move in a given direction or to achieve a certain goal" —Car roll Shartle

3 "The concept of motivation is mainly psychological It relates those forces operating within the individual employee or subordinate which impel him to act or not to act in certain ways." —Dalton E McFarland

4 **अभिप्रेरणा से सहयोग प्राप्त किया जाता है**—अभिप्रेरणा कार्य करवाने के लिए ही नहीं, बल्कि आपसी सहयोग में वृद्धि करने के लिए भी दी जाती है।

5. **अभिप्रेरणा मानवीय आवश्यकताओं की सतुष्टि है**—अभिप्रेरणा देना वास्तव में मानवीय आवश्यकताओं की सतुष्टि करना है। मानव की आर्थिक, सामाजिक एवं मानसिक कई आवश्यकताएँ होती है। उन आवश्यकताओ की पूर्ति करने के लिए प्रबंधक अभिप्रेरणा देते है।

6 **अभिप्रेरणा एक निश्चित विधि है**—प्रो० मेक्फारलैण्ड (McFarland) ने अभिप्रेरणा को एक निश्चित विधि माना है और लिखा है कि "**अभिप्रेरणा एक विधि है, जिसमे प्रेरणाओ, उद्वेगो, इच्छाओ, महत्त्वकांक्षाओ, प्रयत्नो या आवश्यकताओं के माध्यम से मानव व्यवहार का निर्देशन, नियंत्रण एवं स्पष्टीकरण किया जाता है।**

7 **अभिप्रेरणा की धारणा मनोवैज्ञानिक है**—प्रो० मेक्फारलैण्ड (McFarland) का यह भी मत है कि अभिप्रेरणा की धारणा मूलतः मनोवैज्ञानिक है, जिसके द्वारा मनुष्यो के मस्तिष्क मे कार्य के प्रति नई धारणा उत्पन्न की जाती है।

8 **अभिप्रेरणा एवं मनोबल एक नहीं है**—कई बार यह भ्रम हो जाता है, कि अभिप्रेरणा तथा मनोबल एक ही है और ये दोनो शब्द पर्यायवाची है। किन्तु ऐसा नही है। इन दोनो शब्दो मे अन्तर है। अभिप्रेरणा कार्य के प्रति प्रेरित करने की प्रक्रिया है, जबकि मनोबल कार्य करने की इच्छा है।

9 **अभिप्रेरणा मानवीय सतुष्टि का परिणाम है**—अभिप्रेरणा का यह एक महत्त्वपूर्ण लक्षण है। अभिप्रेरणा स्वत नही दी जाती है। अभिप्रेरणा हस्तांतरित भी नही की जा सकती है। अभिप्रेरणा मनुष्यो की सतुष्टि के परिणामस्वरूप स्वतः उत्पन्न होती है। इस प्रकार अभिप्रेरणा एक परिणाम है, न कि कारण।

10 **अभिप्रेरणा कुशल व्यक्तियों की कार्यक्षमता से अभिवृद्धि करती है**—अभिप्रेरणा कुशल व्यक्तियो की कार्यक्षमता मे वृद्धि करती है तथा इसके अभाव मे उनकी कार्यक्षमता म विपरीत प्रभाव पड़ता है। किन्तु यहाँ महत्त्वपूर्ण यह है कि अभिप्रेरणा के द्वारा ही कुशल व्यक्तियों की कार्यक्षमता को बढाया नही जा सकता है।

अभिप्रेरणा के उद्देश्य
(Objectives of Motivation)

अभिप्रेरणा का मूल उद्देश्य लोगों को कार्य करने हेतु अभिप्रेरित करना है। प्रो० जॉनसन (Johnson) के अनुसार अभिप्रेरणा का प्रमुख उद्देश्य विक्रयकर्त्ताओं को उनके लक्ष्यो को पूरा करने मे सहायता प्रदान करने के लिए, उनकी कार्य कुशलता में सुधार करने के लिए, प्रोत्साहित करना है। अभिप्रेरणा के अन्य कई उद्देश्य भी

हो सकते हैं। सामान्यत अभिप्रेरणा के निम्नलिखित कुछ अन्य उद्देश्य हो सकते हैं :—

1. विक्रयकर्त्ताओं को कार्य के लिए प्रेरित करना।
2. विक्रयकर्त्ताओं का सहयोग प्राप्त करना।
3. विक्रयकर्त्ताओं म आपसी सहयोग बढाना।
4. विक्रयकर्त्ताओं की आवश्यकताओं की सतुष्टि करना।
5. सस्था मे अच्छे सम्बन्धो का निर्माण करना तथा उन्हें बनाये रखना।
6. विक्रयकर्त्ताओं के मनोबल को सुदृढ करना।
7. विक्रयकर्त्ताओं की कार्यक्षमता मे सुधार करना।
8. विक्रयकर्त्ताओं को कार्य सतुष्टि प्रदान करना।

विक्रयकर्त्ताओं को अभिप्रेरणा की आवश्यकता
(Need for Incentives or Motivation to Salesmen)

विक्रयकर्त्ताओं की कार्यक्षमता बढाने तथा बनाये रखने, उनकी सस्था के कार्यों मे रुचि उत्पन्न करने के लिए, उन्हे अभिप्रेरित करना ही पडता है। कोई भी सस्था अच्छे से अच्छे विक्रयकर्त्ता नियुक्त कर सकती है, किन्तु यदि उन्हे अभिप्रेरित नही किया जाता है तो सस्था को उनकी कुशलता एव दक्षता का लाभ कभी भी प्राप्त नही हो सकता है। यदि विक्रयकर्त्ताओं को यथा समय अभिप्रेरणा नही दी जाती है, तो एक समय ऐसा भी आ सकता है, जबकि कुशल विक्रयकर्त्ताओं की कार्यक्षमता इतनी कम हो जावेगी, जितनी कि अकुशल विक्रयकर्त्ताओं की होती है। ऐलन (Allen) ने उचित ही कहा है कि **"अपर्याप्त रूप से अभिप्रेरित व्यक्ति सर्वाधिक सुदृढ सगठन के प्रभाव भी समाप्त कर सकते हैं।"** ("Poorly motivated people can nullify the soundest organisation' Allen) अतएव विक्रयकर्त्ताओं को अभिप्रेरित करना आवश्यक है। विक्रयकर्त्ताओं को अभिप्रेरित करन या अभिप्रेरणा देन की आवश्यकता निम्न कारणो स होती है—

1 **कार्य की प्रकृति** (Nature of Job)—विक्रयकर्त्ता का कार्य सभी प्रकार के कार्यों से भिन्न होता है। यह एक कठिन कार्य होता है। इसमे विक्रयकर्त्ता को बहुत अधिक परिश्रम करना पडता है। यह ऐसा कार्य है, जिसमे विक्रयकर्त्ता को पग पग पर निराशा का सामना करना पडता है। भिन्न-भिन्न प्रकृति के व्यक्तियो से भिन्न भिन्न प्रकार की बातें सुनने को मिलती हैं। कोटलर (Kotler) के अनुसार **'विक्रयकार्य निश्चित ही निराशा का कार्य है। विक्रयकर्ता को अकेला रहकर कार्य करना पडता है, उसके कार्य का निश्चित समय नहीं होता है, उसका सामान्य पारिवारिक जीवन नहीं होता है, उसे उग्र प्रवृति के प्रतिस्पर्द्धी विक्रयकर्त्ताओं का सामना करना पड़ता है, उसका स्तर क्रेता की अपेक्षा निम्न कोटि का होता है,**

उनके पास कभी कभी वे अधिकार भी नहीं होते है, जिनकी ग्राहक बनाने के लिए आवश्यकता पडती है।'

2 कार्यों का दोहराव (Repetition of Job)—विक्रयकर्त्ता को प्रभि प्रेरित करने की आवश्यकता इसलिए भी पड़ती है कि विक्रयकर्त्ता का कार्य सदैव लगभग समान ही रहता है। उदाहरणार्थ एक दवा कम्पनी का विक्रयकर्त्ता है, तो वह एक डाक्टर से दूसरे तथा तीसरे डॉक्टर के पास अपनी एक ही दवाई के गुणों को बताता रहेगा। इससे उसे बड़ी थकावट महसूस होती है, तथा कार्य के प्रति उसकी अरुचि उत्पन्न होने लगती है।

इसी प्रकार प्रत्येक विक्रयकर्त्ता एक ही क्षेत्र विशेष के व्यापारियों से सम्पर्क स्थापित कर करके भी परेशान हो जाता है। इससे उसमे वह उत्साह, प्रेरणा एवं लगन नहीं रह पाती है जो कि उसमे पहली बार उस क्षेत्र मे आते समय होती है। ऐसी स्थिति में अभिप्रेरणा के बिना विक्रयकर्त्ता से कार्य मे सफलता प्राप्त करने की आशा करना व्यर्थ है।

3 व्यक्तिगत समस्याएँ (Personal Problems)—अधिकांश विक्रयकर्त्ताओं को अधिकांश समय के लिए घर से दूर रहना पड़ता है। वे अपने पारिवारिक सदस्यों के बीच रहने के आनन्द से वंचित तो रहते ही है साथ ही साथ उनके पारिवारिक सदस्यों को भी कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। उनकी अनुपस्थिति में कभी भी कोई सदस्य बीमार पड़ सकता है, घर मे किसी प्रकार की विपत्ति आ सकती है। लेनदार तकाजे के लिए आ सकते है। इन सब बातो का सामना पारिवारिक सदस्यों को करना पड़ता है और विक्रयकर्त्ता दूर बैठा सुनकर भी कुछ करने की स्थिति मे नहीं होता है। इस प्रकार इस तरह के बिलगाव को सहन करने के लिए बाध्य करने हेतु भी अभिप्रेरणा देनी पड़ती है।

4 समूह भावना का विकास (To Develop Team Spirit)—विक्रयकर्त्ता सामान्यतः क्षेत्र मे काफी दूर होते है तथा वे अपने सहकर्मियों से बहुत कम मिल पाते है अतः उन्हें संगठनात्मक दृष्टि से भी काफी अकेलापन महसूस होता है। इसीलिए समय समय पर सभाएँ व सम्मेलन बुलाकर उनको एकत्रित होने का अवसर देना चाहिये तथा उनमे समूह भावना उत्पन्न करनी चाहिये।

5 मानवीय प्रकृति (Human Nature)—सामान्यतः प्रत्येक व्यक्ति तब तक विशेष परिश्रम नहीं करता है जब तक कि उसे कोई प्रेरक शक्ति अधिक कार्य करने के लिये बाध्य न करे। यदि विक्रयकर्त्ता को अधिक कार्य करने के पीछे कुछ भी विशेष फल मिलने की आशा हो, तो वह अवश्य ही अधिक कार्य करेगा। इसीलिये कोटलर (Kotler) ने उचित ही लिखा है कि 'वे (विक्रयकर्त्ता) बिना कुछ वित्तीय लाभ या सामाजिक मान्यता की आशा के अपने आपको नहीं मारेंगे।' ("They

won't kill themselves' without some prospect of financial gain or social recognition")

6 कार्यक्षमता में वृद्धि करना (To Increase Capacity to Work)—विक्रयकर्त्ताओं की कार्यक्षमता मे वृद्धि करने के लिए भी विक्रयकर्त्ताओं को अभिप्रेरणा देने की आवश्यकता पड़ती है। उनकी छिपी हुई क्षमताओं का प्रयोग करने के लिए प्रतियोगिताएँ आयोजित की जा सकती हैं। स्टिल एवं कंडिफ (Still and Condiff) ने उचित ही लिखा है कि विक्रयकर्त्ताओं मे उच्च उत्पादन क्षमता न तो स्वतः आती है और न अचानक। इसका विकास विक्रयकर्त्ताओं के साथ अच्छे सम्बन्धों का निर्माण करने तथा यथा समय उपयुक्त अभिप्रेरणा की तकनीकों का प्रयोग करने से होता है।

7. विक्रयकर्त्ताओं की आवश्यकताओं की सतुष्टि (Satisfies Neeeds of Salesmen)—उत्प्रेरणा की आवश्यकता विक्रयकर्त्ताओं की सामाजिक, शारीरिक एव मानसिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यक है। कभी कभी शारीरिक आवश्यक्ताओं की अपेक्षा मानसिक एव सामाजिक आवश्यकताएँ इतनी महत्वपूर्ण होती हैं कि, उन्हे सतुष्ट किये बिना विक्रयकर्त्ताओं मे कार्य के प्रति लगन उत्पन्न करना असम्भव नही, तो कठिन अवश्य हो जाता है।

8 मनोबल के निर्माण मे सहायक (Helps Build Morale)—मनोबल कार्य करने की इच्छा (Will to Work) का नाम है। जब मनुष्य की सभी प्रकार की आवश्यकताएँ पूरी हो जाती हैं, तब उसे सामाजिक एव मानसिक सतुष्टि प्राप्त होती है, तो निश्चित ही उसकी कार्य करने की इच्छा उत्पन्न होती है। स्पष्ट है, कि अभिप्रेरणा मनोबल का निर्माण करने म सहायक है।

9. सहयोग (Cooperation)—अभिप्रेरित विक्रयकर्त्ता प्रबन्धकों के साथ सहयोगपूर्ण व्यवहार तो करते ही हैं, किन्तु वे अपने सह-कर्मियो के साथ भी सहयोग का व्यवहार करते हैं। अभिप्रेरित विक्रयकर्त्ता सस्था का कार्य येन केन-प्रकारेण यथासमय पूरा करने का प्रयास करता है।

10. मानवीय साधनो का सदुपयोग (Proper use of Human Resources)—सस्था के मानवीय साधनो का सदुपयोग करने के लिए उनको अभिप्रेरित करना आवश्यक है। एक कुशल विक्रयकर्त्ता को यदि पूर्ण रूप से अभिप्रेरित नहीं किया जाता है तो उसकी कार्यक्षमता एक अकुशल विक्रयकर्त्ता के समान ही होगी। अभिप्रेरणा के द्वारा प्रत्येक विक्रयकर्त्ता की आन्तरिक योग्यताओं का विकास करके उनका सस्था के हित मे सदुपयोग किया जा सकता है।

11. अच्छे सम्बन्धों का निर्माण (Build Good Relations)—अभिप्रेरणा के द्वारा विक्रयकर्त्ताओं एव प्रबन्धको के बीच मधुर सम्बन्धों का सूत्रपात करना भी

कठिन नहीं है। अभिप्रेरणा के द्वारा एक ओर विक्रयकर्ता की कार्यक्षमता बढ़ती है तथा उनकी कठिनाइयों को दूर किया जाता है और दूसरी ओर संस्था का विक्रय बढ़ता है। इस प्रकार इससे दोनों वर्गों का हित संवर्द्धन होता है और इसके परिणामस्वरूप पारस्परिक अच्छे सम्बन्धों का निर्माण होता है।

12 मानवीय सम्बन्धों का निर्माण (Builds Human Relations)—आज प्रबन्ध में मानवीय सम्बन्धों की विचारधारा ने चारों ओर सबको नये दृष्टिकोण से सामने ला खड़ा कर दिया है। यह विचारधारा इस बात पर बल देती है, कि चूँकि विक्रयकर्ता भी एक मनुष्य है। अतः इसके साथ मानवीय व्यवहार किया जाय और इससे ही उनकी उत्पादकता में वृद्धि की जा सकती है। अभिप्रेरणा इस दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम है।

अभिप्रेरणा के सिद्धान्त
(Principles of Motivation)

विक्रयकर्ताओं को अभिप्रेरित करने में कुछ निश्चित सिद्धान्तों का पालन करना चाहिए। प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित हैं—

1 विक्रयकर्ताओं में सुरक्षा की भावना उत्पन्न की जानी चाहिए।

2 विक्रयकर्ताओं को उनकी उपलब्धियों से अवगत करवाना चाहिये।

3 उनके कार्यों के लिए उनकी प्रशंसा करनी चाहिए तथा उन्हें मान्यता देनी चाहिए।

4 विक्रयकर्ताओं में संस्था के प्रति आत्मीयता का भाव उत्पन्न करना चाहिए।

5 विक्रयकर्ताओं को उन्नति एवं विकास का अवसर देना चाहिए।

6 विक्रयकर्ताओं का कुशलतापूर्वक नेतृत्व करना चाहिए।

7 विक्रयकर्ताओं के साथ मानवीय व्यवहार करना चाहिए।

8 विक्रयकर्ताओं के धार्मिक, नैतिक एवं सामाजिक विचारों का स्वागत करना चाहिए।

9 विक्रयकर्ताओं के सुझावों पर पर्याप्त ध्यान देना चाहिए।

10 विक्रयकर्ताओं को संस्था के नीति निर्धारण में पर्याप्त सहभागिता देनी चाहिए।

11 संगठन में दलीय भावना (team spirit) उत्पन्न करनी चाहिए।

12 विक्रयकर्ताओं को निराश नहीं होने देना चाहिए।

13 कार्य को रुचिकर बनाने का प्रयास करना चाहिये।

14 विक्रयकर्ताओं के व्यक्तिगत अस्तित्व को स्वीकार करना चाहिए।

15 विक्रयकर्ताओं की आन्तरिक दबी हुई शक्तियों के विकास का प्रयास करना चाहिए।

अभिप्रेरण प्रक्रिया
(Motivation Process)

अभिप्रेरणा की परिभाषा का अध्ययन करने से स्पष्ट हो गया है कि अभि-प्रेरणा एक प्रक्रिया है। यह निरन्तर रूप से चलती रहती है। इसमें कुछ प्रमुख स्तर निम्न प्रकार होते है :

1 उद्देश्यो का निर्धारण (Determination of Objectives)—अभिप्रेरणा देने के लिए सर्वप्रथम प्रबन्धको को अभिप्रेरण के उद्देश्यो को निर्धारित कर लेना चाहिए। बिना उद्देश्यो के निर्धारण किए अभिप्रेरणा के स्तर को आँकना भी कठिन हो जावेगा। उद्देश्यो के निर्धारित किए बिना प्रबन्धक अभिप्रेरणा के तरीको को भी कुशलतापूर्वक चुन नही सकेगा। उसे यह भी ज्ञात नही होगा कि वह किस दिशा मे लोगो को अभिप्रेरित करना चाहता है। अतएव यह आवश्यक है कि प्रबन्धक यह निश्चित कर ले, कि उनको अभिप्रेरणा किन को, किन कारणों से देनी है।

2 विक्रयकर्त्ताओ की भावनाओ का अध्ययन (Study of the Feelings of Salesmen)—अभिप्रेरणा के द्वितीय स्तर पर प्रबन्धक को विक्रयकर्त्ता की भावनाओ का अध्ययन करना चाहिये। विक्रयकर्त्ता किसी स्थिति या कार्य को किस प्रकार की मनोदशा से देखते हैं, इस बात का अध्ययन करना चाहिए। विक्रयकर्त्ताओ को पूर्ण रूप से अभिप्रेरित तब तक नही किया जा सकता है जब तक उनकी भावनाओ को प्रबन्धक उचित रूप से समझ नही लेते हैं।

3, सम्प्रेषण (Communication)—अभिप्रेरणा की विधि को विक्रय-कर्त्ताओ को बता देनी चाहिये। यदि प्रबन्धक लोगो तक अपनी बात उचित प्रकार से पहुँचाने मे असमर्थ रहते है, तो वे अपने विक्रयकर्त्ता को उचित प्रकार से अभिप्रेरित करने मे भी असफल ही रहेगे। अभिप्रेरणा के सदेश को पहुँचाना ही पर्याप्त नही है, बल्कि प्रबन्धक को विक्रयकर्त्ता की प्रतिक्रिया पर भी ध्यान देना चाहिए। अत सदेश की प्रतिपुष्टि (Feed-back) होना भी आवश्यक है।

4 हित संयोग करना (Integrate Interests)—विक्रयकर्त्ताओ को अभि प्रेरित करने मे प्रबन्धको को सगठन के उद्देश्यो एव विक्रयकर्त्ताओ के हितो, दोनो को ध्यान से रखना चाहिये। इस स्तर पर प्रबन्धक सस्था के उद्देश्यो को ध्यान मे रखकर व्यक्तिगत हितो का इस प्रकार निर्धारण करते है, कि विक्रयकर्त्ताओ को अधिकाधिक अभिप्रेरणा मिल सके।

5 सहायक दशाएँ उपलब्ध करना (Provide Auxiliary Conditions)—विक्रयकर्त्ताओ को उत्प्रेरित करने के लिए उन्हे कुछ सहायक कार्य दशाएँ उपलब्ध करानी चाहिए। इन हेतु प्रत्येक विक्रयकर्त्ता को प्रशिक्षण तथा अच्छे साधन देना चाहिये तथा अच्छे कार्य-वातावरण का निर्माण करना चाहिये।

6 समूह-भावना (Team-work)—तत्पश्चात् विक्रयकर्त्ताओं में समूह भावना का विकास करना चाहिये। प्रत्येक विक्रयकर्त्ता के कार्य एवं प्रयास संस्था के सम्पूर्ण उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए हो। व्यक्ति के स्थान पर संस्था के महत्त्व को बल देना चाहिए।

7 अनुवर्तन (Follow up)—अभिप्रेरणा देने के बाद समय-समय पर यह भी मूल्यांकन करते रहना चाहिए कि अभिप्रेरणा की कौन सी विधि का किस सीमा तक प्रभाव हुआ है। ऐसा करने से भविष्य में अभिप्रेरणा देने के लिए मार्ग दर्शन मिल जाता है। अभिप्रेरणा में वर्तमान में होने वाली त्रुटियों को भविष्य में समाप्त किया जा सकता है और अनावश्यक क्रियाओं को भी समाप्त किया जा सकता है।

अभिप्रेरणाओं का वर्गीकरण
(Classification of Motivation)

1 धनात्मक एवं ऋणात्मक अभिप्रेरणा (Positive and Negative Motivation)—धनात्मक अभिप्रेरणा पुरस्कार विचारधारा पर आधारित है। फिल्पो (Flippo) के अनुसार "धनात्मक अभिप्रेरणा वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा लाभ या पुरस्कार की सम्भावना से दूसरों को अपनी इच्छानुसार कार्य करने के लिए प्रभावित करना है।" धनात्मक अभिप्रेरणा देने की प्रमुख विधियाँ ये हैं—(i) कार्य के लिए सुझाव देना एवं प्रशंसा करना (ii) सूचनाएँ देना, (iii) व्यक्ति में व्यक्तिगत रूप से रुचि लेना, (iv) प्रतियोगिताएँ आयोजित करना, (v) गौरव प्रदान करना, (vi) अधिकारों का प्रत्यायोजन करना तथा (vii) अधिक वेतन प्रदान करना। धनात्मक अभिप्रेरणा को सकारात्मक या अनकूल अभिप्रेरणा भी कहते हैं।

धनात्मक अभिप्रेरणा, अभिप्रेरणा देने की प्रमुख विधि है। इसका प्रयोग प्रायः किया जाता है। इससे कर्मचारियों की कार्यक्षमता को आसानी से बढ़ाया जा सकता है, उनमें संस्था के प्रति शीघ्र अपनेपन की भावना का विकास किया जा सकता है।

धनात्मक अभिप्रेरणा के विपरीत, ऋणात्मक अभिप्रेरणा है। ऋणात्मक अभिप्रेरणा का उद्देश्य भी लोगों को अपनी इच्छानुसार कार्य करने के लिए अभिप्रेरित करना होता है। किन्तु इस विधि में अभिप्रेरणा देने के लिए भय एवं दण्ड का सहारा लेना पड़ता है। परम्परावादी विचारधारा के समर्थक इस विधि से अभिप्रेरणा देना उचित समझते थे। जो व्यक्ति उचित कार्यक्षमता से कार्य नहीं करते हैं, तो उनको पदावनत किया जा सकता है, उनका वेतन काटा जा सकता है तथा उनको जबरी छुट्टी दी जा सकती है।

ऋणात्मक अभिप्रेरणाएँ अधिक सफल सिद्ध नहीं होती हैं। अनेकों अध्ययनों एवं अनुसंधानों के निष्कर्षों को पढ़ने से यही ज्ञात होता है कि ऋणात्मक अभिप्रेरणाएँ केवल अल्पकाल में ही अच्छी साबित होती हैं। दीर्घकाल में ये अपना

विपरीत प्रभाव दिखाती हैं। लिकर्ट (Likert) के अनुसार "दीर्घकाल मे ऋणात्मक अभिप्रेरणाएँ उत्पादकता को कम करती हैं।"

धनात्मक एव ऋणात्मक अभिप्रेरणा मे अन्तर

(Distinction between Possitive and Negative Motivation)

अन्तर का आधार	धनात्मक	ऋणात्मक
1 अभिप्रेरणा का आधार	इसमे अभिप्रेरणा की दृष्टि से कर्मचारी के कार्य की प्रशसा की जाती है।	इनमे कर्मचारी के कार्य की बुराई की जाती है। उसे भय दिखाया जाता है।
2 प्रतिफल	धनात्मक अभिप्रेरणा के फलस्वरूप अधिक धन, अधिक सम्मान, पदोन्नति आदि प्राप्त होती है।	इसमे कर्मचारी को भय एव दण्ड मिलता है। उसको पदावनत किया जा सकता है।
3 प्रभाव	धनात्मक अभिप्रेरणा कर्मचारियो मे मनोबल को सुदृढ करता है तथा उनकी कार्य क्षमता मे वृद्धि करता है।	इसके प्रभाव प्राय आशा के विपरीत होते हैं।

2 बाह्य एव आन्तरिक अभिप्रेरणा (Extrinsic and Intrinsic Motivation)—बाह्य अभिप्रेरणा वह है, जो कि कार्य के अतिरिक्त स्रोतो से प्राप्त होती है। ये अभिप्रेरणाएँ कार्य के समय उत्पन्न नहीं होती हैं तथा इनका लाभ, कार्य के उपरान्त ही प्राप्त होता है। अधिक वेतन, सीमान्त लाभ (Fringe benefits) सेवानिवृत्ति योजनाएँ जीवन बीमा, विश्राम का समय, छुट्टियाँ आदि आदि बाह्य अभिप्रेरणाओ के उदाहरण हैं। हर्जबर्ग (Herzberg) ने उन्हे स्वस्थ्य तत्व या जीवन रक्षक तत्व (Hygiene or Maintensnce Factors) के नाम से सम्बोधित किया है।

आन्तरिक अभिप्रेरणाएँ वे हैं जो कार्य के दौरान उत्पन्न होती हैं। ये तत्त्व कार्य के दौरान सतुष्टि उत्पन्न करते है। ये तत्त्व मनुष्य की सामाजिक एव अहकारी आवश्यकताओ को पूरा करते हैं। ये अभिप्रेरणाएँ प्राय. अमौद्रिक ही होती हैं। सम्मान, उत्तरदायित्व, मान्यता, प्रबध मे हिस्सेदारी, आदि-आदि सभी आन्तरिक अभिप्ररणाओ के साधन हैं।

3. **वित्तीय तथा अवित्तीय अभिप्रेरणा (Financial or Non-financial Motivation)**—वित्तीय अभिप्रेरणा वह है, जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मुद्रा से सम्बन्धित है। मजदूरी या वेतन स्वयं एक बहुत ही महत्वपूर्ण वित्तीय प्रेरणाएँ है। इनके अतिरिक्त बोनस, लाभ विभाजन, सेवानिवृत्ति लाभ, छुट्टियों का वेतन, जीवन बीमा, निःशुल्क चिकित्सा सेवा तथा अन्य प्रकार की सेवाएँ, जिनमे धन खर्च होता हो, वित्तीय अभिप्रेरणाओं मे सम्मिलित हैं। मुद्रा एक महत्वपूर्ण अभिप्रेरक तत्व है। यह केवल सुख ही प्रदान नहीं करता है, बल्कि यह सामाजिक एवं अहंकारी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि भी करता है।

प्रबन्धक भी मुद्रा को एक महत्वपूर्ण अभिप्रेरक तत्व के रूप मे मानते हैं। यह व्यक्ति की आवश्यकताओं की सन्तुष्टि कर सकती है। यह विनिमय का आधार होने के कारण ही मात्र हमारी शारीरिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि भी करती है। आधुनिक समाज मे भी मुद्रा को सामाजिक आदर एवं स्थिति का प्रतीक माना जाता है। यह प्रत्येक वस्तु का प्रतीक है। इसीलिए मुद्रा अभिप्रेरणा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण साधन माना गया है किन्तु गैलरमैन (Gellerman) का कहना है कि "मुद्रा एक स्थूल उपाय है क्योंकि मुद्रा का अन्तिम प्रभाव ज्ञात करना एक आमलेट में अण्डे के प्रभाव को ज्ञात करने मे भी कठिन है।"

अतएव यह कहना तनिक भी अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि मुद्रा के द्वारा दीर्घकाल तक उत्प्रेरणा देना असम्भव नहीं, तो कठिन अवश्य होगा। चेस्टर आई बर्नार्ड (Chester I Barnard) के अनुसार "यह एक सामान्य अनुभव की बात है कि भौतिक पुरस्कार जीवन व्यापन की सीमा के बाद प्रभावहीन होते हैं।" उन्होंने अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है कि अधिकतर लोग भौतिक लाभ के लिये अधिक कठिन कार्य नहीं करते हैं।

अवित्तीय अभिप्रेरणाएँ वे हैं जो किसी भी प्रकार से धन से सम्बन्ध नहीं रखती हैं। ये अभिप्रेरणाएँ मनोवैज्ञानिक होती हैं, जो मनुष्य की आन्तरिक भावनाओं को सन्तुष्टि प्रदान करती हैं। प्रशंसा करना, जिम्मेदारी देना, सेवा सुरक्षा करना, निर्णय में स्वतन्त्रता देना, अधिक अधिकार देना, अच्छी कार्य दशाएँ उत्पन्न करना आदि-आदि अवित्तीय अभिप्रेरणाएँ हैं। डूबिन (Dubin) के अनुसार, **अवित्तीय प्रेरणाएँ मानसिक पुरस्कार हैं या कार्य-संगठन में स्थिति की वृद्धि है।"**

विक्रयकर्त्ताओं की अभिप्रेरण पद्धतियाँ
(Methods of Motivating Salesmen)

विक्रयकर्त्ताओं को अभिप्रेरणा देने की कई पद्धतियाँ हैं। उन विभिन्न पद्धतियों को स्थूल रूप में दो भागों में विभक्त करके अध्ययन किया जा सकता है :

I. वित्तीय पद्धतियाँ
(Financial Methods)

अभिप्रेरणा की वित्तीय पद्धतियाँ वे हैं, जिनके द्वारा एक कुशल विक्रयकर्त्ता को एक सामान्य विक्रयकर्त्ता की अपेक्षा अधिक वेतन, कमीशन या अन्य मौद्रिक लाभ प्राप्त होता है। हमने पिछले अध्याय में विभिन्न वित्तीय अभिप्रेरण पद्धतियों का विस्तार से वर्णन किया है। अभिप्रेरणा की दृष्टि से पारिश्रमिक में कमीशन, लाभ भागिता, कमीशन तथा वेतन, अभ्यंश पद्धति आदि का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये पद्धतियाँ बहुत प्रभावशाली होती हैं, क्योंकि इन पद्धतियों से मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं की ही संतुष्टि नहीं होती है, बल्कि इनसे उनको इतनी धनराशि भी प्राप्त हो सकती है जिससे उन्हें समाज में सम्मान पाने का अवसर भी मिलता है। इसके अतिरिक्त, समाज में सम्मान पाने के लिए आवश्यक वस्तुओं को भी वे खरीद सकते हैं तथा भावी जीवन की सुरक्षा का भी प्रबन्ध कर सकते हैं।

II. अवित्तीय पद्धतियाँ
(Non-financial Methods)

मनुष्य को वित्त या धन की आवश्यकता पड़ती है और प्रत्येक मनुष्य इसे प्राप्त करने का प्रयास करता है। मनुष्य की दैनिक जीवन की आवश्यकताएँ वित्त के द्वारा ही पूरी की जा सकती हैं। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है, कि मनुष्य केवल धन प्राप्ति के लिये ही कार्य करता है। मनुष्य के कार्य करने के पीछे अन्य प्रेरणाएँ भी होती हैं। मनुष्य सामाजिक एवं मानसिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए भी कार्य करता है। इनकी पूर्ति करना प्रबन्धकों का कार्य है। प्रत्येक विक्रय प्रबन्धक को अपने विक्रयकर्त्ताओं को अभिप्रेरित करने के लिए अवित्तीय पद्धतियों का प्रयोग करना चाहिये। केनफील्ड (Canfield) के अनुसार "कुछ व्यक्तियों को

अभिप्रेरित करने के लिए ये साधन वित्तीय साधनों की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होते हैं। अभिप्रेरणा के अवित्तीय पद्धतियों को हम दो भागों में बाँट कर अध्ययन कर सकते हैं

(अ) वैयक्तिक अभिप्रेरण पद्धतियाँ
(Methods of Individual Motivation)

मानव प्रकृति समान नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति की रुचियाँ, इच्छाएँ, मान्यतें आदि समान नहीं हो सकती है। अतः यदि सभी व्यक्तियों को एक साथ अभिप्रेरित करने की योजना बनाई जाती है तो वह योजना सफल हो, यह आवश्यक नहीं है। अतएव विक्रयकर्त्ताओं को अभिप्रेरित करने के लिए कुछ वैयक्तिक अभिप्रेरण पद्धतियाँ अपनाई जाती हैं जिनसे व्यक्तिगत इच्छाओं आवश्यकताओं, रुचियों के अनुसार अभिप्रेरणा दी जा सके। वैयक्तिक अभिप्रेरणा की प्रमुख पद्धतियाँ निम्न प्रकार हैं :

1. विक्रयकर्त्ताओं से व्यक्तिगत सम्पर्क (Personal Conferences with Salesmen)—विक्रय प्रबन्धक तथा विक्रय निरीक्षकों का विक्रयकर्त्ताओं से व्यक्तिगत सम्पर्क विक्रयकर्त्ताओं को अभिप्रेरित करने का एक ही अच्छा साधन है। जब कभी भी विक्रय प्रबन्धक विक्रय निरीक्षक किसी भी विक्रयकर्त्ता से व्यक्तिगत रूप से मिलते हैं तो उनके कार्यों की प्रशंसा करके, उनके परिश्रम की सराहना करके, उनकी समस्याओं को दूर करके उसे अभिप्रेरणा दे सकते हैं। इसके अतिरिक्त, वे विक्रयकर्त्ताओं से उनकी इच्छाओं पसन्द आदि के बारे में पूछताछ करके भी उनके मन की दबी भावनाओं को भी ज्ञात कर उनको सन्तुष्टि प्रदान करने का प्रयास कर सकते हैं। विक्रय प्रबन्धक विक्रयकर्त्ताओं से उनकी उन्नति, पदोन्नति, या उनके अन्य व्यक्तिगत हितों के बारे में भी पूछताछ कर सकते हैं। ऐसा करने से विक्रयकर्त्ताओं के मन में संस्था के प्रति अच्छे विचार बनने लगते हैं तथा संस्था के प्रति अपनत्व की भावना (Sense of belonging) पैदा होने लगती है।

व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करने के लिये विक्रय प्रबन्धक विक्रय निरीक्षक कार्यालय में, जलपान गृह में विक्रयकर्त्ताओं के घर या अपने घर में विक्रयकर्त्ताओं से अनौपचारिक वातावरण में भेंट कर सकते हैं।

2. विक्रयकर्त्ताओं से व्यक्तिगत पत्राचार (Correspondence with Individual Salesmen)—विक्रयकर्त्ताओं से व्यक्तिगत रूप से पत्र व्यवहार करके भी उन्हें अभिप्रेरित किया जा सकता है। चूँकि विक्रयकर्त्ता कई बार लम्बे समय के लिए भ्रमण कार्यक्रम (Tour Programme) बना कर दूर चले जाते हैं और अपने साथियों (Colleagues) परिवार के सदस्यों से काफी समय के लिए अलग हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में विक्रयकर्त्ताओं को बहुत परेशानी महसूस होने लगता है और उनकी कार्य के प्रति रुचि समाप्त होने लगती है। अतएव विक्रय प्रबन्धक समय समय पर विक्रयकर्त्ताओं से वैयक्तिक रूप से पत्र व्यवहार कर प्रेरणा प्रदान कर सकते हैं। पत्रों के माध्यम से विक्रय प्रबन्धक विक्रय निरीक्षक विक्रयकर्त्ताओं के

कार्यों की प्रशंसा कर सकते हैं, उन्हे मान्यता (Recognition) प्रदान कर सकते हैं तथा उनकी महत्त्वपूर्ण बातो तथा उनके विचारो पर अपना मत व्यक्त कर सकते हैं। जब कभी कोई विक्रयकर्त्ता अच्छा क्रयादेश प्राप्त करने मे सफल हो जाता है, प्रतिस्पर्द्धा मे सस्था के माल की माँग को अत्यधिक रूप से बढाने मे सफल हो जाता है, तो विक्रय प्रबधक उसे व्यक्तिगत रूप से पत्र लिख कर अभिप्रेरित कर सकता है। कई विक्रयकर्त्ता पर्याप्त परिश्रम करने के बाद भी विक्रय कार्य मे पर्याप्त सफलता प्राप्त नही कर सकते हैं, तो उन्हे बहुत निराशा हाथ लगती है। किन्तु विक्रय प्रबधक ऐसे विक्रयकर्त्ताओ को व्यक्तिगत पत्र लिखकर उनमे आत्म-विश्वास पैदा कर सकता है तथा उनमे कार्य के प्रति रुचि उत्पन्न कर सकता है। दूसरे शब्दो मे, विक्रय प्रबधक विक्रयकर्त्ताओ को पत्र लिखकर उनमे नई शक्ति, नया जोश तथा नई उमग पैदा कर सकता है।

इस सम्बन्ध मे यह बात अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि विक्रयकर्त्ताओ को लिखे जाने वाले पत्र बहुत ही हृदय स्पर्शी होने चाहिये, जिससे कि विक्रयकर्त्ताओ की कार्य करने की भावना एव रुचि को उभारा जा सके। पत्र आशावादी दृष्टिकोण से लिखना चाहिये। ऐसे पत्रो का उद्देश्य विक्रयकर्त्ताओ मे नया साहस भरना तथा उन्हे आशावादी बनाना होना चाहिये।

3 पदोन्नति (Promotion)—प्रत्येक व्यक्ति विकास चाहता है। वह अपने पद से अधिक बडे पद पर जाना चाहता है। इसी चाह से वह अपनी योग्यता, कार्यक्षमता, ज्ञान आदि मे निरन्तर वृद्धि करता है। यदि उनकी योग्यता, कार्यक्षमता आदि मे पर्याप्त वृद्धि के बाद भी उसे पदोन्नति न मिले तो, उसे जीवन मे बहुत निराशा मिलती है। उसकी कार्य के प्रति अरुचि बढती है तथा वह अपने कार्यों को उपेक्षा भरी दृष्टि से करता है। परिणामस्वरूप, एक स्थिति यह आती है कि उसकी कार्यक्षमता गिर जाती है, जो किसी भी सस्था के लिए हितकर नही होती है। अतएव विक्रयकर्त्ताओ की कार्यक्षमताओ को बनाये रखना तथा उनमे वृद्धि करने, कार्य के प्रति अधिक रुचि करने तथा सस्था के प्रति आत्मीयता उत्पन्न करने के लिए योग्य व्यक्तियो की पदोन्नति की जानी बहुत ही आवश्यक है।

कई बार ऐसे अवसर आते हैं, जबकि योग्य व्यक्ति को पदोन्नति नही मिल पाती है तथा अयोग्य व्यक्ति एक के बाद एक उच्च पद प्राप्त करता ही चला जाता है। ऐसा केवल भाई भतीज्ञावाद, पक्षपात आदि के कारण होता है। किन्तु विक्रय प्रबधक को इन सब बातो से दूर रहकर योग्य व्यक्ति की पदोन्नति की सिफारिश करनी चाहिये। पदोन्नति के लिए निश्चित आधार एव नियम तय कर लेने चाहिये। ऐसा करने से ही विक्रयकर्त्ताओ मे कार्य के प्रति प्रेरणा उत्पन्न की जा सकती है तथा सस्था के उद्देश्यो को पूरा किया जा सकता है।

4. उत्तरदायित्व (Responsibility)—कुछ विद्वानो का यह मत है कि लोगों को अधिक उत्तरदायित्व सौंपकर भी अभिप्रेरित किया जा सकता है। अत

विक्रयकर्त्ताओं को अपने दैनिक कार्यों के अतिरिक्त अन्य महत्त्वपूर्ण कार्यों को करने का दायित्व भी सौंपा जा सकता है। अधिक उत्तरदायित्व से अधिकार स्वतः उत्पन्न होते है। इसके परिणामस्वरूप विक्रयकर्त्ताओं की स्थिति संस्था में बहुत अधिक सुदृढ़ बन जाती है।

5 निष्पादन भावना (Feeling of Accomplishment)—विक्रय प्रबंधक को विक्रयकर्त्ताओं को अभिप्रेरित करने के लिए उनमे कार्य पूरा करने की भावना भी विकसित करनी चाहिए। इस हेतु विक्रयकर्त्ताओं को अधिक कार्य स्वतन्त्रता प्रदान की जानी चाहिये। उन्हें यथा समय पूर्ण सूचनाएँ प्रदान करनी चाहिये। उन्हें स्वयं को अपने लक्ष्य (विक्रय अभ्यंश) निर्धारित करने का अवसर प्रदान करना चाहिए।

(ब) सामूहिक अभिप्रेरण पद्धतियाँ
(Methods of Group Motivation)

विक्रयकर्त्ताओं को सामूहिक रूप से भी अभिप्रेरित किया जा सकता है। सम्मेलन, प्रतियोगिताएँ लघु पुस्तिकाएँ, हैंड बुक्स, सचित्र पत्र पत्रिकाएँ आदि-आदि कई ऐसे साधन है जिनके द्वारा विक्रयकर्त्ताओं के सम्पूर्ण समूह को अभिप्रेरित किया जा सकता है। विभिन्न प्रकार की सामूहिक अभिप्रेरण पद्धतियों का नीचे कुछ शीर्षकों में वर्णन किया जा रहा है—

1 विक्रय सम्मेलन एवं सभाएं
(Sales Conferences and Conventions)

विक्रय सम्मेलन एवं सभाएँ विक्रयकर्त्ताओं को सामूहिक रूप से अभिप्रेरणा प्रदान करने की एक महत्त्वपूर्ण विधि है। इनके बारे में विशेष अध्ययन करने से पूर्व यह अनावश्यक नही होगा, यदि हम विक्रय सम्मेलन एवं सभाओं के अर्थ को भली प्रकार समझ लें।

सभाएँ (Conventions) वे होती हैं, जिनम प्रतिनिधि किसी विशेष उद्देश्य से निश्चित परम्परा के अनुसार एकत्रित होते हैं तथा जिनका आयोजन एक निश्चित समय के बाद प्रतिवर्ष किया जाता है, जबकि सम्मेलन (Conferences वे होते हैं जिनमें प्रतिनिधि सामान्य विचार विमर्श के उद्देश्य से एकत्रित होते हैं। तथा जिनको कभी भी आयोजित किया जा सकता है।[1] इस प्रकार सभाओं एवं सम्मेलन में अत्यन्त ही कम अन्तर विद्यमान है। वर्तमान सन्दर्भ में हम दोनों शब्दों को समानार्थक रूप में ही प्रयोग करेंगे।

---

1 डॉबमैन (Daubman) के अनुसार, "A convention has several ideas in it as expressed by those using this term It means a meeting of representatives for some definite purpose, and having an element of fixed custom or general practice behind the assembly A conference is a meeting for purposes of discussion " If Salesmanship, Sales Management and Advertising, M. Satyanarayana, p 222.

अभिप्रेरणा देने के दृष्टिकोण से इन दोनों का समान महत्त्व है। इन दोनों में विक्रयकर्त्ताओं को अपने विचार व्यक्त करने, आपस में मिलने तथा अपनी सामाजिक भावना को सतुष्ट करने का अवसर मिलता है। यदि इन्हें उचित प्रकार से आयोजित किया जाय, तो इनके बहुत ही हितकारी प्रभाव होते हैं। ये विक्रयकर्त्ताओं में रुचि उत्पन्न करने, प्रेरित करने तथा उनके मनोबल को बढाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकती हैं। ये प्रबन्धकों एव विक्रयकर्त्ताओं के बीच की दूरी को कम कर सकती है। इनके माध्यम से विक्रयकर्त्ताओं को सस्था की प्रगति के बारे में सम्पूर्ण सूचनाएँ मिल सकती हैं, जिससे विक्रयकर्त्ताओं को अभिप्रेरित करने में बहुत अधिक मदद मिलती है। सक्षेप में, विक्रय सम्मेलनों एव सभाओं के आयोजन से अभिप्रेरणा देने की दृष्टि से निम्नलिखित लाभ हो सकते हैं—

(i) **आपस मे मिलने का अवसर**—विक्रय सभाओं एव सम्मेलनों मे जब विक्रयकर्ता एकत्रित होते हैं, तो विक्रयकर्त्ताओं को आपस में मिलने का अवसर मिलता है। विक्रयकर्त्ता अपने कार्य के दौरान अधिकतर समय बाहर एव दूर रहते हैं। अत उन्हें अपने सहकर्मियों से मिलने का अवसर मिलता है जिससे वे अत्यधिक रूप से प्रसन्न होते हैं।

(ii) **सहयोग की भावना का विकास**—जब सभाओं एव सम्मेलनों मे मिलने का अवसर मिलता है, तो उनमे आपसी स्नेह बढता है और उनमे आपसी सहयोग की भावना भी बढती है।

(iii) **विक्रयकर्त्ताओं के ज्ञान मे वृद्धि**—विक्रय सम्मेलनों एव सभाओं का एक लाभ यह भी है कि ये विक्रयकर्त्ताओं के ज्ञान में वृद्धि करने मे सहायक हैं। इनके आयोजन के समय सस्था की वस्तुओं की उत्पादन प्रक्रिया, वस्तुओं मे किये गये परिवर्तनों, आदि के बारे मे विस्तार से बताया जाता है। इसके अतिरिक्त सस्था की नीतियों के बारे मे भी विस्तृत जानकारी मिलती है। हेरी हेपनर (Harry Hepner) के अनुसार, सभाओं एव सम्मेलनों मे व्यक्तियों को वस्तुएँ देखने, नीतियों में किये गये परिवर्तनों को सुनने तथा अपने नये अधिकारियों एव सहयोगियों से मिलने का अवसर मिलता है।"

(iv) **आत्म अभिव्यक्ति का अवसर**—सभाओं एव सम्मेलनों मे विक्रयकर्त्ताओं को अपनी बात सबके सामने रखने का अवसर मिलता है। सभी लोगों के विचार सुनने से विक्रयकर्त्ताओं को नई-नई बातें सीखने का अवसर मिलता है। विक्रयकर्त्ताओं को मन की बात रखने का अवसर मिलने के कारण उनके मन मे यह भावना उत्पन्न होती है, कि उनसे भी सस्था कुछ पूछ रही हैं तथा उनके विचारों को महत्त्व दिया जा रहा है।

(v) **मधुर सम्बन्धों की स्थापना**—इनके माध्यम से विक्रयकर्त्ताओं एव विक्रय प्रबन्धकों या निरीक्षकों के बीच अच्छे सम्बन्धों का निर्माण सम्भव है। इनके माध्यम से विक्रयकर्त्ता अपने अधिकारियों के अपेक्षाकृत अधिक निकट आते हैं तथा अपनी

समस्याओं पर विचार विमर्श कर सकते हैं। इससे आपसी सम्बन्ध अधिक दृढ एवं मधुर होने लगते है।

(vi) **आमोद प्रमोद**—विक्रय सभाओं एवं सम्मेलनों के समय विक्रयकर्त्ता अपने सभी दैनिक कार्यो से मुक्त हो जाता है। सभाओं के समय में बाद कई मनोरजन के कार्यक्रम होते हैं। इससे उनके वातावरण में परिवर्तन आता है और वे पुनः अधिक उत्साह से कार्य पर चले जाते है।

(vii) **कुशल विक्रयकर्त्ताओं की प्रबन्धकों को जानकारी**—कुशल विक्रयकर्त्ताओं की प्रबन्धकों को जानकारी इन सभाओं एवं सम्मेलनों के माध्यम से बहुत ही शीघ्र हो जाती है। उनके विचारों को सुनकर, उनके द्वारा लिखे गये लेखों का वाचन सुनकर उनकी कुशलता का ज्ञान किया जा सकता है। इसी प्रकार उनके व्यवहार चाल चाल आदि से भी उनकी उनकी कुशलता की जाच की जा सकती है।

(viii) **संस्था की ख्याति**—विक्रय सभाओं में विक्रयकर्त्ताओं के अतिरिक्त बाहर के कई लोगों को भी बुलाया जाता है। इससे संस्था का नाम फैलता है, संस्था की ख्याति बढ़ती है और विक्रयकर्त्ताओं को भी ऐसी ख्याति प्राप्त संस्था में कार्य करने में गर्व की अनुभूति होती है, जो उन्हें अभिप्रेरित करने में सहायक होती है।

(ix) **सामाजिक आवश्यकता की सतुष्टि**—विक्रयकर्त्ताओं को विचार व्यक्त करने का अवसर मिलने से उनकी एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता—सामाजिक आवश्यकता की सन्तुष्टि होती है। प्रत्येक व्यक्ति यह चाहता है कि लोगों का समुदाय उसे जाने लोग उसकी बात को सुने तथा उसे सामाजिक मान्यता मिले। इन सभाओं के द्वारा एक सीमा तक इन आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करना सम्भव है।

दोष या सीमाएँ (Disadvantages or Limitation)

यद्यपि सम्मेलन एव सभाएँ अभिप्रेरणा प्रदान करने के बहुत अच्छे माध्यम होने के उपरान्त भी इनके बहुत से दोष या सीमाएँ है। वे निम्नलिखित है—

(i) विक्रयकर्त्ताओं को कुछ समय या दिनो के लिए अपने सभी दैनिक कार्य बन्द कर देने पड़ते है।

(ii) सम्मेलन का आयोजन करने तथा विक्रयकर्त्ताओं को बुलाने मे बहुत सा धन व्यय करना पड़ता है।

(iii) संस्था के कार्यों मे व्यावधात पड़ता है।

(iv) ऐसी सभाओं एव सम्मेलनो मे विक्रयकर्त्ताओं की व्यक्तिगत समस्याओं पर बहुत कम ध्यान दिया जाता है।

(v) सम्मेलनो एव सभाओं के दिनों को कई विक्रयकर्त्ता केवल अवकाश के दिनो के रूप में ही समझते है और वे इन्हें महत्त्व नहीं देते है।

(vi) छोटी छोटी व्यावसायिक संस्थाओं के लिए यह माध्यम अनुपयुक्त है।

(vii) इनके आयोजन के लिए काफी समय पूर्व ही तैयारियाँ करना आवश्यक है।

2. विक्रय प्रतियोगिताएं
(Sales Contests)

विक्रय प्रतियोगिता एक विशिष्ट विक्रय आन्दोलन है, जो विक्रयकर्त्ताओं को सदैव मिलने वाले पारिश्रमिक के अतिरिक्त एवं अधिक पुरस्कार या सम्मान के रूप में प्रेरणा देता है।[1]

कोई भी संस्था अपने विक्रयकर्त्ताओं में प्रतिस्पर्द्धा उत्पन्न करने की दृष्टि से विक्रय प्रतियोगिताएँ आयोजित कर सकती है। इन प्रतियोगिताओं द्वारा तुलनात्मक रूप में अधिक कुशल विक्रयकर्त्ताओं की खोज की जाती है। यद्यपि इन प्रतियोगिताओं में संस्था का प्रत्येक विक्रयकर्त्ता भाग नहीं लेता है फिर भी प्रत्येक संस्था को यह प्रयास करना चाहिए कि उसके अधिकाधिक विक्रयकर्त्ता भाग लें तथा वास्तविक रूप से कुशल व्यक्तियों की खोज की जा सके तथा उन्हें अपनी कुशलता को बढ़ाने का अवसर प्रदान किया जा सके। ऐसी प्रतियोगिताओं में अधिकाधिक प्रतियोगियों को आकर्षित करने हेतु प्रतियोगिता में विजय प्राप्त करने वालों को दिये जाने वाले पुरस्कारों की पहले से ही घोषणा कर देनी चाहिये।

उद्देश्य (Objectives)—विक्रय प्रतियोगिताओं के निम्नलिखित प्रमुख उद्देश्य होते हैं—

(i) विक्रयकर्त्ताओं में प्रतिस्पर्द्धा की भावना उत्पन्न करना।

(ii) संस्था की विक्रय वृद्धि में सहयोग देना।

(iii) अच्छे एवं कुशल विक्रयकर्त्ताओं की खोज करना।

(iv) विक्रयकर्त्ता के परिवार के सदस्यों को इस बात के लिए प्रेरित करना कि वे विक्रयकर्त्ता को प्रतियोगिता में विजय प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करें।

(v) सस्ता तथा मस्ता के माल का विज्ञापन करना।

(vi) विक्रयकर्त्ताओं में व्याप्त सुस्ती एवं अरुचि को दूर करना।

(vii) सामूहिक प्रतियोगिताएँ आयोजित करके शाखाओं में प्रतिस्पर्द्धा उत्पन्न करना।

(viii) नई वस्तु को बाजार में प्रस्तुत करते समय उत्पन्न होने वाली बाधाओं को दूर करना।

(ix) नये ग्राहकों को बढ़ाना।

---

1. 'A sales contest is special selling compaign offering salesmen incentives in the form of prizes or awards above and beyond those regularly provided by the compensation plan

—S i l and Cundiff.

(x) सामूहिक प्रतियोगिताओं के द्वारा विक्रयकर्त्ताओं मे समूह भावना का विकास करना।

(xi) उन वस्तुओं का विक्रय बढाना जिनका वर्तमान मे विक्रय अत्यन्त कम है।

(xii) ग्राहकों के साथ अच्छे सम्बन्धों का निर्माण करना।

(xiii) नये क्षेत्र मे माल का विक्रय बढाना।

(xiv) पुराने ग्राहकों को जिन्होंने अब माल का क्रय करना बन्द कर दिया है, पुन ग्राहक बनाना।

(xv) विक्रयकर्त्ताओं मे संस्था के प्रति अपनत्व की भावना पैदा करना।

विक्रय प्रतियोगिताओं के आधार (Bases of Sales Contests)

विक्रय प्रतियोगिताएँ आयोजन करने के कई आधार है। प्रमुख आधार इस प्रकार है—

(1) गतवर्ष का विक्रय (Sales of Previous Year)—विक्रय प्रतियोगिताएँ *आयोजित करने का एक महत्त्वपूर्ण आधार गत वर्ष का विक्रय है। गतवर्ष के विक्रय* को ध्यान मे रखते हुए चालू वर्ष मे विक्रय प्रतियोगिता की राशि तय की जाती है। जो विक्रयकर्त्ता इस राशि के बराबर माल का क्रय कर लेता है, वह प्रतियोगिता मे विजयी हुआ माना जाता है। उदाहरणार्थ गत वर्ष 10 लाख रु के क्रयादेश प्राप्त करने वाले को विक्रय प्रतियोगिता मे विजयी घोषित किया गया था। अब प्रबन्धक यह तय करते है कि जो विक्रयकर्त्ता पिछले वर्ष के सर्वाधिक विक्रय की तुलना मे 15 प्रतिशत से अधिक मात्रा मे विक्रय करेंगे, उन्हे प्रतिस्पर्द्धा मे विजयी घोषित किया जावेगा तथा पुरस्कार दिया जावेगा। प्रतिस्पर्धा की यह विधि गत वर्ष के विक्रय पर आधारित पद्धति है।

(2) अंक पद्धति (Point System)—विक्रय प्रतियोगिता आयोजित करने की दूसरी पद्धति अंक पद्धति कही जा सकती है। इस पद्धति का प्रयोग तब-तब किया *जाता है, जबकि विक्रयकर्त्ता का कार्य केवल विक्रय करना ही नहीं होता है, बल्कि* विक्रयकर्त्ता अन्य कई कार्य भी करता है। उदाहरणार्थ, एक संस्था के विक्रयकर्त्ता को नये ग्राहकों से भेंट करना, पुराने ग्राहकों से पुन: क्रयादेश प्राप्त करना, ग्राहकों की समस्याओं का समाधान करना पडता है। इन सब कार्यों के लिए संस्था कुछ अंक निर्धारित कर देती है। अब विक्रयकर्त्ता जिस कार्य को करता है, उसके खाते मे उतने ही अंक जुडते चले जाते है। एक निश्चित अवधि के बाद जिस विक्रयकर्त्ता के सबसे ज्यादा अंक होते है, उसे ही प्रतियोगिता मे विजयी घोषित किया जाता है।

(3) न्यूनतम विक्रय अभ्यंश (A Minimum Sales Quota)—इस विधि मे संस्था के सभी विक्रयकर्त्ताओं के लिए विक्रय अभ्यंश की एक राशि निश्चित कर दी जाती है। जो विक्रयकर्त्ता इस अभ्यंश की राशि के बराबर या अधिक माल का विक्रय कर लेते हैं, उन्हे प्रतियोगिता में पुरस्कार दिया जा सकता है।

उदाहरणार्थ एक संस्था ने यह निश्चित किया, कि जो विक्रयकर्ता अगस्त माह में एक लाख रुपये या उससे अधिक राशि के क्रयादेश लायेगा, उसे 500 रु का नकद पुरस्कार दिया जावेगा। यदि संस्था में दस विक्रयकर्त्ताओं ने एक लाख से अधिक राशि के क्रयादेश प्राप्त किये हैं, तो दस विक्रयकर्त्ताओं में से प्रत्येक को 500 रु का नकद इनाम दिया जावेगा।

(4) आदेशों की संख्या (Number of Orders)—कभी-कभी कुछ संस्थाएँ आदेशों की संख्या को प्रतियोगिता का आधार मान लेती हैं। ऐसी प्रतियोगिताओं में यह व्यवस्था होती है, कि जो विक्रयकर्ता सबसे अधिक संख्या में (राशि में नहीं) आदेश प्राप्त करेगा, उसे प्रतियोगिता में विजयी घोषित किया जावेगा। ऐसे प्रतियोगी को ही पुरस्कार भी दिया जाता है।

पुरस्कारों के प्रारूप (Forms of Awards) :

प्रतियोगिताओं में विजय प्राप्त करने वालों को पुरस्कार कई रूपों में दिये जा सकते हैं। सामान्यतः पुरस्कार निम्नलिखित प्रारूपों में दिये जाते हैं —

1. नकद पुरस्कार (Money or Cash Prizes)—कई संस्थाएँ अपने विक्रयकर्त्ताओं को पुरस्कारों के रूप में नकद रुपये दे देती हैं। किन्तु अनेकों मनोवैज्ञानिकों का मत है, कि नकद पुरस्कार विक्रयकर्त्ताओं को इतने अधिक अभिप्रेरित नहीं कर पाते हैं, जितने अन्य प्रकार के पुरस्कार कर सकते हैं। फिर भी व्यवहार में देखने को मिलता है, कि बहुत बड़ी संख्या में संस्थाएँ अपने विक्रयकर्त्ताओं को पुरस्कार नकद में ही देती हैं।

इस सम्बन्ध में इतना अवश्य है, कि कई संस्थाएँ विक्रयकर्त्ताओं को तत्काल नकद न देकर, उन्हें क्रेडिट सर्टिफिकेट दे देती हैं। जिन्हें कुछ समय बाद संस्था के कार्यालय से भुनाकर रुपया प्राप्त किया जा सकता है। किन्तु सर्टिफिकेट देने का उद्देश्य यह होता है, कि विक्रयकर्त्ता कहीं जल्दी में नकद रुपयों का दुरुपयोग न कर बैठे। सर्टिफिकेट प्राप्त करके, उन्हें भुनाने में कुछ समय लग जाता है। इस समय में वह उस धनराशि के खर्च से पहले पूर्ण रूप से विचार कर सकता है तथा धन का सदुपयोग कर सकता है।

2 वस्तुएँ (Prizes in Kind)—कई संस्थाएँ अपने विजयी घोषित विक्रयकर्त्ताओं को पुरस्कार नकद न देकर वस्तुओं के रूप में देती हैं। वस्तुओं के रूप में पुरस्कार देते समय विक्रयकर्त्ताओं की सामान्य रुचि को ध्यान में रखना चाहिये। सामान्यतः विक्रयकर्त्ताओं को जब वस्तुओं के रूप में पुरस्कार दिया जाता है, तो उन्हें बर्तन, रेडियो, पहनने के कपड़े, हैण्ड बेग, ब्रीफ केस आदि आदि वस्तुएँ दी जाती हैं।

3 नकद व वस्तुओं का संयोग (Combination of Cash and Kind)—कभी कभी कुछ संस्थाएँ अपने विक्रयकर्त्ताओं को पुरस्कार नकद तथा वस्तुओं दोनों

के रूप मे दे देती है। अर्थात् पुरस्कार की कुछ राशि नकद दे दी जाती है तथा कुछ पुरस्कार वस्तु या अन्य रूप मे दे दी जाती है।

4 **विशिष्ट आदर** (Special Honour)—विशिष्ट आदर देकर भी विक्रयकर्त्ताओ को पुरस्कृत किया जा सकता हैं। विशिष्ट आदर कई प्रकार से दिया जा सकता है। विक्रयकर्त्ताओ को उनकी प्रशसा का प्रमाण-पत्र प्रदान किया जा सकता है उन्हे अच्छी सी ट्राफी (Cup) दी जा सकती है। इसी प्रकार मेडल, शील्ड आदि प्रदान करके भी उन्हे विशिष्ट आदर प्रदान किया जा सकता है।

5 **अवकाश पुरस्कार** (Vacation Awards)—कई बार कई सस्थाएँ अपने विक्रयकर्त्ताओ को पुरस्कार स्वरूप कार्य से अवकाश प्रदान करके यात्रा करने भेज देती है। इस अवकाश मे यात्रा आदि करने पर होने का खर्चा भी सस्था वहन करती है। अवकाश मे यात्रा करने के लिए उन्हे कभी कभी सस्था टिकट खरीद कर भी दे सकती है तो कभी-कभी सारा खर्चा सस्था नकद ही दे देती है।

लाभ (Advantages)

विक्रय प्रतियोगिताओ के आयोजन से निम्नलिखित प्रमुख लाभ होते है —

(i) **विक्रयकर्त्ता की क्षमता का पूर्ण उपयोग**—विक्रय प्रतियोगिताओं का आयोजन करने से सस्था अपने विक्रयकर्त्ताओ की सम्पूर्ण क्षमताओ एव योग्यताओ का उपयोग कर सकती है। चूकि अधिक कार्य करने से विक्रयकर्त्ता को कुछ अतिरिक्त धन, वस्तु या आदर मिलता है। अत वह अपनी सम्पूर्ण क्षमता का प्रयोग करते हुए कार्य करता है।

(ii) **कुशल विक्रयकर्त्ताओं के लिए आकर्षण**—विक्रय प्रतियोगिताएँ कुशल विक्रयकर्त्ताओ को सस्था मे आकर्षित करती है। कुशल विक्रयकर्त्ता विक्रय प्रतियोगिताओ के लाभो को प्राप्त करने के लिए स्वत सस्था मे आते है।

(iii) **सस्था की ख्याति मे वृद्धि**—विक्रय प्रतियोगिताओ के प्रचार करने से सस्था की ख्याति मे वृद्धि होती है।

(iv) **सस्था के विक्रय मे वृद्धि**—विक्रय प्रतियोगिताओ का आयोजन करने से प्रत्येक विक्रयकर्त्ता अपनी पूर्ण क्षमता से विक्रय कार्य मे लगता है। इसके परिणाम-स्वरूप सस्था के कुल विक्रय मे वृद्धि होती है।

(v) **विक्रयकर्त्ताओ की कार्यकुशलता मे वृद्धि**—विक्रय प्रतियोगिताओ के आयोजन मे एक लाभ यह भी होता है, कि कम कुशल विक्रयकर्त्ता भी अपनी कार्य-कुशलता बढाने मे सफल हो जाते है। चूकि प्रत्येक विक्रयकर्त्ता सदैव प्रतियोगिता मे भाग लेता है। अत धीरे धीरे उसकी कुशलता बढती रहती है।

(vi) **मदी काल मे विक्रय वृद्धि सम्भव**—विक्रय प्रतियोगिता का आयोजन करके कोई भी सस्था अपनी विक्रय वृद्धि के लिए, प्रयास कर सकती है। अधिक अच्छे पुरस्कारो की घोषणा करके, अच्छे विक्रयकर्त्ताओ को विक्रय वृद्धि के लिए अभिप्रेरित किया जा सकता है।

(vii) विक्रयकर्त्ताओं में सहयोग—सामूहिक विक्रय प्रतियोगिताएँ आयोजित करके विक्रयकर्त्ताओं में आपसी सहयोग बढ़ाया जा सकता है।

(viii) कम विक्रय क्षेत्रों में अधिक विक्रय—क्षेत्रीय विक्रय प्रतियोगिताएँ आयोजित करके कोई भी संस्था अपने उन बाजार क्षेत्रों में विक्रय बढ़ा सकती है, जिनमें आज विक्रय की मात्रा अत्यल्प है।

(ix) नई वस्तुओं के लिए बाजार—जब कभी किसी भी संस्था को अपनी नई वस्तु को बाजार में प्रस्तुत करना हो तथा उसके विक्रय को बढ़ाना हो, तो विक्रय प्रतियोगिताएँ आयोजित करके इस कार्य को सरल किया जा सकता है।

दोष, सीमाएँ या आपत्तियाँ (Disadvantages, Limitations or Objections against Sales Contests)

विक्रय प्रतियोगिताओं के जहाँ एक ओर कई लाभ हैं, वहाँ इसके कई दोष या सीमाएँ भी हैं। जो निम्नलिखित हैं —

(i) **असफल विक्रयकर्त्ता निरुत्साहित**—कई बार यह दोष उत्पन्न हो जाता है। कई विक्रयकर्त्ता जो बहुत अधिक भावुक होते हैं, वे यदि प्रतियोगिता में विजय प्राप्त नहीं कर पाते हैं, तो बहुत निराश होते हैं। वे पुनः प्रतियोगिता में भाग लेने का साहस ही नहीं करते हैं। किन्तु ऐसी भावुकता उचित नहीं होती है। एक बार असफल रहे, विक्रयकर्त्ताओं को बार-बार प्रतियोगिताओं में भाग लेना चाहिये।

(ii) **ये अस्थाई अभिप्रेरणा प्रदान करती हैं**—विक्रय प्रतियोगिताओं का दूसरा दोष यह है, कि ये अस्थाई प्रेरणा का साधन हैं। जब तक प्रतियोगिता की अवधि होती है, तब तक विक्रयकर्त्ता कठोर परिश्रम करते हैं। जब प्रतियोगिता समाप्त हो जाती है, तो वे परिश्रम करना छोड़ देते हैं।

(iii) **प्रतियोगिता से पूर्व विक्रय रोक देना**—कुछ चालाक विक्रयकर्त्ता प्रतियोगिता से कुछ दिन पूर्व ही क्रयादेश प्राप्त करना बन्द कर देते हैं, ताकि प्रतियोगिता काल में आसानी से अधिकाधिक क्रयादेश प्राप्त करके अधिक विक्रय दिखा सकें।

(iv) **प्रचार सम्बन्धी कार्य में कमी**—विक्रय प्रतियोगिताओं का आयोजन करने का एक बड़ा दोष यह भी उत्पन्न हो जाता है, कि विक्रयकर्त्ता केवल विक्रय आदेशों पर ही ध्यान देने लगते हैं। ग्राहकों की सेवा करना, उनकी आपत्तियों को सुनने तथा संस्था की ख्याति में अन्य कार्य करने पर विक्रयकर्त्ता ध्यान देना प्रायः बन्द ही कर देते हैं।

(v) **सुविधाजनक वस्तुओं का विक्रय**—विक्रय प्रतियोगिताएँ जब केवल सामान्य विक्रय राशि के आधार पर ही होती हैं, तो विक्रयकर्त्ता उन वस्तुओं के विक्रय पर ही अधिक ध्यान देते हैं, जिनका विक्रय करना आसान होता है तथा आसानी से काफी मात्रा में आदेश प्राप्त किये जा सकते हैं।

(vi) **डूबत ऋणों का बढ़ना**—विक्रय प्रतियोगिताओं के समय विक्रयकर्त्ता केवल विक्रय बढ़ाने या आदेशों की संख्या बढ़ाने में रुचि रखते हैं। ऐसी स्थिति में

कई बार ऐसे ग्राहकों को माल का विक्रय कर दिया जाता है, जिससे माल की राशि वसूल करना असम्भव नहीं, तो कठिन अवश्य हो जाता है।

(vii) खर्चीला साधन—विक्रयकर्ताओं को अभिप्रेरित करने का यह एक खर्चीला साधन है। प्रतियोगिताओं में विक्रयकर्ताओं को आकर्षित करने के उद्देश्य से काफी बड़े पुरस्कार रखने पड़ते हैं। छोटे पुरस्कार अच्छे विक्रयकर्ताओं को आकर्षित नहीं कर पाते हैं। अतएव इन पुरस्कारों में बहुत धन व्यय करना पड़ता है।

(viii) व्यक्तिगत स्पर्द्धा से सहयोग में कमी—यद्यपि सामूहिक प्रतियोगिताओं में सहयोग बढ़ता है किन्तु व्यक्तिगत प्रतिस्पर्द्धा में सामान्य लोगों में आपसी द्वेष पैदा होने लगता है।

3 विक्रयकर्ताओं के लिए संस्था की पत्र-पत्रिकाएँ (Periodicals for Salesmen)

संस्था विक्रयकर्ताओं के लिए कई पत्र पत्रिकाएँ निकालती हैं। इन पत्रिकाओं में नई विक्रयकर्ताओं के विचार भी प्रकाशित किये जाते हैं। उनके अतिरिक्त पिछले समय में उनके द्वारा किये गये विशिष्ट विक्रय कार्यों की प्रशंसा की जाती है, जिससे भविष्य में और अधिक अच्छा कार्य करने की उन्हें प्रेरणा मिलती है।

इन पत्र पत्रिकाओं के द्वारा विक्रयकर्ताओं को संस्था के विकास एवं विस्तार से भी अवगत करवाया जा सकता है। संस्था की नई वस्तुओं नई शोध एवं संस्था की प्रतिस्पर्धात्मक स्थिति के बारे में भी विक्रयकर्ताओं को जानकारी दी जा सकती है। उनकी जानकारी से विक्रयकर्ताओं की संस्था के प्रति आस्था एवं स्वामिभक्ति बढ़ती है।

इन पत्र पत्रिकाओं में विक्रयकर्ताओं की रुचि को बहुत आसानी से उत्पन्न कर सकते हैं। ये बार बार प्रकाशित की जाती हैं। अतः उनमें एक ही बात को भिन्न भिन्न प्रकार से प्रस्तुत करके सन्देहों का निवारण भी किया जा सकता है। उनसे विक्रयकर्त्ता अपने आपको संस्था के अत्यधिक निकट समझने लगते हैं। इस माध्यम में अत्यधिक लोच का गुण पाया जाता है क्योंकि इसे जब आवश्यकता हो, तब प्रकाशित किया जा सकता है उसके आकार को बढ़ाकर सम्पूर्ण बात स्पष्ट रूप से विक्रयकर्ताओं के समक्ष प्रस्तुत की जा सकती है। इनके माध्यम से विक्रयकर्ताओं को नई वस्तुओं के बारे में भी ज्ञान करवाया जा सकता है तथा प्रेरणाप्रद भाषण भेजे जा सकते है। प्रबन्धक इनके माध्यम से समय समय पर अपनी नीतियों एवं कार्यक्रमों को विक्रयकर्ताओं तक आसानी से पहुँचा सकते है।

4 विक्रयकर्ताओं के लिए लघु पुस्तिकाएँ तथा हैण्डबुक्स (Booklets and Handbooks for Salesmen)

व्यावसायिक संस्थाएँ अपने विक्रयकर्ताओं को अभिप्रेरित करने के लिये लघु-पुस्तिकाएँ, हैंडबुक्स, बुलेटिन्स तथा फोल्डर्स आदि का प्रयोग भी करती हैं। प्रत्येक

विक्रयकर्त्ता संस्था की नीतियों, कार्यक्रमों तथा प्राप्तियों के बारे में जानकारी प्राप्त करना चाहता है। अतएव अभिप्रेरणा में इनका अपना बहुत अधिक महत्त्व है। इस प्रकार के साहित्य को हम तीन भागों में बाँट कर अध्ययन कर सकते हैं:—

(i) प्रारम्भिक साहित्य (Orientation Literature)—जब भी कभी विक्रयकर्त्ता नई संस्था में नियुक्ति किये जाते हैं, तो उन्हें कुछ प्रारम्भिक साहित्य दिया जाता है, जिनमें कई लघु पुस्तिकाएँ, फोल्डर आदि सम्मिलित होते हैं, इस प्रकार के साहित्य से उन्हें संस्था के सम्बन्ध में सभी प्रकार की प्रारम्भिक जानकारी हो जाती है यथा, संस्था का इतिहास, संस्था द्वारा उत्पादित वस्तुएँ तथा संस्था की नीतियाँ आदि। इनके अतिरिक्त, इस साहित्य में विक्रयकर्त्ताओं की हैण्डबुक, विक्रयकर्त्ताओं की पत्रिका की एक प्रति, संस्था के विस्तृत इतिहास की पुस्तक, संस्था की वार्षिक रिपोर्ट, संस्था की वस्तुओं की केटलोग या सूचीपत्र, विक्रय प्रशिक्षण पुस्तक आदि भी सम्मिलित होती हैं।

(ii) विक्रयकर्त्ताओं की पुस्तक तथा हैण्डबुक (Salesmen's manual and handbooks)—कई व्यावसायिक संस्थाएँ अपने विक्रयकर्त्ताओं को 'विक्रयकर्त्ताओं की पुस्तक' (Salesman's manual) प्रदान करती हैं, जिसमें विक्रय तकनीकों, ग्राहकों की आपत्तियों के निवारण की विधियों, प्रदर्शन करने, तथा ग्राहकों से व्यवहार करने की विधियों का वर्णन होता है। इसके अतिरिक्त संस्थाएँ कभी-कभी विक्रयकर्त्ताओं को हैण्डबुक भी देती है, जिसमें विक्रयकर्त्ताओं को संस्था द्वारा प्रदान की जाने वाली सुविधाएँ यथा पेन्शन, भविष्य निधि, ऋण, जीवन बीमा, बीमारी भत्ता, छुट्टियाँ, स्थानान्तरण, अनुपस्थिति का वेतन, क्षतिपूर्ति, पदोन्नति, सामाजिक सुरक्षा आदि आदि के बारे में विस्तृत सूचनाएँ होती हैं।

(iii) लघु पुस्तिकाएँ तथा फोल्डर (Booklets and Folders)—संस्था की वस्तुओं के बारे में अनुसंधान विज्ञापन, संगठनात्मक परिवर्तन, उच्च अधिकारियों के प्रेरणाप्रद भाषण, संस्था की नई नीतियों तथा व्यावसायिक दृष्टिकोण के बारे में जानकारी प्रदान करने के लिये, विक्रयकर्त्ताओं को संस्था की ओर से कुछ लघु पुस्तिकाएँ तथा फोल्डर प्रदान किये जाते हैं।

5 विक्रयकर्त्ताओं के लिये चलचित्र
(Motion pictures for Salesmen)

कई विक्रयकर्त्ता अपनी संस्था के बारे में तथा अपनी संस्था द्वारा निर्मित वस्तुओं के बारे में अधिक विस्तार से जानना चाहते हैं। अतएव कई संस्थाएँ अपने विक्रयकर्त्ताओं को इस सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी देने हेतु कई छोटी छोटी फिल्में बना लेती हैं तथा विक्रयकर्त्ताओं को दिखाती हैं। इसी प्रकार विक्रयकर्त्ताओं को किसी भी अन्य मामलों जैसे विक्रय विधि, ग्राहकों की आपत्तियों के निवारण करने की विधि आदि की विस्तृत जानकारी हेतु भी छोटी छोटी फिल्में बनाई जा सकती हैं। कई संस्थाएँ अपने विक्रयकर्त्ताओं को अपनी वस्तुओं के उत्पादन की प्रक्रिया को

चलचित्रों के माध्यम से दिखाती है—और उन्हें वस्तुओं के बारे में विस्तृत जानकारी प्रदान करती है। इन सबसे विक्रयकर्त्ता की संस्था के प्रति अपनत्व की भावना बढ़ती है तथा कार्य के प्रति रुचि बढ़ती है।

6. सहभागिता
(Participation)

विक्रयकर्त्ताओं को अभिप्रेरित करने की एक महत्त्वपूर्ण विधि विक्रयकर्त्ताओं को सह-भागिता प्रदान करना है। संस्था के महत्त्वपूर्ण निर्णयों में तथा नीति निर्धारण में विक्रयकर्त्ताओं के प्रतिनिधियों को सम्मिलित किया जा सकता है। आधुनिक युग में अभिप्रेरणा देने के लिए, इस साधन को सर्वाधिक रूप से प्रयोग किया जा रहा है। भागीदारी देने से विक्रयकर्त्ता अधिक उत्तरदायी तथा सृजनशील (Creative) बनते हैं तथा संस्था के प्रति अपनेपन की भावना का विकास होता है।

अभ्यास के लिए प्रश्न

1. अभिप्रेरणा से आप क्या समझते हैं? विक्रयकर्त्ताओं को अभिप्रेरित करने की आवश्यकता क्यों पड़ती है?
   What do you understand by the term motivation? What is the need for motivating of salesmen?
2. विक्रयकर्त्ताओं को अभिप्रेरित करने की कौन-कौनसी विधियाँ हैं? उनका संक्षेप में वर्णन कीजिये।
3. विक्रय सभाएँ तथा सम्मेलन से आपका क्या तात्पर्य है? इनके कौन-कौन से लाभ एवं दोष हैं?
   What do you mean Sales Conventions and Conferences? What are their advantages and disadvantages?
4. विक्रय प्रतियोगिताएँ क्यों आयोजित की जाती हैं? इनके लाभों एवं सीमाओं का वर्णन कीजिये।
   Why Sales Contests are arranged? Discuss their merits and limitations
5. एक अच्छी अभिप्रेरण प्रक्रिया का वर्णन कीजिये।
   Discuss a sound motivation process.

इकाई-5
(UNIT–5)

1 विक्रय संवर्द्धन
2 विक्रय संगठन संरचना
3. विक्रय प्रबन्धक की भूमिका
4. क्रय-प्रेरणाएं
5. ग्राहकों के प्रकार

I

विक्रय संवर्द्धन

(Sales Promotion)

"The primary purpose of sales promotion is to make more effectively the efforts of the advertising department, the salesmen in the territories, and the distributors and dealers in the field persuading present and prospective customers to buy."

—L. K Johnson

आधुनिक बाजार मे 'विक्रेता के बाजार' (Seller s market) का युग समाप्त होकर 'क्रेता के बाजार (Buyer's market) के युग का प्रादुर्भाव हो चुका है। विक्रेता के बाजार में विक्रेताओं की तुलना मे क्रेताओं की सख्या अधिक होती थी और विक्रेता मुँह मागे मूल्य पर माल का विक्रय करता था। उस युग मे विक्रेता के लिए बाजार म माल का विक्रय करना तनिक भी कठिन कार्य नहीं था। परन्तु वर्तमान क्रेता के बाजार मे माल का विक्रय करना एक जटिल समस्या बन चुकी है। बाजार म एक ही वस्तु की कई स्थानापन्न वस्तुएँ उपलब्ध होने लगी हैं एव बाजार मे गला काट प्रतिस्पर्द्धा (cut throat competition) विद्यमान है। ऐसी स्थिति मे किसी व्यावसायिक सस्था के अस्तित्व को स्थायी बनाये रखने हेतु विज्ञापन एव व्यक्तिगत विक्रय (advertising and personal selling) के साथ-साथ विक्रय सवर्द्धन के साधनो का अपना विशिष्ट महत्त्व है।

अर्थ एव परिभाषाएं

(Meaning and Definitions)

विक्रय सवर्द्धन शब्द को विभिन्न विद्वान विभिन्न रूप से प्रयुक्त करते चले आ रहे हैं। जॉन केमेरोन आस्पले (John Cameron Aspley) ने विक्रय सवर्द्धन शब्द को बहुत ही विस्तृत रूप म परिभाषित किया है। उनके अनुसार विक्रय सवर्द्धन मे वे सभी कार्य सम्मिलित हैं, जो वस्तु के विपणन मे किए जाते हैं—जैसे व्यक्तिगत विक्रय, विज्ञापन और बाजार को विस्तृत करने सम्बन्धी कार्य।''[1]

---

1 'All functions that have to do with the marketing of the product personal selling advertising and activities designed to expand the market' John Cameron Aspley Sales Promotion Handbook p, 23

इस परिभाषा के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि विक्रय सवर्द्धन का कोई अलग अस्तित्व नहीं है, बल्कि विक्रय विभाग का ही एक भाग है। इस प्रकार की परिभाषा का आधुनिक युग में कोई औचित्य नहीं है। आधुनिक युग में विक्रय सवर्द्धन को एक आवश्यक विपणन कार्य (marketing function) के रूप में समझा जाने लगा है। अत. अब इसे केवल विक्रय विभाग का एक अंग समझना उचित नहीं है। इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए जॉनसन (Johnson) ने विक्रय सवर्द्धन की निम्न परिभाषा दी है—

विक्रय सवर्द्धन में वे सभी कार्य सम्मिलित किए जाते हैं, जिनका उद्देश्य विक्रयकर्ताओं, वितरण विभाग, व्यापारियों एवं वितरकों के कार्यों को पूरा करना, समन्वय करना, एवं विक्रयकर्ताओं के कार्यों को अधिक प्रभावपूर्ण बनाना होता है जिससे विक्रय वृद्धि की जा सके और दूसरे शब्दों में उपभोक्ताओं को रूप में अधिक रुचि लेने को प्रोत्साहित किया जा सके।

इस परिभाषा में विक्रय सवर्द्धन को एक विशिष्ट कार्य माना गया है और विक्रय सवर्द्धन के सभी पहलुओं को सम्मिलित किया गया है। अमेरिकन मार्केटिंग एसोसियेशन (American Marketing Association) ने विक्रय सवर्द्धन की एक संक्षिप्त परिभाषा निम्न प्रकार दी है—

"विक्रय सवर्द्धन में व्यक्तिगत विक्रय, विज्ञापन एवं प्रचार के अतिरिक्त वे सब अनियमित क्रियाएँ सम्मिलित की जाती हैं जो उपभोक्ता एवं व्यापारी की तत्परता को प्रोत्साहित करती हैं, जैसे—प्रदर्शन, दिखावा एवं प्रदर्शनी क्रियात्मक प्रदर्शन।"

केली (Kelley) ने भी अमेरिकन मार्केटिंग एसोसियेशन की परिभाषा में थोड़ा परिवर्तन करते हुए निम्न परिभाषा दी है—

"विक्रय सवर्द्धन में व्यक्तिगत विक्रय, विज्ञापन तथा प्रचार के अतिरिक्त वे सभी क्रियाएँ भी सम्मिलित है जो स्वामित्व का हस्तान्तरण करने तथा उत्पादक से उपभोक्ता तक माल को तत्परता से पहुँचाने में व्यक्तिगत विक्रय एवं विज्ञापन को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए की जाती हैं।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के ध्यानपूर्वक अध्ययन करने से स्पष्ट है कि विक्रय सवर्द्धन के निम्न मुख्य लक्षण हैं—

1 विक्रय सवर्द्धन में विज्ञापन, व्यक्तिगत विक्रय एवं प्रचार सम्मिलित नहीं है।

2 विक्रय सवर्द्धन की क्रियाएँ एक व्यवसाय की दैनिक क्रियाओं में सम्मिलित नहीं की जाती हैं।

3. विक्रय सवर्द्धन विज्ञापन एवं व्यक्तिगत विक्रय को प्रभावशाली बनाने में योगदान देती है।

4, विक्रय सवर्द्धन के साधन उपभोक्ता को माल क्रय करने के लिए प्रेरित करते हैं।

5. विक्रय सवर्द्धन के साधन, व्यापारी को माल का अधिकाधिक विक्रय करने के लिए प्रेरित करते हैं।

विज्ञापन एव विक्रय सवर्द्धन मे अन्तर
(Distinction between Advertising and Sales Promotion)

विज्ञापन एव विक्रय सवर्द्धन के अन्तर को निम्न तालिका मे स्पष्ट किया जा सकता है :—

अन्तर का आधार	विज्ञापन	विक्रय संवर्द्धन
1 उद्देश्य	विज्ञापन का उद्देश्य सामूहिक रूप से वस्तु के क्रय को प्रोत्साहित कर व्यक्तिगत विक्रय को सरल बनाना है।	विक्रय सवर्द्धन का उद्देश्य, विज्ञापन एव व्यक्तिगत विक्रय के बीच की खाई को पाटना है और इन्हे अधिक प्रभावशाली बनाना है।
2 गतिविधि	विज्ञापन को दैनिक व्यवसाय की गतिविधि मे सम्मिलित किया जाता है।	इसे दैनिक व्यावसायिक गतिविधि मे सम्मिलित नहीं किया जा सकता है।
3 भौगोलिक क्षेत्र	विज्ञापन का भौगोलिक क्षेत्र अधिक विस्तृत है।	विक्रय सवर्द्धन का भौगोलिक क्षेत्र विज्ञापन की तुलना मे कम विस्तृत है।
4. नियन्त्रण	प्रत्यक्ष डाक विज्ञापन को छोड कर विज्ञापनो के सभी माध्यमो का नियन्त्रण अन्य सस्थाओ के हाथो मे रहता है।	विक्रय सवर्द्धन का नियन्त्रण व्यवसायी के हाथो मे ही रहता है।
5 आवश्यकता	आधुनिक युग मे कोई भी सस्था विज्ञापन किए बिना नहीं रह सकती है।	किसी सस्था के लिए विक्रय सवर्द्धन के साधनो का प्रयोग करना इतना आवश्यक नहीं है।
6 सम्बन्ध	विज्ञापन म ग्राहको से प्रत्यक्ष सम्बन्ध नही होता है।	विक्रय सवर्द्धन के साधनो से ग्राहको का प्रत्यक्ष सम्बन्ध रहता है।

विक्रय संवर्द्धन के उद्देश्य (Objects of Sales Promotion)

विक्रय सवर्द्धन मे निम्न प्रमुख उद्देश्य होते हैं—

1 नये ग्राहकों को माल के क्रय के लिए प्रेरित करना।

2 वर्तमान ग्राहकों को सदैव के लिए स्थायी बनाये रखना एवं उनको माल का अधिक क्रय करने के लिए प्रेरित करना।

3 मध्यस्थों (थोक एवं फुटकर व्यापारी) को अधिक माल का विक्रय करने के लिए प्रेरित करना।

4 संस्था के विक्रयकर्त्ता को माल के अधिक विक्रय के लिए प्रेरित करना।

5 किसी समय विशेष पर विक्रय में हुई कमी को दूर करना।

6 प्रतिस्पर्द्धा में विजय पाना।

7 किसी बाजार विशेष में माल का विक्रय बढ़ाना।

8 विक्रय एवं विज्ञापन में समन्वय स्थापित करना।

9 विक्रय कार्यक्रमों का निर्धारण करना।

10 बाजार अनुसंधान करना।

विक्रय सवर्द्धन का महत्व एवं लाभ
(Importance and Advantages of Sales Promotion)

यद्यपि विज्ञापन एवं व्यक्तिगत विक्रय विक्रय-वृद्धि के महत्त्वपूर्ण साधन माने जाते है, परन्तु आधुनिक प्रतिस्पर्द्धात्मक युग मे विक्रय वृद्धि के ये साधन अपर्याप्त सिद्ध हुये हैं, बढती हुई लागतो एवं प्रतिस्पर्द्धा ने उत्पादकों को झकझोर दिया है और उन्हे विपणन में नई नई विधियों की खोज करने को बाध्य कर दिया है। विक्रय सवर्द्धन विधियों का जन्म भी इसी प्रतिस्पर्द्धा के कारण ही हुआ है। इस प्रतिस्पर्द्धात्मक युग मे विक्रय सवर्द्धन के साधन अनेक प्रकार से लाभप्रद है। विक्रय सवर्द्धन विज्ञापन एवं व्यक्तिगत विक्रय की प्रभावशीलता मे वृद्धि करता है। यह उपभोक्ताओं को प्रत्यक्ष रूप से क्रय करने के लिये प्रेरित करता है और व्यापारी को विक्रय मे सुविधा प्रदान करता है। अप्रत्यक्ष रूप से उपभोक्ताओं को सस्ते मूल्य पर माल प्रदान कर उनके जीवन स्तर में वृद्धि करता है। विस्तृत रूप से विक्रय सवर्द्धन के महत्त्व एवं लाभो को हम निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन करते हैं।

1. विज्ञापन एवं व्यक्तिगत विक्रय की प्रभावशीलता मे वृद्धि—विक्रय सवर्द्धन के साधन विज्ञापन एवं व्यक्तिगत विक्रय की प्रभावशीलता में वृद्धि करते है। विज्ञापन एवं व्यक्तिगत बहुत ही बड़ी सीमा तक विक्रय करते है। परन्तु जहाँ इनमें कमी रहती है, वहाँ विक्रय सवर्द्धन के साधन इस कमी को पूरा कर देते हैं।

2 व्यापारियों को प्रोत्साहन—विक्रय सवर्द्धन के साधनो से व्यापारी को विज्ञापन, प्रबन्ध एवं विक्रय सम्बन्धी सहायता प्राप्त होती है, जो उसे अधिकाधिक माल विक्रय करने के लिये प्रोत्साहित करती है।

3. विक्रय में वृद्धि—विक्रय सवर्द्धन साधनो से विक्रय वृद्धि होना स्वाभाविक ही है, क्योंकि इससे विज्ञापन एवं व्यक्तिगत विक्रय की प्रभावशीलता बढ़ जाती है,

जो स्वय विक्रय वृद्धि करने में सहायक है। व्यापारी को प्रोत्साहन मिल जाने से और भी अधिक विक्रय-वृद्धि होने की सम्भावना बढ जाती है।

4 **मध्यस्थो को विभिन्न प्रकार की सुविधाएँ**—मध्यस्थो को विक्रय सवर्द्धन की विभिन्न विधियों के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार से सहायता दी जाती है उन्हे विज्ञापन पत्र सम्बन्धी एव अन्य विभिन्न प्रकार की सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं। इस प्रकार उन्हे आसानी से बिना कुछ खर्च किये अथवा मामूली खर्च पर बहुत सी सुविधाएँ उपलब्ध हो जाती हैं।

5 **नवनिर्मित वस्तुओ की माग मे वृद्धि**—नवनिर्मित वस्तुओ की माग उत्पन्न करने के लिए विक्रय सवर्द्धन के साधन रामबाण कहे जा सकते हैं। प्रीमियम एव प्रतियोगिताएँ व नमूने कई नई वस्तुओ की बिक्री करने मे सहायक सिद्ध हुए हैं।

6 **मौसमी वस्तुओ का सदैव विक्रय**—विक्रय सवर्द्धन के साधन किसी मौसम विशेष मे काम मे आने वाली वस्तुओ के विक्रय को स्थाई बना देते हैं अर्थात् इससे 'ऑफ सीजन' (off season) विक्रय सरल हो जाता है।

7 **सस्था की ख्याति**—विक्रय सवर्द्धन के साधन व्यावसायिक सस्था की ख्याति मे वृद्धि करते हैं। कभी-कभी प्रीमियम व नमूने सस्था की ख्याति की वृद्धि के लिये ही दिए जाते हैं। इसी प्रकार प्रतियोगिताएँ (Contests) भी सस्था की ख्याति के लिये आयोजित की जा सकती हैं।

8 **वस्तुओ के नये प्रयोग**—विक्रय सवर्द्धन के साधन कभी कभी वस्तुओ के नये प्रयोगो को प्रोत्साहन देते हैं। प्रतियोगिताओ के आधार पर तो कभी-कभी वस्तुओ के नए उपयोगो के सुझाव भी आमन्त्रित किये जाते है।

9 **प्रतिस्पर्धा पर विजय**—विक्रय सवर्द्धन के साधनो मे क्रेता को वस्तु के क्रय के लिये प्रेरित किया जाता है। इसके लिए प्रीमियम या नमूने दिय जाते हैं उसे विभिन्न साधनो से क्रय के लिए प्रेरित किया जा सकता है। इससे प्रतिस्पर्धा मे विजय पाना सरल हो जाता है।

10 **व्यापारियों का सहयोग**—उत्पादक व्यापारी को विभिन्न प्रकार से सहायता देता है, तो माल के विक्रय एव अन्य कार्यो मे उत्पादक को भी व्यापारियो का सहयोग प्राप्त होना स्वाभाविक ही है।

11 **वस्तुओ मे विश्वास**—जब उपभोक्ता को वस्तु के विक्रय से पूर्व नमूने वितरित कर दिये जाते हैं, तो विक्रेता को वस्तुओ के क्रय से पूर्व ही उनमे विश्वास उत्पन्न हो जाता है।

12 **प्रत्येक क्रय की मात्रा मे वृद्धि**—जब वस्तुओ के साथ प्रीमियम दी जाती है तो उपभोक्ता प्रीमियम के लाभ के कारण अधिक मात्रा मे माल भी खरीद लेता है। उदाहरणार्थ—सर्फ के दो डिब्बो के साथ एक बाल्टी दी जाती है, तो प्रीमियम लेने के उद्देश्य से एक डिब्बे की आवश्यकता होते हुये भी, दो डिब्बे खरीद लिये जाते हैं।

13 कम विक्रय वाले भागो मे विक्रय वृद्धि—विक्रय सवर्द्धन के साधन कम विक्रय वाले भागो मे विक्रय वृद्धि करने मे सहायक होते हैं । जिन भागो म विक्रय कम होता है, वहा विक्रय सवर्द्धन की विधियो के प्रयोग से विक्रय वृद्धि करना सरल होता है ।

14 ज्ञान वृद्धि—विक्रय वृद्धि के साधनो के प्रयोग से उपभोक्ता, व्यापारी और उसके विक्रयकर्ता सभी के ज्ञान मे वृद्धि होती है । उपभोक्ता नई वस्तुग्रो के प्रयोग से परिचित होता है । क्रियात्मक प्रदर्शनो के आधार पर वह वस्तु की महत्ता समझ सकता है । प्रतियोगिता म भाग लेने से ज्ञान वृद्धि स्वाभाविक ही है । स्पष्ट है विक्रय सवर्द्धन के साधन ज्ञान वृद्धि करते हैं ।

15 सामाजिक जीवन स्तर मे वृद्धि—वस्तुग्रो की माग बढ जाने से रोजगार के साधन बढ जाते हैं । इससे वस्तुग्रो की माग बढती है ग्रौर उत्पादन अधिक होता है । ग्रन्ततोगत्वा सामाजिक जीवन स्तर मे वृद्धि होती है ।

16 प्रति इकाई लागत मे कमी —जिन वस्तुग्रो को विक्रय सवर्द्धन के उद्देश्य से प्रीमियम के रूप म प्रदान किया जाता है उनकी लागत म कमी लाई जा सकती है । इसका प्रमुख कारण यह है कि व्यापारी जब कोई वस्तु प्रीमियम के रूप म देने के लिये क्रय करता है, तो वह प्रत्यक्ष रूप से उत्पादक स ही भारी मात्रा म क्रय करता है । मध्यस्थो का लाभ भी बच जाता है । परिणामस्वरूप व्यापारी को वह प्रीमियम की वस्तु सस्ते मूल्यो पर उपलब्ध हो जाती है ।

17 प्रत्यक्ष नियन्त्रण—विक्रय सवर्द्धन के साधनो को व्यापारी स्वय नियन्त्रित करता है जब कि विज्ञापन को स्वय नियन्त्रित नही कर सकता है । विक्रय सवर्द्धन क साधन जैसे प्रीमियम प्रतियोगिता ग्रादि की योजना स्वय बनाता है । इस प्रकार व्यापारी का विक्रय सवर्द्धन कार्यो पर पूर्ण नियन्त्रण बना रहता है ।

विक्रय सवर्द्धन विधिया

(Methods of Sales Promotion)

विक्रय सवर्द्धन की परिभाषाग्रो क ग्रध्ययन से ग्रब पूर्णत स्पष्ट हो गया है कि विक्रय सवर्द्धन मे हम उन सभी ग्रनियमित कार्यो को सम्मिलित करते हैं जिनसे

(i) उपभोक्ता को क्रय के लिए प्रोत्साहित किया जा सके तथा

(ii) व्यापारी की विक्रय कुशलता मे वृद्धि की जा सके ।

ग्रब प्रश्न यह उठता है कि व कौन कौन से कार्य हैं ग्रथवा विधिया है जिनसे य दोनो महत्त्वपूर्ण बातें पूरी की जा सक । विधिया निम्नलिखित है —

I उपभोक्ता सवर्द्धन विधिया

II व्यापारी सवर्द्धन विधिया

III सयुक्त सवर्द्धन विधिया

ग्रब हम इनका विस्तार से वर्णन करेंगे ।

विक्रय संवर्द्धन विधियाँ
I उपभोक्ता संवर्द्धन विधियाँ
1. नमूने
2 प्रीमियम
3. उपभोक्ता प्रतियोगिताएँ
4 क्रियात्मक प्रदर्शनी
5. नि शुल्क प्रशिक्षण
6. मेले एव प्रदर्शनिया
7. घटे हुए मूल्यो पर विक्रय
II. व्यापारी सवर्द्धन विधियाँ
(अ) विज्ञापन सहायता
1. स्थानीय समाचार पत्रीय विज्ञापन
2 प्रत्यक्ष डाक विज्ञापन
3 स्टोर तथा वातायत सजावट
4, वाह्य विज्ञापन
5, क्रियात्मक प्रदर्शन
6 मरम्मत सुविधाएँ
7 फैशन शो
(ब) विक्रय-सहायता
1 विक्रय योजना निर्माण
2 विक्रयकर्ता प्रशिक्षण
3 विक्रयकर्ता प्रतियोगिता
(स) प्रबन्ध सहायता
अन्य विधियाँ
1 व्यापारी प्रतियोगिता
2, व्यापारी प्रीमियम
III. उपभोक्ता व्यापारी संयुक्त सवर्द्धन विधियाँ

I उपभोक्ता सवर्द्धन विधियाँ
(Consumer Promotion Methods)

उपभोक्ता सवद्ध न विधिया से आशय विक्रय सवद्ध न की उन विधियो से है जो प्रत्यक्ष रूप से उपभोक्ता को माल के क्रय के लिए प्रेरित करती हैं। उपभोक्ता सवद्ध न विधियों को उपभोक्ताओ के घर घर अथवा कार्यालय अथवा मध्यस्थो की दुकानो पर क्रियान्वित किया जा सकता है। उपभोक्ता सवद्ध न की निम्न कुछ प्रमुख विधियाँ है—

1 नमूने (Samples)

वस्तुओ के नमूने का वितरण विक्रय सवर्द्धन विधियो मे सवश्रेष्ठ मानी जाती रही है। एक प्रसिद्ध विद्वान के अनुसार वस्तु की जाँच के समान अन्य कोई बात अच्छी वस्तु के उपभोग को इतना प्रभावपूर्ण रूप से नहीं बढ़ा सकती हैं। एक वस्तु के नमूनो का सम्भावित उपभोक्ताओ मे वितरण करने से वे उस वस्तु के गुणो का अध्ययन कर दूसरी सस्था की बनी वस्तुओ से तुलनात्मक अध्ययन कर सकते हैं। जब उपभोक्ता नमूना की जाच से सन्तुष्ट हो जाते हैं तो वे माल का क्रय अधिक किया करते है।

नमूनो के वितरण मे ध्यान रखने योग्य बात ( ) नमूना का वितरण करना तभी उपयुक्त होगा जब कि इनके वितरण से प्राप्त होने वाले लाभ अधिक हो।

(i) उन्ही वस्तुओ के नमूने वितरित करना चाहिये जिनकी उपभोक्ताओ की नित्य प्रतिदिन माग होती है।

( ) उन्ही वस्तुओ का नमूनो के रूप मे वितरण करना चाहिये जिनको एक स्थान से दूसरे स्थान तक बिना कठिनाई से लाया जा सके।

(iv) नमूने ऐसे हो जिनकी जाच की जा सके।

(v) प्रत्येक नमूना आकर्षक होना चाहिये।

(vi) नमूनो को किसी बाजार मे वितरित करने से पूर्व बाजार विश्लेषण (Market Analysis) करना चाहिये।

( ) नमूनो पर बिक्री के लिए नही (Not for sale) या नमूने की कापी (Specimen Copy) इत्यादि शब्द लिख देना चाहिए।

नमूनो का वितरण उपभोक्ताओ के घर पर या कार्यालयो म पहुँचकर किया जा सकता है। प्रदर्शनियो मेलो त्यौहारो पर भी नमूना का वितरण किया जा सकता है। कभी कभी कम्पनी के व्यक्ति सडको के किनारे खडे होकर भी नमूनो का वितरण करते है। इसके अतिरिक्त डाक द्वारा भी वस्तुओ के नमूना का वितरण किया जाता है।

भारतवर्ष मे नमूनो का वितरण कर विक्रय सवद्ध न का प्रयास किया जाता रहा है। कपडे धोने का पाउडर चीनी, औषधियो के नमूना का वितरण काफी समय से प्रचलन म है और काफी लाभप्रद भी रहा है। उदाहरणार्थ—हिन्दुस्तान लीवर

लि ने जब 'सर्फ' नामक कपडे धोने के पाउडर ‹ ‹ के
बाजार मे इनका विक्रय कुछ इने गिने लोगो तक ही
सूझबूझ से इस पाउडर के छोटे-छोटे पैकेट बनवाकर
घरों मे महिलाओं से इसे प्रयोग करके जाँच की ओर ‹
प्रयोग में लाया जाने लगा। इसी प्रकार इसी कम्पनी के ‹ ताबुन
व 'डालडा' घी के विक्रय सवर्द्धन की कहानी है। इसी कम्‹ ारक्त चाय
कम्पनियो ने चाय बनाकर नमूनो के रूप मे वितरित की है। व‹ ‹ कम्पनियो को भी
गाँव-गाँव व शहर शहर मे 5 से 10 बीडियो के बण्डल मुफ्त मे बाँटते देखा गया
है। औषधि विक्रयकर्ताओ के लिए तो डाक्टरो को नमूनो का वितरण एक दैनिक
कार्य सा हो गया है।

2. प्रीमियम (Premium)

प्रीमियम विक्रय सवर्द्धन का दूसरा महत्वपूर्ण माध्यम है। ग्रोस एव हौटन (Gross and Houghton) के अनुसार, "प्रीमियम किसी वस्तु या सेवा के क्रय को प्रोत्साहित करने के लिए दी जाने वाली कोई व्यापारिक वस्तु अथवा कोई मूल्य की वस्तु है।[1]

स्पष्ट है कि प्रीमियम एक वस्तु होती है, जो उत्पादक की किसी वस्तु के क्रय करने पर दी जाती है। इस प्रीमियम की वस्तु के मूल्य एव किस्म से कोई सबध नही होता है। वस्तु का मूल्य बाजार मे प्रचलित मूल्यो के समान ही होता है, परन्तु उत्पादक अपने माल से क्रय के लिए प्रेरित करने के उद्देश्य से ही यह प्रीमियम देता है। प्रीमियम प्राय मुफ्त दी जाती है, परन्तु यदि प्रीमियम के रूप मे दी जाने वाली वस्तु बहुत कीमती है, तो उत्पादक, उसके लिए कुछ कीमत भी वसूल कर सकता है।

उद्देश्य (Objects)—प्रीमियम देने के प्रमुख उद्देश्य निम्न हो सकते हैं—

(i) वस्तु के अधिक उपभोग को प्रोत्साहित करना।
(ii) नई वस्तुओ का बाजार मे प्रचलन करना।
(iii) नये दृष्टिकोण से विज्ञापन देना।
(iv) किसी क्षेत्र विशिष्ट मे विक्रय सवर्द्धन करना।
(v) वर्ष भर माल के विक्रय को प्रोत्साहित करना।
(vi) कम बिक्री वाली वस्तुओ के विक्रय को और अधिक बढाना।
(vii) वस्तु के लाभो से अवगत करवाना।
(viii) प्रतिस्पर्धा मे विजय पाना।

---

1 'A premium may be defined as an article of merchandise or other thing of value which is offered as an inducement to purchase a product or service.' Alfred Gross and Dale Houghton, Sales Promotion pp. 23l–33.

I उपभोक्ता सवर्द्धन विधियाँ
(Consumer Promotion Methods)

उपभोक्ता सवद्धन विधियों से आशय विक्रय सवर्द्धन की उन विधियों से है जो प्रत्यक्ष रूप से उपभोक्ता को माल क्रय के लिए प्रेरित करती हैं। उपभोक्ता सवर्द्धन विधियों को उपभोक्ताओं के घर घर अथवा कार्यालय अथवा मध्यस्थों की दुकानों पर नियंत्रित किया जा सकता है। उपभोक्ता सवर्द्धन की निम्न कुछ प्रमुख विधियाँ है—

1 नमूने (Samples)

वस्तुओं के नमूने का वितरण विक्रय सवर्द्धन विधियों में सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। एक प्रसिद्ध विद्वान के अनुसार 'वस्तु की जाँच के समान अन्य कोई बात अच्छी वस्तु के उपभोग को इतना प्रभावपूर्ण रूप से नहीं बढ़ा सकती है।' एक वस्तु के नमूनों का सम्भावित उपभोक्ताओं में वितरण करने से वे उस वस्तु के गुणों का अध्ययन कर दूसरी संस्था की बनी वस्तुओं से तुलनात्मक अध्ययन कर सकते हैं। जब उपभोक्ता नमूना की जाँच में विश्वस्त हो जाते हैं तो वे माल का क्रय अधिक कि ना म क माल क र ते हैं।

नमूनों के वितरण में ध्यान रखने योग्य बातें (i) नमूना का वितरण करना तभी उपयुक्त होगा जब कि इनके वितरण में प्राप्त होने वाले लाभ अधिक हों।

(ii) उन्हीं वस्तुओं के नमूने वितरित करना चाहिये जिनकी उपभोक्ताओं की नित्य प्रतिदिन माग होती है।

(iii) उन्हीं वस्तुओं का नमूनों के रूप में वितरण करना चाहिये जिनको एक स्थान से दूसरे स्थान तक बिना कठिनाई से लाया जा सके।

(iv) नमूने कम हों जिनकी जाँच की जा सके।

(v) प्रत्येक नमूना आकर्षक होना चाहिये।

(vi) नमूना को किसी बाजार में वितरित करने से पूर्व बाजार विश्लेषण (Market Analysis) करना चाहिये।

(vii) नमूना पर बिक्री के लिए नहीं (Not for sale) या नमूने की कापी (Specimen Copy) आदि शब्द लिख देना चाहिये।

नमूना का वितरण उपभोक्ताओं के घर पर या कार्यालयों में पहुँचकर किया जा सकता है। प्रदर्शनियों मेलों त्योहारों पर भी नमूना का वितरण किया जा सकता है। कभी कभी कम्पनी के व्यक्ति सड़कों के किनारे खड़े होकर भी नमूना का वितरण करते हैं। इसके अतिरिक्त डाक द्वारा भी वस्तुओं के नमूना का वितरण किया जाता है।

भारतवर्ष में नमूना का वितरण कर विक्रय संवर्द्धन का प्रयास किया जाता रहा है। कपड़ा धोने का पाउडर, चीनी, औषधियों के नमूना का वितरण काफी समय से प्रचलन में है और काफी लाभप्रद भी रहा है। उदाहरणार्थ—हिन्दुस्तान लीवर

लि. ने जब 'सर्फ' नामक कपड़े धोने के पाउडर का उत्पादन, किया तो प्रारम्भ में बाजार में इनका विक्रय कुछ इने गिने लोगों तक ही सीमित था। कम्पनी ने अपनी सूझबूझ से इस पाउडर के छोटे-छोटे पैकेट बनवाकर घर-घर में वितरित किये थे। घरों में महिलाओं से इसे प्रयोग करके जाँच की और आज वही सर्फ कई घरों में प्रयोग में लाया जाने लगा। इसी प्रकार इसी कम्पनी के बने 'लक्स' (Lux) साबुन व 'डालडा' घी के विक्रय सवर्द्धन की कहानी है। इसी कम्पनी के अतिरिक्त चाय कम्पनियों ने चाय बनाकर नमूनों के रूप में वितरित की है। बीडी कम्पनियों को भी गाँव-गाँव व शहर शहर में 5 से 10 बीडियों के बण्डल मुफ्त में बाँटते देखा गया है। औषधि विक्रयकर्त्ताओं के लिए तो डाक्टरों को नमूनों का वितरण एक दैनिक कार्य सा हो गया है।

2. प्रीमियम (*Premium*)

प्रीमियम विक्रय सवर्द्धन का दूसरा महत्त्वपूर्ण माध्यम है। ग्रोस एवं हौटन (Gross and Houghton) के अनुसार, "प्रीमियम किसी वस्तु या सेवा के क्रय को प्रोत्साहित करने के लिए दी जाने वाली कोई व्यापारिक वस्तु अथवा कोई मूल्य की वस्तु है।[1]

स्पष्ट है कि प्रीमियम एक वस्तु होती है, जो उत्पादक की किसी वस्तु के क्रय करने पर दी जाती है। इस प्रीमियम की वस्तु के मूल्य एवं किस्म से कोई सबंध नहीं होता है। वस्तु का मूल्य बाजार में प्रचलित मूल्यों के समान ही होता है, परन्तु उत्पादक अपने माल से क्रय के लिए प्रेरित करने के उद्देश्य से ही यह प्रीमियम देता है। प्रीमियम प्राय मुफ्त दी जाती है, परन्तु यदि प्रीमियम के रूप में दी जाने वाली वस्तु बहुत कीमती है, तो उत्पादक, उसके लिए कुछ कीमत भी वसूल कर सकता है।

उद्देश्य (Objects)—प्रीमियम देने के प्रमुख उद्देश्य निम्न हो सकते हैं—

(i) वस्तु के अधिक उपभोग को प्रोत्साहित करना।
(ii) नई वस्तुओं का बाजार में प्रचलन करना।
(iii) नये दृष्टिकोण से विज्ञापन देना।
(iv) किसी क्षेत्र विशिष्ट में विक्रय सवर्द्धन करना।
(v) वर्ष भर माल के विक्रय को प्रोत्साहित करना।
(vi) कम बिक्री वाली वस्तुओं के विक्रय को और अधिक बढ़ाना।
(vii) वस्तु के लाभों से अवगत करवाना।
(viii) प्रतिस्पर्धा में विजय पाना।

---

1 'A premium may be defined as an article of merchandise or other thing of value which is offered as an inducement to purchase a product or service.' Alfred Gross and Dale Houghton, Sales Promotion pp. 232-33.

(ix) विज्ञापन के प्रभाव को ज्ञात करना ।

(x) वस्तुओ के नये प्रयोग को प्रोत्साहन देना ।

(xi) लोगो के क्रय की मात्रा मे वृद्धि करना ।

प्रीमियम का चुनाव करते समय ध्यान देने योग्य बातें—प्रीमियम के रूप से दी जाने वाली वस्तु का चुनाव करते समय निम्न बातें ध्यान मे रखनी चाहिये—

(i) प्रीमियम गौरवपूर्ण होनी चाहिये ।

(ii) प्रीमियम की वस्तु एक विशिष्ट वस्तु होनी चाहिये ।

(iii) प्रीमियम की वस्तु प्रीमियम प्राप्त करने वाले व्यक्ति के लिये उपयोगी होनी चाहिये ।

(iv) प्रीमियम बहुत सस्ती एवं सामान्य रूप से उपलब्ध होने वाली वस्तु नही होनी चाहिये ।

(v) प्रीमियम आकर्षक होनी चाहिये ।

(vi) प्रीमियम की वस्तु आसानी से लायी, ले जायी जा सकने वाली होनी चाहिये ।

(vii) प्रीमियम के रूप मे दी जाने वाली वस्तु से ग्राहक पहले से ही परिचित हो, इससे ग्राहक आसानी से आकर्षित हो जाता है ।

प्रीमियम देने की विधियाँ (Premium Distribution Techniques)

प्रीमियम देने की कई विधियाँ हैं । आवश्यकता के अनुसार विभिन्न विधियो का निर्माण भी किया जा सकता है । ग्रौस एवं हौटन (Gross and Houghton) ने प्रीमियम देने की निम्न प्रमुख विधियो का उल्लेख किया है :—

(i) प्रत्यक्ष रूप से देना (Direct Give away Method)—इस विधि के अन्तर्गत क्रेताओ को प्रीमियम काउन्टर पर घर घर अथवा डाक द्वारा वितरित की जाती है । इस विधि मे क्रेता को प्रीमियम निःशुल्क मिलती है । कभी यह प्रीमियम वस्तु के साथ ही बंधी हो सकती है तो कभी यह वस्तु के साथ अलग से दी जा सकती है । कभी कभी इस प्रकार की प्रीमियम का वस्तु के क्रय से भी कोई सम्बन्ध नही रहता है और व्यापारी अपने पुराने ग्राहकों को वस्तु के क्रय न करने पर भी दे देते हैं । उदाहरणार्थ—कलेन्डर डायरियां जैसी वस्तुएँ प्रत्यक्ष रूप से ग्राहकों और जो ग्राहक नहीं हैं उन सभी को वितरित करते हैं । इसका उद्देश्य भी विक्रय संवर्द्धन करना ही होता है ।

(ii) संयुक्त विक्रय विधि (Combination Sale Method)—इस विधि के अन्तर्गत एक ही मूल्य की बनी दो वस्तुओं का विक्रय एक साथ होता है जिसका मूल्य दोनो वस्तुओ के बाजार मूल्य की अपेक्षा कम होता है । इस विधि मे क्रेता के धन की बचत हो जाती है । क्रेता को लाभ का अनुभव तुरन्त हो जाता है उदाहरणार्थ—हिंदुस्तान लीवर लि० ने अपने 'पेप्सोडेन्ट' नामक टूथ पेस्ट (Tooth Paste) के पैकेट के साथ एक पोन्ड्स क्रीम (जो उसी कम्पनी की है) का विक्रय किया जाता

है। यह क्रीम की शीशी भी पेप्सोडेन्ट के पैकेट के साथ बंधी हुई है, जो दोनो के बाजार मूल्य से काफी कम मूल्य पर उपलब्ध हो रही है।

(iii) क्रय विशेषाधिकार योजना विधि (The Purchase Privilege Plan Method)—प्रीमियम देने की तीसरी प्रमुख विधि क्रय विशेषाधिकार योजना विधि है। इस विधि के अन्तर्गत क्रेता को यह अधिकार दिया जाता है कि वह कोई भी अन्य वस्तु प्रीमियम के रूप में बाजार मूल्य से कम मूल्य पर क्रय कर लें। इस प्रकार स्पष्ट है कि उपर्युक्त द्वितीय विधि में विक्रेता स्वयं अपनी स्वेच्छा से प्रीमियम के रूप में क्रय करने के लिए वस्तु निर्धारित कर देता है जब कि इस विधि में वस्तु का चुनाव क्रेता की स्वेच्छा पर छोड दिया जाता है। उदाहरणार्थ, कपड धोने का 'स्वे' नामक पाउडर निर्माता कम्पनी स्वे पाउडर के दो डिब्बो के साथ एक बाल्टी अथवा एक टब बाजार मूल्य पर देती है।

(iv) कूपन विनिमय विधि (Exchange of Coupons)—इस विधि के अन्तर्गत वस्तु के पैंकिंग में एक कूपन डाल दिया जाता है और उपभोक्ता जब उसे खोलता है तो उसमें कूपन निकलता है। इस कूपन के बदले ग्राहक व्यापारी से कूपन पर लिखी प्रीमियम प्राप्त कर लेता है। यह प्रीमियम नकद में भी हो सकती है और वस्तु के रूप में भी। कभी-कभी ग्राहकों को कूपन की एक निश्चित संख्या एकत्रित करने पर ही प्रीमियम दी जाती है। कभी-कभी ग्राहक कूपनों की यह निश्चित संख्या क्रमानुसार (Serially) एकत्रित करनी पडती है तब ही प्रीमियम प्रदान की जाती है। उदाहरणार्थ, भारत में कई अगरबत्तिया निर्माता कम्पनियो ने अगरबत्तियों के पैंकेट में कूपन डालकर इस विधि का प्रयोग किया है। अगरबत्ती पैंकेट का खरीददार पैंकेट में से कूपन निकाल कर कूपन पर लिखी प्रीमियम प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार 'मिलन' सुपारी निर्माता कम्पनी ने बच्चों को सुपारी क्रय के लिये प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से सुपारी के पैंकेट में कूपन रखे थे। इन कूपनों पर 1 से 30 तक कोई संख्या अंकित हो सकती थी। यदि कोई इनको क्रमानुसार 1 से 30 तक की संख्या में एकत्रित कर लेता तो उसे सुपारी निर्माता कम्पनी एक टेबिल घडी प्रीमियम के रूप में देती थी।

(v) तरलता विधि (Self Liquidating Method)—इस विधि के अन्तर्गत कम्पनी अपनी वस्तुओ के ऊपर के कवर (Cover), ढक्कन इत्यादि की एक निश्चित संख्या एकत्रित करने पर एकत्रित करने वाले को एक निश्चित इनाम देती है।

(vi) पुन प्रयोग में आने वाले पैंकिंग विधि (Reusable Containers Method)—आजकल बहुत सी कम्पनिया अपनी वस्तुओं पर इस प्रकार के पैंकिंग करती हैं कि ये पैंकिंग पुन. काम में लाये जा सकते हैं। उदाहरणार्थ, जे. बी मंघा-राम की टॉफियों व बिस्कुट के टीन के बने डिब्बे बडे आकर्षक होते हैं। आजकल मोडेला व रेमण्ड ऊन कम्पनियाँ भी ऊन का पैंकिंग बडे आकर्षक टीन के बने डिब्बे

मे करने लगी है। इन डिब्बो का कई अन्य कामो मे प्रयोग भी सम्भव है। ये डिब्बे ही प्रीमियम का काम करते है। ये डिब्बे काफी समय तक काम मे आते हैं। अत इन टॉफियो एव बिस्कुटो का विज्ञापन भी होता रहता है।

(vi) **पेशगी प्रीमियम विधि** (Advance Premium Method)—यह एक ऐसी विधि है, जिसके अन्तगत प्रीमियम वस्तु के क्रय करने से पूर्व ही दे दी जाती है। इस विधि के अनुसार ग्राहक यह प्रतिज्ञा करता है कि वह भविष्य मे निश्चित मात्रा मे वस्तु का क्रय करेगा और यदि क्रय नही करेगा तो प्रीमियम वापिस लौटा देगा।

3 उपभोक्ता प्रतियोगिताएँ (Contests)

प्रतियोगिताएँ विक्रय सवर्द्धन का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम हैं। ये प्रतियोगिताएँ विक्रय सवर्द्धन के उद्देश्य से तो आयोजित की ही जाती हैं परन्तु कभी कभी इनके आयोजन का उद्देश्य व्यवसाय की ख्याति मे वृद्धि करना भी होता है। विस्तृत रूप म प्रतियोगिताओं के उद्देश्य भी वे ही होते है, जो 'प्रीमियम के हैं।

***प्रतियोगिताओ के प्रकार** (Types of Contests)*

ग्रोस एव हौटन (Gross and Houghton) ने उपभोक्ताओ सवर्द्धन की निम्न प्रतियोगिताओ का उल्लेख किया है—

(i) **वस्तु से सम्बन्धित वाक्य पूरा कीजिए** (Complete a sentence about a product)—इस विधि के अन्तर्गत प्रतियोगी को वस्तु से सम्बन्धित एक वाक्य पूरा करने के लिए कहा जाता है। उदाहरणार्थ —गोल्ड स्पॉट कम्पनी ने इसी प्रकार की 3 लाख रुपये के इनाम प्रतियोगिता आयोजित की थी जिसमे प्रतियोगी को निम्न वाक्य अधिक से अधिक 10 शब्द लिखकर पूरा करने को कहा गया था—

'मै गोल्ड स्पॉट पीना पीती हूँ', क्योंकि ,

(ii) **वस्तु के बारे मे एक पत्र लिखए** (Write a letter about the product)—कभी कभी प्रतियोगिताओ म वस्तु के सम्बन्ध म 100 से 200 शब्दो का एक पत्र लिखवाकर मगवाया जाता है जिसका पत्र सबसे अच्छा होता है उनको पुरस्कार प्रदान किया जाता है। परन्तु इस विधि का प्रचलन नही है।

(iii) **वस्तु के नाम का सुझाव** (Suggesting a Name)—इस प्रकार की प्रतियोगिता म किसी वस्तु के कुछ लक्षण बताकर उस वस्तु के नाम के लिए सुझाव आमन्त्रित किए जाते हैं। इस प्रकार की प्रतियोगिताएँ प्राय नई वस्तुओ के नामकरण के समय आयोजित की जाती हैं।

(iv) **पद्य पूरा करवाना** (Complete a Verse)—इस प्रतियोगिता मे वस्तु से सम्बन्धित किसी पद्य को पूरा करने के लिए कहा जाता है।

(v) **वस्तु के नये प्रयोगों का सुझाव** (Suggesting new uses of prodcut)—इस प्रकार की प्रतियोगिता का आयोजन वस्तु के नये नये सम्भावित प्रयोग की जानकारी प्राप्त करने के लिए किया जाता है।

(vi) पहेलियों का हल करना (Solving Puzzles)—इस प्रकार की प्रतियोगिता में पहेलियों का हल पूछा जाता है। प्राय इस प्रकार की पहेलियां पत्र-पत्रिकाओं द्वारा अधिक पूछी जाती हैं।

(vii) रेडियो कार्यक्रमों के लिए सामग्री देना (Submitting material for use on Radio Programmes)—कभी कभी प्रतियोगियों में वस्तु से सम्बन्धित रेडियो कार्यक्रमों के लिए सामग्री मंगवाते हैं। यह सामग्री विशेष हँसी-मजाक से सम्बन्धित होती है। जिसकी सामग्री उत्तम होती है, उसे पुरस्कार प्रदान किया जाता है।

प्रतियोगिता के आयोजन में ध्यान देने योग्य बातें—प्रतियोगिता के आयोजन में निम्न बातें ध्यान में रखनी चाहिये—

(i) प्रतियोगिता की अन्तिम तिथि प्रारम्भ में ही तय कर लेनी चाहिये।

(ii) प्रतियोगिता में विजयी रहने वाले को पुरस्कार प्रदान किये जाने चाहिये। पुरस्कारों की सूची प्रारम्भ में ही तैयार कर लेनी चाहिये।

(iii) प्रतियोगिता पूर्व निश्चित नियमों के आधार पर ही आयोजित करनी चाहिये।

(vi) उन नियमों को भी प्रकाशित कर देना चाहिये, जो प्रतियोगिता में भाग लेने वालों को पालन करने हैं।

(v) प्रतियोगिता आयोजित करने से पूर्व देश के कानून व नियमों को ध्यान में रखना चाहिए।

4 क्रियात्मक प्रदर्शन (Demonstations)

क्रियात्मक प्रदर्शन भी विक्रय संवर्द्धन का एक साधन है। यह पूर्णतः "कहने से करना भला" उक्ति पर आधारित है। ग्राहकों को वस्तुएँ कितनी ही बार दिखाकर उनके गुणों को स्पष्ट किया जाय, परन्तु जितना प्रभाव क्रियात्मक प्रदर्शन का होगा अन्य किसी प्रकार के वर्णन से सम्भव नहीं है। क्रियात्मक प्रदर्शन का कार्य मेलों, प्रदर्शनियों, फुटकर व्यापार-गृहों पर अथवा घर घर जाकर किया जा सकता है।

क्रियात्मक प्रदर्शन के निम्न प्रमुख लाभ हैं—

(i) इसमें ग्राहक को यह स्पष्ट हो जाता है कि क्रय की जाने वाली वस्तु की प्रकृति कैसी है और यह उसे किस प्रकार उपयोगी है।

(ii) यह वस्तुओं के प्रति ध्यान आकर्षित करता है एवं क्रय की इच्छा जाग्रत करता है।

(iii) इससे उपभोक्ता की ज्ञान वृद्धि होती है।

(vi) यह कम विक्रय वाली वस्तुओं का अधिक विक्रय करने में सहायक होता है।

(v) एक ग्राहक द्वारा वस्तु के क्रय में नियमितता का आधार होता है।

5 निःशुल्क प्रशिक्षण (Free Training)

वे उत्पादक जो ऐसी मशीनें बनाते हैं, जिनसे कोई छोटा उद्योग शुरू किया जा सकता है तो उत्पादक इन मशीनों के क्रय करने वालों को निःशुल्क प्रशिक्षण भी दे सकते हैं। इससे मशीन के क्रय करने बाद को मशीन पर काम करने के लिए किसी अन्य व्यक्ति पर निर्भर नहीं रहना पड़ता है। इस प्रकार का प्रशिक्षण वास्तव में विक्रय संवर्द्धन में महान् योगदान दे सकता है।

6 मेले एवं प्रदर्शनियाँ (Fairs & Exhibitions)

देश व विदेश में समय समय पर मेले व प्रदर्शनियाँ लगते ही रहती हैं। सन् 1964 में भारत में 'विश्व मेला' (World Fair) आयोजित किया गया था। इसी प्रकार 'एक्सपो 66' (Expo 66) कनाडा में तथा 'एक्सपो' '70' (Expo 70) जापान में आयोजित किया गया था। 1972 में राजस्थान के जयपुर शहर में राजस्थान प्रदर्शनी भी आयोजित की गई थी। इस प्रकार कई छोटे-मोटे मेले एवं प्रदर्शनियाँ लगते ही रहते हैं। ये सभी विक्रय संवर्द्धन के महत्त्वपूर्ण माध्यम हैं। इन मेलों में एक संस्था द्वारा निर्मित वस्तुओं का प्रदर्शन एवं विक्रय किया जा सकता है। परन्तु प्रायः इन प्रदर्शनियों एवं मेलों में बहुत ही कम संस्थायें भाग लेती हैं। इन माध्यम का उपयोग सरलता से किया जा सकता है। मेले एवं प्रदर्शनियों के समय बड़े लोग काफी दूर-दूर से पहुँचते हैं। अतः विक्रय संवर्द्धन में बहुत बड़ी सहायता मिल सकती है।

7 घटे मूल्य पर विक्रय (Reduction Sale)

आजकल घटे हुए मूल्यों पर विक्रय द्वारा विक्रय संवर्द्धन का बहुत बोल-बाला है। कभी-कभी विक्रयकर्ता सेल (Clearance Sale) के नाम से घटे हुए मूल्यों पर माल का विक्रय करते हैं। प्रायः घटे मूल्यों पर विक्रय किन्हीं विशिष्ट अवसरों जैसे दिवाली, होली, गाँधी जयन्ती, संस्था का वार्षिक दिवस के दिनों पर की जाती है। इसमें ग्राहक इन दिनों पर माल का अधिकाधिक क्रय करते हैं, परन्तु कभी-कभी घटे हुए मूल्यों पर ऐसी वस्तुओं का विक्रय किया जाता है, जो बिल्कुल काम में लेने योग्य नहीं होती हैं। इससे संस्था की प्रतिष्ठा को ठेस पहुँचती है। भारतवर्ष में कपड़ों के प्रमुख उत्पादक जैसे बॉम्बे डाइंग, डी. सी. एम., बेनिरा, मफतलाल इत्यादि प्रायः प्रतिवर्ष घटे हुए मूल्यों पर विक्रय करते हैं।

II व्यापारी संवर्द्धन विधियाँ
(Dealer Promotion Methods or Dealer Aids)

ग्रोस तथा हौटन (Gorss & Houghton) के अनुसार—"एक उत्पादक के विपणन आन्दोलन का हृदय मध्यस्थों की सफलता में निवास करता है।" प्रो० जॉनसन (Johnson) के शब्दों में—"आज उन्नतिशील उत्पादक अपने मध्यस्थों के

सहयोग को वितरण की सफलता की कुञ्जी समझते हैं।" अत. जिस उत्पादक का माल मध्यस्थों के द्वारा बेचा जाता है, उस उत्पादक को अपने मध्यस्थों को पूर्ण रूप से व्यावसायिक साधनों से सम्पन्न बनाकर रखना चाहिए, ताकि वह उस माल का सफलतापूर्वक विक्रय कर सकें। इस उद्देश्य से एक उत्पादक अपने व्यापारी को निम्न प्रकार से सहायता प्रदान कर सकता है —

(अ) विज्ञापन सहायता (Advertising Aids)
(ब) विक्रय सहायता (Sales Aids)
(स) प्रबन्ध सहायता (Management Aids)
(द) अन्य विधियाँ (Other Methods)

(अ) विज्ञापन सहायता (Advertising Aids)

उत्पादन विक्रय सवर्द्धन के उद्देश्य से अपने थोक एव फुटकर व्यापारी को विज्ञापन सम्बन्धी सहायता देते हैं। विज्ञापन सम्बन्धी मुख्य सहायता निम्न प्रकार हो सकती हैं .—

1. स्थानीय समाचार-पत्रीय विज्ञापन (Local Newspaper Advertising)—कई उत्पादक अपने थोक व फुटकर व्यापारियों के नाम से समाचार पत्रों में विज्ञापन छपवाते हैं। इस प्रकार के विज्ञापन में एक ओर तो उत्पादक के माल का विज्ञापन हो ही जाता है दूसरी ओर थोक एव फुटकर व्यापारियों का भी विज्ञापन होता है। इससे इन व्यापारियों के विक्रय सवर्द्धन में सहयोग मिलता है।

2 प्रत्यक्ष डाक विज्ञापन (Direct Mail Advertising)—प्रत्यक्ष डाक विज्ञापन, विज्ञापन की वह विधि है जिसमे विज्ञापनकर्ता कुछ लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने के उद्देश्य से उनके पास छपे हुए अथवा लिखित सदेश भेजता है। इस उद्देश्य से एक उत्पादक अपने व्यापारियों को निम्न सामग्री मुफ्त (Free) अथवा नाममात्र के मूल्यों पर (At Nominal Price) भेजता है, जिसे व्यापारी अपने चुने हुये ग्राहकों मे वितरण कर देते हैं—

(i) पत्र-शीर्षक (Letter-heads) (ii) फोल्डर (Folders) (iii) कैटलॉग (Catalogues) (iv) हाउस मैगजीन (House Magazine) (v) व्यावसायिक जवाबी कार्ड (Business reply cards) (vi) स्याही सोख्त (Blotters) (vii) छपे हुए लिफाफे (Printed envelopes) (viii) डायरियाँ एवं कैलेण्डर्स (Diaries & Calanders) (ix) विक्रय पुस्तिकाएँ (Sales manuals) (x) हैण्ड बिल्स (Hand bills)।

इनके अतिरिक्त एक उत्पादक अपने व्यापारियों को और कई प्रकार की सामग्री भी भेजता है, जिसे व्यापारी अपने ग्राहकों को डाक द्वारा भेज सकता है। इससे वह ग्राहकों को क्रय के लिए प्रेरित करने का प्रयास करता है।

3 स्टोर एवं वातायन सजावट (Store and Window displays)—एक उत्पादक अपने मध्यस्थों को स्टोर एव वातायन सजावट मे विभिन्न प्रकार से

सहायता पहुँचा सकता है। वह समय समय पर अपने विक्रयकर्ता को भेजकर अपने मध्यस्थो की दुकानों की सजावट करने मे सहायता पहुँचाता है। वह सजावट का सामान भी भेजता है। ये ब्राह्य संकेत, लटकाने वाले संकेत, दीवार संकेत, काउण्टर संकेत, पोस्टरों बेनर्स आदि आदि हो सकते हैं।

4 बाह्य विज्ञापन (Out door Advertising)—कभी कभी उत्पादक अपने मध्यस्थो के नाम से भी बाह्य विज्ञापन करते है। उत्पादक अपने उत्पादन से सम्बन्धित साइन बोर्डस आदि व्यापारी के नाम से बनाकर बाहर लगवा सकता है।

5 क्रियात्मक प्रदर्शन (Demonstration)—कभी कभी उत्पादक अपने विक्रयकर्ताओं का क्रियात्मक प्रदर्शन करने हेतु व्यापारियों की दुकानों पर भेजते है। ये उत्पादकों के विक्रयकर्ता व्यापारी की दुकान पर जाकर ग्राहकों के समक्ष वस्तुओं की प्रकृति एव उनके उपयोग बताते है। कुछ उत्पादक तो अपने कुछ विक्रयकर्ताओं को क्रियात्मक प्रदर्शन करने के लिए ही नियुक्त करते हैं। प्रचारक विक्रयकर्ता प्राय क्रियात्मक प्रदर्शन का ही काय करते हैं। इनसे विशिष्ट ज्ञान का उपभोक्ताओं को लाभ मिलता है। साथ ही व्यापारी के विक्रयकर्ताओं को भी लाभ मिल जाता है।

6 मरम्मत सुविधाएँ (Repair Facilities)—कई तकनीकी माल उत्पादक अपने व्यापारियों के यहां ग्राहकों की वस्तुओं के खराब होने पर मरम्मत की सुविधाएँ भी अपनी ओर से प्रदान करते है। इसके लिए उत्पादक स्वयं तकनीकी स्टाफ की नियुक्ति करता है और उन्हे उनका पारिश्रमिक भी चुकाता है। इससे ग्राहकों को वस्तुओं के खराब होने पर उन्हे ठीक करवाने के लिए जगह-जगह नहीं जाना पडता है और उन्हे सुविधा मिल जाती है। परिणामस्वरूप, वे इस बात से प्रभावित होकर उसी व्यापारी से वस्तु का क्रय करना पसन्द करते है, जहा इस माल की मरम्मत की सुविधा उपलब्ध होती है।

7 फैशन शो (Fashion Show)—कभी कभी उत्पादक विक्रय सवर्द्धन के दृष्टिकोण से फैशन शो' आयोजित करते हैं। इस फैशन शो से नई नई प्रकार की वस्तुएँ दिखाई जाने लगती है और उनके सामने पुरानी वस्तुएँ घटिया दिखने लगती है। इससे पुरानी वस्तुएँ स्वत बाजार से हटने लगती है, और नई-नई वस्तुओं को स्थान मिल जाता है।

(ब) विक्रय सहायता (Sales Assistance)

एक उत्पादक विक्रय संवर्द्धन के उद्देश्य से अपने मध्यस्थो को निम्न प्रकार से विक्रय सहायता पहुँचा सकते हैं

1 विक्रय योजना निर्माण मे (Building Sales Plan)—उत्पादक अपने मध्यस्थो की विक्रय योजनाओं के निर्माण मे सहयोग देकर विक्रय सवर्द्धन कर सकते हैं

2 फुटकर विक्रयकर्ताओं को प्रशिक्षण (Training to Retail Salesmen)- कुछ उत्पादक विक्रय सवर्द्धन के दृष्टिकोण से अपने फुटकर व्यापारी के विक्रयकर्ताओं को विक्रय प्रशिक्षण भी देते हैं। आजकल इस प्रकार प्रशिक्षण अनेक सस्थाएँ देने लगी है। वे विक्रयकर्ता, जो तकनीकी माल का विक्रय करते हैं, उन्हें उत्पादन सस्था फैक्टरी पर रखकर प्रशिक्षण भी देते हैं। इससे विक्रयकर्त्ता आसानी से ग्राहकों को माल की तकनीकी बातो को स्पष्ट करने में सफल हो पाता है, जो विक्रय सवर्द्धन मे महान् सहयोग दे सकता है।

3 विक्रयकर्ता प्रतियोगिता (Contest for Retail Salesmen)—कभी-कभी निर्माता अपने व्यापारियो के विक्रयकर्ताओ के लिए भी प्रतियोगिता का आयोजन करते है। इन प्रतियोगिताओ मे काउन्टर सजावट प्रतियोगिता, सर्वाधिक विक्रय प्रतियोगिता आदि आयोजित की जाती है। जो सबसे अच्छी सजावट करता है या सर्वाधिक विक्रय करता है, उसको पुरस्कार दिया जाता है।

(स) प्रबन्ध सहायता (Management Aids)

बहुत से मध्यस्थो को प्रबन्ध सम्बन्धी सम्पूर्ण ज्ञान नही होता है और वे अपनी कार्यक्षमता व धन का सम्पूर्ण उपयोग कर नही पाते हैं। अत एक आधुनिक उत्पादक अपने मध्यस्थों को विभिन्न बातो पर सलाह देता है। यह सलाह उनको उनकी सस्था की स्थिति एव आकार, उसके लिए प्रयोग में लायी जाने वाली वस्तुओ एव औजारो, उनके स्टॉक नियन्त्रण, उनकी क्रय एव विक्रय नीतियो के निर्माण आदि-आदि के सम्बन्ध मे दी जा सकती है। कई बार कई उत्पादक अपने व्यापारी को इन सब बातो के लिए छपी हुई सामग्री भी देते हैं। यद्यपि ये सभी बातें प्रत्यक्ष रूप से उत्पादक का विक्रय सवर्द्धन नही करती हैं, परन्तु अप्रत्यक्ष रूप से विक्रय सवर्द्धन म सहायता पहुँचाती है।

(द) अन्य विधियाँ (Other Methods)

(1) व्यापारी प्रतियोगिता (Dealer Contest)—व्यापारियों को अपने माल के विक्रय के लिए प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से निर्माता अपने व्यापारियो के लिए प्रतियोगिताओ का आयोजन करते हैं। य प्रतियोगिताएँ सर्वाधिक विक्रय प्रतियोगिता के रूप म आयोजित की जा सकती है। ऐसी प्रतियोगिता की दशा म सर्वाधिक विक्रय करने वाले व्यापारी को पुरस्कार दिया जाता ह।

(2) व्यापारी प्रीमियम (Dealer Premium)—कभी-कभी निर्माता अपने व्यापारियों को प्रीमियम भी देते है। यह प्रीमियम किसी वस्तु विशेष की निर्धारित मात्रा एक साथ क्रय करने पर दी जा सकती है। उदाहरणार्थ 12 ग्रॉस 'अजय पेन' एक साथ क्रय करने वाले व्यापारी को एक दीवार घड़ी प्रीमियम स्वरूप दी जाती है।

III उपभोक्ता व्यापारी संयुक्त संवर्द्धन विधि
(Consumer-Dealer Combined Promotion Plan)

निर्माता को विक्रय संवर्द्धन के लिए केवल एक पक्षकार पर ही निर्भर नहीं रहना चाहिये। उसे जहाँ एक ओर अपने व्यापारी को अपने माल के अधिकाधिक विक्रय के लिए प्रेरित करना चाहिये, वहाँ दूसरी ओर उपभोक्ता को भी अधिकाधिक क्रय के लिये प्रोत्साहित करना चाहिए। इस उद्देश्य से हमने ऊपर के कुछ पृष्ठों में विविध साधनों का वर्णन किया है। किन्तु निर्माता को यह नहीं भूलना चाहिये कि केवल उपभोक्ता को क्रय के लिए प्रोत्साहित करने या केवल व्यापारी को ही विक्रय के लिए प्रेरित करने से कार्य नहीं चलने वाला है। हो सकता है कि उपभोक्ता माल क्रय करना चाहते हो, किन्तु व्यापारी माल के विक्रय में उत्सुक न हो या व्यापारी माल के विक्रय को उत्सुक हो, किन्तु उपभोक्ता माल का क्रय करना न चाहते हो। ऐसी परिस्थिति में केवल उपभोक्ता या व्यापारी संवर्द्धन साधनों का प्रयोग करना निर्माता के हित में नहीं होता है। निर्माता को इन दोनो के लिए एक ही विक्रय संवर्द्धन योजना लागू करनी चाहिये, जिससे दोनों ही पक्षकारों को क्रय एवं विक्रय के लिए प्रोत्साहित किया जा सके। आजकल इस प्रकार की उपभोक्ता व्यापारी संयुक्त संवर्द्धन योजनाएँ बहुत प्रचलित हैं। अभी कुछ समय पूर्व ही आयुर्वेद सेवाश्रम प्राइवेट लि० द्वारा इस प्रकार की संयुक्त विक्रय संवर्द्धन विधि का प्रयोग किया गया था। उसका विस्तृत विवरण उदाहरणार्थ नीचे है।

उदाहरण

"आयुर्वेद द्वितीय महान भेंट योजना"

आयुर्वेद द्वितीय महान भेंट योजना, आयुर्वेद सेवाश्रम प्राइवेट लि० द्वारा जनवरी 1972 में आयोजित की गई थी। इस योजना का मूल लक्ष्य उपभोक्ताओं को अधिकाधिक क्रय एवं व्यापारियों को अधिकाधिक विक्रय के लिए प्रोत्साहन देना मात्र था।

प्रस्तुत योजना एक प्रतियोगिता थी। यह प्रतियोगिता उपभोक्ता एवं व्यापारियों दोनों के लिए थी। अतः हम इसका विश्लेषण भी अलग अलग ही करेंगे—

उपभोक्ताओं के लिए योजना—इस योजना में उपभोक्ता को प्रवेश पत्र भरना पड़ता था। इस प्रवेश पत्र पर 10 फिल्मी सितारों के नाम दिए हुए थे। प्रतियोगिता में भाग लेने वालों को इन सितारों के आगे अपनी पसन्द क्रम में (In order of preference) एक से दस तक की संख्या लिखनी पड़ती थी। इसके अतिरिक्त 25 शब्दों में वह कारण भी लिखना पड़ता था, जिसके कारण उन्होंने किसी विशेष सितारे को प्रथम स्थान दिया है। इस प्रतियोगिता फार्म को पूरा करने के लिए इसके साथ उपभोक्ता को एक पूरा टोकन या दो आधे टोकन भी लगाने होते थे जो सेवाश्रम के उत्पादनों को क्रय करके प्राप्त किये जा सकते थे। कम्पनी ने

प्रतियोगिता की अन्तिम तिथि की समाप्ति पर सब प्रवेश पत्रो को छाँटा और सर्वाधिक पसद क्रम वाले प्रवेश पत्रो को अलग कर लिया और उन्हे विद्युत मशीन मे डालकर घुमाया और एक-एक करके पुरस्कार घोषित किये। प्रथम पुरस्कार एम्बेसेडर कार का दिया गया। इस प्रकार यह योजना उपभोक्ताओं को काफी प्रोत्साहित करने वाली रही।

व्यापारियो के लिए योजना—इस योजना के अनुसार व्यापारियो को सेवाश्रम उत्पादनो को एक पेटी क्रय करने पर एक कूपन दिया गया। इस कूपन के पीछे नम्बर छपे हुए होते थे। कूपन का आधा भाग कम्पनी पहले से ही अपने पास रख लिया करती थी।

निश्चित तिथि के बाद कूपनो के इन आधे भागो को विद्युत मशीन मे डालकर घुमाया और एक एक करके इनाम घोषित किये।

इस प्रकार ये दोनो योजनाएँ एक ही समयावधि मे लागू की गई और यह योजना अपने उद्देश्य की प्राप्ति में काफी सफल रही।

अभ्यास के लिए प्रश्न

1 विक्रय सवर्द्धन क्या है? विक्रय सवर्द्धन विज्ञापन से किस प्रकार भिन्न है?
What is Sales Promotion? How does it differ from Advertising?

2 विक्रय सवर्द्धन की विभिन्न विधियों का वर्णन कीजिए।
Describe different mathods of Sales Promotion
(II Year Com 1975)

3 उपभोक्ता सवर्द्धन की प्रमुख विधियो का उल्लेख कीजिए।
Describe the main methods of Consumer Promotion.

4 प्रीमियम का निर्धारण करते समय किन किन बातों का ध्यान रखना चाहिए?
What are the main factors to be kept in mind while determining a Premium?

5 प्रीमियम देने की प्रमुख विधियो का वर्णन कीजिए।
Describe different methods of awarding Premium

6 प्रतियोगिता के आयोजन मे किन किन बातो का ध्यान रखना चाहिए? प्रतियोगिता मुख्यत कितने प्रकार की हो सकती है?
What things should be kept in mind while organising a contest? What are the different types of contests?

7 व्यापारी सवर्द्धन की प्रमुख विधियो का वर्णन कीजिये।
Describe main methods of Dealer Promotion.

मूनी (Mooney) के शब्दों में "संगठन सामान्य हितों की पूर्ति के लिए बनाया गया मानवीय समुदाय है।"[1]

शेल्डन (Sheldon) के शब्दों में, "संगठन वह विधि है, जिसके द्वारा आवश्यक विभागों में व्यक्तियों या समूहों द्वारा किये जाने वाले कार्यों को इस प्रकार संयोजित किया जाता है, कि उनके द्वारा उपलब्ध प्रयत्नों को शृखलाबद्ध करके कुशल, व्यवस्थित एवं समन्वित किया जा सके।"[2]

मेकफारलेण्ड (McFarland) के अनुसार, "संगठन विशिष्ट व्यक्तियों का एक समूह है, जो निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कार्य करता है।"[3]

उपर्युक्त 'संगठन' शब्द की परिभाषाओं के आधार पर हम विक्रय संगठन शब्द की परिभाषा निम्न प्रकार बना सकते हैं—

विक्रय संगठन विक्रय कार्यों से सम्बन्धित व्यक्तियों का एक समूह है, जिसके द्वारा विक्रय विभाग के कार्यों का इस प्रकार संयोजन किया जाता है, जिससे संस्था के विक्रय कार्यों को अधिकतम सफलता के साथ पूरा किया जा सके।

स्टिल एवं कण्डिफ (Still and Cundiff) के शब्दों में 'विक्रय संगठन किसी अन्य संगठन के समान व्यक्तियों का समूह है, जो किसी सामान्य उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए कार्य करता है और उनमें आपस में औपचारिक सम्बन्धों के साथ-साथ कुछ अनौपचारिक सम्बन्ध भी होते हैं।"

उपरोक्त परिभाषाओं के अध्ययन से एक विक्रय संगठन के निम्न आवश्यक लक्षण प्रतीत होते हैं—

1 यह व्यक्तियों का एक समूह है।

2 संगठन किन्हीं उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए सामूहिक रूप से कार्य करता है।

3 इस समूह के व्यक्तियों में आपस में औपचारिक एवं अनौपचारिक सम्बन्ध होते हैं।

4 संगठन का उद्देश्य संस्था के उद्देश्यों को अधिकतम सफलता से प्राप्त करना है।

---

1. "Organisation is the form of every human association for the attainment of a common purpose —James D Mooney

2 Organisation is the process of so combining the work which individuals or groups have to perform with the faculties necessary for its performance that the duties so formed, provide the best channel for the efficient, systematic, positive and coordinated application of the available efforts —Oliver Sheldon

3. "Organisation is an identifiable group of people contributing their efforts towards the attainment of goals." —D E. McFarland

5 संगठन उस समूह के व्यक्तियों के कार्यों एवं उत्तरदायित्वों को स्पष्ट करता है।

विक्रय संगठन के उद्देश्य (Objects of Sales Organisation)

एक विक्रय संगठन के निम्न प्रमुख उद्देश्य होते हैं—

1 उचित रूप में विक्रय विभाग के उद्देश्य का निर्धारण करना।
2 अधिकारों का निर्धारण करना।
3 कार्यों के दोहराव को रोकना।
4 उत्तरदायित्वों का निर्धारण करना।
5 दैनिक कार्यों में कुशलता प्राप्त करना।
6 कर्मचारियों के कार्यों का उचित रूप में समन्वय करना।
7 कर्मचारियों की कार्यकुशलता में वृद्धि करना।
8 कर्मचारियों के आपसी मतभेद को समाप्त करना।
9 व्यक्तिगत कार्यकुशलता के लिए प्रेरणा देना।
10 विक्रयकर्त्ताओं का उचित निरीक्षण करना।

विक्रय संगठन का महत्त्व
(Importance of Sales Organisation)

आधुनिक युग में विक्रय संगठन का अत्यधिक महत्त्व है। एक विक्रय संगठन के निर्माण से विक्रय प्रबन्धक को विक्रय कर्मचारियों का निर्देशन, समन्वय, नियन्त्रण आदि करना सरल हो जाता है विशिष्टीकरण हो जाता है तथा कर्मचारियों का मनोबल बढ़ता है, जिसके परिणामस्वरूप, समस्त विक्रय संगठन की कार्यक्षमता बढ़ जाती है।

1 प्रबन्ध क्षमता में वृद्धि (Increases Managerial Efficiency)—अच्छा विक्रय संगठन विक्रय प्रबन्धकों की क्षमता को कई प्रकार से बढ़ा सकता है। इससे कार्यों के निष्पादन में लगने वाले अधिक समय की बचत होती है कार्य का दोहराव (Repetition) नहीं होता है एवं आपसी मतभेद समाप्त हो जाते हैं। इन सबके परिणामस्वरूप, प्रबन्धकीय क्षमता में वृद्धि होना सम्भव है।

2 विशिष्टीकरण को प्रोत्साहन (Encourages Specialisation)—विक्रय संगठन संरचना करके कार्य विश्लेषण के आधार पर सही व्यक्ति को सही काम पर (Right job to the right man) लगाया जाता है। विशिष्ट योग्यता वाले व्यक्ति को विशिष्ट कार्य दिया जाता है। इसमें पर्याप्त मात्रा में विशिष्टीकरण को प्रोत्साहन मिलता है।

3 समन्वय में सुविधा (Facilitates Co ordination)—विशिष्टीकरण के परिणामस्वरूप समन्वय की समस्या का जन्म होता है। संगठन संरचना में विभिन्न विभागों एवं उपविभागों कर्मचारियों एवं अधिकारियों के मध्य आपसी सम्बन्धों का निर्धारण किया जाता है, जिससे समन्वय करने में बड़ी सुविधा मिल जाती है।

4. **अधिकार प्रत्यायोजन मे सुविधा (Facilitates Delegation)**—सगठन चार्ट से एक अधिकारी को यह ज्ञात हो जाता है, कि कौन-कौन व्यक्ति उसके अधीनस्थ तथा किस कार्य को करने मे विशिष्ट है। इससे अधिकारी सम्बन्धित व्यक्ति को सम्बन्धित कार्य एव अधिकार दे सकता है।

5 **मनोबल बढाता है (Contributes to Morals)**—अच्छा विक्रय सगठन विक्रयकर्त्ताओ के मनोबल को भी बढाता है। प्रत्येक व्यक्ति के कार्य एवं अधिकार निश्चित होने से उनको अपने अस्तित्व का ज्ञान होता है जो अन्ततोगत्वा मनोबल की वृद्धि मे सहायक होता है।

6. **विक्रय क्षेत्र का स्पष्ट विभाजन (Clear-cut Division of Sales Area)**—प्रत्येक अधिकारी एव विक्रयकर्त्ता को विक्रय क्षेत्र निर्धारण करने मे सहायता मिलती है। इससे एक दूसरे के कार्य क्षेत्र मे हस्तक्षेप नही होता है और अच्छे सम्बन्धो का निर्माण होता है।

7 *नियन्त्रण मे सुविधा (Facilitates Control)*—प्रत्येक अधिकारी एव विक्रयकर्ता के क्षेत्र निर्धारण के पश्चात् उसके कार्यों के नियन्त्रण मे सुविधा प्राप्त होती है।

8 **कार्यकुशलता मे वृद्धि (Increases Efficiency)**—निश्चित उद्देश्यो, कार्यों, दायित्वो एव आपसी सम्बन्धो से एक अधिकारी एव विक्रयकर्ता की कार्यकुशलता मे भी वृद्धि होती है। अन्ततोगत्वा, सम्पूर्ण सस्था की कार्यकुशलता मे वृद्धि होती है।

9. **भ्रष्टाचार की समाप्ति (Eradicates Corruption)**—एक अच्छा विक्रय सगठन अपने विक्रय कर्मचारियो को परिश्रमी, निष्ठावान एव ऊँचे चारित्रिक गुणो वाला बनने मे सहायता प्रदान करता है। यह सब कुशल नियन्त्रण एव वैयक्तिक माप (Personal Identification) से ही सम्भव है, जो स्वय कुशल सगठन सरचना पर निर्भर है।

10. **सस्था का विकास एव उन्नति (Facilitates Growth and Expansion of the Institution)**—एक अच्छी विक्रय सगठन सरचना सस्था के विकास एव उन्नति के द्वार खोल देती है। एक आधुनिक सस्था अपनी विक्रय वृद्धि के लिए प्रयास करती है, परन्तु ये प्रयास सगठन सरचना द्वारा ही प्रभावित होते हैं। अत एक विक्रय संगठन सरचना का सम्पूर्ण सस्था के विकास मे महान् योगदान होता है।

विक्रय संगठन संरचना के निर्धारक तत्त्व
(Factors Determining Structure of Sales Organisation)

एक विक्रय सगठन की सरचना विभिन्न बातो पर निर्भर करती है। केनफील्ड

(Canfield) के अनुसार विक्रय संगठन की संरचना निम्न छ बातो पर निर्भर करती है—

1 विक्रय की जाने वाली वस्तुएँ । 4 वितरण की विधियाँ
2 प्रबन्धको की योग्यताएँ । 5 कम्पनी की वित्तीय स्थिति ।
3 कम्पनी का आकार । 6 कम्पनी की विक्रय नीतियाँ ।

प्रो० जॉनसन (L K I hn on) के अनुसार विक्रय संगठन की संरचना निम्न 12 बातो पर निर्भर करती है —

1 व्यवसाय की प्रकृति
2 व्यवसाय का आकार
3 व्यवसाय की वस्तुओ की विविधता
4 व्यवसाय के बाजारा के प्रकार की विविधता
5 विक्रय नीतियाँ
6 वितरण विधियाँ
7 प्रतिस्पर्धा
8 कर्मचारियो की योग्यताएँ एव शक्तियाँ
9 वित्तीय साधन
10 प्रबन्धको की व्यावसायिक विचारधारा
11 राजनीति
12 परम्पराएँ

उपर्युक्त दोनो विद्वानो की विचारधारा का अध्ययन करने के बाद हम संगठन संरचना को प्रभावित करने वाले निम्न महत्त्वपूर्ण तत्त्वो का विवेचन करते हैं—

1 वस्तुओ की प्रकृति (Nature of Products)—वस्तुओ की प्रकृति एक विक्रय संगठन की संरचना म महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। बार बार क्रय की जाने वाली एव आवश्यक आवश्यकता की वस्तु का विक्रय करने वाली संस्था का विक्रय संगठन काफी बडा एव विस्तृत स्वरूप वाला होगा। जबकि विलासिता की वस्तु वाली संस्था का विक्रय संगठन सीमित होगा। यदि विक्रय की जाने वाली वस्तुएँ औद्योगिक उपयोग की है तो उसके लिए सीमित सरल एव छोटे आकार के विक्रय संगठन की आवश्यकता होगी। इसी प्रकार यदि जल्दी खराब होने वाले माल का विक्रय किया जाता है तो अपेक्षाकृत अधिक विक्रयकर्ताओ, क्षत्र प्रतिनिधियो एव कितने ही निरीक्षको की आवश्यकता होगी, परिणामस्वरूप संगठन का स्वरूप भी बडा होगा। यदि वस्तुएँ तकनीकी प्रकृति की है तब भी अधिक तकनीकी स्टाफ की नियुक्ति करनी पडेगी। इस प्रकार वस्तुओ की प्रकृति एव विक्रय संगठन संरचना विभिन्न प्रकार से प्रभावित कर सकती है।

2 वस्तुओं की सख्या (Number of Product)—यदि एक सस्था द्वारा विक्रय की जाने वाली वस्तुओ की सख्या बहुत अधिक है, तो विक्रय सगठन भी बहुत बडा एव विस्तृत होगा, जबकि यदि विक्रय की जाने वाली वस्तुओ की सख्या सीमित है, तो विक्रय सगठन भी छोटा होगा।

3. बाजार का प्रकार (Type of Market)—बाजार का प्रकार भी विक्रय सगठन सरचना को प्रभावित करता है। यदि सस्था स्थानीय बाजार मे ही माल का विक्रय करती है, तो विक्रय सगठन भी छोटा एव सरल होगा। यदि सस्था सम्पूर्ण राज्य एव देश मे माल का विक्रय करती है तो विक्रय सगठन बहुत ही बडा जटिल प्रकृति का होगा। परन्तु यदि सस्था अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विक्रय करती है तो सस्था का विक्रय सगठन और भी विस्तृत एव जटिल होगा, जहाँ सम्पूर्ण प्रकार से विशिष्टीकरण सम्भव हो सकेगा।

4 प्रबन्धको की योग्यताएँ एव क्षमताएँ (Abilities and Capacities of Executives)—सर्वोच्च प्रबन्धको की योग्यताएँ एव क्षमताएँ भी बहुत ही उत्तम है तो रेखा सगठन (Line Organisation) का निर्माण कर सकते हैं और सभी निर्णय आसानी से किये जा सकते हैं। निर्णय एव अन्य कार्यों के लिए विशेषज्ञो की भी आवश्यकता नही पडती है। परन्तु यदि प्रबन्धको की योग्यताएँ एव क्षमताएँ उच्च किस्म की नही हैं, तो रेखा सगठन के स्थान पर किसी अन्य सगठन का निर्माण करना होगा, जिसमे उन्हे निर्णय एव कार्यों के निष्पादन मे सहायको की सहायता मिल सके।

5 सस्था का आकार (Size of the Institution)—यदि सस्था छोटे आकार की है, तो स्वभावत उसका विक्रय कार्य भी सीमित होगा और उसके लिए छोटे एव सरल विक्रय-सगठन का निर्माण ही पर्याप्त होगा। परन्तु यदि सस्था का आकार बहुत बडा है, तो स्वभावत विक्रय-क्षेत्र भी बडा ही होगा। उसके लिए अधिक जटिल एव विस्तृत विक्रय सगठन सरचना की जावेगी, जिसमे सभी प्रकार की विशिष्ट सहायता उपलब्ध हो सके एव विशिष्टीकरण का लाभ मिल सके।

6 विपणन विधियाँ (Marketing Channels)—एक सस्था अपने माल को थोक व्यापारियो, फुटकर व्यापारियो अथवा प्रत्यक्ष रूप से उपभोक्ताओ को बेच सकती है। यदि सस्था प्रत्यक्ष रूप मे उपभोक्ताओ को माल का विक्रय करती है तो उसका विक्रय सगठन काफी बडा होता है। जैसे बाटा शू कम्पनी प्रत्यक्ष रूप से उपभोक्ताओ को माल बेचती है। अत उसके विक्रय सगठन की रचना जटिल एव विस्तृत है। विशिष्टीकरण के लाभ भी यह सस्था उठाती है। दूसरी ओर यदि सस्था फुटकर व्यापारियो को माल का विक्रय करती है, तो उसका विक्रय सगठन कुछ अपेक्षाकृत सरल होगा और यदि थोक व्यापारियो को विक्रय किया जाना है तो विक्रय सगठन की सरचना और भी सरल एव सीमित होगी। कई सस्थाएँ डाक

द्वारा व्यापार करती है। उनके विक्रय की मात्रा प्राय: सीमित होती है। अतः उनका संगठन तो बहुत ही सरल होता है।

7 **संस्था की विक्रय नीतियाँ** (Sales Policies of the Institution)—संस्था की विक्रय नीतियाँ अपने विक्रय संगठन संरचना को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती हैं। यदि विक्रय नीतियों के अनुसार कुछ संस्थाएँ विक्रय निरीक्षण को कड़ा करके विक्रय में वृद्धि करना उचित समझती हैं तो कुछ संस्थाएँ क्षेत्र विशेष का अनुसंधान एवं अन्य उपाय करके विक्रय वृद्धि करना उचित समझती हैं। अनुसंधान व अन्य उपाय प्रयोग करने में विशिष्ट कर्मचारियों की आवश्यकता होती है। अतः संगठन संरचना में विशेषज्ञों का स्थान होगा, जबकि निरीक्षण पर ध्यान देने वाली संस्था का क्षेत्र संगठन (field organisation) का विस्तृत आकार होगा।

8 **संस्था की वित्तीय स्थिति** (Financial Status of Institution)—एक संस्था की वित्तीय स्थिति उसके विक्रय क्षेत्र को निर्धारित करती है। विक्रय क्षेत्र संगठन संरचना को निर्धारित करता है। यदि वित्तीय स्थिति अच्छी है, तो वह संस्था प्रत्यक्ष रूप से उपभोक्ताओं को माल विक्रय कर सकती है। ऐसी परिस्थिति में विक्रय संगठन विस्तृत एवं विशिष्टीकृत होगा। परन्तु यदि संस्था की वित्तीय स्थिति इतनी अच्छी नहीं है तो वह माल थोक व्यापारी को ही बेचेगी। इससे संगठन सरल एवं छोटा होगा।

9 **प्रथाएँ एवं परम्पराएँ** (Customs and Traditions)—एक संस्था की कुछ प्रथाएँ एवं परम्पराये होती है, कुछ संस्थायें प्रथाएँ एवं परम्परा के अनुसार थोक व्यापार ही करती चली आ रही हैं एवं वे अब भी थोक व्यापार ही करती है और संगठन का स्वरूप भी छोटा एवं सरल होता है। इसी प्रकार कई संस्थाएँ अपनी प्रथाएँ व परम्परा के अनुसार फुटकर व्यापार ही करती है तो उनका विक्रय संगठन विस्तृत होता है। कुछ संस्थाएँ परम्परानुसार कुछ विशेषज्ञों को रखती हैं तो कुछ आवश्यकता होते हुए भी विशेषज्ञों को स्थान नहीं देती है। इसी प्रकार यदि बाजार में उसी संस्था को भी उसी संगठन संरचना का प्रयोग करना पड़ सकता है।

10. **प्रबन्धकों की नीतियाँ** (Managerial Policy)—प्रबन्धक सभी अधिकारों को अपने हाथ में रखना चाहता है अथवा सम्बन्धित अधिकारियों को प्रत्यायोजन (Delegation) करना चाहता है अथवा विकेन्द्रीकरण करना चाहता है। संगठन संरचना इन सभी बातों से भी प्रभावित होती है।

विक्रय संगठन के सिद्धान्त
(Principles of Sales Organisation)

ब्रेच (Brech) के अनुसार "यदि किसी संगठन की संरचना के लिये किसी व्यवस्थापक विधि का होना आवश्यक है, तो कुछ सर्वमान्य सिद्धान्त अवश्य होने

चाहिये।"[1] यद्यपि विक्रय सगठन सरचना के लिए किन्ही विशिष्ट सिद्धान्तो का निर्माण अब तक नही किया गया है। परन्तु विक्रय सगठन भी किसी अन्य सगठन की भाति ही एक सगठन है। अत. एक सगठन के सिद्धान्तो के आधार पर विक्रय सगठन के निम्नांकित सिद्धान्त है —

1. उद्देश्य का सिद्धान्त (Principle of Objective)—**"सगठन के प्रत्येक विभाग एव उपविभाग के उद्देश्य निश्चित तथा व्यवसाय के उद्देश्यों के अनुरूप होने चाहिये।"** (Each part and sub-division of organisation should be the expression of definite purpose in harmony with the objectives of the undertaking) अत. विक्रय सगठन के प्रत्येक विभाग एव उपविभाग के उद्देश्य भी निश्चित होने चाहिए। साथ ही साथ, ये उद्देश्य सस्था के सम्पूर्ण उद्देश्यो के अनुरूप ही होने चाहिये।

2 **विशिष्टीकरण का सिद्धान्त** (Principle of Co ordination)—इस सिद्धान्त के आधार पर विक्रय सगठन की अधिकाधिक कार्य कुशलता प्राप्त करने के दृष्टिकोण से एक कर्मचारी को वही कार्य सौपना चाहिये, जिसमे वह कुशल हो। इस सिद्धान्त के पालन से कम से कम खर्च पर उद्देश्यो को अधिकाधिक सफलता से प्राप्त किया जा सकता है।

3. समन्वय का सिद्धान्त (Principle of Co-ordination) मूनी तथा रैले (Mooney and Railey) के अनुसार **"सभी सगठनो का अन्तिम उद्देश्य सरलता से सुन्दर समन्वय करना होता है।"** (The final objective of all organisations is smooth and effective coordination)" अत विक्रय सगठन के प्रत्येक विभाग तथा कर्मचारियो मे समन्वय स्थापित होना आवश्यक है। इसके विक्रय अतिरिक्त सगठन व सस्था के अन्य विभागो मे भी समन्वय स्थापित होना आवश्यक है।

4 **'नियन्त्रण के विस्तार का सिद्धान्त'** (Principle of Span of Control)—'नियन्त्रण के विस्तार (Span of Control) से आशय कर्मचारियों की उस सस्था से है, जिसका प्रबन्धक द्वारा सफलता पूर्वक नियन्त्रण किया जा सके। इस सिद्धान्त के प्रतिपादक ग्रेकुनाज (Graunas) हैं। उनके अनुसार **'कोई भी अधिकारी प्रत्यक्ष रूप से पाच और अधिक से अधिक छ: अधीनस्थो से अधिक का निरीक्षण नहीं कर सकता।"** सगठन के सिद्धान्तो के प्रतिपादक कर्नल एल उर्विक (Col L Urwick) ने स्पष्ट शब्दो मे कहा है कि **"उच्चाधिकारियो के सहायक कर्मचारियो की आदर्श सख्या चार है तथा सगठन के निम्न स्तर जहां पर कार्यो का निष्पादन किया जाता है, न कि निरीक्षण, यह सख्या आठ से बारह हो सकती है।"**

---

1 *"If there is to be systematic approach to the formation of organisation structure, there ought to be a body of accepted principles "* E. F. L Breach, Organisation. The Frame work of Management p 72.

अत विक्रय संगठन की संरचना में विक्रय प्रबन्धक को नियन्त्रण के विस्तार के सम्बंध में इन बातों को ध्यान में रखना चाहिये।

5 व्याख्या का सिद्धान्त (Principle of Definition)—**टेलर** (Taylor) के अनुसार '**प्रत्येक संगठन में प्रत्येक स्थिति स्पष्ट रूप से लिखित होनी चाहिये।**' (Ever position in every organisation should be clearly prescribed in writing) विक्रय संगठन के किस व्यक्ति को क्या कार्य करना है तथा उसके क्या क्या अधिकार एवं दायित्व होंगे। इसके अतिरिक्त संगठन में एक दूसरे कर्मचारी के बीच क्या सम्बन्ध होंगे। इस बात की स्पष्ट रूप में व्याख्या कर लेनी चाहिये। इसमें प्रत्येक का कार्य भार अलग अलग होगा और कोई भी एक दूसरे के क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं कर सकेगा।

6 **आदेश का सोपानिक सिद्धान्त** (Principle of Scalar Organisation)—प्रत्येक संगठन में ऊपर से नीचे तक की औपचारिक अधिकार रेखा स्पष्ट होनी चाहिये। विक्रय संगठन में यह स्पष्ट होना चाहिये कि कौन व्यक्ति किसकी अधीनता में कार्य करेगा। अधिक स्पष्टता की दृष्टि से एक विक्रय संगठन के उच्चाधिकारियों निम्नाधिकारियों एवं कर्मचारियों के आपसी सम्बन्धों को स्पष्ट कर देना चाहिये।

7 **आदेश की एकरूपता का सिद्धान्त** (Principle of Unity of Command)—"इस सिद्धान्त के अनुसार **एक व्यक्ति एक ही समय में दो अधिकारियों की सेवा नहीं कर सकता।**" (No man can serve two bosses at the same time) संगठन के कुशल संचालन के लिए एक व्यक्ति को एक ही अधिकारी से आज्ञा एवं निर्देश प्राप्त होने चाहिये। जब एक से अधिक अधिकारियों से आदेश मिलते हैं तो वह किसी भी अधिकारी द्वारा सौंपे गये कार्य को उचित रूप से पूरा नहीं कर सकेगा। फलत संगठन का उद्देश्य भी प्राप्त नहीं होगा।

8 **अधिकार व दायित्व का सिद्धान्त** (Prinicple of Authority and Responsibility)—यह सिद्धान्त यह बताता है कि '**अधिकार एवं दायित्व साथ-साथ होने चाहिये।**' (Authority should be coupled with responsibility) केवल दायित्व निर्धारित कर देने से कार्य पूरा नहीं हो सकता। इन दायित्वों को पूरा करने के लिए अधिकारों का दिया जाना भी आवश्यक है। यदि अधिकार एवं दायित्व दोनों समानुपात में भी दिये गये तो भी कोई भी व्यक्ति कुछ कार्य नहीं कर सकेगा।

9. **अन्तिम दायित्व का सिद्धान्त** (Principle of ultimate Responsibility)—इस सिद्धान्त के अनुसार "**अधीनस्थों के कार्य के लिए उच्चाधिकारियों का अन्तिम दायित्व होना आवश्यक है।**" ("The responsibility of higher authority for the acts of its subordinates is absolute") यद्यपि

विशिष्टीकरण के सिद्धान्त का पालन कर कार्यों का विभाजन कर दिया जाता है, तथा अधिकार एवं कर्त्तव्यों को भी निर्धारित कर दिया जाता है, परन्तु अन्तिम दायित्व अधीनस्थों के अधिकारियों का रहना चाहिये।

10. **अपवाद का सिद्धान्त** (Principle of Exception)—इस सिद्धान्त का प्रतिपादन वैज्ञानिक प्रबन्ध के जन्मदाता टेलर (F W Tayler) ने किया था। इस सिद्धान्त के अनुसार दिन-प्रतिदिन के कार्यों के करने के लिए अधीनस्थों को अधिकार दे दिये जाने चाहिये तथा अपवादपूर्ण एवं महत्त्वपूर्ण मामलों पर निर्णय करने के कार्य उच्चाधिकारियों पर छोड़ देने चाहिये।[1]

11 **एकात्मक निर्देश का सिद्धान्त** (Principle of Unity of Direction) प्रत्येक व्यावसायिक संस्था की एक ही योजना होनी चाहिये और उनमें विक्रय संगठन के प्रत्येक विभाग को इसी योजना के अनुसार कार्य करना चाहिये।

12. **अनुरूपता का सिद्धान्त** (Principle of Homogeneity)—एक कुशल विक्रय संगठन संरचना के लिए यह भी महत्त्वपूर्ण है कि संगठन के विभिन्न पदाधिकारियों के अधिकार एक दूसरे से न टकरायें। साथ ही साथ दूसरे संगठन के अधिकारियों के अधिकार से भी न टकरायें। समान दायित्व वाले अधिकारियों के अधिकार भी समान ही होने चाहिये। अनुरूपता होने से ही कार्यों का समुचित निष्पादन सम्भव होता है।

13 **सरलता का सिद्धान्त** (Principle of Simplicity)—विक्रय संगठन का ढांचा सरल हो, ताकि प्रत्येक कार्य के निष्पादन में कम से कम समय एवं खर्च लगे। सरलता के अभाव में सन्देशों के आदान-प्रदान में भी कई कठिनाइयां सामने आती हैं।

14 **सरलता का सिद्धान्त** (Principle of Continuity)—विक्रय संगठन वह प्रक्रिया है, जो निरन्तर चलती है। अतः एक विक्रय संगठन ऐसा होना चाहिये जो व्यवसाय की आवश्यकताओं को निरन्तर पूरा कर सके। इस उद्देश्य से संगठन संरचना ऐसी हो कि संस्था की आवश्यकतानुसार इसमें परिवर्तन किया जा सके तथा इस प्रकार परिवर्तन करते समय व्यापार के कार्यों में कोई बाधा उपस्थित न हो।

(15) **समुचितता का सिद्धान्त** (Principle of Appropriateness)—

---

1. 'According to this concept, decisions which recur frequently should be reduced to a routine and delegated to subordinates, leaving More important issues and exceptional matter to superiors" W Warren Haynes and Joseph L Massie, Management, Analysis, Concepts and Cases p 41

सगठन सरचना सस्था के उद्देश्यो को ध्यान मे रखकर ही करनी चाहिये। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन फेयोल (Fayol) ने किया है। फेयोल (Fayol) द्वारा प्रतिपादित इस सिद्धान्त के अनुसार मानवीय एव भौतिक सगठन उपक्रम के उद्देश्य, साधन एव आवश्यकताओ के अनुरूप होना चाहिये।[1]

(16) लचीलेपन का सिद्धान्त (Principle of Flexibility)—एक विक्रय सगठन की सरचना लचीली होना चाहिये, ताकि आवश्यकतानुसार उसे बदला जा सके एव सगठन की कार्यकुशलता म वृद्धि की जा सके।

विक्रय सगठन का विभागीयकरण
(Departmentalization of Sales Organisation)

विभागीयकरण के आधार (Bases of departmentalisation)—साधारणत विक्रय सगठन का विभागीयकरण निम्न आधारो पर किया जा सकता है—

1 वस्तु (Product) के आधार पर
2 ग्राहको (Customer) के आधार पर
3 क्षेत्र (Territory) के आधार पर
4 कार्यों (Functions) के आधार पर
5 सयुक्त आधार पर (Combination of abovoe)

इनका नीचे विस्तार से वर्णन किया है।

1 वस्तु के आधार (On the basis of Product)—

विक्रय सगठन का विभागीयकरण वस्तु के आधार पर तब किया जाता है जब कि सस्था कई प्रकार की वस्तुओ का निर्माण करती है। यह सस्था प्रत्येक प्रकार की वस्तु के लिए अलग से तकनीकी स्टॉफ की नियुक्ति करती है और प्रत्येक वस्तु का विभाग अपने आप आत्म-निर्भर होता है। इस प्रकार के विभागीयकरण का प्रमाण एक चार्ट दिया जा रहा है—

---

1 "Fayol favoured the principle of appropriateness, that seeks to fit the human and needs of undertaking" W. Warren Haynes and Joseph L, Massie Management Analysis, Concept and Cases p 43

चार्ट—वस्तुओं के आधार पर विभागीयकरण
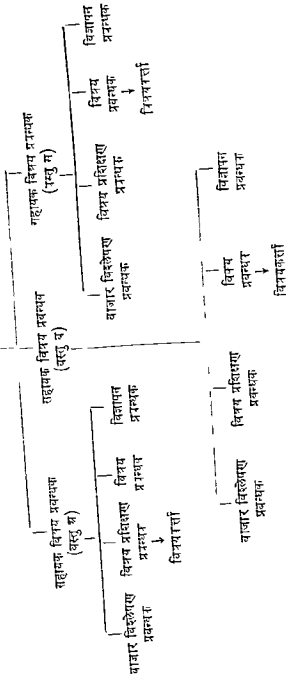
लाभ (Advantages)

1 प्रत्येक वस्तु को समान स्तर का महत्त्व मिलता है।
2 प्रत्येक विभाग को विशिष्ट सेवाएँ मिलती हैं।
3 विशिष्टिकरण के कारण मितव्ययता को प्रोत्साहन मिलता है।
4 एक दूसरे कार्यों में हस्तक्षेप की सम्भावना कम रहती है।

दोष (Disadvantages)

1 समन्वय करना कठिन हो जाता है।

2 प्रत्येक वस्तु का पर्याप्त उत्पादन न हो तो विशिष्टीकरण से प्रति इकाई लागत में वृद्धि हो जायगी।

2. ग्राहकों के आधार पर (On the basis of Customers)

जब किसी विक्रय संगठन का विभागीयकरण ग्राहकों के आधार पर किया जाता है, तो इसको ग्राहकों के आधार पर विभागीकरण कहलाता है। इसे हम वितरण विधियों के आधार पर विभागीकरण (Departmentalization on the basis of Distribution Channels) भी कह सकते हैं। इस प्रकार के विभागीकरण का स्वरूप निम्न प्रकार का होगा —

जनरल विक्रय प्रबन्धक

विक्रय प्रबन्धक (औद्योगिक)	विक्रय प्रबन्धक (थोक विक्रय)	विक्रय प्रबन्धक (फुटकर विक्रय)	विक्रय प्रबन्धक (निर्यात विक्रय)
↓	↓	↓	↓
विक्रयकर्त्ता	विक्रयकर्त्ता	विक्रयकर्त्ता	विक्रयकर्त्ता
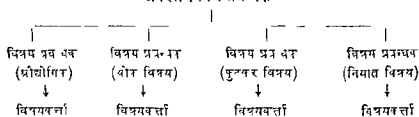
लाभ एवं दोष (Advantages and Disadvantages)—इस प्रकार के विभागीकरण से सबसे बड़ा लाभ यह है कि प्रत्येक प्रकार के ग्राहकों को विशिष्ट विक्रयकर्त्ता की सेवाएँ उपलब्ध हो जाती हैं। परन्तु दूसरी ओर इस विशिष्टीकरण के कारण व्यय अधिक होता है जो छोटे आकार की संस्था के लिए सम्भव नहीं है।

3 क्षेत्र के आधार पर (On the basis of Territory)

जब संस्था का विक्रय क्षेत्र राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय होता है तो क्षेत्रीय आधार पर विभागीकरण होता है। इस आधार पर जब विभागीकरण किया जाता है तो प्रत्येक क्षेत्र के लिए अलग से सभी आवश्यक विभागों का निर्माण किया जाता है। ये विभाग ही अपने क्षेत्र की समस्त समस्याओं का निराकरण करते हैं। इस प्रकार के विभागीकरण के प्रदर्शन करने वाला चार्ट अग्रांकित है —

चार्ट—क्षेत्र के आधार पर विभागीकरण

3 एक विभाग की लाल फीताशाही से सस्था का सम्पूर्ण कार्य ठप्प हो जाता है।

सयुक्त श्राधार पर (Combination Approach) :

जिस कम्पनी का व्यावसायिक क्षेत्र विस्तृत होता है, निर्मित वस्तुश्रो की सख्या भी बहुत अधिक होती है, विशिष्टीकरण की आवश्यकता होती है, वितरण विधियां भी विभिन्न प्रकार की प्रयोग मे लाई जाती हैं, वहाँ सयुक्त श्राधार पर विभागीकरण किया जाता है।

लाभ एव दोष (Advantages and Disadvantages) इस प्रकार से विक्रय सगठन का विभागीकरण करने से उपर्युक्त चारो प्रकार के लाभ एव दोष आ जाते हैं। परन्तु इसमे कुछ और महत्त्वपूर्ण समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं, वे निम्नलिखित हैं —

1 अन्तर कम्पनी सदेश-वाहन की समस्याएँ।
2 रेखा एव विशिष्ट कर्मचारी सम्बन्धित समस्याएँ।
3 समन्वय की समस्यायें।

विक्रय सगठन के प्रकार तथा स्वरूप
(Types of Forms of Sales Organisation)

एक विक्रय संगठन निम्न चार प्रकार से सगठित किया जा सकता है—

1 रेखा अथवा लम्बवत् सगठन।
2 रेखा एव कर्मचारी सगठन
3. क्रियात्मक सगठन
4 समिति सगठन

नीचे इन चारो प्रकार के सगठनो का विस्तार से वर्णन किया जा रहा है—

रेखा या लम्बवत् सगठन
(The Line Sales Organisation)

रेखा सगठन वह है जिसमे सभी दायित्व विक्रय प्रबन्धक मे केन्द्रित होते हैं और अधिकार उससे (विक्रय प्रबन्धक से) सीधी रेखा मे व्यक्तिगत विक्रयकर्त्ता तक पहुँचते हैं।[1]

स्पष्ट है कि रेखा विक्रय सगठन मे विक्रय प्रबन्धक अपने अधिकारो का प्रत्यायोजन (Delegation) रेखा-बद्ध रूप मे करता है। अत प्रत्येक कर्मचारी अपने निकटतम अधिकारी से आदेश प्राप्त करता है। इसी प्रकार अपने कार्य की रिपोर्ट

1, 'The line type of organisation is one in which the responsibility centres in a sales manager or other sales executive and authority flows in a straight line from him to the individual sales men   Bertrand R Canfield? Sales Administration, Principles and Problems p 76.

भी अपने निकटतम अधिकारी को ही देता है। रेखा विक्रय संगठन को चार्ट द्वारा निम्न प्रकार से प्रदर्शित किया जा सकता है —

जनरल विक्रय प्रबन्धक

सहायक विक्रय प्रबन्धक (क्षेत्र 'अ')	सहायक विक्रय प्रबन्धक (क्षेत्र 'ब')	सहायक विक्रय प्रबन्धक (क्षेत्र 'स')
विक्रयकर्त्ता	विक्रयकर्त्ता	विक्रयकर्त्ता
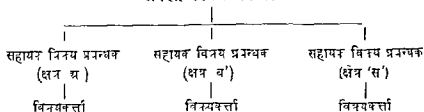
रेखा विक्रय संगठन की विशेषताएँ (Characteristics of Line Organisation)—

1. आदेश रेखाबद्ध रूप में ऊपर से नीचे की ओर आते हैं।
2. सभी अन्तिम दायित्व जनरल विक्रय प्रबन्धक में केन्द्रित होते हैं।
3. आदेश केवल एक ही अधिकारी से प्राप्त होता है।
4. प्रत्येक कर्मचारी अपने निकटतम अधिकारी से आदेश प्राप्त करता है।
5. इस प्रकार के संगठन में विशिष्टीकरण का अभाव होता है।

लाभ (Advantages)—

1. यह मितव्ययी है।
2. इस प्रकार की संगठन संरचना सरल है।
3. अधिकारों का केन्द्रीकरण किया जा सकता है।
4. इसमें शीघ्र निर्णय व कार्यान्वयन सम्भव है।
5. उत्तरदायित्वों से बचना कठिन होता है अर्थात् उत्तरदायित्व निश्चित होते हैं।
6. प्रबन्धकीय योग्यता का विकास होता है।
7. एकात्मक नियन्त्रण बना रहता है।
8. इसमें लचीलापन (Flexibility) पाया जाता है, जिससे परिवर्तन जल्दी सम्भव है।
9. उच्चकोटि का अनुशासन बना रहता है।
10. नियन्त्रण सरल एवं प्रभावशाली होता है।
11. लाल फीताशाही का अभाव होता है।
12. शीघ्र सवादवाहन सम्भव है।
13. विक्रयकर्त्ताओं से प्रत्यक्ष सम्बन्धों का निर्माण सम्भव है।
14. विक्रयकर्त्ताओं का मनोबल बढ़ता है एवं कार्य की प्रेरणा मिलती है।
15. कार्यों का समन्वय सरलता से किया जा सकता है।

दोष (Disadvantages)—

1 पर्याप्त विशिष्टीकरण सम्भव नही हो पाता है।

2 विक्रय प्रबन्धक पर उत्तरदायित्व का भारी बोझ हो जाता है।

3 बहुत योग्य, क्षमतावान एव सर्वसम्पन्न गुणो वाले व्यक्ति की आवश्यकता पडती है जिसका मिलना कठिन है।

4 पर्याप्त लोच का अभाव होता है।

5 विक्रय प्रबन्धक के चले जाने पर सारा सगठन अस्त व्यस्त हो जाता है।

6 अधीनस्थो म प्रबन्धकीय योग्यता का विकास नही हो पाता।

7 अधीनस्थो में प्रबन्धकीय क्षमता का विकास न होने के कारण उनकी पदोन्नति के अवसर समाप्त हो जाते हैं।

8 सभी अधीनस्थ अपने अधिकारियो के कहने पर चलते हैं।

9 बडी कम्पनियो के लिए इस प्रकार का स्वरूप अनुपयुक्त होता है।

10 एकाकी एव जल्द निर्णय कभी-कभी घातक सिद्ध होते हैं। (Haste makes waste)

उपयुक्तता (Suitability)—रखा विक्रय सगठन कुछ विशिष्ट दशाओ मे ही उपयुक्त रहता है, जो निम्न प्रकार है —

1, जब विक्रय कार्य बहुत ही सीमित हो।

2 कर्मचारियो की सख्या सीमित हो।

3 विशिष्ट ज्ञान की आवश्यकता न हो।

4 कर्मचारी अनुशासित हो।

रेखा एव कर्मचारी विक्रय सगठन
(Line and Staff Sales Organisation)

रेखा व कर्मचारी विक्रय सगठन वह सगठन है, जिसमे विक्रय प्रबन्धक को एक कम्पनी के विक्रय प्रशासन मे सलाह के लिए कुछ विक्रय क्षेत्रो जैसे—योजना, अनुसधान सांख्यिकी, इजिनियरिंग, सवर्द्धन एव प्रशिक्षण मे विशिष्ट ज्ञान वाले कर्मचारी दिये जाते हैं।[1] स्पष्ट है कि रेखा व कर्मचारी विक्रय सगठन मे भी अधिकार अनवरत विक्रय प्रबन्धक मे ही केन्द्रित होते है परन्तु उसके द्वारा विक्रय कर्त्ताओ को दिये जाने वाले आदेश एव निर्देश कुछ कार्यात्मक विशेषज्ञो (Functional Experts) की तकनीकी सलाह पर आधारित होते हैं, जिसके लिए कार्यात्मक विशेषज्ञ उत्तरदायी होते हैं,

---

1. "The line and staff type of organisation is one in which the sales manager is given a staff of specialists in such sales field as planning, research, statistics, engineering promotion and training to advise him in administering the sales of the company Bertrand R Canfield op cit p 78

लाइन एवं कर्मचारी विक्रय संगठन

जनरल विक्रय प्रबन्धक

विक्रय नियोजन प्रबन्धक	विक्रय संवर्द्धन प्रबन्धक	सहायक विक्रय प्रबन्धक	विक्रय विश्लेषण प्रबन्धक	विज्ञापन प्रबन्धक

जिला विक्रय प्रबन्धक जिला (अ)	जिला विक्रय प्रबन्धक जिला (ब)	जिला विक्रय प्रबन्धक जिला (स)
↓	↓	↓
विक्रयकर्त्ता	विक्रयकर्त्ता	विक्रयकर्त्ता
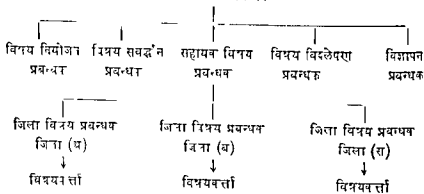
विशेषताएँ (Characteristics)—

(1) इसमें विक्रय प्रबन्धक को कार्यात्मक विशेषज्ञों की सलाह मिल जाती है।

(2) इसमें इन कार्यात्मक विशेषज्ञों की सलाह किसी भी सम्बन्धित निर्णय में प्रयोग में लाई जा सकती है।

(3) ये कार्यात्मक विशेषज्ञ अपनी अपनी सलाह के लिए पूर्ण रूप से उत्तरदायी होते हैं।

(4) इसमें विक्रय प्रबन्धक किसी भी कार्यात्मक विशेषज्ञ की सलाह को मानने के लिए बाध्य नहीं है। केवल स्वेच्छा से ही इनकी सलाह मानता है।

(5) इसमें निर्णय अधिक ठोस होते हैं।

(6) पर्याप्त विशिष्टीकरण सम्भव है।

(7) इसमें विक्रय प्रबन्धक के कार्य का बोझ हल्का हो जाता है।

(8) इसमें भी सारे आदेश एवं निर्देश जनरल विक्रय प्रबन्धक से ही क्रमशः विक्रयकर्ताओं तक पहुँचते हैं।

लाभ (Advantages)—

(1) यह प्रबन्धकों को जल्द एवं अच्छा कार्य निष्पादन में सहायता प्रदान करता है।

(2) यह विशिष्टीकरण के लाभ प्रदान करता है।

(3) जनरल विक्रय प्रबन्धक के कार्य का बोझ हल्का हो जाता है।

(4) यह प्रबन्धकीय योग्यता का विकास करता है।

(5) कुछ कर्मचारियों को पदोन्नति के अवसर मिलते हैं।

(6) इसमे पर्याप्त लोच पायी जाती है, जिससे व्यवसाय के बढने पर बिना किसी बाधा के परिवर्तन सम्भव है।

(7) मितव्यता लाना सम्भव है।

(8) निर्णय शीघ्र एव अच्छे लिये जाते हैं।

(9) अधिकार केन्द्रित रहते हैं।

दोष (Disadvantages)—

1. नियात्मक विशेषज्ञो मे मतभेद उत्पन्न हो जाता है।

2 नियात्मक विशेषज्ञो की नियुक्ति, छोटी सस्थाग्रो को अधिक खर्चीली पडती है।

3 इसमे उत्तरदायित्व किसी पर थोपना कठिन है।

4 क्रियात्मक विशेषज्ञों की सलाह का प्रयोग विक्रय प्रबन्धक की इच्छा पर होता है।

5 कार्यों के निष्पादन मे प्राय समय अधिक लग जाता है।

6 समन्वय की समस्या का जन्म होता है।

उपयुक्तता (Suitability)—इस प्रकार के सगठन सरचना की उपयोगिता निम्न प्रकार की सस्थाओ के लिये है —

1. जो सस्थाएँ बहुत बडी एव मध्यम श्रेणी की हैं।

2 जिन सस्थाओ मे विक्रयकर्त्ताओ की सख्या पर्याप्त है।

3 जिस सस्था द्वारा कई वस्तुएँ बनाई जाती हैं।

क्रियात्मक विक्रय सगठन
(Functional Type of Sales Organisation)

क्रियात्मक विक्रय सगठन एफ० डब्ल्यू० टेलर (F W Taylor) द्वारा प्रतिपादित वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्तो पर आधारित है। एल के जॉनसन (L K. Johnson) के अनुसार "क्रियात्मक सगठन वह सगठनात्मक व्यवस्था है जिसे अधिकार की रेखायें कई नियात्मक विशेषज्ञो के मध्य होती हुई कार्यकारी कर्मचारियो तक पहुँचती हैं, अधिकार का प्रत्येक स्तर योजना एव अपने अधीनस्थो के सम्पूर्ण नहीं बल्कि कुछ कार्यों के क्रियान्वयन के लिए उत्तरदायी होता।[1] इस प्रकार के सगठन

---

1 A functional type of organisation is an organisational arrangement in which lines of authority run from several functional experts to each non-supervisory employee with each level of authority being responsible for the planning and execution of some but not all of the functions performed by subordinates L. K. Johnson op cit p 335

में विशेषज्ञ स्वयं सीधे अपने विशिष्ट क्षेत्र से सम्बन्धित आदेश एवं निर्देश कार्यकारी कर्मचारियों को देते हैं।

विशेषतायें (Characteristics) –

1. प्रत्येक विशिष्ट कार्य के लिए विशेषज्ञ होता है।
2. विशेषज्ञ ही स्वयं आदेश एवं निर्देश देते हैं।
3. इसमें विशिष्टीकरण पर्याप्त मात्रा में होता है।
4. प्रत्येक विशेषज्ञ अपने विशिष्ट क्षेत्र से सम्बन्धित ही आदेश एवं निर्देश देता है।

गुण (Advantages)—

1. विशिष्टीकरण के सभी लाभ प्राप्त हो जाते हैं।
2. यह जनरल विक्रय प्रबन्धक को तकनीकी कार्यों के बोझ से मुक्त कर देता है।
3. निर्णय सरल एवं जल्दी लिये जा सकते हैं।
4. निर्णयों का शीघ्र कार्यान्वयन सम्भव हो जाता है।
5. विशिष्ट ज्ञान का पूर्ण उपयोग करके मितव्ययता लायी जा सकती है।

दोष (Disadvantages) —

1. इसमें आदेश की एकात्मकता नहीं रहती है।
2. विभिन्न विशेषज्ञों से आदेश मिलने से कार्यों में बाधा आती है।
3. इससे विक्रयकर्त्ताओं पर आदेशों एवं निर्देशों का अनावश्यक बोझ बढ़ जाता है।
4. अधिकारों का केन्द्रीयकरण नहीं हो पाता है।
5. इसमें समन्वय की गम्भीर समस्या खड़ी हो जाती है।
6. एक दूसरे विशेषज्ञ के क्षेत्र में हस्तक्षेप की सम्भावना बढ़ जाती है।
7. उत्तरदायित्व से बचने की भावना का विकास हो जाता है।
8. आपस में मतभेदों के बढ़ने की सम्भावना बढ़ जाती है।
9. छोटी संस्थाओं के लिए अनुपयुक्त रहता है।

उपयुक्तता (Suitability)—यह निम्न प्रकार की औद्योगिक संस्थाओं के लिए उपयोगी है—

1. जो समस्याएँ बहुत बड़ी हों।
2. जिन समस्याओं में पर्याप्त मात्रा में विशिष्टीकरण किया जाना लाभप्रद हो।

समिति विक्रय संगठन

(Committee Type Sales Organisation)

प्राय समिति विक्रय संगठन किसी विक्रय संगठन का सम्पूर्ण आधार नहीं बनती है, बल्कि यह किसी संगठन के ढांचे के साथ जुड़ी रहती है। समितियों का

कार्य प्राय निर्धारण एव नियोजन करना होता है। इसका वास्तविक क्रियान्वयन का दायित्व व्यक्तिगत रूप से सम्बन्धित प्रबन्धको का ही होता है। इन समितियो मे जनरल विक्रय प्रबन्धक सम्बन्धित विशेषज्ञो को सम्मिलित किया जाता है। कभी-कभी केवल विशेषज्ञो की ही समितियाँ बनाई जाती हैं। उदाहरणार्थ, एक सस्था अपने यहा विक्रय प्रशिक्षण समिति बनाती है, तो इसमे प्राय जनरल विक्रय प्रबन्धक, विक्रय प्रशिक्षण प्रबन्धक एव कुछ अन्य प्रबन्धक व सहायक सम्मिलित हो सकते हैं। ये सभी समय-समय पर मिलकर नीतियो एव योजनाओ का निर्धारण करते हैं। परन्तु वास्तव में इन नीतियो एव योजनाओं का क्रियान्वयन विक्रय प्रशिक्षण अधिकारी का ही होता है। इसी प्रकार विक्रय सगठन म अन्य विभिन्न समितियाँ जैसे ग्राहक समिति, वस्तु समिति, विज्ञापन समिति आदि बनायी जा सकती हैं।

लाभ (Advantages)—

1 सहयोग एव सहकारिता को बल मिलता है।
2 समन्वय करना सरल होता है,
3 ठोस (Solid) निर्णय लिये जा सकते हैं।
4 विशिष्ट ज्ञान का लाभ मिलता है।
5 गूढ मामलो पर विचार करना सरल होता है।
6 निर्णय शीघ्रता से लिये जा सकते हैं।
7 सन्देशवाहन सरल होता है।
8 नय विचारो का विकास होता है।
9 निर्णय उद्देश्य से सीधे सम्बन्ध रखने वाले होते हैं।

दोष (Disadvantages)—

1 अधिक धन व्यय होता है।

2 यद्यपि निर्णय एक साथ बैठकर शीघ्र लिये जा सकते हैं, परन्तु सभी अधिकारियो को एकत्रित करने मे काफी समय लग जाता है।

3 गलत निर्णय हो जाने पर किसी व्यक्ति विशेष पर उत्तरदायित्व डालना कठिन होता है।

4 समिति की कार्यवाही मे लगने से सम्बन्धित प्रबन्धक क समय की हानि होती है।

5 प्राय समिति के अध्यक्ष की बात मान ली जाती है। अत विशिष्ट निर्णय सम्भव हो पाते।

6 समिति मे राजनीति आने का भय बना रहता है।

7 छोटी एव मध्यम आकार की सस्थाओं के लिए अनुपयुक्त है।

उपयुक्तता (Suitability)—समिति विक्रय सगठन का निर्माण वहाँ उचित रहता है, जहा विक्रय क्षत्र काफी विस्तृत हो तथा बहुत ही अधिक विशिष्टीकरण की आवश्यकता हो।

अच्छे विक्रय संगठन के लक्षण
(Attributes of a good Sales Organisation)

उपर्युक्त वर्णित विक्रय संगठन के विभिन्न स्वरूपों में से किसी भी स्वरूप का चुनाव किया जा सकता है परन्तु संगठन की संरचना में लोच (Flexibility) अवश्य होनी चाहिये। भविष्य में संस्था के विकास के साथ संगठन संरचना में परिवर्तन करने में किसी भी प्रकार कठिनाई न हो, इस बात को ध्यान में रखकर ही विक्रय संगठन संरचना करनी चाहिये। इसके अतिरिक्त संगठन संरचना करते समय विक्रय संगठन संरचना के सिद्धान्तों का भी पर्याप्त रूप से पालन करना चाहिये।

अभ्यास के लिए प्रश्न

1. विक्रय संगठन की परिभाषा दीजिये तथा यह बताइये कि विक्रय संगठन के क्या उद्देश्य होते हैं ?
   Define sales organisation and state the objectives of a sales organisation.
2. व्यावसायिक उपक्रम में विक्रय संगठन के महत्व को विस्तार समझाइये।
   Discuss in detail importance of sales organisation in a commercial underting
3. एक विक्रय संगठन संरचना को प्रभावित करने वाले तत्वों का उल्लेख कीजिये।
   Describe the factors influencing structure of sales organisation
4. विक्रय संगठन के विभिन्न सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।
   Discuss the various principles of sales organisation
   (IIyr Com, 1975)
5. विक्रय संगठन के विभागीकरण के कौन कौन से आधार हैं ? प्रत्येक के लाभ-दोषों का वर्णन कीजिये।
   What are the bases of departmentalization of sales organsition? Narrate the advantages and disadvantages of each of them
6. विक्रय संगठन कितने प्रकार के होते हैं ? प्रत्येक के लाभ दोषों का वर्णन कीजिए।
   What are the type of sales organisation? Narrate advantages and disadvantages of each of them

3

विक्रय प्रबन्धक के कार्य

(Role of a Sales Manager)

"Sales manager is responsible for all field sales activities and for the maintenance of an adequate field sales organisation"
—Aspley and Harkness

उस युग म, जबकि व्यावसायिक संस्था की प्रमुख समस्या माल के उत्पादन की ही थी, विक्रय की कोई समस्या न थी, विक्रय प्रबन्धक का कोई विशेष महत्त्व न था। उसका कार्य केवल वस्तुग्रा के स्वामित्व का हस्तान्तरण अर्थात् विक्रय कार्य तक ही सीमित था, परन्तु ज्यो-ज्यो उस युग का अन्त होता गया। त्यो त्यो विक्रय की समस्याओं एव प्रतिस्पर्द्धा का प्रादुर्भाव होता गया। परिणामस्वरूप, विक्रय प्रबन्धक का कार्य-क्षेत्र एव महत्त्व बढता ही चला गया। उसके इस महत्त्व का मूल्याकन उसके कार्यों के आधार पर किया जा सकता है। उसके निम्न प्रमुख कार्य हैं।[1]

1 एक अच्छे क्षत्रीय विक्रय-सगठन का निर्माण करना, उसे बनाए रखना एव निर्देश दना।

2 निम्न के सम्बन्ध म नीतियो एव कार्यक्रमो का निर्धारण करना एव विपणन उपाध्यक्ष (Vice President Marketing) को सिफारिश करना—

(i) विक्रय-सगठन का आकार एव प्रकार

(ii) वस्तु के प्रकार

(iii) वितरण माध्यम

(iv) मूल्य

(v) वस्तु एव भौगोलिक क्षेत्र के अनुसार विक्रय उद्देश्य

(vi) पारिश्रमिक स्तर

---

1 Johan Cameron Aspley and John Cousty Harkness The Sales Manager's Handbook pp 333-335

(vii) कर्मचारी विकास एवं उन्नति
(viii) विक्रय विभाग का बजट
(ix) विज्ञापन एवं विक्रय संवर्द्धन कार्य
(x) नये उत्पादों का विकास एवं वर्तमान उत्पादों का सुधार
(xi) उधार नीतियाँ (Credit Policies)
(xii) गोदाम एवं माल सुपुर्दगी विधि

3 निर्धारित नीतियों के अनुसार विक्रय कार्यक्रमों का निर्धारण करना एवं कार्यान्वित करना।

4 शाखाओं एवं उपशाखाओं में विक्रय उद्देश्य का निर्धारण कर, एक निश्चित समयावधि में उनकी उपलब्धियों का मूल्यांकन करना एवं उद्देश्यों के पूरा न होने पर आवश्यक कदम उठाना।

5 विक्रय से सम्बन्धित प्रशासनिक विधियों का निर्माण करना एवं उच्च प्रबन्धकों को सिफारिश करना।

6 विक्रय प्रबन्धक व अन्य अफसरों एवं कर्मचारियों को प्रोत्साहित करने हेतु विक्रय से सम्बन्धित कार्यों के लिये मीटिंग बुलाना।

7 विक्रय कर्मचारियों में भर्ती प्रशिक्षण आदि कार्यक्रमों का निर्धारण एवं निरीक्षण करना।

8 शाखाओं एवं उपशाखाओं के विक्रय प्रबन्धकों के यात्रा एवं विक्रय खर्चों की स्वीकृति देना एवं विक्रय खर्च नीतियों (Sales Expenses Policies) का पालन न होने पर आवश्यक कदम।

9 संस्था को प्रभावित करने वाली विक्रय सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण बातों से उच्च प्रबन्धकों को अवगत कराना।

10 विक्रय लागत एवं व्ययों के बजट (Cost & expenses Budget) को तैयार करना एवं सिफारिश करना और स्वीकृत बजट के अनुसार कार्य करना।

11 नये उत्पादों (Product) के निर्माण तथा पुराने उत्पादों में सुधार के लिए सिफारिश करना।

12 पर्याप्त लाभ एवं विक्रय की मात्रा को प्राप्त करना।

13 विज्ञापन एवं विक्रय संवर्द्धन कार्यक्रमों में सहायता पहुँचाना और विक्रय कर्मचारियों के इन कार्यों का निरीक्षण करना।

14 विक्रय कर्मचारियों से रिपोर्ट प्राप्त करना एवं उनकी विक्रय बजट से तुलना करना।

15 आवश्यकता पड़ने पर दूसरी कम्पनी के कर्मचारियों एवं ग्राहकों से सम्पर्क स्थापित करना।

16 विक्रय क्षेत्रों में भ्रमण करना तथा वर्तमान एवं भावी ग्राहकों से मिलना तथा शाखाओं एवं उपशाखाओं के प्रबन्धकों से भेंट करना।

17. उस मीटिंग या कान्फ्रेंस में सम्मिलित होना, जिसके लिए विपणन उपाध्यक्ष के आदेश प्राप्त हों।

18 उस मीटिंग या कान्फ्रेंस में सहायता देना, जिसके लिए विपणन उपाध्यक्ष आदेश दे।

19 विक्रय से सम्बन्धित उन समस्याओं का हल करना, जो कि विपणन उपाध्यक्ष द्वारा निर्दिष्ट की गई हैं।

20 संस्था की विक्रय नीति का विश्लेषण करना और उन मामलों पर विचार करना, जो कि शाखाओं एवं उपशाखाओं के प्रबन्धकों के कार्य-क्षेत्र में नहीं हैं।

21 शाखाओं एवं उपशाखाओं के प्रबन्धकों के माध्यम से क्षेत्र विक्रय-कर्ताओं (field salesmen) को प्रोत्साहित एवं प्रेरित करना।

22 शाखा एवं उपशाखाओं के प्रबन्धकों के कार्यों का निरीक्षण करना।

23. संस्था के अन्य प्रबन्धकों के साथ सहयोग एवं सहकारिता का व्यवहार करना।

24 एक अच्छे नागरिक के कर्तव्यों का पालन करना एवं उन सामाजिक कार्यक्रमों में भाग लेना जो कि संस्था के सार्वजनिक सम्बन्धों को दृढ़ करते हों।

उपरोक्त वर्णन में एक विक्रय प्रबन्धक के कार्यों को बहुत ही विस्तृत रूप में बताया गया है। परन्तु वास्तव में आधुनिक पाश्चात्य देशों में एक विक्रय प्रबन्धक के कार्य इतने नहीं हैं। वे अब विपणन एवं विक्रय में अन्तर करने लगे हैं। उनका अब विपणन से आशय वस्तुओं को उत्पादक से उपभोक्ता तक पहुँचाना मात्र नहीं रह गया है।[1] वे अब विपणन की कई प्रकार से परिभाषा करते हैं। उनके अनुसार "विपणन प्रबन्ध व्यावसायिक क्रियाओं का वह क्षेत्र है, जिसमें सम्पूर्ण विक्रय आन्दोलन के स्तरों का निर्धारण एवं क्रियान्वयन सम्मिलित है।" इस प्रकार की विचार धारा के समर्थक विपणन के अन्तर्गत उत्पाद से सम्बन्धित योजनाओं का विश्लेषण, निर्माण एवं क्रियान्वयन विक्रय बाजारों एवं वितरण साधनों का निर्धारण, विक्रय संगठन का निर्माण विक्रय प्रबन्ध के कार्य विज्ञापन एवं विक्रय संवर्द्धन साधनों का निर्धारण विक्रय नियन्त्रण सम्बन्धी कार्य इत्यादि को सम्मिलित करते हैं।

अतः स्पष्ट है कि ये कार्य विक्रय प्रबन्धक के नहीं हैं, बल्कि एक विपणन प्रबन्धक (Marketing Manager) के हैं। विक्रय प्रबन्ध के कार्य तो इनमें से केवल कुछ ही हैं। वे कार्य विक्रय प्रबन्ध की परिभाषा को समझने से ही स्पष्ट हो सकते

---

1 Marketing—"The performance of business activities that direct the flow of goods and services from producer to consumer or user." Marketing Definitions, A Glossary of Marketing Terms, compiled by the Committee on Definitions of the American Marketing Association, Ralph S. Alexander, Chairman (Chicago: American Marketing Association 1960 p 15)

है। इस नवीन विचारधारा के अनुसार विक्रय प्रबन्ध से आशय "व्यक्तिगत विक्रय का नियोजन, निदेशन एवं नियन्त्रण है, जिसमें भर्ती करना, चुनाव करना, सुसज्जित करना, कार्यों का निर्धारण करना, विक्रय क्षेत्र निर्धारित करना, निरीक्षण करना, पारिश्रमिक देना तथा उत्प्रेरणा देना, जो कि व्यक्तिगत विक्रय कर्मचारियों से सम्बन्धित कार्य है, सम्मिलित है।" इस प्रकार इस विचारधारा के अनुसार विक्रय प्रबन्धक के निम्न प्रमुख कार्य हो सकते है—

1 भर्ती करना (Recruiting)—

जब विक्रय विभाग के कर्मचारी संस्था को छोड़कर अन्यत्र चले जाते है, वर्तमान उपलब्ध कर्मचारी आवश्यकता के अनुरूप विशिष्ट ज्ञान वाले नही होते है, अथवा संस्था नई वस्तुओं का निर्माण करती है नये बाजारों मे माल की खपत का क्षेत्र तैयार करती है, विक्रय संवर्द्धन के साधनो का प्रयोग कर विक्रय वृद्धि करना चाहती है, तब विक्रय प्रबन्धक के समक्ष भर्ती करने की समस्या का जन्म होता है, यद्यपि भर्ती करने का कार्य अनेकों संस्थाओं मे कर्मचारी विभाग (Personal Depatrment) को सौंपा जाता है परन्तु कई संस्थाओं के यह कार्य विक्रय प्रबन्धक स्वयं ही करते है।

विक्रय विभाग में किसी स्थान के रिक्त होते ही, विक्रय प्रबन्धक को यह निर्णय लेना होता है कि किस प्रकार के कर्मचारी अथवा विक्रयकर्ता की आवश्यकता है। वह इस हेतु वह कार्य विश्लेषण करता है। कार्य विश्लेषण कर लेने से नये आने वाले विक्रयकर्ताओं की योग्यता का आसानी से निर्धारण किया जा सकता हैं। इसके बाद विक्रय प्रबन्धक अपने वर्तमान विक्रयकर्ताओं के गुणों की जाँच तथा और पुनरावलोकन करता है, किस प्रकार के गुणों वाले विक्रयकर्ता अधिक सफल हुए है। अतः भविष्य मे भर्ती भी उसी प्रकार के व्यक्तियों की जाय जिससे वे विक्रय कार्य मे सफल हो सके।

विक्रयकर्त्ताओं की भर्ती के स्त्रोत (Sources of Recruitment)—जब विक्रय प्रबन्धक को यह ज्ञान हो जाता है कि विक्रयकर्ता को कौन-कौन से कार्य करने है तथा वह व्यक्तिगत रूप से कैसा होना चाहिये, तब वह विक्रयकर्ताओं के विभिन्न स्रोतों मे से किसी भी स्रोत से विक्रयकर्ता की भर्ती करता है। ये प्रमुख स्रोत निम्न है—(i) स्वेच्छा से प्राप्त प्रार्थना पत्र (ii) वर्तमान विक्रयकर्त्ताओं के सुझाव (iii) विक्रयकर्त्ताओं का संघ (iv) विज्ञापन (v) स्कूल तथा कॉलेज (vi) नियोजन कार्यालय (vii) प्रतिद्वन्दी संस्थाएं (viii) अन्य कोई स्रोत

2 चुनाव (Selection)—

एक विक्रय प्रबन्धक की सफलता उसके विक्रयकर्ताओं पर निर्भर करती है। अतः उसे विक्रयकर्त्ताओं का चुनाव करते समय बहुत ही सावधानी बरतनी चाहिये। चुनाव करते समय निम्न विधि अपनाई जा सकती है :—

(i) स्वागत (Reception)—जब एक प्रार्थी संस्था में आता है, तो उसके आते ही उसे एक मेहमान की तरह वातावरण देना चाहिये तथा उसे यह महसूस नहीं होने चाहिये कि वह किसी अजनबी स्थान पर बैठा है।

(ii) प्रारम्भिक भेंटवार्ता (Preliminary Interview)—विक्रय प्रबन्धक या उसका कोई अधीनस्थ इस प्रकार की प्रारम्भिक भेंटवार्ता कर सकता है। इस भेंट-वार्ता में उसको संस्था की स्थिति, उसके कार्य, दायित्व अधिकार, वेतन एवं अन्य सुविधाओं के बारे में अवगत कराया जाता है। इसके अतिरिक्त, प्रार्थी के बारे में आवश्यक सूचनाएँ भी प्राप्त की जाती हैं और यह निर्णय लिया जाता है कि प्रार्थी संस्था के लिए उपयुक्त होगा अथवा नहीं।

प्रायः ये दोनों ही स्तर अर्थात् स्वागत एवं प्रारम्भिक भेंटवार्ता व्यवहार में बहुत कम देखने को मिलते हैं। इन दोनों स्तरों का कार्य विज्ञापन में पूरा हो जाता है। परन्तु जब प्रार्थी से संस्था द्वारा आवेदन न मांगे गये हों और प्रार्थी स्वेच्छा से आवेदन करता है तो ये दोनों स्तर भी चुनाव विधि में सम्मिलित होते हैं।

(iii) प्रार्थना पत्र भरवाना (Filling in Application-blank)—जब प्रारम्भिक भेंटवार्ता से यह सिद्ध होता है कि प्रार्थी संस्था के लिए उपयुक्त होगा तो प्रार्थी से एक प्रार्थना-पत्र भरवाया जाता है। इस प्रार्थना पत्र में नाम, पता शैक्षणिक योग्यतायें, अनुभव इच्छित वेतन इत्यादि बातों को भरवाया जाता है।

(iv) चुनाव जाच (Selection Tests)—फार्म के प्राप्त करने के पश्चात् संस्था चुनाव जाच का आयोजन कर सकती है। इन जाचों के आधार पर प्रार्थी के सामान्य एवं विशिष्ट ज्ञान आदि की जाच की जाती है। जाच निम्न प्रकार की हो सकती है—(क) सामान्य योग्यता जाच (ख) विशिष्ट ग्राह्यता (Aptitude) जाच (ग) कार्य जाच (घ) व्यक्तित्व जाच (ङ) रुचि जाच।

(v) मुख्य भेंटवार्ता (Main Interview)—यह वह मुख्य भेंटवार्ता है जिसमें विक्रय प्रबन्धक, संस्था का मुखिया व अन्य विशेषज्ञ भी सम्मिलित होते हैं तथा प्रार्थी से प्रश्नोत्तर किये जाते हैं। बहुत सी संस्थाएं चुनाव जाच का आयोजन नहीं करती हैं और इस भेंटवार्ता के आधार पर ही चुनाव करती हैं। ऐसी स्थिति में चुनाव करते समय विशिष्ट ध्यान रखना चाहिये। भेंटवार्ता करने की कई विधियाँ हैं, उनमें से किसी भी विधि का प्रयोग किया जा सकता है।

(vi) प्रार्थी के सन्दर्भों से जानकारी (Investigation of Applicants Reference)—जब मुख्य भेंटवार्ता हो जाती है, तो प्रार्थी के सन्दर्भों से जानकारी प्राप्त की जाती है। सन्दर्भ के लिए प्रार्थी के कॉलेज, स्कूल, पूर्व नियोक्ता आदि से पूछताछ की जा सकती है।

(vii) डॉक्टरी जाँच (Medical Test) जब उपरोक्त स्तरों पर विक्रय प्रबन्धक सन्तुष्ट हो जाता है, तो वह प्रार्थी को डॉक्टरी जाँच के लिए भेजता है। यहा

डाक्टर प्रार्थी के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में यह जाँच करता है, कि वास्तव में वह विक्रय कार्य के लिए शारीरिक दृष्टि से उपयुक्त है अथवा नहीं।

(viii) नियुक्ति (Appointment) यदि प्रार्थी अन्तिम स्तर पर भी सफल जाता है, तो विक्रय प्रबन्धक प्रार्थी को नियुक्त कर लेता है।

3 प्रशिक्षण (Training)

प्रार्थी की नियुक्ति करने के पश्चात विक्रय प्रबन्धक उसे प्रशिक्षण देता है। प्रशिक्षण प्रत्येक छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी संस्था के विक्रयकर्ताओं के लिए आवश्यक होता है। अतः प्रत्येक कम्पनी प्रशिक्षण अवश्य देती है, चाहे वह किसी भी विधि का प्रयोग किया जा सकता है। प्रमुख प्रशिक्षण विधियाँ निम्न प्रकार हैं— (i) काम पर प्रशिक्षण (ii) कक्षा में प्रशिक्षण (iii) भाषण (iv) कान्फ्रेंस (v) क्रियात्मक प्रशिक्षण (vi) विक्रय सभायें (vii) पत्राचार (viii चलचित्र, फोटोग्राफ इत्यादि (x) विक्रय साहित्य।

4. सुसज्जित करना (Equipping)

प्रशिक्षण देने के पश्चात् एक विक्रय प्रबन्धक अपने विक्रयकर्ता को विक्रय के लिए बाहर भेजता है। इसके लिए उसे तैयार एवं सुसज्जित करना होता है, ताकि वह क्षेत्र में सफलता पूर्वक कार्य कर सके। इस हेतु एक विक्रय प्रबन्धक अपने विक्रयकर्ता को विभिन्न प्रकार की सामग्री जैसे माल के नमूनों, वस्तु के मोडल, केटलोग, पिक्चर प्रास्पेक्टस स्लाइड्स चार्टस्, डायग्राम, विक्रय टिप, विक्रय साहित्य, इत्यादि देकर सुसज्जित करता है। इन सामग्री का प्रयोग कर एक विक्रयकर्ता अपने ग्राहकों में सफलतापूर्वक विक्रय कार्य कर सकता है। संक्षेप में एक सुसज्जित विक्रयकर्ता के निम्न लाभ होते हैं —

(i) विक्रयकर्ता के समय की बचत होती है।

(ii) क्रेता के समय की बचत होती है।

(iii) क्रेता वस्तु या वस्तु के नमूने को देखकर विश्वस्त हो जाता है।

(iv) विक्रयकर्ता को आत्म विश्वास रहता है।

(v) विक्रयकर्ता को अधिक समय तक प्रशिक्षण नहीं देना पड़ता है।

(vi) विक्रयकर्ता को नई वस्तु के विक्रय में कठिनाई नहीं होती है।

5. कार्य निर्धारण करना (Assigning)

जब विक्रयकर्ता को सुसज्जित कर दिया जाता है, तो इसके बाद विक्रय प्रबन्धक उसके कार्यों का निर्धारण करता है। विक्रय प्रबन्धक विक्रयकर्ता को यह बताता है, कि उसे किस प्रकार के ग्राहकों में कितने माल का विक्रय करना है। इसके अतिरिक्त विक्रयकर्ता के वे कार्य भी बताये जाते हैं, जो कि विक्रय से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित नहीं हैं (non selling duties) परन्तु विक्रयकर्ता को करने हैं। कार्य निर्धारित करने से निम्न लाभ हैं —

(i) उद्देश्यों को प्राप्त करना सरल हो जाता है।

(ii) विक्रयकर्त्ता के लिए एक प्रेरणा का स्रोत होता है।
(iii) विक्रयकर्त्ता का नियन्त्रण करना सरल होता है।
(iv) पारिश्रमिक का निर्धारित करने का आधार जाता . ।
(v) विक्रयकर्त्ता के कार्यों के मूल्यांकन करने का आधार बन जाता है।

6 कार्य क्षेत्र का निर्धारण (Routing)

कार्यों का निर्धारण करने के बाद विक्रय प्रबन्धक विक्रयकर्त्ता को यह भी बताता है, कि उसे किस क्षेत्र (Territory) मे विक्रय कार्य करना है। ऐसा करने से नियन्त्रण एवं मूल्यांकन में सुविधा रहती है। प्रत्येक विक्रयकर्त्ता पर कार्य का समान भार पड़ता है तथा कार्य करने के लिए, प्रेरणा देना भी सरल होता है। संक्षेप में कार्य क्षेत्र निर्धारित करने के निम्न प्रमुख लाभ हैं —

(i) विक्रयकर्त्ता के कार्यों का मूल्यांकन सरल होता है।
(ii) नियन्त्रण करने मे सुविधा रहती है।
(iii) विक्रयकर्त्ता को उत्प्रेरणा मिलती है।
(iv) विक्रयकर्त्ता का मनोबल बढ़ता है।
(v) ग्राहकों की सेवा यथा समय करना सम्भव हो जाता है।
(vi) विक्रय खर्चों मे मितव्ययता लाई जा सकती है।

7 निरीक्षण करना (Supervising)

विक्रयकर्त्ता के कार्यों का नियन्त्रण एवं निरीक्षण करते रहना भी विक्रय प्रबन्धक का महत्त्वपूर्ण कार्य है। कार्यों का नियमित निरीक्षण करते रहने से यह ज्ञात हो जाता है, कि विक्रय कार्य निर्धारित नीतियों के अनुसार हो रहे हैं अथवा नहीं। इसके अतिरिक्त निरीक्षण से विक्रयकर्त्ता को उत्प्रेरणा दी जा सकती हैं, जो उसकी कार्यक्षमता में वृद्धि करने मे सहायक होती है। निरीक्षण की कई विधियाँ हैं। विक्रय प्रबन्धक उनमें से किसी भी विधि एवं विधियों का प्रयोग कर सकता है। प्रमुख निरीक्षण विधियाँ निम्न हैं —

(i) व्यक्तिगत निरीक्षण (Personal Supervision)—इस विधि के अन्तर्गत विक्रय प्रबन्धक या सहायक विक्रय प्रबन्धक या सुपरवाइजर विक्रयकर्त्ता के कार्य क्षेत्र मे जाकर निरीक्षण करता है।

(ii) पत्र-व्यवहार (Corresponedence)—पत्र व्यवहार द्वारा भी विक्रयकर्त्ताओं का निरीक्षण किया जाता है। ये पत्र कभी व्यक्तिगत रूप से विक्रयकर्त्ताओं को लिखे जाते हैं तो कभी गश्ती पत्र के रूप मे लिखे जा सकते हैं।

(iii) प्रतिवेदन (Reports)—विक्रयकर्त्ता को समय-समय पर कई प्रकार के प्रतिवेदन तैयार करके, विक्रय प्रबन्धक के पास भेजने पड़ते हैं। ये प्रतिवेदन विक्रय, विक्रय खर्चे, विक्रय भेंटवार्ता आदि के सम्बन्ध में हो सकते हैं। इनसे विक्रय प्रबन्धक विक्रयकर्त्ताओं के कार्यों का निरीक्षण कर सकते हैं।

8 पारिश्रमिक देना (Remuneration)

विक्रयकर्त्ताओं को पारिश्रमिक देना महत्वपूर्ण कार्य है। पारिश्रमिक इस प्रकार से दिया जाना चाहिए ताकि विक्रयकर्त्ता निराश न हो, बल्कि उसे उत्प्रेरणा मिले। अतः विक्रय प्रबन्धक को चाहिए कि विक्रय कर्मचारियों को पारिश्रमिक देने से पूर्व काफी सोच विचार कर ले। पारिश्रमिक की ऐसी विधि का निर्माण करना चाहिये जिससे एक विक्रय कर्मचारी को उचित पारिश्रमिक मिले, साथ ही साथ इससे कार्य मे उत्प्रेरणा भी मिले। पारिश्रमिक देने की प्रमुख निम्न विधियाँ हैं (i) वेतन विधि (ii) विक्रय कमीशन विधि (iii) वेतन एवं कमीशन विधि (iv) वेतन एवं निश्चित सीमा से ऊपर विक्रय पर कमीशन विधि (v) वेतन एवं विक्रय पर बढ़ते कमीशन दर विधि (vi) वेतन एवं बोनस विधि आदि।

एक विक्रय प्रबन्धक को इनमें से किसी भी विधि का चुनाव करने से पूर्व निम्न प्रश्नो पर विचार करना चाहिए —

(i) क्या विक्रयकर्त्ता निरन्तर रूप से कुछ न कुछ पारिश्रमिक प्राप्त कर सकेगा ?

(ii) क्या उसे कोई न्यूनतम वेतन प्राप्त हो सकेगा ?

(iii) क्या उसे कार्य के लिए प्रेरणा मिल सकेगी ?

(iv) क्या पारिश्रमिक देने की विधि सरल एवं क्रियान्वित करने योग्य है ?

(v) क्या वह विधि विक्रयकर्त्ताओं मे प्रतिस्पर्द्धा उत्पन्न कर सकेगी ?

(vi) क्या यह विधि विक्रयकर्त्ताओं एवं प्रबन्धक दोनों की दृष्टि से न्यायोचित है ?

(vii) क्या इस विधि मे आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया जा सकता है ?

9 उत्प्रेरणा (Motivating)

विक्रयकर्त्ताओं को उत्प्रेरणा देना विक्रय प्रबन्धक का महत्त्वपूर्ण कार्य है। उत्प्रेरणा देना निम्न कारणों से आवश्यक हो जाता है —

(i) **विक्रयकर्त्ता का भयभीत हो जाना**—एक विक्रयकर्त्ता प्रत्येक भेंटवार्ता मे सफल हो यह सरल कार्य नहीं है। अतः जब कभी भी विक्रयकर्त्ता भेंटवार्ता मे असफल हो जाता है तो भयभीत हो जाता है और अपना आत्मविश्वास भी खो सकता है। अतः उत्प्रेरणा की आवश्यकता रहती है।

(ii) **दूरी के कारण संस्था के तत्काल समर्थन का अभाव**—चूँकि विक्रयकर्त्ताओं को संस्था के कार्यालय से दूर दूर जाकर विक्रय कार्य करना पड़ता है। अतः कभी कभी वह यह महसूस करने लगता है कि उसे संस्था का समर्थन प्राप्त नहीं हो रहा है। उदाहरणार्थ एक विक्रयकर्त्ता संस्था को किसी अमुक व्यापारी के पास माल भेजने की सूचना भेजता है। किसी कारणवश यदि संस्था माल समय पर नहीं भेज पाती है, तो वह यह महसूस कर सकता है, कि संस्था का उसे समर्थन प्राप्त नहीं हो रहा है। इस प्रकार की स्थिति मे संस्था को पुनः प्रेरणा देनी पड़ती है।

(iii) कार्य अनियमित का समय एव घर से दूरी—एक विक्रयकर्त्ता जब बाहर क्षेत्र मे विक्रय कार्य के लिए निकलता है, तो उसे सुबह से शाम तक चलना पडता है और कार्य करना पडता है। इतना ही नही वह अपने घर, माता पिता, पत्नी-बच्चो आदि से भी दूर चला जाता है। जो केवल मौद्रिक लाभ के लोभ मे नही जाता है। अत उसे उत्प्रेरणा देनी पडती है।

उत्प्रेरणा देने की विधियाँ (Methods of Motivation)—(i) लाभ मे हिस्सा या बोनस (ii) पदोन्नति (iii) विक्रय प्रतियोगिताएँ (iv) कार्य मूल्याकन (v) विक्रय सभाएँ (vi) विक्रयकर्त्ताओ की पत्र पत्रिकाएँ (vii) व्यक्तिगत सम्पर्क एव कान्फ्रेंस (viii) व्यक्तिगत पत्र व्यवहार (ix) कार्य म क्षमता के लिए निदश (x) विक्रयकर्त्ताओ से सुझावो का आमत्रण (xi) उचित रूप से सुसज्जित करना एव सामग्री प्रदान करना।

10 नियत्रण करना (Controlling)

विक्रय प्रबन्धक का एक महत्त्वपूर्ण कार्य विक्रयकर्त्ताओ का नियत्रण करना भी है। नियत्रण से आशय विक्रय कार्यों के नियत्रण से है। एक विक्रय प्रबन्धक निम्न साधनो से विक्रय नियत्रण कर सकता हैं —(i) विक्रय बिल (ii) विक्रय खाता बही (iii) विक्रय बजट (iv) लाभ हानि विवरण (v) मानक लागत (vi) विक्रय विधि प्रतिवेदन (vii) विक्रय मौखिक प्रतिवेदन (viii) बाजार अनुसधान प्रतिवेदन (ix) विक्रय विश्लेषण (x) विक्रय व्यय प्रतिवेदन।

अभ्यास के लिए प्रश्न

1 एक विक्रय सगठन मे विक्रय प्रबन्धक के कार्यो का वर्णन कीजिये।
Describe the role of sales manager in a sales organisation

4

क्रय प्रेरणाएँ
(Buying Motives)

"Although buying motives may be and often are foolish, wrong illegal, in poor taste, or unworthy of social approval, they are always present and responsible for voluantary purchases."

– C A Kirkpatrick

प्रत्येक व्यक्ति जब कोई वस्तु खरीदता है तो उसके पीछे कोई विशेष प्रयोजन या प्रेरणा अवश्य होती है। वह वस्तु किसी व्यक्ति की आवश्यकता हो सकती है। वह वस्तु उस व्यक्ति की प्रिय हो सकती है। वह वस्तु प्रतिष्ठा प्राप्त करने, आराम प्राप्त करने या अन्य उद्देश्य से भी क्रय की जा सकती है। मनोवैज्ञानिकों का मत है कि व्यक्ति कभी भी बिना किसी प्रेरणा से किसी भी वस्तु का क्रय नहीं करता है। प्रत्येक क्रय के पीछे कोई न कोई प्रेरणा अवश्य होती है। हम इस अध्याय में प्रमुख क्रय प्रेरणाओं का संक्षेप में वर्णन कर रहे हैं।

क्रय प्रेरणाओं का वर्गीकरण
(Classification of Buying Motives)

क्रय प्रेरणाओं को विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से वर्गीकृत किया है। मेलविन एस० हेटविक (Melvin S Hattwick) ने क्रय प्रेरणाओं को मुख्य रूप से निम्न दो भागों में वर्गीकृत किया है —

1 प्राथमिक प्रेरणाएँ (Primary Buying Motives)—प्राथमिक प्रेरणाएँ वे होती हैं जो व्यक्ति में जन्मजात होती हैं। ये प्रेरणाएँ व्यक्तियों के जीवित रहने की इच्छा के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती हैं। दूसरे शब्दों में इन प्रेरणाओं के पीछे मुख्य रूप से मनुष्य की आवश्यक आवश्यकताएँ होती हैं। एक विद्वान ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि इन प्रेरणाओं को कोई भी व्यक्ति सीखता नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति इन प्रेरणाओं के साथ ही पैदा होता है और जीवन पर्यन्त ये प्रेरणाएँ उसके साथ रहती है।

प्राथमिक क्रय प्रेरणाओं को आवश्यक आवश्यकताओं के अतिरिक्त अन्य कई बातें भी प्रभावित करती हैं। मेलविन के अनुसार प्राथमिक क्रय प्रेरणाओं को

प्रभावित करने वाले प्रमुख तथ्य इस प्रकार हैं (i) खाना एवं पीना, (ii) आराम, (iii) विपरीत लिंग को आकर्षित करना, (iv) प्रिय व्यक्तियों का भला करना, (v) भय एवं खतरे से मुक्ति प्राप्त करना, (vi) श्रेष्ठतर बनना, (vii) सामाजिक मान्यता प्राप्त करना, तथा (viii) दीर्घकाल तक जीवित रहना आदि।

II गौण क्रय प्रेरणाएँ (Secondary Buying Motives)—गौण क्रय प्रेरणाएँ वे होती हैं, जो व्यक्ति के वातावरण के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती हैं। मेलविन के अनुसार ये प्रेरणाएँ सौदेबाजी करने, सूचना प्राप्त करने, स्वच्छता रखने, कार्यकुशलता बढाने सुविधाएँ बढाने, विश्वसनीयता एवं विभिन्न किस्म स्टाइल, सुन्दरता की वस्तुओं को प्राप्त करने मितव्ययता या लाभ प्राप्त करने या कौतूहल (Curiosity) को समाप्त करने की इच्छा के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती हैं।

हेम्पटन तथा जबीन (Hampton and Zabin)—के अनुसार क्रय प्रेरणाएँ निम्नलिखित प्रकार की होती हैं (i) सुरक्षा, (ii) साथ एवं प्यार (iii) कौतूहल, (iv) सुविधा एवं सुरक्षा (v) प्रतिष्ठा।

आर एस डावर (R S Davar) के अनुसार मुख्य रूप से निम्नलिखित प्रकार की क्रय प्रेरणाएँ होती है (i) भय (ii) लाभ या लाभ की लालसा (iii) अभिमान (iv) गौरव (v) फैशन (vi) भोग विलास तथा रोमान्स, (vii) प्यार तथा स्नेह (viii) भौतिक कल्याण या स्वास्थ्य (ix) सुविधा एवं आराम (x) कौतूहल, तथा (xi) आदत।

अल्फ्रेड ग्रोस (Alfred Gross)—ने क्रय प्रेरणाओं को निम्नलिखित तीन भागों में वर्गीकृत किया है

(i) भावना प्रधान क्रय प्रेरणाएँ (ii) विवेक प्रधान क्रय प्रेरणाएँ तथा (iii) संरक्षण प्रधान क्रय प्रेरणाएँ।

वास्तव में इस वर्गीकरण के द्वारा सभी विद्वानों द्वारा वर्णित क्रय प्रेरणाओं का आसानी से अध्ययन कर सकते हैं। अतएव हम नीचे उनका विस्तार से वर्णन कर रहे हैं।

भावना प्रधान क्रय प्रेरणाएँ
(Emotional Buying Motives)

ग्रोस (Gross) के अनुसार जब कोई व्यक्ति अनुभव एवं ज्ञान के आधार पर किसी वस्तु का क्रय करता है, तो उसे भावना प्रधान क्रय कहते हैं। चूंकि भिन्न भिन्न व्यक्तियों का ज्ञान एवं अनुभव भिन्न भिन्न होता है। अतएव उनकी समान वस्तुओं की क्रय प्रेरणाएँ भी भिन्न भिन्न हो सकती हैं। उदाहरण के लिए दो व्यवसायी अपने व्यवसाय के कार्यालय के लिए समान प्रकार का फर्नीचर खरीद कर लाते हैं। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि वे दोनों ही समान प्रकार की क्रय

प्रेरणाओं से प्रभावित हुए हैं। एक व्यवसायी के मस्तिष्क में दूसरे व्यावसायी से समान फर्नीचर खरीदने की प्रतिस्पर्धा हो सकती है, किन्तु दूसरे के मस्तिष्क के फर्नीचर खरीदने का उद्देश्य अपनी संस्था में आने वाले ग्राहकों पर प्रभाव डालना हो सकता है। सामान्यतः भावना-प्रधान क्रय निम्न कारणों से किया जाता है :—

1. गर्व एवं अभिलाषा को पूरा करने के लिए।
2. समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए।
3. दूसरे लोगों की अपेक्षा अपने आपको विशिष्ट दिखाने के लिए।
4. आनन्द एवं मनोरंजन के लिए।
5. स्नेह एवं प्यार प्राप्त करने के लिए।
6. वस्तु विशेष को प्राप्त करने के लिए।
7. आत्म-सुरक्षा एवं भय से मुक्ति के लिए।

भावना-प्रधान प्रेरणाएँ सर्वाधिक रूप से प्रभावशाली क्रय प्रेरणाएँ होती हैं, किन्तु व्यवहार में न तो इनका पूर्णतः वर्णन ही सम्भव है और न ही उनका वर्गीकरण करना ही। मोटे तौर पर निम्नलिखित कुछ शीर्षकों में सामान्य भावना प्रधान क्रय प्रेरणाओं का वर्णन किया गया है :

1. **भौतिक सुख एवं सुविधा** (Physical Comfort and Convenience)- मनुष्य एक पशु है, किन्तु सामाजिक पशु। इसीलिए वह सुख–सुविधा का ध्यान रखता है और उनका आनन्द लेना चाहता है। प्रत्येक व्यक्ति को रोटी, कपड़ा, और मकान, प्राथमिक आवश्यकताएँ हैं। विश्व में कई लोग ऐसे हैं, जो इन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अपना अधिकांश समय एवं आय से ही इन आवश्यकताओं को पूरा कर लेते हैं तथा बाकी समय एवं आय से अन्य आवश्यक वस्तुओं को प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। यही एक भावना है कि लोग अच्छा भोजन करते हैं, अच्छी सुविधाप्रद कार में सवारी करते हैं, आरामदायक फर्नीचर पर बैठते हैं। ये सभी सुविधाएँ सभी लोगों को अधिक सुविधा-प्रद तरीके से कार्य करने में मदद करती हैं। हम घरों में कपड़े धोने की मशीनें, मिक्सी, स्वचालित बरतन साफ करने की मशीनें, कारें, स्कूटर, फ्रिज, कूलर आदि सुविधा एवं आराम करने के दृष्टि-कोण से ही तो खरीदते हैं। आज यह सर्वाधिक रूप से आधारभूत तथा शक्तिशाली क्रय प्रेरणा के रूप में मानी जाती है। अतएव विक्रयकर्त्ता माल का विक्रय करते समय लोगों की इस भावना का लाभ उठा सकते हैं।

2. **गौरव तथा प्रतिष्ठा** (Pride and Prestige)—कई लोग वस्तुओं का रखने एवं बनाने में गौरव का अनुभव करते हैं। अतः वे ऐसी गौरव प्रदान करने वाली वस्तुओं का क्रय करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति में गौरव प्राप्त करने की इच्छा होती है। प्रत्येक व्यक्ति अपने आपको समाज में महत्त्वपूर्ण बनाना चाहता है, वे दूसरे व्यक्तियों से प्रशंसा एवं शुभकामनाएँ चाहते हैं। अतः वे इस भावना की सन्तुष्टि के लिए कई वस्तुओं का क्रय करते हैं। इसीलिए प्रत्येक विक्रयकर्त्ता को इस बात पर

विशेष ध्यान देना चाहिये। उसे वस्तुएँ ऐसी रखनी चाहिए, जो ग्राहकों की इन भावनाओं को भी सतुष्टि प्रदान कर सकें।

कई अनुसधानों से यह ज्ञात हो चुका है कि कई लोगों ने कुछ विशिष्ट दुकानों से क्रय करना बन्द इसीलिए कर दिया है, कि उन्हें वहाँ उचित आदर नहीं मिला है तथा उनकी उपर्युक्त भावनाओं की सतुष्टि नहीं हुई थी। अतएव विक्रयकर्त्ताओं का कभी ग्राहकों की इन भावनाओं को ठेस नहीं पहुँचानी चाहिये। इन भावनाओं की सतुष्टि न होने पर वह कभी भी आपकी सस्था से माल क्रय नहीं करेगा। किन्तु तनिक आदर करने से वह सदैव आपका हो जावेगा। किसी ने उचित ही कहा है कि **'किसी भी व्यक्ति को उसके अनुरूप थोड़ा सा ही अधिक आदर दो और वह फिर हमेशा के लिए आपको बहुत अधिक पसद करेगा।'** ("Make a man like him self a little bit better and he will henceforth like you very much) *सेम्यूल जॉनसन (Samuel Johnson) ने उचित ही लिखा है कि प्रशंसा सोने तथा* **हीरों की भाँति दुर्लभ होने के कारण इसका महत्व है।** (Praise, like gold and dimonds, owes its value to its scarcity" Samuel Johnson)

3 **फैशन** (Fashion)—फैशन आधुनिक युग में नवयुवकों एव युवतियों में क्रय प्रेरणाओं का आधार है। अधिकांश नवयुवक एव युवतियाँ फैशन से प्रेरित होते हैं। वे किसी को कोई कपड़ा किसी विशेष ढग से पहना हुआ देखते हैं, तो वे स्वय भी उसी प्रकार से कपड़ा पहनना प्रारम्भ कर देते हैं। फैशन वास्तव में नकल या प्रतिस्पर्द्धा का परिणाम है। किसी पड़ौसी के यहाँ एक कार खरीदी जाती है, तो वे स्वय भी कार खरीदना चाहते हैं। किसी छात्र ने ऊँची ऐडी के जूते खरीदे हैं या सांगानेरी प्रिंट की कमीज बनवाई है, तो अन्य छात्र भी वैसा ही करने का प्रयत्न करेंगे। इस प्रकार आज फैशन से प्रेरित होकर लोग वस्तुएँ क्रय करते हैं। ऐसा करने से प्राय धन का सदुपयोग विवेकपूर्ण रूप से नहीं होता है।

4. लालसा (Acquisitiveness)—कई लोगों को अपनी वस्तुएँ बचाने का शौक होता है। वे दूसरे लोगों की वस्तुएँ मागकर प्रयोग करने से घृणा करते हैं। इसी प्रकार कई लोगों को कई वस्तुओं के सग्रह की इच्छा होती है यथा टिकिट, सिक्के आदि के सग्रह करने की इच्छा। इस प्रकार ऐसे लोग कई वस्तुएँ केवल इसीलिए खरीदते हैं कि उनके मन में केवल खरीदने की लालसा होती है। कई बार देखा जाता है कि भारत में लोग गाडी खरीद लेते हैं, किन्तु उसे चलाते बहुत कम हैं। स्त्रियाँ भी स्वर्ण आभूषण बनवा लेती हैं, किन्तु प्राय पहनती बहुत ही कम हैं। अत स्पष्ट है कि कई लोग वस्तुएँ केवल इसीलिए क्रय करते हैं, कि उनके मन में वस्तुएँ खरीदने की लालसा होती है। वे वस्तुओं को आवश्यकता के कारण नहीं खरीदते हैं। सिक्के, टिकट, कलात्मक वस्तुएँ आदि तो प्राय केवल सग्रह करने की इच्छा मात्र से ही खरीदी जाती हैं।

5 कौतूहल या जिज्ञासा (Curiosity)—कई लोग कई वस्तुएँ कौतूहल या जिज्ञासावश खरीदते है। वे नई वस्तुओं का अनुभव प्राप्त करना चाहते हैं। यदि बाजार मे कोई नई तरह का पेन आता है तो कई छात्र तत्काल खरीद लेते है तथा यह जानना चाहते है, कि इसमे क्या विशेष बात है। इसी प्रकार नई डिजाइन के कपडे सबसे पहले खरीदने, पहले दिन सिनेमाघर का टिकट खरीदने की भी कई लोगो की जिज्ञासा रहती है। प्राय औरतें नई डिजाइन की साडियो, जवाहरात, चूडियाँ सबसे पहले खरीद कर अपनी इच्छा की पूर्ति करती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कुछ लोग वस्तु को प्राप्त करने की जिज्ञासा रखते है। जब लोगो मे किसी वस्तु के प्रति जिज्ञासा नही होती है, तो वे वस्तुएँ तीव्रता से नही खरीद पाते है। अत कभी कभी विक्रयकर्ताओ को स्वय को ग्राहक मे कौतूहल या जिज्ञासा पैदा करनी पडती है।

6 भोग विलास तथा रोमान्स (Sex and Romance)—भोग विलास तथा रोमान्स की इच्छा कई वस्तुओं के क्रय की प्रेरणा देती है। पाउडर, क्रीम, अच्छे कपडे, बालो की सुन्दर कटाइ, छटाई नाच गान तथा सिनेमाघरो मे टिकटो को लोग इस इच्छा के कारण ही खरीदते है। युवा पीढी फैशन के अनुसार नई नई वस्तुओ को इसी प्रेरणा से प्रेरित होकर खरीदते है। आजकल की फिल्मी पत्र पत्रिकाएँ चल चित्र आदि इस प्रकार की इच्छाओ को अधिकाधिक रूप से बढाने म योगदान दे रही ह।

अधेड एव वृद्ध लोग भी इस इच्छा से प्रेरित होकर कई वस्तुएँ क्रय करते है। वे भी अपने बालो को सफद होने से बचाने के लिए प्रयत्न करते है या सफेद बालो को काला बनाने के लिए कई दवाओ का प्रयोग करते है। औरते भी अपने आपको कभी वृद्धि नही होने देने का प्रयास करती है। कई वृद्ध लोग आज भी अपनी इच्छा को पूरा करन के लिए अपनी अस्सी वर्षीय पत्नी की शादी की वर्षगाठ पर भेट देना नही भूलते हे। इस प्रकार स्पष्ट है कि भोग विलास तथा रोमान्स लोगो को वस्तुए क्रय करने के लिए अत्यधिक रूप से प्रेरित करते हैं। इसीलिए आज के अधिकाश विज्ञापनो मे इस प्रेरणा पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

7. प्रेम या स्नेह (Love and Affection)—कई वस्तुएँ प्रेम एव स्नेह के कारण भी खरीदी जाती है। दो मित्र आपसी स्नेह के कारण एक दूसरे को वस्तुएँ भेंट देने के लिए खरीदते है। स्वाभाविक स्नेह के कारण माता पिता अपने बच्चो के लिए मित्रो के बच्चो के लिए, बडे भाई-बहिन, छोटे भाई बहिनो के लिए वस्तुएँ खरीद सकते हैं। एसी वस्तुएँ प्राय जन्म दिन पर भेट देने परीक्षा मे उत्तीर्ण होने या शादी विवाह के अवसरो पर विशेष रूप से खरीदी जाती है।

8 आदत (Habit)—कुछ लोगो की कुछ आदतें बन जाती है। अत एसे लोगो को आदत से मजबूर होकर वस्तुएँ खरीदनी पडती है। कुछ लोगो को शराब

पीने, पान खाने, भाँग खाने-पीने, सिगरेट पीने की आदत पड जाती है। उन्हें इन वस्तुओ को खरीदना पडता है।

9. लाभ या मितव्ययता (Gain or Economy)—महत्त्वपूर्ण क्रय प्रेरणाओ मे से एक महत्त्वपूर्ण प्रेरणा यह भी है, कि विश्व मे सभी लोग धन को बचाना चाहते हैं या लाभ प्राप्त करना चाहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति वस्तु क्रय के पहले भावो की पूछताछ करता है। वह चाहता है कि उसको कम से कम कीमत पर अधिकाधिक अच्छा माल मिल जाय तथा वह बचे हुए धन से अन्य वस्तुएँ खरीद सके तथा अपने जीवन-स्तर में सुधार कर सके।

कई बार विज्ञापनो मे इन नारो का उल्लेख होता है कि 'कीमत घट गई', 'पहले की अपेक्षा सस्ता', 'इकोनोमी पेक' 'दो के साथ एक मुफ्त, आदि-आदि। इन सबके पीछे एक ही भावना होती है, कि व्यक्ति उन वस्तुओ को खरीदना चाहता है जिनसे कुछ लाभ या मितव्ययता प्राप्त हो सके। क्रय की यह प्रेरणा, प्राय मध्यम एव निम्न आय वर्ग के लोगो मे अधिक पाई जाती है। इसी प्रकार व्यापारियो म भी इसी प्रकार की क्रय प्रेरणा पाई जाती है क्योंकि उनके अधिकाश ग्राहक इसी प्रेरणा से प्ररित होकर माल का क्रय करते हैं।

10 स्वास्थ्य (Health)—रसेल (Russal) ने उचित ही लिखा है कि "मनुष्य में यह इच्छा जन्मजात होती है कि वह जितना जीवित रह सकता है, जीवित रह सके।" इसीलिए प्रत्येक व्यक्ति अपने आपको स्वस्थ रखना चाहता है। युवावस्था मे लोग प्राय अपने स्वास्थ्य पर बहुत कम ध्यान देते हैं। ये मरने एव बीमार होने के बारे मे कभी सोचते भी नही हैं। जो भी वस्तु उन्हें मिलती हैं, वे उसे उपयोग में ले लेते हैं तथा जैसा भी वातावरण हो, उसे सहन कर लेते है। युवको के लिए कहावत है कि 'लकड पत्थर सब हजम'। वास्तव मे, वे किसी प्रकार की चिन्ता नही करते हैं। किन्तु यह उम्र जल्दी ही ढल जाती है और अधेड उम्र मे व्यक्ति को कई बीमारियों का शिकार बनना पड जाता है। अत प्रत्येक माता पिता अपने बच्चों के स्वास्थ्य पर स्वय निगरानी रखते हैं। वे उन्हे सतुलित भोजन देते हैं तथा आराम करने की समय-समय पर सलाह देते हैं। वे उन्ही वस्तुओ का क्रय करते हैं। जिनसे उनके बच्चो एव उनका स्वास्थ्य अच्छा रह सके। कई टॉनिक तथा खाद्य एव पेय पदार्थों पर इसीलिए स्वास्थ्य सम्बन्धित कई बातें लिखी रहती है। विक्रयकर्त्ता भी इस प्रेरणा से ग्राहको को क्रय के लिए प्रेरित कर सकते हैं।

11. निर्माण करने की इच्छा (Urge to Create)—कई लोगो के मन में किसी न किसी निर्माण कार्य या उत्पत्ति कार्य को करने की इच्छा होती है। कई लडके रेल, हवाई जहाज, रॉकेट, जैसे खिलौने बनाते हैं। लडकियाँ कसीदा तथा कढाई कार्य करती है, औरतें घर मे तरह-तरह की खाद्य सामग्री तैयार करती है तथा घर को विभिन्न तरीको से सजाती हैं। कई लोग कविताएँ, लेख, पुस्तकें लिखते हैं, कई लोग कार्य करने की नवीनतम विधियो की खोज करते हैं। इन सब कार्यों के

लिए भी कई वस्तुओं को खरीदना पड़ता है। अत निर्माण की इच्छा भी क्रय प्रेरणा का कार्य करती है।

12 भय या सावधानी (Fear or caution)—कभी कभी व्यक्ति भय या सावधानी से प्रेरित होकर भी वस्तुएँ खरीदते है। स्वास्थ्य के खराब होने के भय से हम दवा लेते है। इस प्रकार हम जीवन बीमा पालिसी का क्रय करके अपने आश्रितो के प्रति सावधानी बरतते है। स्कूटर या मोटर साईकिल के चलाने वाले सिर का कवच (Helmet) दुघटना से सावधान रहने के कारण ही खरीदते है। इसी प्रकार लोग वर्षा होने से पहले ही छाता या बरसाती कोट खरीद लेते है सर्दी होने से पहले ही गर्म कपडे बनवाते है। ये सब भय या सावधानी के कारण खरीदे जाते हैं।

कभी कभी लोग वस्तुओ के न मिलने के भय के कारण भी वस्तुएँ खरीद कर रख लेते है। कई बार विक्रयकर्ता स्वय वस्तुओ के समाप्त होने का भय दिखाते हैं। इससे प्रेरित होकर भी वस्तुओ का क्रय कर लेते है।

II विवेक प्रधान क्रय प्रेरणाएँ
(Rational Buying Motives)

जब कोई व्यक्ति किसी वस्तु का क्रय उस वस्तु के लाभ एव दोषो का पारिस्परिक अध्ययन करके खरीदता है तो उसे विवेक प्रधान प्रेरणाओ पर आधारित क्रय कहते हैं। ऐसी वस्तुओ का क्रय उनके मूल्य प्रयोग मे लेने की लागत, टिकाऊपन मरम्मत तथा ऐसी ही अन्य बातो को ध्यान से रखकर किया जाता है। ऐसी वस्तुओ के क्रय करते समय उस वस्तु की आवश्यकता को भी ध्यान मे रखा जाता है।

चूँकि मनुष्य एक आर्थिक प्राणी है। अत अपने द्वारा किये जाने वाले व्यय को वस्तु के सन्दर्भ मे तोलता है। अत वस्तु के क्रय मे भी प्राय विवेक प्रधान प्रेरणाएँ कार्य करती रहती है। प्रत्येक व्यक्ति एक वस्तु के अनेक विकल्पो मे से उस विकल्प का चुनाव करता है। जिससे उसे सर्वाधिक सन्तुष्टि मिलती है। किन्तु कभी कभी वह ऐसा नही कर पाता है और अधिक धन खर्च करने के बाद भी उनकी अधिक सन्तुष्टि प्राप्त नहीं कर पाता है। जितना वह अधिक धन खर्च करने पर सतुष्टि प्राप्त करने की आशा रखता है—

विवेक प्रधान क्रय निम्नलिखित बातो से प्रेरित होते हैं—

1 क्रय की जाने वाली वस्तु की आवश्यकता होती है।

2 वस्तु के क्रय करने से आत्म निर्भरता प्राप्त हो सकती है।

3 वस्तु के क्रय से मितव्ययता प्राप्त होती है।

4 वस्तु के क्रय से अधिकाधिक सुविधा प्राप्त होती है।

5 क्रय की जाने वाली वस्तु अन्य वस्तुओ की तुलना मे अधिक टिकाऊ होती है।

III. संरक्षण प्रधान क्रय प्रेरणाएं
(Patronage Buying Motives)

जब कोई व्यक्ति किसी व्यवसायी विशेष के यहा से ही माल खरीदना पसद करता है, तो हम उसे सरक्षण प्रधान क्रय प्रेरणाओं से प्रेरित क्रय कहते हैं। कई बार देखा जाता है कि लोग एक ही दुकान से वर्षों तक अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ खरीदते रहते हैं। कई बार आवश्यकता की वस्तुएँ यदि उस विशेष दुकान पर किसी समय उपलब्ध नही होती हैं, तो ग्राहक वस्तु के उपलब्ध अपने क्रय को स्थगित भी कर देते हैं। ऐसा संरक्षण प्रधान क्रय प्रेरणा के कारण ही होता है। सरक्षण प्रधान क्रय प्रेरणा निम्न कारणो से उत्पन्न होती है—

1. दुकान की स्थिति—कई बार लोग एक दुकान से विशेष रूप से वस्तुएँ इसीलिए खरीदते है, कि उस दुकान की स्थिति ही ऐसी होती है। सामान्यतः कोने की दुकानो की स्थिति ऐसी ही होती है। कभी-कभी दुकान बस्ती के निकट होने के कारण भी लोग उसी दुकान से माल खरीद लेते हैं। प्रायः लोग उस दुकान से माल खरीदना पसन्द करते हैं, जहाँ पर आसानी से तथा शीघ्रतापूर्वक पहुँचा जा सके।

2. विभिन्न वस्तुओं की उपलब्धि—कई बार लोग इसलिए भी किसी एक विशेष दुकान से ही वस्तुएँ खरीदते हैं, कि वहाँ पर आवश्यकता की सभी प्रकार की वस्तुएँ उपलब्ध हो जाती है। ग्राहक प्रायः किसी एक वस्तु को खरीदने के लिए बाजार नही जाता है, बल्कि वह अनेक वस्तुएँ खरीदने के लिए जाता है। वह कम से कम समय मे सभी वस्तुएँ खरीदना चाहता है। अतः वह उस दुकान पर ही जाना चाहता है, जहाँ पर उसकी आवश्यकता की सभी वस्तुएँ उपलब्ध हो जायं।

3. दुकान की ख्याति—कई बार लोग ख्याति प्राप्त दुकानो से ही माल खरीदना चाहते है, वे अच्छे होटलो मे ठहरना चाहते है तथा ख्याति प्राप्त रैस्टोरेन्ट मे ही भोजन करना चाहते हैं। ख्याति प्राप्त या प्रतिष्ठित संस्थाओ से माल क्रय करने से व्यक्ति अपने आपको गौरवान्वित अनुभव करता है।

4. विक्रयकर्ता का व्यवहार—कई बार ग्राहक उस दुकान से माल खरीदना बिल्कुल पसन्द नहीं करते हैं, जिसके विक्रयकर्ता का व्यवहार अच्छा नहीं होता है। लोग दूसरो मे प्रतिष्ठा प्राप्त करना चाहते हैं। वे विक्रयकर्ताओ से आदर की अपेक्षा करते हैं। अतः कई ग्राहक विक्रयकर्ता के अच्छे व्यवहार के कारण उसी दुकान से माल खरीदना पसन्द करते हैं।

5. प्रदत्त सुविधाएँ—कुछ लोग किसी एक दुकान से माल इसलिए खरीदना पसन्द करते हैं, कि वह दुकान उन्हे कुछ विशेष सुविधाएँ प्रदान करती है। उदाहरण के लिए उधार की सुविधाएँ, माल को घर पर सुपुर्दगी की सुविधाएँ, माल

वापस लौटाने की सुविधाएँ, मरम्मत की सुविधाएँ आदि आदि। इन सुविधाओं की प्राप्ति की चाह में भी व्यक्ति एक दुकान से ही विशेष में ही माल खरीदना चाहता है।

6. **दुकान की सजावट**—पाश्चात्य देशों में अनुसंधान करके यह पता लगाया गया है कि दुकानों की अच्छी सजावट केवल लोगों को दुकानों के अन्दर प्रवेश करने के लिए ही प्रेरित नहीं करती है, बल्कि बार बार आने को भी प्रेरित करती है। तथा उसी दुकान से वस्तुएँ खरीदने की प्रेरणा देती है।

7 **मूल्य**—कई बार क्रय में मूल्य अत्यधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। यदि किसी ग्राहक के मस्तिष्क में यह धारणा बन जाती है, किसी विशेष दुकान पर वस्तुएँ सस्ती मिलती है, तो वह सदैव उसी दुकान से वस्तुएँ खरीदना चाहेगा।

क्रय प्रेरणाओं का पता लगाना
(Discovering Buying Motives)

विक्रयकर्त्ताओं की कुशलता ग्राहक की क्रय प्रेरणाओं को जानने में निहित है। विक्रयकर्ता जितना जल्दी एवं जितना सतर्कता से क्रय प्रेरणाओं को ज्ञात करेगा उतना ही अधिक सफल होगा। अत विक्रयकर्त्ताओं को ग्राहकों की क्रय प्रेरणाओं को जानने के लिए उचित प्रयास करना चाहिये। सामान्यत निम्नलिखित बातों पर ध्यान देकर एक विक्रयकर्ता आसानी से ग्राहकों की क्रय प्रेरणाओं का पता लगा सकता है—

1 **प्रश्न पूछकर**—विक्रयकर्ता अपने सम्भावित विक्रयकर्त्ताओं से विभिन्न प्रकार के प्रश्न पूछकर उनकी क्रय प्रेरणाओं को जान सकता है।

2 **क्रेता द्वारा स्वत प्रयोजन बताना**—कई बार क्रेता स्वय अपनी ओर से वस्तु के क्रय करने के पूर्व ही वस्तु के खरीदने का उद्देश्य बता देता है। अत विक्रयकर्त्ताओं को क्रय प्रेरणा जानने में किसी प्रकार की कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता है।

3. **दृश्य साधनों का प्रयोग**—कभी कभी क्रेता वस्तु के क्रय के लिए दुकान पर नहीं जाता, बल्कि दुकान पर पहुँचने पर वस्तु के क्रय का विचार हो जाता है। ऐसी स्थिति में क्रय के उद्देश्यों का पता लगाने के लिए विक्रयकर्ता लघु फिल्में या फोटो आदि दिखाते हैं। इनके दिखाने के कारण ग्राहक के मन में उत्पन्न होने वाले विचारों को विक्रयकर्ता अपने मनोविज्ञान के ज्ञान के सहारे पढ़ लेता है और ग्राहक की क्रय प्रेरणाओं का पता लगा लेता है।

4 **ग्राहक को ध्यान से देखना**—ग्राहकों की क्रय प्रेरणाओं का पता लगाने के लिए विक्रयकर्त्ताओं को ग्राहकों को बहुत ही ध्यान से देखना चाहिये। उसे ग्राहकों की वेषभूषा, बातचीत के ढग, शिक्षा के स्तर, आदि को देखकर भी ग्राहक की क्रय प्रेरणाओं का पता लगाया जा सकता है।

5. ग्राहकों के बारे में पूर्व जानकारी—विक्रयकर्त्ताओं को पुराने ग्राहकों की क्रय प्रेरणाएँ ज्ञात करने के लिए उनकी भूतकाल की क्रय प्रेरणाओं को भी ध्यान में रखना चाहिये। भूतकाल की क्रय प्रेरणाओं के आधार पर वर्तमान की क्रय प्रेरणाओं को आसानी से ज्ञात किया जा सकता है तथा वे अधिक सत्यता के साथ ज्ञात की जा सकती है।

अभ्यास के लिए प्रश्न

1 विभिन्न प्रकार की क्रय प्रेरणाओं का वर्णन कीजिये।
   Discuss the different buying motives

2 किसी ग्राहक की क्रय प्रेरणाओं को एक विक्रयकर्त्ता किस प्रकार ज्ञात कर सकता है।
   How can a salesman know the buying motives of a customer

5

ग्राहकों के प्रकार

(Types of Customers)

"If it were possible to diagnose customers as the physician does his cases, selling would be much more effective and less difficult."

B. F. Barker

प्रत्येक दुकान पर आने वाले ग्राहक भिन्न उद्देश्यों से आते है, भिन्न-भिन्न प्रकृति के होते हैं। इतना ही नही, ग्राहक भिन्न-भिन्न आयु, निवास स्थान, लिग के होते है। प्रत्येक प्रकार के ग्राहको का विस्तार से अध्ययन करना बहुत ही कठिन कार्य है। किन्तु, हमने इस अध्याय में ग्राहकों का विभिन्न प्रकार से वर्गीकरण करने का प्रयास किया है तथा उनका सक्षिप्त वर्णन भी किया है।

ग्राहकों का वर्गीकरण
(Classification of Customers)

इस अध्याय मे ग्राहकों का वर्गीकरण निम्न आधारो पर किया गया है :—

I. क्रय करने के उद्देश्यो के आधार पर
II. वैयक्तिक विशेषताओ के आधार पर
III. लिंग के आधार पर
IV. आयु के आधार पर
V. सैद्धान्तिक आधार पर
VI निवास स्थान के आधार पर

I. क्रय करने के उद्देश्यों के आधार पर वर्गीकरण
(Classification of the basis of Buying Objectives)

व्यावसायिक जगत मे ग्राहको को वर्गीकृत करने का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आधार क्रय करने के उद्देश्यो का आधार है। क्रय करने के उद्देश्यो के आधार पर ग्राहक तीन प्रकार के होते हैं (1) उपभोक्ता ग्राहक, (2) व्यापारिक तथा (3) औद्योगिक ग्राहक।

1. उपभोक्ता ग्राहक (Consumer Buyers)—उपभोक्ता ग्राहक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ग्राहक माने जाते हैं। इनकी संख्या भी सर्वाधिक होती है। प्रत्येक व्यक्ति को निजी उपभोग के लिए कई वस्तुएँ प्रतिदिन खरीदनी ही पडती हैं। अतः प्रत्येक व्यक्ति को उपभोक्ता ग्राहक कहा जाय, तो भी कोई अनुचित नही होगा।

उपभोक्ता ग्राहक स्त्री-पुरुष, युवा, वृद्ध, बालक किसी भी प्रकार का हो सकता है। इन ग्राहकों की प्रकृति दिन प्रतिदिन बदलती जा रही है।

प्रत्येक निर्माता एवं व्यापारी के लिए यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात है। निर्माता को ऐसी वस्तुओं का निर्माण करना चाहिये, जिनसे इन ग्राहकों की आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके। प्रत्येक निर्माता को इन ग्राहकों की आवश्यकता को समझ कर ही माल का निर्माण करना चाहिये। इस हेतु निर्माताओं को समय-समय पर बाजार अनुसंधान करना चाहिये तथा फुटकर तथा थोक व्यापारियों से सम्पर्क बनाये रखना चाहिये।

प्रत्येक फुटकर व्यापारी को इन ग्राहकों को खुश रखने का प्रयास करना चाहिये। इनकी आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर ही माल का स्टॉक करना चाहिये। उपभोक्ता ग्राहकों की क्रय प्रेरणाओं का प्रत्येक फुटकर विक्रयकर्त्ता को ज्ञान होना चाहिये। इनकी सन्तुष्टि पर ही समस्त उद्योग की समृद्धि निर्भर करती है।

2. व्यापारिक ग्राहक (Merchant Buyers)—व्यापारिक ग्राहक वे ग्राहक होते हैं, जो माल का क्रय पुनः विक्रय करने के उद्देश्य से करते हैं। ये ग्राहक माल के रूप में कोई परिवर्तन नही करते हैं, किन्तु ये माल को सामान्यतः छोटी छोटी मात्राओं में अलग-अलग करके विक्रय करते हैं।

व्यापारिक ग्राहक मुख्य रूप से दो प्रकार के होते हैं (i) थोक व्यापारी तथा, (ii) फुटकर व्यापारी। ये दोनों माल को उत्पादक या निर्माता से अन्तिम उपभोक्ता तक पहुँचाने में महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं। कई बार कई लोगों द्वारा ऐसे ग्राहकों की कटु आलोचनाएँ की जाती हैं, फिर भी ऐसे ग्राहकों का अपना महत्त्व है। ये ग्राहक अपनी सेवाओं से निर्माताओं उत्पादकों तथा अन्तिम उपभोक्ताओं दोनों को लाभान्वित करते हैं।

फुटकर व्यापारी भी कई प्रकार के हो सकते हैं यथा, विभागीय भण्डार, सुपर बाजार, शृंखला भण्डार, डाक द्वारा व्यापार करने वाले व्यापारी आदि आदि। *इन सबका अपना अपना महत्त्व है। ये सभी थोक व्यापारियों निर्माताओं के* महत्त्वपूर्ण ग्राहक हैं।

3 औद्योगिक ग्राहक (Industrial Customers)—औद्योगिक ग्राहकों को ठीक प्रकार से समझने के लिए, हम इन्हें तीन भागों में बाँट सकते हैं (i) निर्माता (Manufacturers)—ये वे ग्राहक होते हैं, जो दूसरों से माल का क्रय किसी अन्य माल के निर्माण में प्रयोग करने के उद्देश्य से करते हैं। उदाहरणार्थ, सूत कातने वाली मिल से कपड़ा मिल सूत खरीदती है, तो सूत कातने वाली मिल के लिए

कपडा मिल निर्माता ग्राहक है। (ii) सेवा सगठन (Service Organisations)—ये वे ग्राहक होते हैं, जो दूसरे व्यापारियो से माल अपनी व्यावसायिक क्रियाओ का पूरा करने के उद्देश्य से खरीदते है। उदाहरणार्थ, एक रेस्टोरेन्ट मे चीनी खरीदी जाती है। यह चीनी चाय तथा मिठाइयाँ बनाने के काम मे आती है, जिनका विक्रय किया जाता है। ऐसे ग्राहक सेवा संगठन ग्राहक कहलाते है। (iii) औद्योगिक वितरक (Industrial Distributors)—एसे ग्राहक निर्माताओ से माल खरीदते है और दूसरे औद्योगिक उपभोक्ताओ को माल का विक्रय कर देते है। इनको हम औद्योगिक थोक व्यापारी कहे, तो भी अतिशयोक्ति नही होगी।

II वैयक्तिक विशेषताओ के आधार पर वर्गीकरण
(Clssification on the basis of Individual Charecteristics)

व्यक्ति-व्यक्ति से बहुत भिन्न होता है। इसीलिए समाज मे सज्जन दुर्जन *प्रिय झगडालू तर्कवादी भोले भाले कई प्रकार के लोग पाये जाते है।* इसी आधार पर दुकान पर आने वाले ग्राहको को भी वर्गीकृत किया जा सकता है। सामान्यत फुटकर व्यापारियो को इस प्रकार के वर्गीकरण की आवश्यकता सबसे अधिक पडती है।

अत विक्रयकर्त्ता को सफलता प्राप्त करने के लिये अपने ग्राहक के व्यवहार को भली प्रकार समझ लेना चाहिये, जिससे वह उनके साथ वैसा ही व्यवहार कर सके। एक विद्वान लेखक ने ग्राहको के स्वभाव एव वाछनीय व्यवहार की एक सूची तैयार की है जो निम्न प्रकार है —

1 धैर्यहीन ग्राहक (Nervous Customers)

ग्राहक का स्वभाव	वांछनीय व्यवहार
थका, मादा और सहमा हुआ	धैर्य
उपद्रव एव धैर्यहीन	परामर्श
उत्तेजित	शात स्वभाव
अधीर	भेजना
युक्तिहीन	शाति

2 *निर्भर ग्राहक (Dependent Customers)*

ग्राहक का स्वभाव	वाछनीय व्यवहार
डरपोक एव कोमल हृदय	सज्जनता
अनिश्चित	निर्णय
बूढे एव पुराने विचारो के व्यक्ति	सहानुभूति
बच्चे	सोचने की शक्ति
विदेशी	सहायता

3. प्रयत्नशील ग्राहक (Trying Customers)

ग्राहक का स्वभाव	वांछनीय व्यवहार
आलोचक	वस्तुओं का ज्ञान
तटस्थ	युक्तिपूर्वक
शांत	धैर्य
मोल-भाव करने वाले	विश्वास

4 सहमत न होने वाले ग्राहक (Disaggreeable Customers)

ग्राहक का स्वभाव	वाछनीय व्यवहार
सदेह करने वाले	निष्पक्ष विचार
जिज्ञासु	ज्ञान
बातूनी	सक्षिप्त वार्तालाप
अपमान करने वाले	आत्म नियन्त्रण

5. सहज बुद्धि वाले ग्राहक (Common-sense Customers)

ग्राहक का स्वभाव	वाछनीय व्यवहार
आमोदप्रिय	आशानुकूल
बुद्धिमान	अच्छी सेवा

प्रत्येक विक्रयकर्त्ता को उपर्युक्त दिये गये, वर्गीकरण के अनुसार ग्राहकों के साथ वाछनीय व्यवहार करना चाहिये, जिससे ग्राहक को सतुष्ट किया जा सके।

इस वर्गीकरण के अलावा हम नीचे विस्तार से ग्राहकों का उनके स्वभाव के अनुसार वर्गीकरण कर रहे हैं—

1. धैर्यहीन ग्राहक (Nervous Customers)—धैर्यहीन ग्राहक प्रायः विक्रयकर्त्ताओं के पास आते ही रहते हैं। ऐसे ग्राहकों को पहचानना कठिन नहीं होता है। ऐसे ग्राहक प्राय. व्यवहार में असतोष प्रकट करते हैं। ऐसे ग्राहक प्रायः विक्रयकर्त्ता की कम सुनते है तथा अपनी ही बात को कहने एव सुनाने का प्रयास करते हैं। यदि विक्रयकर्त्ता इनकी बात पर थोडा सा भी ध्यान नही देता है, तो ये अपना धैर्य बिल्कुल ही खो देते हैं। ऐसे ग्राहक प्राय· उपद्रवी प्रकृति के होते हैं। किन्तु कभी-कभी ऐसे ग्राहक थके हुए, सहमे हुए भी हो सकते हैं।

धैर्यहीन ग्राहकों से विक्रयकर्त्ताओं को ज्यादा बातचीत नहीं करनी चाहिये तथा उन्हे अनावश्यक सुझाव भी नहीं देने चाहिये। ऐसे ग्राहकों को तुरन्त वस्तु देकर विदा करने का प्रयास करना चाहिये। ऐसे ग्राहकों को वे वस्तुएँ नहीं दिखानी चाहिये, जो उनके वर्तमान उद्देश्य को पूरा नहीं करती हैं। थके हुए ग्राहकों के सामने भी अधिक नहीं बोलना चाहिये अन्यथा उनके चिडचिडाने का भय है। सक्षेप मे, ऐसे ग्राहकों के साथ विक्रयकर्त्ताओं को धैर्य एव शाति के साथ व्यवहार करना

चाहिये। उन्हें अपनी वाणी से अत्यन्त मधुर स्वरों में बोलना चाहिये तथा पर्याप्त सतर्कता एवं कुशलता से शीघ्रातिशीघ्र उनकी बात सुननी चाहिये।

2. सावधान या सतर्क ग्राहक (Deleberate Customers)—ऐसा ग्राहक प्राय. जल्दी बाजी नहीं करते है, शान्त प्रकृति के होते हैं तथा वस्तुओं के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त करने के शौकीन होते है। ऐसे ग्राहक वस्तुओं के गुणों, मूल्यों आदि को तुलनात्मक रूप से देखते हैं तथा इनके द्वारा किया गया क्रय विवेक प्रधान होता है।

विक्रयकर्त्ताओं को ऐसे ग्राहकों से व्यवहार करते, समय पर्याप्त सतर्क रहना चाहिये। उन्हें वस्तुओं के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी होनी चाहिये तथा ग्राहकों को वस्तुओं के सम्बन्ध में सही-सही जानकारी देनी चाहिये। विक्रयकर्त्ताओं को ऐसे ग्राहकों को पर्याप्त समय देना चाहिये तथा वस्तुओं के गुणों प्रभावों आदि को भी बताना चाहिये। वस्तु के प्रत्येक गुणों के बारे में ऐसे ग्राहकों को विश्वास दिलाया जाना चाहिए। संक्षेप में, ऐसे ग्राहकों के साथ व्यवहार करते, समय पूर्ण धैर्य एवं युक्ति का प्रयोग करना चाहिये।

3. निश्चित ग्राहक (Decided Customers)—ऐसे ग्राहकों को विक्रयकर्त्ता आसानी से पहचान सकते हैं। ऐसे ग्राहक क्रय का निश्चय करने के बाद ही दुकान मे प्रवेश करते हैं। इन ग्राहकों से व्यवहार करने मे विक्रयकर्त्ता को अधिक समय नहीं देना पड़ता है। ऐसे ग्राहकों के विचारों को बदलना कठिन होता है। अत विक्रयकर्त्ताओं को ऐसे ग्राहकों से बहुत कम बात करनी चाहिये।

कभी कभी ऐसे ग्राहकों द्वारा मांगी गई, वस्तु के समान ही अन्य वस्तु, जिसे स्थानापन्न रूप में प्रयोग की जा सकती है, दुकान मे उपलब्ध होती है। ऐसी स्थिति मे विक्रयकर्त्ता को उसे इन स्थानापन्न वस्तु के क्रय का सुझाव देना चाहिये। किन्तु ऐसा करने मे विक्रयकर्त्ता को पर्याप्त सावधानी बरतनी चाहिये। विक्रयकर्त्ता को कभी भी ग्राहक द्वारा मांगी गई, वस्तु की बुराई नहीं करनी चाहिये। विक्रयकर्त्ता को ग्राहक के विचारो से सहमति व्यक्त करते हुए, अपने पास उपलब्ध वस्तु के गुणों से ग्राहक को अवगत करवाना चाहिये। गुणों के आधार पर ही स्थानापन्न वस्तु के क्रय के लिए प्रेरित करना चाहिये। ग्राहक द्वारा मांगी गई, वस्तु के अवगुण बताकर ग्राहक को प्रभावित करना सम्भव नहीं है।

4. अनिश्चित ग्राहक (Undecided Customers)—कुछ ग्राहक वस्तुओं के क्रय का निर्णय करने में कठिनाई अनुभव करते हैं। ऐसा प्राय. संकोचशील आदतों तथा आत्म-विश्वास के अभाव के कारण होता है। विक्रयकर्त्ताओं को ऐसे ग्राहकों के साथ व्यवहार करते समय विवेक का प्रयोग करना चाहिये। ऐसे ग्राहकों को कई प्रकार की अलग-अलग ब्रांड की वस्तुएं दिखानी चाहिये। किन्तु ग्राहक के सामने से तत्काल उन वस्तुओं को हटा देनी चाहिये, जिन्हें वह बिल्कुल पसन्द नहीं करता है। इससे क्रय की जाने वाली वस्तु का निर्णय करने में बहुत सुविधा

मिलेगी। क्योंकि ग्राहको को कुछ वस्तुओं मे से ही छाँटने का निर्णय करना पडेगा।

5. बातूनी ग्राहक (Talkative Customers)—कुछ लोग बातूनी आदतों के लिए प्रसिद्ध होते हैं। वे घण्टो गप लगाते रहते हैं और बातें समाप्त करने का नाम ही नही लेते हैं। ऐसे व्यक्ति विक्रयकर्त्ता के पास वस्तुएँ खरीदने पहुँच जाते हैं, तो उनके सामने भी समस्या खडी हो जाती है। ऐसे समय पर विक्रयकर्ताओं को बडी ही सूझबूझ से काम लेना चाहिये। उसे ग्राहक को बोलने से नही रोकना चाहिये, बल्कि उसे ग्राहक द्वारा माँगी गई, वस्तुएँ दिखा देनी चाहिये तथा अधिक बोलने के लिए प्रोत्साहित भी नहीं करना चाहिये। विक्रयकर्ता को वस्तु से सम्बन्धित बात करने पर ध्यान देना चाहिये, यदि ग्राहक अनावश्यक बात करता है, तो उसे मूल बात पर लाने का प्रयास करना चाहिय।

6 शान्त ग्राहक (Silent Customers)—दुकान पर कई ग्राहक ऐसे भी आते है, जो बहुत कम बोलते हैं। वे शांतिपूर्वक दुकान पर आते है और अपनी आवश्यकता की वस्तु के बारे मे पर्याप्त रूप से नही बता पाते हैं। ग्राहक के शान्त होने के कई कारण हो सकते हैं। कुछ ग्राहक डरपोक होने के कारण नही बोलते हैं, तो कुछ शर्मीले होने के कारण। ऐसे ग्राहकों के मन की बात को ज्ञात करना बहुत कठिन कार्य है, किन्तु कई कुशल विक्रयकर्ता शीघ्र ही आसानी से ऐसे ग्राहकों की मन की चिट्ठी को पढ लेते हैं।

विक्रयकर्ताओं को इस सम्बन्ध मे पूर्णत मनोविज्ञान पर निर्भर रहना पडता है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी पसन्द की वस्तु को देखते ही प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। अत विक्रयकर्त्ता को कई वस्तुएँ दिखानी चाहिये तथा उनकी भावनाओं को ज्ञात करना चाहिये। इसी प्रकार ऐसे ग्राहको को किसी न किसी अन्य प्रकार से भी बोलने के लिये उकसाना चाहिये। ऐसे ग्राहकों से मित्रवत व्यवहार करके भी उनकी चुप्पी को तोडी जा सकती है।

7. शकाशील ग्राहक (Suspicious Customers)—कई ग्राहक शकाशील होते हैं। उनके मन मे सदैव सदेह भरा रहता है। ऐसे ग्राहकों मे प्राय आत्म-विश्वास की कमी होती है तथा स्वय मे निर्णय करने की क्षमता का अभाव होता है। ऐसे ग्राहक विक्रयकर्त्ता की ईमानदारी पर शका करते हैं और वस्तु के गुणों पर भी विश्वास नही करते हैं। परिणामस्वरूप इन्हें माल बेचना विक्रयकर्ता के लिए बहुत बडी समस्या होती है। ऐसे ग्राहको से व्यवहार करते समय विक्रयकर्त्ताओं को वस्तुओं के सम्बन्ध में पर्याप्त प्रमाण प्रस्तुत करने चाहिये। वस्तु के सम्बन्ध मे गारन्टी प्रदान करके, मरम्मत की सुविधा प्रदान करके भी ग्राहको मे विश्वास उत्पन्न किया जा सकता है।

8 अल्पव्ययी ग्राहक (Economical Customers)—कुछ ग्राहक अल्पव्यय करने मे विश्वास रखते हैं। वे बहुत सी वस्तुओं के बारे में पूछकर कुछेक वस्तुएँ ही

खरीदकर धन बचा लेते हैं। किन्तु कभी कभी यह बचत बुरी होती है। ऐसे लोग धन बचाने के चक्कर मे बार बार दुकानो के चक्कर लगाते हैं और बार-बार थोडी-थोडी मात्रा मे वस्तुओ का क्रय करते हैं। इससे अन्ततोगत्वा उन्हे वस्तुएँ मँहगी पडती हैं।

जो ग्राहक कम कम मात्रा मे वस्तुएँ खरीदते हैं तथा बार-बार क्रय करने के आदी होते है, ऐसे ग्राहको को विशेष छूट दी जा सकती है। इस विशेष छूट के प्रलोभन से उन्हे एक ही बार मे अधिक मात्रा मे वस्तु खरीदने को प्रोत्साहित किया जा सकता है।

9 तर्कशील ग्राहक (Argumentative Customers)—तर्कशील ग्राहक बहुत ही आक्रामक प्रकृति के होते हैं। ये कभी-कभी हठधर्मी भी होते है, जो केवल अपनी बात को मनवाने का येनकेन प्रकारेण प्रयास करते रहते हैं। ऐसे ग्राहक वस्तुओ के दोषो को ढूँढकर विक्रयकर्त्ता को बताते हैं और अपनी बुद्धिमानी का परिचय देने की कोशिश करते हैं। ऐसे ग्राहक भावावेश मे अधिक बोलते हैं, शीघ्र ही मानसिक सतुलन खो देते हैं तथा कई असगत बातें भी बोल देते हैं।

ऐसे ग्राहक से व्यवहार करते समय विक्रयकर्त्ता को अपनी ओर से बहुत कम बोलना चाहिये। जिन प्रश्नो का उत्तर देना आवश्यक हो उनका संक्षेप मे उत्तर दे देना चाहिये। अन्य ग्राहको की तुलना मे ऐसे ग्राहको को शीघ्रातिशीघ्र निपटाकर भेजने की कोशिश करनी चाहिये। वस्तु के माँगते ही तत्काल प्रस्तुत कर देनी चाहिये। ऐसे ग्राहको से वार्तालाप करते समय विक्रयकर्त्ता को अपने आप पर पूर्ण नियन्त्रण रखना चाहिये तथा ग्राहक की प्रत्येक कड़वी बात का मीठी वातों से उत्तर देना चाहिये। विक्रयकर्त्ता को कोई तर्क नही करना चाहिये।

10 शर्मीले या लज्जाशील ग्राहक (Shy Customers)—शर्मीले ग्राहक वे होते हैं जो वस्तुएँ खरीदने मे शर्मीलापन या लज्जा अनुभव करते हैं। ऐसे ग्राहक दुकान मे प्रविष्ट होने मे भी सकोच का अनुभव करते हैं। वे दुकान मे प्रविष्ट होने के बाद भी अपनी आवश्यकता की वस्तु का स्पष्ट रूप से नाम बताने मे भी सकोच का अनुभव करते हैं।

विक्रयकर्त्ताओ को ऐसे ग्राहको की आवश्यकता का पता लगाने के लिए उनसे तरह तरह के प्रश्न पूछने चाहिये। इन प्रश्नो का उत्तर सम्भवत उसे हाँ या न या सिर हिलाने के आधार पर मिले, किन्तु विक्रयकर्त्ता को धैर्यपूर्वक इनको समझना चाहिये। चूकि ऐसे ग्राहको मे प्राय निर्णय शक्ति का अभाव होता है। अत विक्रयकर्त्ताओ को ऐसे ग्राहको की मदद कर देनी चाहिये। ऐसे गम्भीर रह र ही बात करनी चाहिये। ऐसे ग्राहको के शर्मीलेपन का किसी भी विक्रयकर्त्ता को अनावश्यक लाभ उठाने की कोशिश नही करनी चाहिये।

11 घमडी ग्राहक (Haughty Customers)—कुछ ग्राहक बहुत अधिक घमण्डी होते हैं। वे अपने आपको बहुत बडा समझते हैं। घमण्डी होने के पीछे कई

कारण हो सकते है । यथा रूपवती या रूपवान होना, धन-दौलत अधिक का होना या ऊँचे पद पर होना या ऊँचे पद तक पहुँच होना आदि-आदि । ये ग्राहक विशिष्ट आदर एव सत्कार की विक्रयकर्त्ता से अपेक्षा करते है । ऐसे ग्राहक अन्य ग्राहको से पहले वस्तुएँ प्राप्त करके जाने की भी इच्छा रखते है । ऐसे ग्राहक प्राय अपने सामने खडे अन्य ग्राहको को हेय या निम्न कोटि के समझते हैं ।

विक्रयकर्त्ताओ को ऐसे ग्राहको से व्यवहार करते समय बहुत विनम्र बनना पडता है । विक्रयकर्त्ताओ को मृदु भाषा मे ग्राहको को यथोचित आदर देते हुए मांगी गई वस्तु दे देनी चाहिये । ऐसे ग्राहक प्राय उच्च किस्म तथा आधुनिक वस्तुएँ ही पसन्द करते हैं । अत उन्हे ऐसी ही वस्तुएँ दिखानी चाहिये ।

12 शारीरिक दृष्टि से असहाय ग्राहक (Handicapped Customers)—कुछ ग्राहक शारीरिक दृष्टि मे असहाय होते हैं । जैसे लूले, लगडे ग्राहक, बहरे-गू गे ग्राहक नेत्रहीन आदि । ऐसे ग्राहक उनकी ऐसी स्थिति के कारण बाजार मे विभिन्न स्थानो पर जाकर वस्तुओ को देखने एव मोल भाव करने मे असमर्थ होते हैं । इसके अतिरिक्त ऐसे ग्राहक प्राय बहुत कम बोलते हैं तथा वे प्राय स्वय को दूसरो से नीचा भी समझते हैं ।

विक्रयकर्त्ता को ऐसे ग्राहको के प्रति पर्याप्त सहानुभूति दिखानी चाहिये । उन्हें उचित वस्तु तत्काल उपलब्ध करनी चाहिये । कभी कभी जो वस्तुएँ उपलब्ध नही हो उन्हे बाजार से मगवाकर ऐसे ग्राहको को उपलब्ध कर देनी चाहिये । गू गे ग्राहक बोल नही पाते हैं । अत उनकी भावनाओ को समझना चाहिये । बहरे ग्राहक सुन नही पाते हैं । अत उन्हे इशारो से समझाना चाहिये । नेत्रहीन ग्राहक देख नही पाते हैं । अत उन्हे वस्तु का वर्णन करके, वस्तु के बारे मे बताना चाहिये । कहने का तात्पर्य यह है कि इस प्रकार के असहाय ग्राहको को प्रत्येक प्रकार से सहायता देनी चाहिये ताकि वे भी अपने धन से उचित वस्तु का क्रय कर सकें ।

13 अभद्र ग्राहक (Ill mannered Customers)—कभी कभी अभद्र ग्राहको से दुकान पर विक्रयकर्त्ताओ का सामना करना पड जाता है । अभद्र ग्राहक प्राय जोर जोर से बोलते हैं, चीखते हैं चिल्लाते हैं । ये प्राय छोटी सी बात का बतगड बना लेते हैं । ऐसे ग्राहक वस्तु की छोटी छोटी कमियो को बताने मे कुशल होते हैं । ये प्राय गुस्से मे आकर वस्तुओ को नुकसान पहुँचाने से भी नही चूकते हैं । ये प्राय चुभती हुई भाषा मे बात करते हैं । ताकि विक्रयकर्त्ता भी इसी प्रकार लडने पर उतारू हो जाय ।

किन्तु विक्रयकर्त्ताओ को बहुत ही सतर्क रहना चाहिये । उसे ग्राहको के शब्दो पर नही जाना चाहिये । उसे भरसक प्रयास करके ऐसे ग्राहक की समस्या का तत्काल निवारण करके विदा करना चाहिये । मीठी भाषा मे ही बात करते रहना चाहिए । ऐसे विक्रयकर्त्ता को बहुत ही सहनशील बनना चाहिए तथा ग्राहको में तर्क नहीं करना चाहिये ।

IV. आयु के आधार पर
(On the basis of Age)

आयु के आधार पर ग्राहकों को मुख्यत चार भागो मे बाटा जा सकता है (i) बच्चे ग्राहक, (ii) युवा ग्राहक (iii) अधेड़ ग्राहक तथा (iv) वृद्ध ग्राहक। अत. विक्रयकर्त्ता को उम्र के अनुसार ही उनसे व्यवहार करना चाहिये। भारत में विभिन्न प्रकार से आदर देने की परम्परा है। विक्रयकर्ताओं को उनका ध्यान रखना चाहिये।

V सैद्धान्तिक आधार पर
(On the basis of Theory)

सैद्धान्तिक आधार पर दो प्रकार के विक्रयकर्त्ता होते हैं (i) वर्तमान ग्राहक या ग्राहक (Customers), तथा (ii) भावी या सम्भावित ग्राहक (Prospective Customers)। वर्तमान ग्राहक वे होते है, जो वर्तमान में दुकान मे वस्तुएँ खरीदते हैं। सम्भावित ग्राहक वे हैं जिन्हे ग्राहक बनाया जा सकता है। विक्रयकर्त्ता ऐसे ग्राहकों को प्रभावित करके ग्राहक बना सकता है। ये ग्राहक को वस्तु की आवश्यकता होती है किन्तु वह यह निश्चित नही कर चुका होता है, किस दुकान से किस ब्राड की वस्तु खरीदनी है। कुशल विक्रयकर्ता उसे अपनी दुकान में लाने मे सफल हो जाते हैं और उसे वस्तु खरीदने का निर्णय लेने मे सहायता कर देते है। वस्तु के खरीदते ही वह 'सम्भावित ग्राहक' से 'ग्राहक' बन जाता है।

VI निवास स्थान के आधार पर
(On the basis of the Place of Origin)

निवास स्थान के आधार पर ग्राहक मुख्य रूप मे तीन प्रकार के होते हैं: (i) ग्रामीण ग्राहक, (ii) शहरी ग्राहक तथा (iii) विदेशी ग्राहक। विक्रयकर्ताओं को इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि ग्रामीण, शहरी तथा विदेशी ग्राहक मे बहुत अन्तर होता है। तीनो के क्रय के उद्देश्यो मे बहुत अन्तर पाया जाता हैं। अत उनके क्रय उद्देश्यो को ध्यान म रखना बहुत आवश्यक है। इसके अतिरिक्त उनकी भाषा रीति रिवाज, व्यवहार मे भी पर्याप्त अन्तर पाया जाता है। अत इस तथ्य पर भी विशेष रूप से ध्यान देना चाहिये।

अभ्यास के लिए प्रश्न

1 ग्राहकों का वर्गीकरण किन किन आधारों पर किया जा सकता है ? प्रत्येक का संक्षिप्त विवरण कीजिए।

What are the basis of classification of customers ? Describe each of them in brief.

2 क्रय उद्देश्यों के आधार पर ग्राहकों का वर्गीकरण कीजिए तथा प्रत्येक का सविस्तार वर्णन कीजिए।

Classify customers on the basis of the buying objectives and discuss each of them in detail

3 ग्राहकों की वैयक्तिक प्रवृत्ति के आधार पर ग्राहकों के प्रकारों का वर्णन कीजिए।

Discuss the customers on the basis of their individual characteristics